वर्ष : १६ अंक : ६
जनवरी १९६८

नये वर्ष के उपलक्ष्य में पाठकों को हमारी शुभकामना !

राष्ट्रपति की सलाह

अभी हाल म दक्षिण वे मदुराई विश्वविद्यालय के भवन की नीवें डालते हुए राष्ट्रपति ने राजनीतिव नेताओ वो सलाह दी है कि वे भविष्य वा खयाल करें, और शिक्षण-सस्थाओ वो अलग छोड दे। अभी कुछ दिन हुए जब बगाल म उपद्रव होने लगे और विद्यार्थी आगे किये जाने लगे, तो वहाँ वे प्रिंसिपला और हेडमास्टरा ने माँग की कि नेता विद्यार्थियो को पढने दे, उन्हे राजनीति म न घसीटे। कुछ इसी तरह की माँग उस दिन रघुनाथपुर गाँववाला ने की, जिन्होने वहा "हमारे गाँव वा आप बडा उपकार करेंगे अगर यहाँ से पचायत हटवा दे।" मैंने पूछा "वह क्यो ?" बोले "नेता आते हैं और झगडा लगाकर चले जाते हैं। हमलोगो वो एक राय से चुनाव करने ही नही देते।" इसी तरह की बात एक दूसरे गाँव मे रहनेवाले उस युवक ने की जिसने एक पार्टी का नाम लिया और कहा कि उसके कार्यालय के खुलने के महीने भर के अन्दर गाँव मे झगडा हुआ जिसमें खुलकर नारे लगाये गये और झण्डे फहराये गये। हिन्दी-अंग्रेजी आन्दोलन तो, ऐसा लगता है, जैसे विद्यार्थियो का ही है, यद्यपि पीछे हाथ खुलकर राजनीतिव पार्टियो का है।

वर्ष : १६
अंक : ६

सवाल उठता है कि ये राजनीतिक नेता गाँव मे न जायें, और शिक्षा-संस्थाओ में न जायें, तो जायें कहाँ ? अभी ससद ने भाषा का कानून पास किया है, लेकिन अब माँग हो रही है कि

भाषा के प्रश्न को हल करने के लिए एक 'राष्ट्रीय परिषद' बुलायी जाय। अगर संसद ऐसे बड़े राष्ट्रीय प्रश्नो को भी नही हल कर सकती तो वह है किसलिए? आखिर, राजनीति देश का कौनसा सवाल हल करने के लिए है? स्थिति तो यह है कि आज हर आदमी राजनीति से ऊबा हुआ है। इतना ही नही कि राजनीति प्रश्नो को हल नही कर पा रही है, बल्कि इससे बड़ी बात यह है कि वह हर प्रश्न पर, जो राजनीतिक नही भी हैं, राजनीति का रंग चढ़ा देती है, और वे पहले से कही अधिक उलझ जाते हैं। जनता के हाथ मे ईंट-पत्थर देकर राजनीति पीछे खड़ी होकर तमाशा देखती है। दुर्भाग्य है कि शिक्षण-संस्थाएँ सबसे अधिक राजनीति की शिकार हो गयी हैं। उनमे बाहर की राजनीति तो घुसती ही है, उनके भीतर भी राजनीति पैदा हो जाती है। दोनो ने मिलकर ऐसा कर दिया है कि शिक्षण-संस्थाओ मे शिक्षण-जैसी चीज रह ही नही गयी है।

जो विष गाँव से लेकर संसद तक हर स्थान, हर काम, को विषाक्त कर रहा है, वह क्या नेताओ से अपील करने से निकलेगा, जब कि उन्होने तय-सा कर लिया है कि वे विद्यार्थियो को राजनीति की बारूद की तरह इस्तेमाल करेंगे? समय आ रहा है कि अभिभावको और समझदार विद्यार्थियो को उठना चाहिए और जोरदार ढंग से आवाज लगानी चाहिए। विद्यालय के तीन ही साझेदार है—विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक। विद्यालय मे न सरकार की जगह है, न पार्टी की। यह माँग गाँव-गाँव, नगर-नगर से की जानी चाहिए तब कही राष्ट्रपति की अपील कारगर होगी। —राममूर्ति

•

कुछ समय पहले मुझे लगा था कि असल में बुनियादी शिक्षा का कोई सुपरिणाम नही निकल रहा है। आलोचको ने उसका दूसरा अर्थ लगाया और यह राग अलापना शुरू कर दिया कि बुनियादी शिक्षा असफल रही और यह व्यावहारिक नही है। लेकिन मेरा मतलब यह था कि देश के विभिन्न भागो मे बुनियादी शिक्षा का विकास के साथ कार्यान्वयन नही हुआ न कि यह कि अच्छे परिणाम देने मे ही वह असमर्थ है।

—डा० जाकिर हुसेन

वेडछी (गुजरात)
१६ अक्तूबर १९६७

पूसा रोड में शिक्षा-शास्त्रियों की परिषद्

८-९ दिसम्बर, १९६७ को पूसा रोड मे आयोजित बिहार के शिक्षा-शास्त्रियो की परिषद में विनोबाजी ने कहा कि मुझे प्रेरणा हुई है कि ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य के साथ वे शिक्षा की अहिंसक क्रान्ति का काम भी करें। उस परिषद के समापन-समारोह में बोलते हुए उन्होने कहा कि बिहार में शिक्षा की अहिंसक क्रान्ति के लिए क्या करना होगा, इसे सोचना चाहिए। वे अनुभव करते है कि इस अहिंसक क्रान्ति में योगदान करने की अथवा उसका नेतृत्व करने की उनमें क्षमता है—भूदान ग्रामदान-आन्दोलन के नेतृत्व से अधिक क्षमता। यह कार्य कैसे करेंगे इसका सकेत भी उनके भाषण में है।

वे कहते हैं—"मेरी अवस्था अब आत्म चिन्तन की है। फिर भी मैं मदद करूँगा, उसका मतलब आप समझ लीजिये। बाबा का आपके ऊपर आक्रमण नही होगा। बाबा सन्दर्भ-पुस्तक (रेफ़रेंस बुक) जैसा रहेगा 'रेफ़रेंस बुक' आलमारी में पडी है। आप उपयोग करना नही चाहेंगे तो पुस्तक उठकर आपके पास नही आयगी।"

कहा जाय तो यो कहना चाहिए कि विनोबाजी का यह उदगार देश के शिक्षा-शास्त्रियो के लिए एक चुनौती है। स्वराज्य के बीस वर्षों में राष्ट्रीय शिक्षा का रूप निश्चित नही हुआ है। उसे निश्चित करने के लिए सन १९६५ में एक शिक्षा आयोग बैठाया गया। उसकी बृहत् रिपोर्ट विचाराधीन है। अभी तक उसका कार्यान्वयन नही हुआ है। फूँक फूँककर कदम रखा जा रहा है। डेढ साल में भी अभी कदम उठाया नही गया है। और इस बीच छात्रो में सत्तागत राजनीति में भाग लेकर उपद्रव करने अथवा तोड फोड करने की हिंसात्मक प्रवृत्ति बढी है। विनोबाजी ने अपने भाषण में स्पष्ट कर दिया है—शिक्षा की प्रक्रिया अहिंसक क्रान्ति की ओर ले जानेवाली होगी और इसका पहला कार्य यह है कि शिक्षक सत्तागत राजनीति से दूर रहे। इस भूमिका में राष्ट्रीय शिक्षा का ढाँचा बने तो देश का कल्याण होगा। इस ढाँचे के बनाने में विनोबाजी सन्दर्भ पुस्तक का काम करेंगे।

हम मानते है कि नयी तालीम-परिवार ऐसा राष्ट्रीय ढाँचा बनाये। "नयी तालीम" मूलत अहिंसक क्रान्ति की अग्रदूत है—अग्रदूत बनेगी—ऐसा कथन गाधीजी का था। तो नयी तालीम के अधिकारी विद्वान अगर आज की परिवर्तित परिस्थितियो के अनुकूल कोई ढाँचा बनावें तो वह विनोबा की कल्पना

के शैक्षिक ढाँचे के अधिक निकट होगा और उसे उनका सक्रिय समर्थन प्राप्त हो सकेगा। उस ढाँचे में विनोबाजी की कल्पना साकार होगी, ऐसी आशा भी हम कर सकते हैं। अतः हम निवेदन करते हैं कि नयी तालीम के चिन्तक और कार्यकर्ता मिलें—बुनियादी शिक्षा और कोठारी कमीशन की संस्तुतियों के सन्दर्भ में योजना बनावें—और विनोबाजी का मार्गदर्शन प्राप्त कर आगे बढ़ें। इससे देश का कल्याण होगा।

श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने अपने भाषण में शिक्षा-पद्धति और समाज की स्थिति में संगति स्थापित करने की चर्चा की है, जिससे शिक्षा-पद्धति की परिणति राष्ट्रीय विकास में हो। इसके लिए उन्होंने लोकमत बनाने और लोक-शिक्षक-समाज की प्रतिष्ठापना की बात कही है। यह भी एक क्रान्तिकारी कदम होगा।

श्री जयप्रकाश बाबू ने परीक्षाओं और डिग्रियों को समाप्त करने और छात्रों की शक्ति को विधायक कामों में लगाने की बात की है।

शिक्षा का राष्ट्रीय ढाँचा बनाते समय इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर चला जाय तो शिक्षा क्रान्ति की वाहन होगी,ऐसी आशा है।

—वंशीधर श्रीवास्तव

शिक्षण : क्रान्ति के लिए

मुझे प्रेरणा हुई कि शिक्षा के काम में आपको मदद दूँ। बिहार में शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति के लिए क्या करना होगा, इस पर सोचना चाहिए। मेरे हृदय में जो स्फूर्ति हुई वह मैंने आपके सामने रखी। मैंने कहा कि मैं इस काम के लिए अपने को ज्यादा लायक मानता हूँ। आप पूछ सकते हैं कि फिर यही काम मैंने क्यों नहीं उठाया ? इसका उत्तर देना चाहता हूँ। उत्तर यह है कि इस काम में विद्वानों का सहयोग मुझे मिलेगा, इसका मुझे भरोसा नहीं था। दो विद्वान् एक जगह आ जायें और उनमें मतैक्य हो जाय तो बहुत बड़ी घटना हुई, ऐसा कहना चाहिए।

दूसरा कारण यह है कि बाबा के हृदय में करुणा काम कर रही है। जितने भी महाज्ञानी विद्वान् पुरुष हो गये, उन्होंने करुणा को महत्व दिया। बाबा बहुत विद्वान् तो नहीं है। उसके पास कुछ विचार जरूर है, लेकिन उसकी स्थिति "एरंडोऽपि द्रुमायते" जैसी है। लोगों में अविद्या है, तो थोड़ी विद्या के कारण बाबा विद्वान् समझा जाता है। लेकिन करुणा का कार्य छोड़कर बाबा विद्वानों के पीछे जायगा तो विद्वान् ध्यान नहीं देंगे, यह बाबा ने माना। मैं भारत भर पैदल घूमा हूँ। कितनी हीन-दीन दशा भारत की है, वह सब आँखों से देखा। बाबा ने भारत भर में बहुत दुःख देखा—खाने को अन्न नहीं, ओढ़ने

को वस्त्र नही, घर पर छप्पर नही, बच्चों को दूध नही, जिस जमीन पर झोपडी बनी है, वह जमीन भी उसकी नही, दवा या प्रबन्ध नही, तालीम का सवाल ही नहीं !

ग्रामदान का काम छोड नही सकता। अब उस काम के साथ शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति का काम भी बिहार में होगा ऐसा दृश्य दीख रहा है।

लेकिन मेरी एक शर्त है। बाबा ५० साल काम कर चुका है। जीवन के अन्तिम काल में आत्मचिन्तन में समय जाना चाहिए। अन्तर के सूक्ष्म मे प्रवेश करना चाहिए, ऐसा शास्त्रकार कहते हैं। अत बाबा सूक्ष्म में गया है। फिर भी मदद करूँगा कहता हूँ, उसका मतलब आप समझ लीजिये। बाबा का आपके ऊपर आक्रमण नही होगा। बाबा रेफरेंस बुक (सन्दर्भ-पुस्तक) जैसा रहेगा। रेफरेंस-बुक आलमारी मे पडी है। आप उपयोग करना नही चाहेंगे तो पुस्तक उठकर आपके पास नहीं आयगी।

करुणा के बगैर विद्या कोई काम की नही। इसलिए बाबा के करुणा-कार्य म आपका सहयोग मिलना चाहिए। बिहार में हर २-३ गाँवों के पीछे स्कूल हैं, शिक्षक सब जगह हैं। गाँव गाँव में ग्रामसभा बनाने के काम मे वे मदद करेंगे। वे यदि मार्ग-दर्शन का और नेतृत्व का जिम्मा उठायेंगे तो शिक्षकों के द्वारा बहुत काम होगा। आचार्यों ने ही भारत को बनाया है। आधुनिक जर्मनी को शिक्षकों ने बनाया, ऐसा कहा जाता है। आप यदि ग्रामदान-आन्दोलन में अपना छुट्टी का समय देंगे तो आपके दिल को भी सन्तोष होगा। दुनिया में आत्मसन्तोष से बढकर कोई चीज नही है। दीन-दुखियों की सेवा से जो आत्म-सन्तोष प्राप्त होता है, वही मनुष्य जन्म मे सबसे श्रेष्ठ प्राप्ति है। अब बिहार-दान की बात हो रही है, इसलिए बाबा के साथ आपका पूरा सहयोग मिलना चाहिए। आप अध्यापन का काम करते हैं। उसके साथ ग्रामदान का काम करेंगे तो अध्यापन का 'बायप्राडक्ट' (उपजात) वह होगा। पदयात्रा में बाबा ने जो अध्ययन किया, उसमें से कुछ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, यह बाबा की पद-यात्रा का 'बायप्राडक्ट' है। और, कई दफा कारखाने को 'बायप्राडक्टर्स' से ही अधिक लाभ होता है। तो, आप बायप्राडक्ट के तौर पर इस काम को उठा लें।

अब तीसरी बात, आपको अपने को राजनीति से ऊँचा रखना चाहिए। राजनीति का अध्ययन जरूर करना चाहिए, चिन्तन-मनन होना चाहिए, लेकिन 'पार्टी-पालिटिक्स' (दलगत राजनीति) या 'पावर पालिटिक्स' (सत्तागत राजनीति) जिसको कहते हैं, उससे अपने को ऊपर रखना चाहिए। इसीमें शिक्षक का गौरव है। वैसा आप करेंगे तो चन्द दिनों में आपकी ताकत बढेगी।

—विनोबा

आज की हमारी शिक्षा-पद्धति और समाज की स्थिति में बहुत विसंगति है। हमारा देश अल्प विकसित (अंडर डेवलप्ड) है। हमारी शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए कि उस प्रणाली की परिणति ही राष्ट्रीय विकास में हो। गांधीजी ने बहुत पहले इस बात को रखा। फिर दूसरे शिक्षाशास्त्रियों ने भी इस चीज को दोहराया। अभी जो कोठारी-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसमें उसकी ओर इशारा है।

लेकिन आज की शिक्षा-पद्धति नौकरी का 'पासपोर्ट' देनेवाली है। पढ़कर हम [illegible] बनें, इसके लिए कोई नहीं पढता है। इस शिक्षा-पद्धति में से स्वतंत्र नागरिक का निर्माण ही नहीं होता।

मैं हमेशा कहता हूँ कि 'जनरल एजुकेशन' (सामान्य शिक्षण) होना चाहिए। आज की शिक्षा 'वोकेशनल' (व्यावसायिक) है। 'एक केडर' (ढाँचा) बनाने के लिए यह शिक्षण है। नतीजा यह हुआ है कि शिक्षा का स्तर गिर गया है और अनुशासनहीनता बढ़ी है। डिग्री या सर्टिफिकेट ही यदि नौकरी के लिए पर्याप्त है तो फिर स्तर (स्टैण्डर्ड) की जरूरत क्या है ? वास्तव में शिक्षा-प्रणाली का लक्ष्य राष्ट्रीय विकास (नेशनल डेवलपमेण्ट) का और उत्तम नागरिक बनाने का होना चाहिए। फिर, वह लड़का भले ही नौकरी में भी चला जाय।

आज की शिक्षा-पद्धति समाज-निरपेक्ष बन गयी है। समाज की क्या आवश्यकता है, उसका विचार शिक्षण में नहीं है। इसलिए इस प्रकार की शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी राष्ट्रीय विकास के कार्य में उपयोगी नहीं होता। विद्यार्थियों में जोश है, शक्ति है, उनको राष्ट्र-विकास के कार्य में नहीं लगायेंगे तो उधम मचायेंगे। विद्यार्थियों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में भरोसा (कान्फिडेंस) नहीं है, निश्चितता (सिक्युरिटि) नहीं है, तो उसमें अनुशासन कैसे रहेगा ?

इस तरह की शिक्षा-प्रणाली बनाने के लिए *लोकमत बनाना होगा*। लोकमत कैसे बनता है ? उसके लिए क्रान्ति चाहिए, आन्दोलन चाहिए। शिक्षक-वर्ग क्रान्ति का अच्छा माध्यम बन सकता है। लोकमत बनाने का काम सरकार नहीं कर सकती। सरकार तो लोक-प्रतिनिधि होती है। वह लोगों के पीछे जानेवाली होती है, पीछे जानेवाले लोग नेतृत्व (लीड) नहीं दे सकते। नेतृत्व देने का काम लोक-नेताओं का, लोकनायकों का है। जब तक देश में लोकमत नहीं बदलेगा, तब तक हमारे शिक्षण का उद्देश्य भी नहीं बदलेगा। यह कार्य लोक-शिक्षक-समाज ही कर सकेगा। यह समाज राज्य-निरपेक्ष होना चाहिए। उसके लिए उद्गम (रूट) में जाना चाहिए। वैसे उद्गम (रूट) तो भगवान है,

लेकिन उसको छू नहीं सकते। भगवान के बाद माता-पिता (पैरेण्ट) आते हैं। इसलिए हमें माता पिता का शिक्षण करना होगा।

न्यायपालिका (ज्यूडीशियरी) जैसे राज्याधीन (स्टेट-कण्ट्रोल) से अलग है, वैसे शिक्षण (एजुकेशन) राज्याधीन (स्टेट-कण्ट्रोल) से अलग होना चाहिए, ऐसा विनोबाजी कहते हैं। लेकिन न्यायपालिका को अलग नहीं रखेंगे तो राज्य (स्टेट) का अपना ही अस्तित्व नहीं रहेगा। इसलिए ज्यूडीशियरी का राज्य (स्टेट) ने आत्मरक्षा के ख्याल से अलग रखा है। वैसी स्थिति शिक्षण की नहीं है। लेकिन दरअसल शिक्षण में गुरुसम्प्रदाय की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। राज्य-शक्ति के विकल्प में शिक्षा-शक्ति को खड़ा करना होगा। यह काम स्वतंत्र लोक शिक्षक-समाज ही कर सकता है। सरकार का स्थान केवल आर्थिक सहायता देने मात्र का रहे।

हमारी शिक्षा-पद्धति को भी आज के विज्ञान के जमाने में गतिशील बनना होगा। आज से पचीस वर्ष बाद दुनिया की हालत वैज्ञानिक प्रगति के कारण इतनी बदलनेवाली है कि जितनी पहले के जमाने में शायद पाँच-दस साल में भी नहीं बदली होगी। इसलिए आपके पास जो विद्यार्थी पढ़ने के लिए आयगा, उसका पचीस वर्ष बाद जिस सामाजिक परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा, उसकी तैयारी कर देनी होगी। इसलिए शिक्षकों को अपनी भूमिका (रोल) और अपनी जिम्मेवारी ठीक-ठीक समझनी होगी। समाज को काल प्रवाह के साथ ले जाने की जिम्मेवारी शिक्षकों की है। समाज का नेतृत्व करने की जिम्मेवारी शिक्षक की है। शिक्षण और प्रशासन, यह परस्पर विरोधी चीज है।

—धीरेन्द्र मजूमदार

निर्माण का आधार

अभी धीरेन्द्रभाई ने जो बात कही उसीको मैं थोड़ा आगे ले जाकर कहना चाहता हूँ। वह मेरे अकेले का विचार है ऐसी बात नहीं है। शिक्षा-शास्त्रियों ने भी इस विषय पर सोचा है। आज जो शिक्षा प्रणाली चल रही है वह अंग्रेजों की कायम की हुई है। यह नौकर पैदा करने की प्रणाली है। शिक्षण किस लिए ? तो नौकरी के लिए। यह शिक्षण और नौकरी का सम्बन्ध तोड़ना चाहिए, तभी शिक्षा का उद्धार होगा। सरकार की तरफ से यह घोषणा की जानी चाहिए कि "नौकरी के लिए डिग्री का कोई मूल्य नहीं है। जिस पद के लिए हमें लोग चाहिए उसका विज्ञापन हम निकालेंगे और उसके लिए क्या योग्यता चाहिए, इसका ऐलान करेंगे। उम्मीदवारों की हम अलग से परीक्षा लेंगे और उसमें जो सफल होंगे उनमें से लोगों का चुनाव करेंगे।" यह चीज

जब तक नहीं होती तब तक चाहे जितनी बार शिक्षा-सुधार की बात दोहराते रहिये, शिक्षा का उद्धार नहीं होगा।

इसका दूसरा पहलू यह होगा कि डिग्रियाँ और परीक्षाएँ समाप्त की जानी चाहिए। प्रायमरी से हाईस्कूल तक जो भी आठ या दस साल रखने हों और उनमें प्रायमरी, सेकेंडरी, मिडिल इत्यादि जो विभाग करने हों वे किये जायँ, लेकिन सर्टिफिकेट (प्रमाण-पत्र) इतना ही दिया जाय कि अमुक लड़का इतने साल अमुक विद्यालय मे अमुक विषय लेकर पढ़ा। इसके बाद उसको विश्व-विद्यालय में जाना हो तो जैसे आज का ३ या ४ साल का अभ्यासक्रम है, उसमें वह पढेगा। वहाँ से भी उसको इतना ही प्रमाण-पत्र दिया जाय कि अमुक विषय लेकर वह अमुक कालेज में अमुक साल पढ़ा। इतने प्रमाण-पत्र पर उस विद्यार्थी को नौकरी नहीं मिलेगी। उसको जहाँ नौकरी के लिए जाना होगा, वहाँ उसको उस विभाग की परीक्षा देनी पड़ेगी।

इस दिशा मे अन्य राष्ट्रों के अनुभव भी जाने जायँ। आज भी डिग्री क्लास के अलावा अलग-अलग डिपार्टमेन्ट (विभाग) की अपनी ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) है ही। सरकार ऐसी विशिष्ट ट्रेनिंग रखे। तब विद्यार्थी को भी यह निश्चित रूप से मालूम होगा कि वह क्या बनने के लिए प्रशिक्षण ले रहा है।

चीन ने परीक्षाएँ रद्द कर दी है। यह रेडिकल (बुनियादी) बात लगती है। लेकिन शायद यह अधिक व्यावहारिक है। मै अपने देश के युवकों की हालत से बहुत चिन्तित हूँ। इसमें युवकों का दोष नहीं है। युवक हमारे पास शिक्षण के लिए आते है। वे मिट्टी है और शिक्षक कुम्हार है। घड़ा अगर ठीक नहीं बना तो कुम्हार का दोष है। आज युवकों की चिन्ताजनक हालत है, उसके लिए अपना समाज, माता-पिता, शिक्षक, युनिवर्सिटियाँ, सरकार, सब जिम्मेवार है। शिक्षा के मामले मे बिहार और भी कमजोर है। शायद बिहार का नम्बर सबसे नीचे का होगा। यह प्रदेश वैसे ही पिछड़ा है। शिक्षा की यही हालत रही तो और भी पिछड़ेगा।

इसीलिए मेरा सुझाव है कि विद्यार्थियों को विधायक कार्य की दिशा में मोड़ना चाहिए। राज्य की ओर से वह अनिवार्य न किया जाय, बल्कि ऐच्छिक रखा जाय। यदि अच्छा और ठोस आयोजन बनाकर विद्यार्थियों के सामने रखा जाय तो कुछ चुने हुए विद्यार्थी इसमें आकर्षित हो जायँगे और धीरे-धीरे आगे राह खुल जायगी। शुरू में भले वह छोटी धारा दिखे, लेकिन आगे चलकर वह गंगा का रूप लेगी।

हर कालेज में तरुण शान्ति-सेना का केन्द्र बने ऐसा मै चाहता हूँ। मैं इसको अनिवार्य बनाने के पक्ष में नहीं हूँ। जो चीज अनिवार्य की जाती है, उसमें आगे चलकर ढोंग बढ़ता है। इसलिए इसको ऐच्छिक रखा जाय। मैं

नही चाहता कि यह सरकार की चीज बने । बडी अजीब बात है अपने देश में कि अच्छी चीज को भी जब सरकार छूती है तो वह बिगड जाती है। जवाहरलालजी ने यही बात कम्युनिटी डेवलपमेन्ट के बारे में कही थी। इसलिए इस काम म मै आपका व्यक्तिगत सहयाग चाहता हूँ। जिन लोगो को स्फूर्ति हो वे मुझे मदद करें।

अपने देश मे लाखो विद्यार्थी और हजारो शिक्षकगण है। आपके हृदय से प्रेरणा निकलेगा तब इस काम म बल आयगा। इसमे विद्यार्थिया को किसी तरह का प्रलोभन न दिखाया जाय। इसमें शरीक हो तो आगे सरकारी नौकरी म अग्रिमता दी जायगी, इत्यादि बातें न कही जायें।

—जयप्रकाश नारायण

दक्षिण-उत्तर का ऐक्य

श्री त्रिगुण सेन—'इमोशनल इण्टीग्रेशन' के लिए आप क्या उपाय सुझाते है?

श्री विनोबाजी—'लिंग्विस्टिक स्टेट्स' (भाषायी राज्य) तो आपने बना ही लिये हैं। अब आपको 'इन्टीग्रेशन' (एकता) के लिए कदम उठाने है। मैं सुझाऊँगा कि विश्वविद्यालयो मे राष्ट्र की भिन्न-भिन्न भाषाओ के अध्ययन को उत्तेजन दिया जाना चाहिए।

एक कोष (डिक्शनरी) बनानी चाहिए, जिसमें सब पन्द्रह भाषाओ मे होनेवाले समान (कामन) शब्दो की सूची हो। जैसे "प्रयत्न" शब्द है। भारत के सब भाषाओं में यह शब्द है। उसी तरह कुछ शब्द तेरह भाषाओ में, कुछ चौदह में 'कामन' होगे। उन्हें भी कोष में शामिल किया जाय। इस तरह समान शब्दो का एक कोष बनना चाहिए। इस तरह का कोष बना तो प्रादेशिक सरकारें अपने प्रदेशों में भाषा की पाठ्य-पुस्तकें दो लिपियो मे—स्थानिक लिपि में और नागरी लिपि में—छापें, और पढने के बारे में स्वतन्त्रता दें। जिसे जो लिपि पसन्द हो, उसमें वे पढें, उसीमें उत्तर दें और उसीमें बोलें, इस तरह की स्वतन्त्रता रहे। दो लिपियो के छापने में खर्चा तो बढ सकता है, लेकिन वह अच्छा काम होगा। कुछ दिनो बाद उसका फायदा दिखाई देगा। असम में आदिवासी (ट्राइबल्स) हैं, वे नागरी में असमिया सीखना पसन्द करेंगे, क्योकि उसमें से उन्हें असमिया और हिन्दी, दोनो भाषाएँ सीखने में सुविधा होगी।

कुछ वर्षों पहले एक राष्ट्रीय एकता परिषद (नेशनल इन्टीग्रेशन कान्फरेन्स) हुई थी। उसकी एक बैठक हुई थी, एक समिति भी नियुक्त की गयी थी। बाद में चीन का हमला आया, देश म एकता निर्माण हुई, ऐसा दीखने लगा और इस समिति का काम बन्द हो गया। जब तक हमले की गर्मी थी, देश में

एकता का प्रदर्शन था। बाद में जो हम पहले करते थे, वही हमने करना शुरू किया। इसका अर्थ हुआ कि हमारी एकता के लिए चीन के हमले की हमे जरूरत होती है। यह दु खद बात है।

"गीता प्रवचन" का १५ भाषाओ में तर्जुमा हुआ है। कुछ भाषाओ में हमने वह दोनो लिपियो में छापा है। जैसा बगला भाषा का "गीता प्रवचन" बगला लिपि में और नागरी में छपवाया है। उसी तरह कन्नड भाषा का भी कन्नड और नागरी में छपवाया है। अखिल भारत में चलनेवाली इस तरह की किताबें दोनों लिपियो में छपवायी जानी चाहिए।

श्री नारायण सेन द्वारा चीनी भाषा नागरी लिपि में लिखवाने की तैयारी करने को मैंने कहा था। सुना है, उसकी किताब तैयार है। उस पर से चीनी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है।

प्रश्न—दक्षिण उत्तर के भावात्मक एकता 'इमोशनल इन्टीग्रेशन' के लिए खास तौर पर क्या करें ?

उत्तर—केरल, कर्नाटक, आन्ध्र में उत्तर का और हिन्दी का खास विरोध नही है, जो विरोध है वह तमिलनाड में है। तमिल भाषा दो हजार वर्ष पुरानी है। इसलिए उसका अभिमान होना स्वाभाविक है। अभिमान है तो अच्छी बात है। उनका कहना है कि हिन्दी लादने का आग्रह न रहा तो हम हिन्दी सीखेंगे। राजाजी ने एक लेख तमिल में लिखा था, करीब एक साल पहले। वह अंग्रेजी में नही छपा था। मैंने वह तमिल मे ही पढा। उन्होने लिखा था, हिन्दी लादना गलत है और हिन्दी न सीखना गलत है। उनकी बात समझ में आ सकती है। दक्षिणवालो के लिए व्यापार इत्यादि के लिए हिन्दी आवश्यक है। इसलिए हिंदी न सीखना गलत होगा। इस चीज को हमे समझना चाहिए।

भावनात्मक ऐक्य के लिए पदयात्राएँ शुरू करनी चाहिए। एक भाषिक प्रदेश से दूसरे भाषिक प्रदेश मे जानेवाली पदयात्रा हो। इससे भाषा का ज्ञान बढेगा। हमने हाल ही में बहनो की एक पदयात्रा शुरू करायी है। उसे हम 'लोक-यात्रा' कहते हैं। बहनो की एक टोली १२ साल के लिए निकल पडी है। उसमें एक बहन असमिया है। हिन्दी जानते हुए भी वह असमिया में ही बोले, ऐसा मैंने उसे कहा है। उसका तर्जुमा किया जाता है। उससे असमिया भाषा का 'टोन' समझ में आता है। अभी वह टोली इन्दौर में घूम रही है। ●

विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका

डा० आत्माराम

[इस अंक में हम केन्द्रीय विज्ञान और उद्योग अनुसन्धान परिषद् के अध्यक्ष डाक्टर आत्माराम के भाषण का सारांश दे रहे हैं, जिसे उन्होंने भारतीय विज्ञान कांग्रेस के पचपनवें अधिवेशन के अवसर पर ३ जनवरी, सन् १९६८ को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अध्यक्ष-पद से प्रस्तुत किया था। इस भाषण में उन्होंने 'श्रम-मूलक टेक्नोलाजी को भारत ऐसे श्रम-प्रधान देश के अनुकूल बताकर उस औद्योगिक नीति का समर्थन किया है, जिसका परिणाम विकेन्द्रीकरण होगा और प्रारम्भ से ही गांधी-विनोबा की औद्योगिक नीति रही है। इस भाषण के लिए हम डाक्टर आत्माराम को साधुवाद देते हैं।—सम्पादक]

हमारा ध्येय वैज्ञानिकों और जनता के बीच सजीव सम्पर्क स्थापित करना है। यदि हमें ऐसा सम्पर्क स्थापित करना है तो यह आम धारणा मिटानी होगी कि वैज्ञानिकों का काम जनता की समझ-बूझ से बाहर है। विज्ञान और टेक्नोलाजी का प्रभाव जन-साधारण पर पड़ता है, इसलिए वैज्ञानिकों के लिए यह जरूरी है कि वे अपने काम को जनता के सामने रखें और जनता के विचारों को मालूम करें।

हम ऐसे समय एकत्र हुए हैं, जब कि हम एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ समय पूर्व शुक्र के अपारदर्शक वायुमण्डल को भेदता हुआ मनुष्य का बनाया यन्त्र उसकी सतह पर उतारा गया। यह एक अभूतपूर्व कार्य है। हम सब भारतीय वैज्ञानिक उन साथी वैज्ञानिकों को बधाई दें, जिन्होंने यह महान सफलता प्राप्त की है। इस प्रसंग में हम यह नहीं भूल सकते कि जहाँ एक ओर उन्नत देशों का प्रयास यह है कि 'मनुष्य चन्द्रमा पर कैसे चले', वहाँ दूसरी ओर विकासशील देशों की प्रमुख समस्या है—'मनुष्य को पृथ्वी पर ही ठीक तरह चलने योग्य कैसे बनाया जाय।'

नेहरू भारत में विज्ञान को इतना महत्व क्यों देते थे? विज्ञान पर इतना अधिक बल देने में हमारा उद्देश्य क्या है? विज्ञान से रचनात्मक विचारधारा का विकास होता है और ज्ञान का भंडार बढ़ता है। परन्तु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि विज्ञान और टेक्नोलाजी उद्योग और कृषि के

विकास में और स्वास्थ्य रक्षा में अति उपयोगी ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है। सक्षेप में कह सकते है कि विज्ञान की सहायता से जीवन-स्तर ऊँचा करने म सहायता मिलती है। मनुष्य को अपनी भलाई के लिए पहले कभी इतना ज्ञान और तकनीक उपलब्ध नहीं थे जितने आज है। इसीलिए आज विज्ञान का इतना महत्व है। मानव-कल्याण म योगदान देने का पूरा-पूरा दायित्व भारतीय वैज्ञानिकों पर है। हमें देखना है कि हम अपने समाज और जन-साधारण के कितने समीप हैं और हमारा काम हमारे समाज की आशाओ और इच्छाओ म कहां तक सम्बद्ध है।

मैं यह अनुभव करता हूँ कि विज्ञान की शिक्षा म प्रयोगात्मक पहलू पर पर्याप्त बल नहीं दिया जाता। इसके लिए यह जरूरी नहीं कि हमारे पास बड़-बड़े जटिल यत्र हो। हम अपने आप ही उपकरणों को बनाने की आदत डालनी चाहिए। इससे कायकुशलता आती है और मशीनो की समझ भी, साथ ही शिक्षा प्रणाली उत्पादन उन्मुखी होगी।

विज्ञान के क्षेत्र म हमारे पूर्वजो ने ज्ञान का भण्डार बढाने में महान योग दिया लेकिन यह ज्ञान समाज की जरूरतो से सम्बद्ध न रहा। धीरे धीरे विज्ञान म हम अपना स्थान खो बैठे। राजा राममोहन राय के प्रयासो के फलस्वरूप भारत में नवजागरण हुआ और भारतवासियो को अपने शासक-वर्ग में से बौद्धिक समानता प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो उठी। उच्च कोटि के वैज्ञानिक हुए, जो ससार के वैज्ञानिको स कधे से-कधा मिलकर चले।

हमारी विज्ञान और उद्योग-नीतियो को जोड़नेवाली एक टेक्नोलाजी नीति की घोषणा बहुत जरूरी है। इस घोषणा में अन्य बातो के अलावा ये बातें भी ध्यान में रखनी चाहिए —

(१) आधुनिक टेक्नोलाजी पूजी प्रधान है, 'बल-श्रम-न्यून'। भारत की परिस्थिति भिन्न है—पूजी की कमी, श्रम की अधिकता। विदेशी मुद्रा की विशेष रूप से कमी है। ऐसी स्थिति में हमारे लिए कौनसी टेक्नोलाजी उचित होगी ?—सबसे उच्च प्रकार की अथवा अपनी परिस्थिति के अनुकूल, जिससे सामाजिक असन्तुलन न हो और बेरोजगारी न रहे। टेक्नोलाजी अपनाते समय प्रतिष्ठा का सवाल नहीं उठना चाहिए। यह धारणा गलत है कि गैर-स्वचालित टेक्नोलाजी घिसी पिटी है और उच्चतम टेक्नोलाजी केवल स्वचालित ही हो सकती है।

(२) किन किन क्षेत्रो म देश को बाहर से जानकारी लाने की जरूरत है और ऐसे कौनसे क्षेत्र हैं जिनमें हम अपनी प्रयोगशालाओ और सस्थाओं द्वारा जानकारी तथा प्रक्रियाएँ विकसित होने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं। यदि उपभोक्ता माल के लिए हम श्रम प्रधान टेक्नोलाजियो को अपनायें तो अच्छा है।

(३) कतिपय क्षेत्रों में, जैसे—इस्पात निर्माण, मूल रसायनों, रक्षा और स्वास्थ्य में हमें सर्वोत्तम टेक्नोलाजी ही अपनानी होगी।

टेक्नोलाजी नीति और कच्ची सामग्री की उपलब्धि का सम्बन्ध महत्वपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में हमें उन चीजों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, जिसमें हमारी स्थिति अच्छी है और ऐसे क्षेत्रों में हमें अच्छी-से-अच्छी विधियाँ प्रयोग में लानी चाहिए। मसलन हमें जूट, टेक्सटाइल उद्योगों से सम्बन्धित अनुसन्धान पर निरन्तर ध्यान देना चाहिए था। इन उद्योगों से हमें काफी विदेशी मुद्रा मिलती है। इन क्षेत्रों में हम विज्ञान के बल पर अपनी स्थिति सुदृढ बनायें। इसी प्रकार अन्य सवाल हो सकते हैं, जिन पर हमें अपनी टेक्नोलाजी नीति पर वक्तव्य घोषित करना चाहिए। अच्छा हो, हम अपनी टेक्नोलाजी नीति को कुछ स्पष्ट करें।

मानव-साधनों का विकास

भारत को गरीब-अमीर देश कहा जाता है। हमारे पास साधनों की कमी नहीं, लेकिन देश में गरीबी है। विकास के लिए हमें तीन चीजों की जरूरत है—भौतिक साधनों का विस्तृत सर्वेक्षण और उनका उपयोग, पूंजी निर्माण और उद्योगों को प्रोत्साहन तथा मानव साधनों का विकास।

इनमें मानव-साधनों का विकास सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आर्थिक प्रगति के लिए पूंजी, टेक्नोलाजी और आर्थिक जानकारी, प्रबन्ध योग्यता, आधुनिक औद्योगिक कुशलता तथा कठिन परिश्रम के लिए निष्ठा चाहिए। पूंजी को छोडकर शेष का सम्बन्ध मानव-साधनों से है। ऐसे देशों के भी उदाहरण हैं, जिन्होंने अधिक पूंजी न होने पर भी अपने मानव-साधनों के बल पर उल्लेखनीय प्रगति की है। इतिहास में ऐसे देशों की मिसालें भी हैं, जिन्होंने सब कुछ होते हुए भी अपनी बेवकूफी से देश को उजाड बना दिया है।

देश का विकास केवल कठिन परिश्रम से ही हो सकता है। विभिन्न रूपों की विदेशी सहायता केवल सहायक हो सकती है हमारे परिश्रम का स्थान नहीं ले सकती, न हम आत्मनिर्भर बन सकते हैं। जब तक वैज्ञानिक और तकनीकी योग्यताओं, औद्योगिक कुशलताओं और आधुनिक सामाजिक मान्यताओं पर आधारित देश के अन्दर शक्तियों का निर्माण नहीं होगा, तब तक हम विकास का समुचित आन्तरिक ढाँचा नहीं बना सकेंगे।

जब तक वैज्ञानिक यह अनुभव नहीं करेंगे कि समाज की प्रगति में वे एक जिम्मेदार की तरह हैं, वे समाज पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेंगे और न समाज का विश्वास ही प्राप्त कर सकेंगे।

समाज को ढालने में शक्तियों का जो जटिल जाल है, उसमें विज्ञान और टेक्नोलाजी एक महत्वपूर्ण अंग है। एक सच्चे वैज्ञानिक में विनम्रता का

आभास होना चाहिए। हम अन्य पहलुओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। व्यावहारिक विज्ञान अभी विकास की आरम्भिक अवस्था में है। सम्भवत इन विज्ञानो के विकास से हम व्यक्ति और समाज को गहराई से समझ सकेंगे।

आचार्य विनोबा भावे कहते आये हैं कि आधुनिक ससार में विज्ञान और अध्यात्म ने राजनीति और धर्म का स्थान ले लिया है। यह बात हमारे लिए बड़ा महत्त्व रखती है। नेहरूजी ने हमारे जैसे समाज के लिए इसका महत्त्व समझा। यदि हम धर्म का अर्थ रूढ़िवाद, अन्धविश्वास और ऐसी ही बात से लगाते है, तो हमें इन्हें दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। मानव-जीवन में अध्यात्म का थोड़ा पुट आवश्यक है। विज्ञान ने अभी ऐसी कोई औषधि पैदा नहीं की है, जिससे मानव में अच्छे गुण आयें और न ऐसी कोई ऐन्टीबायोटिक ईजाद हुई हैं, जो कट्टरता को हटा सके।

हमारी सभ्यता बहुत प्राचीन है, इसलिए हमारे लोग परम्पराओं में डूबे हुए है। लेकिन हमें समस्याएँ बहुत समझ-बूझकर सुलझानी हैं। बजाय इसके कि हम अपना समय दूसरों की कमी जताने में व्यतीत करें, हमें विज्ञान और टेक्नोलाजी के कुछ रचनात्मक काम और लाभ करके दिखाने चाहिए। गांधीजी कहा करते थे—गरीब के लिए ईश्वर रोटी या चावल के निवाले में ही प्रकट होता है। इससे पहले कि हम आशा करें कि लोग रूढ़िवादिता छोड़ें और वैज्ञानिक रुख अपनायें, हम अपने से यह भी पूछ लें कि हमने कहाँ तक उन्हें जीवन की आवश्यकताएँ—भोजन, कपड़ा, मकान यानी आर्थिक सुरक्षा प्रदान की है।

स्वदेशी की भावना

देश में ऐसी भावना भी व्याप्त है कि हर विदेशी माल देशी माल से अच्छा है। यह भावना हमारे विज्ञान और टेक्नोलाजी के क्षेत्र में भी है। यदि किसी माल पर विदेशी नाम की छाप ही हो तो उसके बिकने में कोई अड़चन नही। स्वदेशी की भावना जो स्वतत्रता के पहले इतनी प्रबल थी, अब बहुत कम दिखायी देती है। शायद इसके लिए गाधीजी को फिर भारतवर्ष में जन्म लेना होगा।

स्वदेशी की भावना का यह मतलब नहीं कि जो तकनीकी जानकारी जानी-बूझी हो और बाहर से मिल सकती हो, उसका हम पुन आविष्कार करें और हमारे जो सीमित साधन हैं, उनको इसीमें लगाये रहें। यदि राष्ट्रीय हितो को ठेस लगे बिना हम विदेशो से टेक्नोलाजी ले सकते हैं तो उसे लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। इस टेक्नोलाजी को लेने पर भी हमारे वैज्ञानिको का महत्त्व कम नही होगा, क्योंकि उनका काम इस विदेशी टेक्नोलाजी को देश की जरूरतो और परिस्थितियों के अनुसार ढालना होगा।

देश में वैज्ञानिक जनमत तैयार करने की जरूरत जितनी इस समय है,

उतनी पहले कभी नहीं रही। वैज्ञानिकों को 'संघटन' की चमक-दमक में सावधान रहना चाहिए। जिस प्रकार विज्ञान जादू नहीं है, उसी प्रकार केवल संघटन भी चमत्कार नहीं है। मैं एक निवेदन अवश्य करना चाहूँगा, विशेषतः युवक-युवतियों से कि वे वाद-विवादों और नारों में न पड़ें। कठिन परिश्रम और लगन का स्थान और कोई चीज नहीं ले सकती। हम अपने में परिश्रमी जीवन की प्रबल भावना पैदा करें। मेरी समझ में अच्छे, सुखद और लम्बे जीवन के लिए युवा पीढ़ी की बढ़ती महत्त्वाकांक्षा पूरी करने का यही तरीका हो सकता है। ●

समवाय-शिक्षण-पद्धति का विकास—२

वंशीधर श्रीवास्तव

सयोजन और अनुबन्ध समवाय के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण कदम था—सयोजन (इन्टीग्रेशन)। विषयो के सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त में विषयो की अलग-अलग सत्ता बनी रही और पाठ्यक्रम अलग-अलग विषयो का समुच्चय बना रहा। विषय-सामग्री का सगठन भी पहले जैसा ही रहा। केन्द्रीकरण के सिद्धान्त में भी एक प्रकार परम्परित विषयो की अलग-अलग सत्ता बनी रही, भले ही केन्द्रीय विषय का महत्व अधिक हो गया हो। परन्तु अमेरिका के शिक्षा-शास्त्री जान डिवी ने पाठ्यक्रम को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने की बात कही। उन्होने कहा, चूँकि मन 'एक अखड-अविभाज्य' इकाई है, अत बालको को ज्ञान भी 'अखण्ड-समन्वित' रूप में ही दिया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि विषयो की परम्परित सीमा भग कर उनका एक में विलयन (फ्युज़न) अथवा एकीकरण (युनिफिकेशन) कर दिया जाय, जिससे ज्ञान विभिन्न विषयो की टुकडियो में न बँटकर समन्वित, अविभक्त रूप में प्रस्तुत किया जा सके। डिवी के पहले शिक्षा भावी जीवन की तैयारी मानी जाती थी और उस तैयारी के लिए विशेष गुणो और आदतो के विकास को आवश्यक माना जाता था। अत उन्हींके अनुसार विभिन्न विषयो की योजना बनायी जाती थी। परन्तु डिवी ने कहा कि शिक्षा जीवन ही है, जो अखण्ड और सम्पूर्ण है। अत स्कूल मे शिक्षा की योजना भी ऐसी बनायी जाय, जो सिखाने की क्रिया को समन्वित-अखण्ड-सम्पूर्ण इकाई के रूप में प्रस्तुत करे।

डिवी लिखते हैं, "प्रारम्भ मे बालक के लिए विश्व धूमिल अविभक्त इकाई है। वह उसे भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक, कलात्मक अथवा वैज्ञानिक आदि किसी विशिष्ट दृष्टिकोण से नही देखता। अभी तो वह प्रकृति और मनुष्य में भी अन्तर नहीं कर पाता। आदिम मानव की भाँति वह सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में 'जीव' देखता है, जीव की एकता देखता है। ऐसी दशा में इस ऐक्य भावना को नष्ट कर ज्ञान पर 'भूगोल', 'इतिहास', 'कला', 'विज्ञान' आदि विषय की चिप्पियाँ लगाकर प्रस्तुत करना अमनोवैज्ञानिक और हानिकर है।"

एक दूसरी बात और है। इस स्तर पर बालक के पास-पड़ोस के धधे,

उनमें काम आनेवाली वस्तुएँ और उन धन्धो को करनेवाले पेशेवर, उनका सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण और उस वातावरण के जीव जन्तु एव क्रिया कलाप ही उसकी रुचि के केन्द्र है। अत अधिक अच्छा और मनोवैज्ञानिक यही होगा कि इन्ही धन्धा और जीव जन्तुओ के उसके अनुभव के चारा ओर ज्ञान का ताना-बाना बुना जाय। स्कूल मे परम्परित विषया को परम्परागत ढग से पढाने के स्थान पर इन्हीं धन्धो, अनुभवो आदि क माध्यम से दूसरे विषयो को पढाया जाय, तो बालक इसे अधिक सरल ढग से सीख सकेंगे। इस प्रकार की ताना-बाना बुनने की प्रक्रिया सयोजन और पद्धति अनुबन्ध है।

इसके दा परिणाम हुए। एक तो स्वय अपनी क्रिया और अनुभव के माध्यम से सीखने के फलस्वरूप सयोजन का काय बालक ने किया, जो मनोविज्ञान-सम्मत है। दूसरे विभिन्न विषयो का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने के स्थान पर किसी एक क्रिया अथवा धन्धे के माध्यम से दूसरे सभी विषयो के शिक्षण अनुबन्धन अधिक दृढ हुआ। 'सह-सम्बन्ध' मे सयोजन का काम अध्यापक करते थे। वही भिन्न भिन्न विषयो के समान अशो का चयन और सगठन करते थे जिससे विभिन्न विषया का समन्वित ज्ञान सम्भव हो सके। परन्तु अनुबन्ध (कोरिलेशन) में सयोजन का काम बालक स्वय करते हैं। यही स्वाभाविक भी है, क्योकि वास्तव म सयोजन तो एक आन्तरिक मानसिक क्रिया है बाह्य प्रयास नही है। यथार्थ जीवन में भी सयोजन का यह काम बालक स्वय करता भी है। किसी क्रिया को सफलतापूवक सम्पन्न करने के लिए बालक उपादान एकत्र करता है और फिर उन्हें व्यवस्थित कर काय करता है। यह व्यवस्था ही सयोजन है। जितना अवसर बालक को स्वय सयोजन करने का दिया जायगा उतना ही उसकी व्यावहारिक काय-क्षमता बढेगी। इसी दृष्टि से अनुबन्ध-पद्धति सह-सम्बन्ध पद्धति से भिन्न है।

डिवी का यह अनुबन्ध हर्बार्ट के सह-सम्बन्ध से भिन्न है। सह सम्बन्ध में विषय-सामग्री के सगठन में किसी प्रकार का उलट-फेर नही होता। केवल सम्बन्ध स्थापन की दृष्टि से उसम से कुछ अशो का उपयोग कर लिया जाता है। किन्तु सयोजन मे पाठ्य विषया क सगठन म किसी वाछित योजना की पूर्ति के लिए बालक मनमाना परिवतन कर लता है और इस परिवतन में उनके सहेतुक सगठन का अथवा उनकी क्रमबद्धता का ध्यान नही रखा जाता। सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त में विषयों का क्रमबद्ध ज्ञान ही दिया जाता है। परन्तु योजना-पद्धति (अनुबन्ध-पद्धति) म इस क्रमबद्धता की अवहेलना करनी पडे, ता की जाती है। वहाँ तो किसी योजना की पूर्ति ही लक्ष्य है। उस पूर्ति में विषयों का कोई भी अश कही से ले लेते है। ध्यान केवल बालक की क्षमता और आवश्यकता का रखा जाता है विषय की क्रम बद्धता का नही।

शिक्षा की इस पद्धति को अनुबन्ध अथवा योजना-पद्धति कहते है। डिवी के अनुयायियों और सहकर्मियों—किल्पैट्रिक और स्टीवेन्सन आदि ने इस पद्धति का विकास किया। योजना एक समस्यामूलक कार्य है, जिसे यथार्थ परिस्थिति में पूरा किया जाता है। कार्यान्वयन के लिए योजना को इकाइयो (यूनिट्स) में बाँट लिया जाता है। इकाई का निर्माण बालक की केन्द्रीय रुचि या समस्या के चारो ओर होता है। किसी भी इकाई को पूर्णत आत्मसात् करने के लिए, और वैज्ञानिक ढग से उसके सम्पादन के लिए भाषा, गणित, सामाजिक विषय, विज्ञान, कला आदि विषयो को जानना आवश्यक हो जाता है। सभी विषयो से सामग्री ग्रहण की जाती है। जीवन की जिन समस्याओ को हम हल करते हैं उनमें अनजाने ही हम भाषा, गणित, विज्ञान आदि नाना विषयो का सहायता लेते ही हैं। इसी प्रकार इकाई-सम्बन्धी क्रियाओ को सम्पन्न करने के लिए अथवा योजना की समस्याओ के निराकरण के लिए हम सभी विषयों से सहायता लेते है और पाठ्यक्रम में दिये हुए विषयो के वर्गीकरण अथवा क्रम-बद्धता से बँधकर नही चलते। वास्तव में 'इकाई' को पूर्ण करने के लिए हमें विभिन्न विषय रूपी सामग्री का अपने ढग से सयोजन करना पडता है। सयोजन की इस प्रक्रिया में सब विषयों की सामग्री का विलयन हो जाता है।

'सयोजन विलयन अनुबन्धन' योजना-पद्धति की विधियाँ है। इनमें और सह-सम्बन्ध तथा केन्द्रीकरण में अन्तर है। सह-सम्बन्ध में पाठ्य क्रम के विषयो में आपसी सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। केन्द्रीकरण में एक ही विषय से दूसरा विषयो को सम्बन्धित करने की कल्पना की जाती है। परन्तु अनुबन्ध में प्रायोगिक विषयों अथवा स्वर्जित अनुभवों से सम्बन्धित कर दूसरे विषयों को पढाया जाता है जिसमें विषयों का विलयन अथवा एकीकरण हो जाता है।

इस सयोजन अथवा अनुबन्ध पद्धति और समवाय पद्धति में भी अन्तर है। सयोजन-पद्धति में कर्म द्वारा ज्ञान देने का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक होने से मान्य हुआ है। परन्तु यहाँ कर्म का स्थान गौण है, प्रमुखता ज्ञान की है। समवाय पद्धति में कर्म और ज्ञान का समान महत्व है। कर्म गौण नही है। वह साधन मात्र नही है, साध्य भी है।

विनोबाजी ने सयोजन-पद्धति के इस लक्षण की ओर ध्यान दिलाया है। वे लिखते हैं, "योजना-पद्धति में कर्म का गौण स्थान दिया गया है। कुछ ज्ञान देना है तो उसके अनुकूल एक सयाजन लेकर पढाया जाता है। इसके विपरीत "समवाय-पद्धति" में कोई एक जीवन-व्यापी और विविध अगयुक्त मूल-उद्योग शिक्षण के माध्यम के तौर पर लिया जाता है। यह उद्योग शिक्षण का सिर्फ एक साधन नहीं, बल्कि उसका अविभाज्य अग होता है। उस उद्योग के द्वारा इन

तीनो उद्देश्यो की पूर्ति की जाती है। (१) बच्चे की सब तरह की शक्तियो का विकास करना, (२) बच्चे को जीवनपयागी विविध ज्ञान देना और (३) बच्चे को आजीविका का एक समर्थ साधन प्राप्त करा देना।"※

समवाय मे ज्ञान और कर्म का अन्तर मिट जाता है। इस पद्धति में ज्ञान कर्म की व्याख्या बनकर आता है। कहाँ कर्म चला, समाप्त हुआ और कहाँ ज्ञान-पक्ष प्रारम्भ हुआ, यह छात्र को मालूम नही होता। यही समवाय बेसिक शिक्षा की अपनी पद्धति है, जिसे सह-सम्बन्ध पद्धति का विकास-चरण कह सकते हैं।

विनोबाजी ने इस अन्तर को एक स्थान पर एक रूपक द्वारा भी स्पष्ट किया है। वे कहते है कि रायोजन-पद्धति में ज्ञान गणेश है और कर्म इस ज्ञान का वाहन मूषक है। यहाँ मूषक-रूपी कर्म इसीलिए पूज्य है कि वह ज्ञान-रूपी गणेश का वाहन है। देवता के साथ देवता का वाहन भी पूज्य हो उठा है। परन्तु है वह वाहन-मात्र—गौण। साधन और साध्य की इस एकता की ओर गाधीजी ने भी स्पष्ट सकेत किया है। वे कहते है—"बुनियादी तालीम का उद्देश्य बालको का शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास करना है। इसलिए उद्योग और शिक्षण ऐसी द्वैती भाषा मुझे पसन्द नही आती। मै तो उद्योग-शिक्षण ऐसा अद्वैती समीकरण मानता हूँ।"

समवाय पद्धति और सामाजिक वातावरण

बालक का सामाजिक वातावरण समवाय का तीसरा प्रमुख केन्द्र है। राष्ट्रीय पर्व और त्योहार तथा स्थानीय मेले और समारोह इस वातावरण के अभिन्न अग है। इनके माध्यम से समाज के विकास के विषय मे और समाज की रहन सहन के विषय मे बहुत कुछ समझा-समझाया जा सकता है। यदि इन त्योहारो और पर्वों को वैज्ञानिक ढग से मनाया जाय तो समाज की अनेक प्रवृत्तियो का और लोक प्रचलित अनेक रस्म-रिवाजो का बड़ा अच्छा अध्ययन हो जाता है। प्रत्येक पर्व अथवा त्योहार का अपना मनोरजक इतिहास है। प्रत्येक का सामाजिक, सास्कृतिक अथवा ऐतिहासिक महत्व है। जब ये पर्व वैज्ञानिक ढग से स्कूलो मे मनाये जायेंगे तभी इनके रहस्य और महत्व बालको की समझ में आयेंगे और तभी ये समवायित शिक्षण की महत्वपूर्ण सजीव इकाई बन पायेंगे।

राष्ट्रीय पर्व-त्योहार और स्थानीय मेले

ये पर्व और त्योहार योजनाओ के रूप मे मनाये जायें। यह शिक्षा और

※ आचार्य विनोबा भावे—'शिक्षण-विचार', पृष्ठ–५७।

मनोरंजन दोनों ही दृष्टियों से उपादेय होगा। योजनाओं के रूप में मनाने से इनका शैक्षणिक दायरा बहुत बढ़ जायगा।

इन पर्वों और त्योहारों को स्कूलों में समुदाय के साथ मनाया जाय तो अच्छा होगा, क्योंकि इससे स्कूल और समुदाय एक-दूसरे के निकट आ जायेंगे। प्राचीन शिक्षा-नीति का एक परिणाम यह हुआ था कि स्कूल और समुदाय का सम्बन्ध विच्छेद हो गया था। आज हमारी एक बड़ी समस्या यह भी है कि हम समुदाय को स्कूल के कार्यकलाप में दिलचस्पी लेना कैसे सिखलायें। महत्व के पर्वों और त्योहारों को मनाने से हम कुछ इस समस्या को हल कर सकेंगे। पर्वों को मनाने के बहाने ही जब समुदाय के लोग स्कूलों में आयेंगे तो वे स्कूल के दूसरे कार्यकलापों में रुचि लेना भी सीख लेंगे।

स्कूल में पर्वों को समुदाय के साथ मनाने का एक लाभ यह भी होगा कि लोग पर्वों को सुरुचिपूर्ण ढंग से मनाना सीख लेंगे और उनके महत्व से भी परिचित हो जायेंगे। विद्यालय में वैज्ञानिक ढंग से मनाये जाने से पर्व और त्योहार लोक-शिक्षण के बहुत बड़े माध्यम बन जायेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि पूरी छान बीन के बाद इन त्योहारों और पर्वों के सम्बन्ध में साहित्य तैयार किया जाय और उसे बालक के शिक्षा क्रम का अभिन्न अंग बनाया जाय। इस प्रकार का काम बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाएँ करें। इससे सामाजिक अध्ययन की एक बहुत बड़ी कमी पूरी होगी।

त्योहारों को स्कूल में मनाने के सम्बन्ध में सबसे बड़ी अड़चन यह है कि अधिकांश त्योहारों के समय छुट्टियाँ होती हैं। होली दिवाली ईद-मुहर्रम-बड़ा दिन आदि ऐसे ही त्योहार हैं। कुछ पर्व ऐसे भी हैं जिन्हें स्कूल में मनाया जाता है और फिर आधे दिन की छुट्टी भी हो जाती है, जैसे—स्वतंत्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, बाल दिवस, शिक्षक दिवस आदि। ये हमारे महान् राष्ट्रीय पर्व हैं। और इन्हें स्कूलों में मनाने की परम्परा हो गयी है। यह बहुत अच्छा है। चेष्टा इस बात की करनी है कि इन समारोहों में समुदाय के लोग भी सम्मिलित हों। जिन पर्वों के समय छुट्टियाँ हो जाती हैं, और जिन्हें बालक अपने परिवारवालों के साथ मनाना चाहते हैं, उन्हें त्योहारों की छुट्टियों के तुरत पहले अथवा बाद में मनाया जाय। होली के पहले लड़के और शिक्षक सुरुचिपूर्ण ढंग से होली खेलें और उस अवसर पर अभिभावकों को भी बुलावें। होली हफ्तों पहले से खेली ही जाती है। इसी तरह ईद के बाद स्कूल खुलने पर ईद के महत्व पर प्रकाश डालकर एक बार फिर मुंह मीठा कर गले मिलने में कोई बुराई नहीं है। ऐसा करने से भावनात्मक एकता बढ़ेगी, जिसकी इस देश को बहुत बड़ी जरूरत है।

नीचे हम होली का त्योहार मनाने पर एक योजना-पाठ दे रहे हैं, जिससे

मालूम हो जायगा कि अगर त्योहारों को स्कूलों में ठीक ढग से मनाया जाय तो छात्रों को अपने सामाजिक वातावरण को समझने में ही आसानी नहीं होगी, उन्हें सहज ढग से काम करते-करते अनेक विषयों का ज्ञान हो जायगा।

पाठ-सकेत

योजना—"होली का उत्सव मनाना।"

उप-योजना—"योजना का प्रारम्भ।"

(अ) "योजना के सम्बन्ध में विचार-विमर्श।"

(ब) "कार्य नियोजन और कार्य-वितरण।"

दिनाक	कक्षा १ से ८ तक	समय—८० मिनट

सामान्य उद्देश्य .

१ किसी समस्यात्मक कार्य द्वारा सामाजिक वातावरण में बालकों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना।

२. छात्रों में अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करना।

३ योजनानुसार कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करना।

४ बालकों को होली का पर्व मनाने की उचित विधि का बोध कराना।

मुख्य उद्देश्य

१. बालकों को होली का उत्सव मनाने के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों से अवगत कराना।

२ विभिन्न प्रान्तों में होली किस प्रकार मनायी जाती है, इससे बालकों को परिचित कराना।

३ विद्यालय में होली का उत्सव मनाने के सम्बन्ध म छात्रों की सहायता से योजना निर्मित करना तथा प्रत्येक कक्षा के लिए कार्य का वितरण।

सहायक सामग्री .

१. होलिका-दहन का चित्र।

२ अल्पना का चित्र।

३. व्रज की होली का चित्र।

पूर्वज्ञान

१. बालक होली का पर्व मनाने की विधि से परिचित है।

प्रेरणात्मक प्रश्न .

१. होली क्यों जलाते हैं ?

उद्देश्य-कथन :

आज मैं तुम लोगों को बताऊँगी कि होली जलाने व होली का पर्व मनाने

की प्रथा कब से प्रचलित है तथा विभिन्न प्रान्तो में होली का पर्व किस प्रकार मनाया जाता है।

प्रस्तुतीकरण :

१. होली का पर्व हम लोग क्यो मनाते हैं ? (समुचित उत्तर न मिलने पर शिक्षिका बालकों को होली जलाने के सम्बन्ध में प्रचलित "होलिका-दहन" की कथा सुनायगी।

शिक्षिका द्वारा :

(यहाँ पर शिक्षिका "होलिका का प्रह्लाद को गोद मे लेकर अग्नि में बैठने" का चित्र दिखाकर अपने भाव को स्पष्ट करेगी।)

प्रथम सोपान : शिक्षिका द्वारा कथन

(अध्यापिका बच्चो को बतायगी कि वरदान प्राप्त होने के बावजूद होलिका स्वयं जल गयी, भगवान का भक्त होने के कारण अग्नि ने प्रह्लाद का कुछ नही बिगाडा। आज भी हम इसी स्मृति में होली जलाते हैं। वह भक्त प्रह्लाद के बचने पर सार्वजनिक रूप से खुशियाँ मनाते हैं।)

द्वितीय सोपान :

होली के पर्व के सम्बन्ध में इस कथा के अतिरिक्त और कौनसा मत प्रचलित है ? (बालकों के विभिन्न उत्तरों के आधार पर शिक्षिका उन्हे होली जलाने के सम्बन्ध में दक्षिण भारत में प्रचलित कथा सुनायगी।)

कामदेव दहन '

दक्षिण भारत में लोग इस प्रथा का सम्बन्ध "कामदेव के दहन" से स्थापित करते हैं। एक बार जब शिवजी तपस्या कर रहे थे, उनकी तपस्या को भंग करने के लिए देवताओं ने कामदेव को भेजा।

होली का त्यौहार मनाने के सम्बन्ध में इस कथा के अतिरिक्त और क्या विचार प्रचलित हैं ?

बोधात्मक प्रश्न :

१. होलिका जलाने के समय अग्नि में नया अन्न क्यों डाला जाता है ?

२. यह प्रथा कब से प्रचलित है ?

आर्यों के समय से आज तक होली जलाते वक्त अग्नि में गेहूँ और जौ की बालें डाली जाती हैं। नये अन्न के पकवान बनाकर देवताओं को प्रसन्न करते है, लड़ाई-झगड़े व भेदभाव मिटाकर सब एक-दूसरे के गले मिलते हैं व आमोद-प्रमोद मनाते हैं।

अब हम यह पढ़ेंगे कि होली का त्यौहार विभिन्न प्रान्तों में किस प्रकार मनाया जाता है ?

विकासात्मक प्रश्न

१ हमारे प्रान्त म होली का पर्व किस प्रकार मनाया जाता है ?

२ भारत के अन्य प्रान्तो में होली का पव किस प्रकार मनाया जाता है ?

विभिन्न प्रान्तो मे होली का पर्व

होली का पव विभिन्न प्रान्तो में भिन्न भिन्न ढग से मनाया जाता है, इस बात से अवगत कराती हुई शिक्षिका बालको को बगाल, राजस्थान व ब्रज की होली मनाने की विधि से परिचित करायगी।

बगाल में होली

१ बगाल में होली का पर्व किस प्रकार मनाया जाता है ?

समुचित उत्तर न मिलने पर शिक्षिका बालको को बतायगी कि बगाल मे बाल-कृष्ण को भूले में बैठाकर घर के सब लोग भुलाते हैं। कृष्ण को गुलाल चढाया जाता है जिसे प्रसाद-स्वरूप सबको लगाया जाता।

राजस्थान की होली

२—राजस्थान में होली का मव किस प्रकार मनाया जाता है ?

उत्तर न मिलने पर शिक्षिका बालको को बतायगी कि राजस्थान म इस दिन स्त्री-पुरुष मिलकर होली खेलते है। स्त्रियाँ दरवाजे पर चित्र, रगोली व अल्पना बनाती हैं।

शिक्षिका द्वारा अल्पना के चित्र का प्रदर्शन

(अल्पना का भाव स्पष्ट करने के लिए अल्पना के चित्र का प्रदर्शन।)
होली के उत्सव के उपलक्ष में अपने हाथ स बने मिष्ठान मुहल्ले में बाँटती हैं।

ब्रज की होली

३ ब्रज में होली किस तरह मनायी जाती है ?

विभिन्न उत्तरो के आधार पर शिक्षिका बालको को बतायगी कि ब्रज में होली के दिन कृष्ण व गोपियो की रासलीला की स्मृति में पुरुष व स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। नृत्य के साथ ही विविध कृष्ण-लीलाओ के सवाद भी चलते है।

(शिक्षिका ब्रज की होली का चित्र दिखाकर ब्रज की होली की विशेषता को स्पष्ट करेगी।)

बोधात्मक प्रश्न

१ तुम्हें किस स्थान की होली विशेष महत्वपूण लगी ?—ब्रज की होली।

२ ब्रज की होली की क्या विशेषता है ?

(कृष्ण-लीला व रासरग सवाद)

मूल्यांकन तथा नवीन पाठ की समस्या

१ तुम लोग होली का पर्व किस प्रकार मनाते हो ?

२ होली का उत्सव मनाने की परम्परा कब से प्रचलित है ?

३. विभिन्न प्रान्तो में होली का पर्व किस प्रकार मनाया जाता है ?

४. अपने स्कूल में होली का त्यौहार मनाने के लिए तुम लोग क्या करोगे ?

उद्देश्य-कथन :

अब हम लोग अपने स्कूल मे होली का उत्सव मनाने के लिए कार्य का नियोजन व कार्य का वितरण करेंगे ।

कार्य-नियोजन व कार्य-वितरण :

१. विद्यालय में होली का उत्सव मनाने के लिए हमलोग क्या करें ?

बालको द्वारा प्रस्तावित कार्यो को शिक्षिका एक के बाद एक श्यामपट्ट पर लिखेगी ।

२. होली का त्यौहार मनाने के लिए हमारे पास कितने दिन का समय है ? —(४ दिन)

३. पर्व मनाने का कार्य कौनसी तिथि से कब तक चलेगी ? —(१५ से १८ तक)

४. आज १५ तारीख को त्यौहार मनाने के सम्बन्ध मे हमे क्या काम करने हैं ?

१. निमत्रण-पत्र बनाना,
२ होली खेलने के लिए पिचकारी,

१—निमंत्रण-पत्र :

५. आमत्रित अतिथियों के लिए निमत्रण-पत्र बनाने का कार्य कौन-सी कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?

विचार-विमर्श के पश्चात् यह कार्य कक्षा ५ को सौंपा जायगा ।

२—पिचकारी बनाना :

६. होली खेलने के लिए पिचकारी बनाने का कार्य कौनसी कक्षा करेगी ? —(कक्षा ६)

७. १६ तारीख को पर्व के लिए तैयारी करने के हेतु हम कौन-कौनसे कार्य करेंगे ?

३—आलू का ठप्पा बनाना :

१. आलू का ठप्पा बनाना,
२. होली खेलने के लिए रग बनाना,
३. होली सम्बन्धी गीतो का चयन,

८. आलू का ठप्पा बनाने का कार्य किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?

विचार-विमर्श के पश्चात् यह कार्य कक्षा ५ को सौंपा जायगा।

४—रंग बनाना :

९. होली खेलने के लिए रंग बनाने का कार्य कौनसी कक्षा आसानी से कर सकेगी ?

विचार-विमर्श के आधार पर यह कार्य कक्षा ४ को दिया जायगा।

५—गीतों का चयन :

१०. होली सम्बन्धी गीतों का चयन किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ? —(कक्षा ५)

११. अब हमारे पास और कौन-कौनसे काम बाकी है ?

१. होली के लिए पकवान बनाना,

२. रंग मंच बनाना,

३. फूलदान सजाना।

१२. होली के पर्व सम्बन्धी इन कार्यों को हम किस तारीख को करेंगे ? —(१७)

६—पकवान बनाना :

१३. होली के लिए पकवान बनाने का कार्य कौनसी कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ? —(कक्षा ७)

७—रंगमंच बनाना :

१४. रंग-मंच बनाने का कार्य कौन-सी कक्षा आसानी से कर सकेगी ? —(कक्षा ६)

८—फूलदान सजाना :

१५. फूलदान सजाने का कार्य कौनसी कक्षा करेगी ? —(कक्षा ४)

९—अल्पना बनाना :

१६. अन्तिम दिन १८ तारीख को हम क्या कार्य करेंगे ?

१. अल्पना बनायेंगे,

२. होली खेलेंगे व उत्सव मनायेंगे।

१७. अल्पना बनाने का कार्य किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ? —(कक्षा ५)

शिक्षिका बालकों की सहायता से विभिन्न कक्षाओं के कार्य श्यामपट्ट पर लिखती जायगी।

पाठ—१

श्यामपट्ट-कार्य · १ होली से सम्बन्धित विभिन्न कथाएँ—

(क) होलिका दहन,

हिरण्यकश्यप—भगवान का शत्रु,

प्रह्लाद भगवान का परम भक्त,

होलिका—जिसे अग्नि मे न जल सकने का वरदान प्राप्त।

(ख) दक्षिण मे प्रचलित कथा—काम-दहन।

(ग) फसल के उत्सव से सम्बन्धित आर्यों के समय से प्रचलित कथा।

२ विभिन्न प्रान्तो की होली—

(क) बगाल की होली—श्रीकृष्ण को गुलाल चढाना व प्रसाद-स्वरूप सबको गुलाल लगाना।

(ख) राजस्थान—नृत्य आमोद प्रमोद।

(ग) ब्रज की होली—'कृष्ण-लीला व रास रग सवाद"।

पाठ—२

श्यामपट्ट-कार्य कार्य निर्धारण व कार्य वितरण

दिनाक	काय	कक्षा
	निमत्रण-पत्र	५
	पिचकारी बनाना,	६
	आलू का ठप्पा	५
	रग बनाना	४
	गीतो का चयन	५
	पकवान बनाना	७
	रग मच बनाना	६
	गुलदस्ता सजाना	४
	अल्पना बनाना	५

योजना का समापन—होली खेलना और मूल्याकन।

●

८. आलू का ठप्पा बनाने का कार्य किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?
विचार-विमर्श के पश्चात् यह कार्य कक्षा ५ को सौंपा जायगा ।

४—रंग बनाना :

६. होली खेलने के लिए रंग बनाने का कार्य कौनसी कक्षा आसानी से कर सकेगी ?
विचार-विमर्श के आधार पर यह कार्य कक्षा ४ को दिया जायगा ।

५—गीतों का चयन

१०. होली सम्बन्धी गीतों का चयन किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?
—(कक्षा ५)

११. अब हमारे पास और कौन-कौनसे काम बाकी है ?

१. होली के लिए पकवान बनाना,
२ रंग मंच बनाना,
३. फूलदान सजाना ।

१२. होली के पर्व सम्बन्धी इन कार्यों को हम किस तारीख को करेंगे ?
—(१७)

६—पकवान बनाना :

१३. होली के लिए पकवान बनाने का कार्य कौनसी कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?
—(कक्षा ७)

७—रंगमंच बनाना :

१४. रंग-मंच बनाने का कार्य कौन-सी कक्षा आसानी से कर सकेगी ?
—(कक्षा ६)

८—फूलदान सजाना

१५. फूलदान सजाने का कार्य कौनसी कक्षा करेगी ? —(कक्षा ४)

६—अल्पना बनाना :

१६. अन्तिम दिन १८ तारीख को हम क्या कार्य करेंगे ?

१. अल्पना बनायेंगे,
२. होली खेलेंगे व उत्सव मनायेंगे ।

१७. अल्पना बनाने का कार्य किस कक्षा के लिए उपयुक्त होगा ?
—(कक्षा ५)

शिक्षिका बालकों की सहायता से विभिन्न कक्षाओं के कार्य श्यामपट्ट पर लिखती जायगी ।

प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर सामान्य-विज्ञान-शिक्षण का उद्देश्य

श्री सुमतीशचन्द्र चौधरी

विज्ञान ने व्यक्ति को स्वस्थ, नीरोग तथा अधिक दिनो तक जीने का अवसर प्रदान किया है। उसने मनुष्य को आवागमन, सचार तथा विनियम की सुविधाएँ दी है। उसने राष्ट्रो को समृद्धि (उद्योग तथा कृषि), सुव्यवस्था तथा सुरक्षा की कुजी दी है। अत आज के इस विज्ञान-युग में कोई राष्ट्र, समाज या व्यक्ति विज्ञान और उसके आविष्कारो की उपेक्षा नही कर सकता। इस युग में उन्नति करने के लिए राष्ट्र और व्यक्ति को विज्ञान के व्यापक क्षेत्र की एकाधिक शाखाओ की पग पग पर सहायता लेनी पडती है। उसे विज्ञान के साधनो के लाभ को समझना-बूझना तथा जीवन में उपयोग करना पडता है। इसलिए आवश्यक है कि लोगो में विज्ञान की शिक्षा के प्रति अभिरुचि जागृत की जाय।

विज्ञान और तकनीकी युग में लोगो के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी व्यवसायो (इजीनियर, ओवरसीयर, टेकनिशियन) में प्रस्तुत होना आवश्यक है, क्योकि विज्ञान और तकनीकी आविष्कारो के आधार पर जीवन के सभी क्षेत्रो म नित्य सुख और सुविधा बढ रही है। साधारण कार्यालयो में विद्युत का पखा, प्रकाश, कमरा गरम करने की व्यवस्था, टेलीफोन इण्टर-कम्युनिकेशन, जोडने घटाने के यन्त्र, एयर कण्डीशनर, डिक्टाफोन, ऊपरी मजिल में जाने के लिए लिफ्ट इत्यादि का प्रचलन बढ रहा है। अत इनके उपयोग का ज्ञान भी व्यक्ति मात्र के लिए धीरे धीरे अनिवार्य-सा होता जा रहा है।

विज्ञान का प्रभाव केवल व्यावहारिक जगत् तक ही सीमित नही है, 'वैज्ञानिक विधि'—विज्ञान की एक अनमोल देन है। इसीके आधार पर प्रारम्भ से अब तक वैज्ञानिक आविष्कार हुए तथा भविष्य में भी होते रहेंगे। इसका प्रयोग केवल वैज्ञानिक आविष्कार तक ही सीमित नहीं। यह प्रत्येक के लिए उसके अपनी समस्याओ के हल करने की सर्वोत्तम पद्धति है। इसी विधि से किसी भी समस्या को हल करने के लिए व्यक्ति प्रमाणो को एकत्रित करता है, पक्ष और विपक्ष के साक्ष्यो को तोलकर निष्कर्ष निकालता, और निष्कर्ष को

स्वीकार करने के लिए उसकी जांच करता है। इस प्रकार व्यक्ति तर्क, आलोचनात्मक चिन्तन में पटु होता है तथा झूठे प्रचार और अफवाहों से बचता है।

वैज्ञानिकों का एक दृष्टिकोण होता है, जिसे 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' की आख्या दी गयी है। इस दृष्टिकोण में पक्षपातरहित होना अन्धविश्वासों से मुक्त होकर अपनी हट या जिद पर अड़े न रहकर दूसरों के प्रामाणिक विश्वास-योग्य विचारों को मानने के लिए प्रस्तुत रहना आदि गुण अन्तर्निहित है। स्पष्ट है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के अतिरिक्त दोनों की समस्यात्मक परिस्थितियों को सुलझाने में सहायक सिद्ध होता है।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि विज्ञान जैसे उपयोगी विषय क्षेत्र का सामान्य अनुभव तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपरिहार्य है। स्वस्थ रहने, किसी उद्योग-धंधे का सफल ढंग से अनुशीलन, व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में वैज्ञानिक आविष्कारों का सफल उपयोग, वैज्ञानिक पद्धति तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण इत्यादि के प्रारम्भ से विज्ञान के अनेक क्षेत्रों से अनुभव प्राप्त करने की व्यापक व्यवस्था होनी चाहिए।

आज शिक्षा का केन्द्र बालक माना जाता है। उसका सर्वांगीण विकास (मानसिक, शारीरिक, आचारिक तथा सामाजिक) ही शिक्षा का लक्ष्य है। विज्ञान मे विभिन्न क्षेत्रों के अनुभव द्वारा जब बालक के तर्क और चिन्तन का विकास होगा तभी वह स्वस्थ व्यक्ति बन सकेगा। वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही उसके आचार की संहिता होनी चाहिए। वह सत्य का अन्वेषक और सत्य का पुजारी बने और विज्ञान की शक्ति का उपयोग कर समाज को सम्पन्न बना सके, यही शिक्षा का ध्येय होना चाहिए। इसके लिए विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है और इसीलिए सामान्य विज्ञान को शिक्षाक्रम मे एक प्रमुख स्थान मिलना चाहिए।

उद्देश्य—बालकों की स्वाभाविक रुचि अपने निकट के वातावरण में होती है। उनमें सदा इसके प्रति कौतूहल बना रहता है। वह हमेशा 'क्या', 'क्यों' और 'कैसे' का उत्तर जानने के लिए उत्सुक रहता है। सामान्य विज्ञान के अध्यापक को इसी रुचि को उत्पन्न करने तथा उसे स्थायी बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। प्रकृति में पाये जानेवाले जीव, वनस्पति, जल, वायु, ग्रह उपग्रह, नक्षत्र, तारामंडल आदि की वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा छात्रों को बतलाना चाहिए कि समुदाय इनमे कैसे लाभ उठाता है।

क्रियाशीलता, जिज्ञासा तथा खेल बालक की जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं। वह छानबीन करना चाहता है। उसे देखने, सुनने, सूँघने, चखने, छूने मे

आनन्द मिलता है। यही प्रवृत्ति आगे चलकर निरीक्षण-परीक्षण में विकसित होती है। अतः आरम्भ से अध्यापक का ध्येय बालकों में निरीक्षण-परीक्षण इत्यादि की प्रवृत्ति को उत्पन्न और विकसित करना होना चाहिए। बालक को उपकरणों तथा यन्त्रों के निरीक्षण और प्रयोग करने का कौशल देना विज्ञान-शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए।

अर्जित व्यावहारिक ज्ञान तथा दक्षताओं के आधार पर व्यवहार परिवर्तन के लिए अभिवृत्तियों, अभ्यासों तथा रुचियों का विकास होता है। सामान्य विज्ञान के क्षेत्र में अर्जित व्यावहारिक ज्ञान तथा दक्षताओं के आधार पर निम्नलिखित का विकास अनायास ही सम्भव होता है —

१. वैज्ञानिक अभिवृत्ति—बालक में नयी बातें स्वयं अपनी चेष्टा द्वारा खोजकर निकालने की प्रवृत्ति, उसकी सत्य के प्रति निष्ठा, निर्णय लेने में जल्दी या पक्षपात न करके पर्याप्त आधारों पर अपने एवं दूसरों के विचारों को उचित महत्व देना, किसी घटना के वास्तविक कारण के ज्ञान से अन्धविश्वास, और मिथ्या धारणाओं का निवारण।

२. लाभप्रद अभ्यास—सामान्य विज्ञान के क्षेत्र के अनुशीलन से बालक में उचित स्वास्थ्य-रक्षा की आदतों, वैज्ञानिक उपकरणों तथा घटनाओं से (बिजली के यन्त्र, आग, वर्षा) से अपने को सुरक्षित रखने तथा किसी कार्य को सरलता और सुगमता तथा दक्षतापूर्वक करने की उपयोगी आदतों का प्रायोगिक ढंग से निर्माण।

३. रुचियाँ—प्रकृति के क्षेत्र में विचरण करने से तथा सामान्य विज्ञान के क्षेत्र से प्राप्त अनुभवों के आधार पर वस्तुओं (कंकड़, खनिज, जीव तथा वनस्पति जगत से प्राप्त होनेवाले पदार्थों) को ढंग से एकत्र करने, व्यवस्थित भ्रमण, सर्वेक्षण, फोटोग्राफी तथा वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन आदि सम्बन्धी रुचियों का स्वाभाविक ढंग से विकास।

४. रसानुभूति—लोगों की धारणा है कि विज्ञान का विषय वस्तु-पदार्थ या घटना के सौन्दर्य तथा कलात्मक पक्ष की उपेक्षा करता है। वास्तव में तो निरीक्षण ही सौन्दर्य-बोध तथा रसानुभूति का आधार होता है। इसी आधार पर ही प्रकृति के क्षेत्र से आकार और वर्ग का प्रत्यक्ष-बोध होता है। इसके अतिरिक्त और भी कई महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ सम्भव हैं, जैसे—

(क) जीव तथा वनस्पति संसार में आत्म तथा पारस्परिक निर्भरता के ज्ञान।

(ख) जीव तथा वनस्पति जगत में वातावरण के अनुकूलन का ज्ञान।

(ग) वैज्ञानिकों के परिश्रम, त्याग और लगन के आदर्श।

(घ) प्रत्येक घटना के मूल में किसी-न-किसी कारण की उपस्थिति का बोध।

(ड) मनुष्य का प्रकृति पर विजय प्रयास का ज्ञान ।

(च) विज्ञान के आविष्कारो का मानव-जीवन को सुविधाजनक तथा समृद्ध बनाने का ज्ञान ।

प्रारम्भिक कक्षाओं मे सामान्य विज्ञान शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य

सामान्य विज्ञान के शिक्षण के उद्देश्यो पर सामान्यत विचार करने के पश्चात् यह स्वाभाविक है कि उन उद्देश्यो पर पृथक् रूप से विचार कर लिया जाय, जो प्रारम्भिक स्तर के लिए है । ये उद्देश्य निम्नलिखित है :—

१ बालको को अपने निकट वातावरण में रुचि लेने के लिए प्रोत्साहित करना ।

२ विज्ञान के आविष्कारो से परिचित कराना, जिससे बालक उनका सम्यक् उपयोग वस्तुओ को परखने, अपने श्रम की बचत करने और जीवन मे स्वस्थ और प्रसन्न रहने के लिए करें ।

३ आगे चलकर छात्र विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रस्तुत हो ।

४ छात्र कार्य-कारण सम्बन्ध की उपलब्धि से अन्धविश्वास से मुक्त हो सकें ।

५ दैनिक जीवन की समस्याओं को कुशलता से (वैज्ञानिक पद्धति से) सुलझाने के योग्य बनें ।

जूनियर हाई स्कूल पर सामान्य विज्ञान-शिक्षण के उद्देश्य

१ मानसिक विकास विज्ञान के तथ्य, सिद्धान्त तथा प्रत्ययों के व्यावहारिक ज्ञान से बुद्धि, तर्क, कल्पना, निरीक्षण, जिज्ञासा, रुचि, सत्य के अन्वेषण का विकास ।

२ शारीरिक विकास स्वस्थ रहने के नियम तथा सिद्धान्तो के अनुभव तथा अभ्यास द्वारा स्वस्थ जीवन बिताने और सुरक्षा का ध्यान रखने की क्षमता का विकास ।

३ आचारिक विकास · विज्ञान के उपकरणो के प्रयोग तथा आविष्कारों के प्रयोग में दक्षता का विकास ।

४ सामाजिक विकास · वैज्ञानिक पद्धति से सामाजिक समस्याओ को सुलझाने, समाज को स्वस्थ रखने के उपायो का पालन करने, समाज में विज्ञान के आविष्कारो का व्यक्तिगत एव सामूहिक उपयोग करने और उनसे होनेवाले खतरो से बचने की शक्ति का विकास ।

५ सास्कृतिक विकास · विज्ञान की भाषा समझते हुए घटनाओ तथा आविष्कारों की व्याख्या करने की योग्यता का विकास तथा प्रकृति के सौन्दर्य, रहस्य, वैज्ञानिकों का त्याग, वैज्ञानिक आविष्कारो की उपयोगिता की सराहना करने की क्षमता का विकास ।

हिन्दी-शिक्षण

वर्त्तनी या अक्षरी शिक्षण

ब्रजभूषण शर्मा

देवनागरी लिपि में एक ही ध्वनि के लिए एक ही लिपि प्रतीक है। अत इस अनुरूपता के कारण वर्त्तनी की अशुद्धियाँ नहीं होनी चाहिए। परन्तु वास्तविकता यह है कि कम वैज्ञानिक लिपियों की भाषावालो की अपेक्षा हिन्दी में इस प्रकार की अशुद्धियाँ सर्वाधिक होती है। इसका एक कारण तो यह भी है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से उच्चारण समान होने पर भी व्यावहारिक दृष्टि से एकरूपता नही है। उच्चारण वैषम्य के अतिरिक्त बोलनेवालो की अक्षमता के कारण बहुत-सी ध्वनियाँ शुद्धरूप में नही मुखरित होती। स, श, ष, अन्तिम 'इ' और 'उ' (शान्ति और दयालु) 'स' के साथ सयोग आदि (स्पष्ट आदि)। परन्तु अशुद्धियाँ होने का मुख्य कारण यह है कि विद्यालयों म वर्त्तनी की शिक्षा होती ही नही, जिसका परिणाम यह होता है कि वर्णमाला और लिपि के सम्बन्ध मे भी विद्यार्थियो को पूरी जानकारी उच्च कक्षाओ तक नही होती और अनुस्वार, स्थान, मात्रा और सयोग की, विशेषकर 'र' के सयोग की बहुत-सी भूलें करते हैं—'ज्ञ' 'ऋ' 'ष' 'क्ष' की रचना का भी बहुतो को ज्ञान नही।

वर्त्तनी की अशुद्धियो को हम निम्न वर्गों में बाँट सकते है—लिपि की अज्ञानता, उच्चारण की विषमता, व्याकरण की अनभिज्ञता तथा सर्वमान्य रूप का अभाव।

इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण हैं, जो विद्यार्थियो को वर्त्तनी-शिक्षण अथवा व्याकरण के साथ पढा देनी चाहिए।

हिन्दी शब्दो में हलन्त का प्रयोग नही होता। अन्तिम 'अ' का उच्चारण प्रायः हल के ही समान होता है। राम, श्याम, रात, दिन आदि में अन्तिम अक्षर का हलन्त के समान उच्चारण होने पर भी लिखने में हलन्त का प्रयोग नही होता। ह्रस्व स्वरान्त चार अक्षरो के शब्दो में दूसरा अकारान्त अक्षर भी हलन्त के समान बोला जाता है, जैसे हलचल, मानसिक आदि। दीर्घ स्वरान्त चार अक्षरवाले शब्दों में तीसरे अक्षर के 'अ' का उच्चारण अपूर्ण होता है, जैसे—निकलना, प्रबलता, समझना आदि।

संयुक्ताक्षर नागरी लिपि की विशेषता है। इस लिपि में ध्वनि छोटी होने पर लिपि-संकेत भी छोटा हो जाता है जिन ध्वनियों मे स्वर नहीं रहता, वे आधी लिखी जाती है। हिन्दी में लगभग १५० संयुक्त ध्वनियाँ है। इनके संयोग की विधि निम्नलिखित है—

१ पाई वाले अक्षरो की पाई निकाल दी जाती है, जैसे स्न, स्र, स्ट, आदि।

२ बे पाई के अक्षर (द, ड, छ, ट आदि) संयोग के आदि में भी पूरे लिखे जाते है, संयुक्त अक्षर शिरोरेखा निकालकर नीचे लिख दिया जाता है। पढ़ते समय पूरा लिखा हुआ अक्षर आधा पढ़ा जाता है और आधा लिखा हुआ पूरा पढ़ा जाता है, जैसे भट्टा, हड्डी, प्रह्लाद आदि।

३ 'र' का संयोग अनेक प्रकार से होता है —

(क) जब किसी आधे अक्षर में पूरा 'र' मिलता है, तब एक तिरछी रेखा ( ) उस अक्षर के नीचे लग जाती है जैसे भ्रम, क्रम, उग्र नम्र।

(ख) जब आधा 'र' किसी पूरे अक्षर में मिलता है तो ध्वनि स्थान के आगेवाले अक्षर के ऊपर इस प्रकार (ˇ) लग जाता है, जैसे धर्म, अर्थ, कर्म।

(ग) ट, ठ, ड, ढ में 'र' इस प्रकार मिलता है (‸) जैसे राष्ट्र।

(घ) 'र' में 'उ और 'ऊ की मात्रा भी अन्य अक्षरो की अपेक्षा दूसरे ढग से लगती है, जैसे रु, रू।

(च) 'त' के साथ 'र' का संयोग होने पर 'त्र' होता है।

४ 'ह्' के संयोग में प्राय भूल हो जाती है और उसके आधे रूप मे मिलनेवाले अक्षर उसके पहले लिख दिये जाते हैं जैसे चिन्ह (चिह्न) ब्रम्ह (ब्रह्म) कोष्ठक के शब्द ही शुद्ध है।

५ 'क और 'त का संयोग 'क्त', 'क्त दोनो रूपो में होता है, जैसे—मक्त, भक्त, नक्ति, शक्ति।

६ 'त् और 'त का संयोग 'त्त के रूप में होता है, जैसे 'पत्ता', 'कुत्ता' आदि।

हिन्दी म अनुस्वार के सम्बन्ध में भी प्राय भूलें हो जाती है। हिन्दी में दो अनुस्वार है—पूरा ( ) और आधा (ˇ) इसके प्रयोग में निम्नांकित नियमो का पालन होना चाहिए—

(अ) पूर्ण अनुस्वार में केवल बिंदु ( ) तथा अर्ध अनुस्वार में चन्द्र-बिन्दु (ˇ) लगाना चाहिए, जैसे हस, हँस, अधेर, अँधेरा।

(आ) शब्द के अन्त में दीर्घ स्वर आने पर अनुस्वार के उच्चारण में प्रायः भेद नहीं होता। कभी-कभी प्रारम्भ में भी नहीं होता, जैसे नहीं है, ईंधन,

ऊँट आदि। इनमें लोग ( ) और (ँ) दोनो का प्रयोग करते है। कामता प्रसाद गुरु के अनुस्वार यदि मात्रा ऊपर है तो ( ) अनुस्वार लगाना चाहिए और नही तो चन्द्र-बिन्दु (ँ)। जैसे नहो, भाँति, ऊँट, मै, आदि।

हिन्दी में वर्त्तनी की अशुद्धियाँ लिपि-अज्ञानता और उच्चारण वैषम्य के कारण तो होती ही है किन्तु बहुत-सी अशुद्धियाँ शब्द-रचना की अनभिज्ञता के कारण हो जाती हैं। यथा सन्धि के नियमो का ज्ञान न होने से हम प्राय अशुद्ध शब्द लिख जाते है। वृत्यनुसार (वृत्ति+अनुसार) के स्थान पर वृत्यानुसार, रीत्यनुसार (रीति+अनुसार) के स्थान पर रीत्यानुसार आदि अशुद्धियाँ प्रायः दीख पड़ती हैं।

सन्धि के नियम न जानने के कारण-वर्त्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ बहुत होती है। यथा—वाद-विवाद के स्थान पर वादाविवाद निरपराध के स्थान पर निर्पराध या निरापराध।

वचन एव लिंग-परिवर्तन से जो शब्द-विकार होत है, उनके न जानने र भी वर्त्तनी की अशुद्धियाँ हो जाती है। अनेक शब्द हम एक वचन में शुद्ध लिखते है किन्तु बहुवचन में अशुद्ध। जैसे 'साडी' से 'साडीयाँ' नही बल्कि 'साडियाँ'। 'घोडा' से 'घोडे' ठीक है पर 'राजा से 'राजे' नही बल्कि 'राजाओ' ठीक होगा। लिंग-परिवर्तन से भी वर्त्तनी की अशुद्धियाँ हो जाती हैं, जैसे, 'स्वामी' से 'स्वामीनी' नही बल्कि 'स्वामिनी ठीक' है।

'अ' और 'आ' के सम्बन्ध में प्राय भूल हो जाती है। किसी सज्ञा शब्द में 'इक' प्रत्यय जोडकर विशेषण बनाते है और उसके आदि में 'अ' स्वर रहता है तो वह 'आ' में बदल जाता है, जैसे—समाज, सामाजिक, समय, सामयिक।

'इ' और 'ई' की मात्रा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ उच्चारण की अशुद्धि के कारण अधिक होती है 'कि' और 'की' की अशुद्धि छात्रा द्वारा प्राय होती है। 'कि' सयोजक अव्यय और 'की' विभक्ति सम्बन्ध कारक का चिह्न है। यथा राम की पुस्तक। उसने कहा कि मै जाऊँगा।

हम प्राय सस्कृत के उकारान्त शब्दो का उच्चारण ऊकारान्त करते है, जैसे साधू (साधु), गुरू (गुरु) कभी-कभी उकारान्त को हम अकारान्त भी बोलते हैं जैसे दयाल (दयालु) कृपाल (कृपालु)।

'उ' 'ऊ' के भाँति ही 'ए' और 'ऐ' की भी अशुद्धियाँ होती हैं। 'ऐनक' को हम 'एनक' और मतैक्य को मतेक्य लिख देते हैं। कभी-कभी 'पैसा' 'जैसा' को बालक उच्चारण-भ्रम के कारण पयसा, जयसा लिखते हैं।

'व' और 'ब' की अशुद्धि हिन्दी में सर्वाधिक देखने में आती है। इन दोनों के लिखने की कुछ समानता के साथ-साथ उच्चारण-दोष भी इसका कारण है।

'व' का उच्चारण दन्तोष्ठ है अर्थात् नीचे के ओष्ठ पर ऊपर की दन्तावलि का स्पर्श होता है। 'ब' का उच्चारण दोनों ओष्ठों को मिलाकर होता है।

श, स, ष के उच्चारण में सर्वाधिक भ्रम पाया जाता है और इस कारण लिखने में भी अशुद्धियाँ हो जाती हैं। शासन को सासन, विशेष को विसेश बोलते हुए प्रायः सुना जाता है। पर 'श' 'ष' 'स' तीनों के उच्चारण-स्थान भिन्न हैं। 'श' के उच्चारण में निम्न जिह्वा को दोनों ओर फैलाकर ऊपर की दन्तावलि से सटा लिया जाता है और अग्र भाग वायु फेंकने के लिए खुला रहता है। इसीलिए इसे 'तालव्य' कहते है। 'ष' के उच्चारण में जिह्वा का अग्रभाग 'र' की भाँति ऊपर की दन्तावलि से ऊपर जो मसूढ़ा है, उसके ऊपरी भाग से नीचे को रगड़ता हुआ सा चलता है और मूर्धा को स्पर्श करता है। इसीसे इसको 'मूर्धन्य' कहते है। 'स' का उच्चारण नीचे की दन्तावलि और जिह्वा का अग्रभाग लगाकर करते है। इसी कारण इसको 'दन्त्य' कहते है।

अतः आवश्यक यह है कि रचना का अभ्यास कराते समय वर्त्तनी सम्बन्धी अभ्यास विधिवत् कराये जायें। इस दृष्टि से अशुद्धियों को वर्गों में बाँट लेना अच्छा होगा। एक वर्ग का अभ्यास ही एक साथ रखा जाय, यथा —१ अ, आ की मात्रा, २ इ, ई की मात्रा, ३ उ, ऊ तथा ए, ऐ की मात्राएँ, ४. र, ऋ, रि, ५ क्ष, छ, ६ श, ष, स, ७ विपर्यय जैसे चिन्ह ८. वर्ण-लोप जैसे— अध्ययन। इन अभ्यासों के कुछ उदाहरण नीचे दिये हुए है। निम्नलिखित शब्दो में जो शुद्ध हो, उन्हें रेखांकित करो—

१ अधीन, आधीन, आध्यात्मिक, अध्यात्मिक, व्यवसायिक, व्यावसायिक, अराधना, आराधना, अनधिकार, अनाधिकार, उत्तरादायित्व, उत्तरदायित्व, अहार, आहार, हस्ताक्षेप, हस्तक्षेप।

२ 'ईय', अथवा 'इक' जोड कर विशेषण बनाओ—
व्यापार, व्यवहार, व्यवसाय, राजनीति, विश्वास।

३ निम्नलिखित को एक शब्द से व्यक्त करो—

(क) जिसको देखकर दया आवे।
(ख) जो विचार के योग्य हो।
(ग) जो प्रशंसा के योग्य हो।
(घ) जो सबसे उत्तम हो।
(ङ) जो सबसे अधिक हो।

निम्नलिखित वाक्यों में जो शब्द वर्त्तनी की दृष्टि से अशुद्ध हो, उनके शुद्ध रूप लिखो —

(क) मैं ऐसि परिस्थिति में पड़ गया हूँ की परिक्षा देना निश्चित नही है।

(ख) गर्मीयो मे नदि का पानी बिलकुल सूख जाता है।

(ग) प्रर्दशिनी जाकर श्याम शीघ्र ही लौट आया क्योकि वहाँ सगृहित सामग्री को देखकर उसके मन मे तृप्ती नही हुइ।

(घ) हरीश्चन्द्र की किर्ती उनकी प्रतिज्ञा पूर्ती के कारण ही फैली। अब प्रतिज्ञा करना अतिअन्त कठिन हो रहा है।

सामान्यत अशुद्ध लिखे जानेवाले शब्द और उनके शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं —

अशुद्ध	शुद्ध
अध्यात्मिक	आध्यात्मिक
अपरान्ह	अपराह्न
अराधना	आराधना
आर्शिवाद, आशिर्वाद	आशीर्वाद
आसाढ़	आषाढ़
इक्षा	इच्छा
उद्योगिक	औद्योगिक
उपरोक्त	उपर्युक्त
अहार	आहार
आधीन	अधीन
क्षात्र (विद्यार्थियो के लिए)	छात्र
गडरिया	गड़रिया
ग्रह	गृह (घर)
घन्टा	घंटा, घण्टा
घबडाहट	घबराहट
चिन्ह	चिह्न
दन्ड	दण्ड, दंड
दूकान	दुकान
द्रष्टवय	द्रष्टव्य
द्वारिका	द्वारका
निरोग	नीरोग
पद्मनी	पद्मिनी
परिणित	परिणत, परिणति
पुलिंग	पुल्लिंग
पूंछा	पूछा
प्रदर्शिनी	प्रदर्शनी
बर्ष	वर्ष
बर्षा	वर्षा
बामन	वामन
बीणा	वीणा
भंडार, भन्डार	भाण्डार, भांडार
भारती	भारतीय
मध्यान्ह	मध्याह्न
मनू	मनु
वादाविवाद	वादविवाद
व्यवसायिक	व्यावसायिक
व्यवहारिक	व्यावहारिक
स्वास्थ	स्वास्थ्य
सौहार्द	सौहार्द
स्थिती	स्थिति
स्मशान	श्मशान
स्मृद्धि	समृद्धि
सन्यासी	सन्यासी

●

धार्मिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा

डा० महेशचन्द्र सिंघल

आज हम विनाश के उस कगार पर खडे है, जहाँ से कुछ भी बचनेवाला नहीं है, विश्व में सांस्कृतिक, सामाजिक सघर्ष उत्पन्न हो गया है, प्रत्येक व्यक्ति अशान्त है और उस अशान्ति का प्रमुख कारण है—मानव-मूल्यो का पतन। पतन की इस प्रक्रिया पर केवल एक प्रकार से विजय प्राप्त की जा सकती है—वह है विद्या की प्रक्रिया में धार्मिक, नैतिक एव आध्यात्मिक शिक्षा को पर्याप्त स्थान दिया जाय।

शिक्षा-शास्त्री प्राय इस समस्या पर एकमत नही रहे हैं। उनका विचार है कि धर्म निरपेक्ष राज्य में धार्मिक शिक्षा या धर्म जैसी शिक्षा को स्थान नही मिलना चाहिए। पर हम यह भूल जाते हैं कि भारत में प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर मरण तक धर्म से बँधा है और वह उससे किसी भी प्रकार अलग नही हो सकता।

आज शिक्षा-आयोग ने जिस आधुनिकता को प्राप्त करने की चर्चा की है उसके साथ-साथ आयोग ने यह भी स्वीकार किया है कि भारतीय समाज एक महान सस्कृति का उत्तराधिकारी है।[१] आयोग ने यह भी स्वीकार किया है—आधुनिकीकरण का यह तात्पर्य नही कि हमारी राष्ट्रीय परिस्थियो मे नैतिक, आध्यात्मिक एव आत्मानुशासन के मूल्यो के निर्माण के महत्त्व को पहचानने स इनकार किया जाय, आधुनिकीकरण यदि जीवन्त शक्ति है तो इसे आत्मा स शक्ति प्राप्त करनी होगी।[२]

कहा जाता रहा है कि आध्यात्मिक, नैतिक एव धार्मिक मूल्यो का सम्बन्ध व्यक्तिगत विकास से है। इसलिए सामाजिक उत्थान के लिए इसकी आवश्यकता क्या ? परन्तु इस सन्दर्भ में आयोग के विचारो मे सामुदायिक कल्याण की ध्वनि गूँज उठती है कि व्यक्ति और समुदाय एक-दूसरे के पूरक हैं। आयोग ने कहा भी है —

१ शिक्षा-आयोग का प्रतिवेदन—पृष्ठ १८, पैरा १.६३
२ शिक्षा-आयोग का प्रतिवेदन—पृष्ठ १६, पैरा १ ६८

"यह स्वभावत व्यक्ति की प्ररणा एव मूल्यों के अवबोध पर निर्भर करता है कि वह वैयक्तिक सन्तोष के लिए या समुदाय एव भावी कल्याण के लिए इन मूल्यों को ग्रहण करे।"[१]

आवश्यकता क्यो?

आज हम जिस दौर स गुजर रहे है वह सास्कृतिक सघष का युग है, भौतिकता तथा अध्या म का सघष है, व्यक्ति और नीति का सघष है, विवेक और अविवेक का सघष है। मूल्या प्रतिमानो स्थूलो प्रत्यया का सघष है। सघर्षो की इस प्रक्रिया म मानव दिग्भ्रमित हो गया है आयोग ने इस परिस्थिति का अनुभव किया भी है—

नयी पीढी मे सामाजिक एव नैतिक मू्या की निबलता पश्चिमी समाज म अनेक गम्भीर सामाजिक और नैतिक सघर्षो को उत्पन्न कर रही है। पाश्चात्य विचारक यह अनुभव करने लगे है कि ज्ञान एव कौशल मे सन्तुलन हो, विज्ञान तथा तकनीकी नैतिकता तथा धम से सम्बधित किया जाय, स्वयं के ज्ञान म अनुसधान हो जीवन का अर्थ माना जाय मानव मात्र के सम्बधो का ज्ञान हो एव वास्तविक सत्य का उदघाटन हो।'[२]

आज हम जिस प्रकार नैतिक उत्थान की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं, वह नयी बात नही है।

अग्रजी सरकार ने भी धार्मिक तथा नैतिकता की शिक्षा की आवश्यकता की ओर सकेत किया था। सन् १८८२ मे शिक्षा आयोग ने प्राकृतिक धर्म के आधारभूत सिद्धान्तो के आधार पर पाठ्यपुस्तको के निर्माण का सुझाव दिया था। यह भी कहा या कि हर शिक्षण सस्था में प्रधानाचाय अथवा कोई प्राध्यापक मानव-कतव्यो के विषय से सम्बधित भाषण माला का आरम्भ करे। यद्यपि के० टी० तैलग ने इसका विरोध करते हुए कहा था—"धर्मनिरपेक्ष राज्य में धार्मिक शिक्षा से वह उद्देश्य प्राप्त नहीं होगा, जो हम चाहते हैं। धर्म के पक्ष म हम वह सफलता प्राप्त नही कर पायेंगे, जो हम चाहते हैं और जो परिणाम होंगे उनसे गिरावट ही आयगी।"

सन् १६४४ ४६ में सेट्रल एडवाइजरी कमेटी ने कहा—(१) धर्म को उदार रूप मे शिक्षा को प्रोत्साहन देना चाहिए और पाठ्यक्रम का निर्माण नैतिक आधार पर होना चाहिए। (२) चरित्र निर्माण में आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्या की आवश्यकता है अत घर तथा समुदाय पर इस प्रकार के गुणो के विकास का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

---

१ वही पृष्ठ १६ पैरा १ ६४

२ वही पृष्ठ १६ पैरा १ ६४

सन् १९४८ में विश्वविद्यालय आयोग ने नैतिक मूल्यों की शिक्षा के लिए एक विस्तृत पाठ्यक्रम दिया और उसे शिक्षा आयोग (१९६४ ६६) ने समर्थन दिया है।

हमारा सविधान धारा २८ तथा ३० में राजकीय अथवा राजकीय सहायता प्राप्त सस्थाओ मे धार्मिक शिक्षा का विरोध करता है। केवल ट्रस्ट द्वारा स्थापित सस्थाएँ धार्मिक शिक्षा प्रदान करती हैं। सरकार धर्म के आधार पर कोई सहायता नही देगी। मुदालियर कमीशन ने धर्म की अनौपचारिक शिक्षा पर बल दिया है। शिक्षा आयोग ने घर तथा समुदाय के वातावरण को नैतिकतापूर्ण बनाने पर बल दिया है।

मूल्यों का विकास कैसे हो ?

शिक्षा आयोग ने धार्मिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास के लिए ये उपाय सुझाये हैं।

- केन्द्र तथा राज्य सरकारो द्वारा सभी शिक्षण-सस्थाओ म भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मान्यताओ की शिक्षा की व्यवस्था की जाय। यह शिक्षा विश्वविद्यालय आयोग द्वारा सस्तुत पाठ्यक्रम के अनुसार दी जाय।
- व्यक्तिगत प्रबन्धको द्वारा सचालित शिक्षा सस्थाओ म भी इन सुझावो के *अनुसार नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा* दी जाय।
- प्राथमिक स्तर पर नैतिकतापूर्ण कहानियो के माध्यम से शिक्षा दी जाय।
- विद्यालय के समयविभाग चक्र में एक या दो कालाशो की व्यवस्था की जाय।
- शिक्षक अच्छे आदर्श उत्पन्न करें।
- विश्वविद्यालय में तुलनात्मक धर्म नामक विभाग की स्थापना की जाय।
- माध्यमिक स्तर पर विचार विमर्श पर बल दिया।

आयोग ने श्रीप्रकाश समिति के विचारो को भी समर्थन प्रदान किया है। इस समिति ने नैतिक विकास के लिए आवश्यक सुझाव दिये थे।

आयोग द्वारा प्रस्तावित सस्तुतिया पर विचार करने से हम तो इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि आज के ससार म मनुष्य सुख चाहता है। सुख की प्राप्ति वितृष्णा से प्राप्त नही होगी। सुख को प्राप्त करने के लिए मनुष्य का अपने जीवन-क्रम मे परिवर्तन लाना होगा। ये परिवर्तन लानेवाले मूल्य हमें अपने देश से प्राप्त होगे। आयोग का विचार है—

मूल्यों के निर्माण मे हमें अपनी रूढियों एवं प्रथाओं पर निर्भर रहना चाहिए। साथ ही अन्य देशों की प्रथाओं एवं संस्कृतियों को साथ लेना चाहिए। भारतीय विचारों में भी वह प्रवाह है, जो हमें नये दृष्टिकोण की ओर लेजा सकता है, जो व्यक्ति को जीवन की स्वीकृति एवं हर्ष प्रदान कर सकता है।[1]

हमारे देश में अनेक धर्म है। सभी धर्मों की शिक्षा विद्यालयों में नही दी जा सकती, फिर भी सभी धर्मों का मूल आधार एक है, मूलभूत आधारो का ज्ञान तो प्रदान किया ही जा सकता है।

भारत जैसे बहुधर्मी देश मे राज्य का धर्म के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण होना चाहिए। धार्मिक शिक्षा एव धर्म निरपेक्षता की व्याख्या होनी चाहिए। धर्मनिरपेक्ष नीति का अर्थ है कि धार्मिक भेदभाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक अधिकारो के भोग की स्वतत्रता होगी।[2]

धर्मनिरपेक्ष राज्य में हमारी आस्थाओं को चेतावनी मिली है कि हम क्या ऐसी परिस्थिति में भी सनातन मूल्यो की रक्षा एव विकास कर सकते है? यह चेतावनी मनुष्य को उसकी आस्था एव विश्वास को शक्ति प्रदान करने के लिए है। आयोग ने केन उपनिषद का यह मन्त्र अपने प्रतिवेदन में उद्धृत किया है—

केनेषित पतति प्रेषितं मनः
केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः
केनेषिता वाचामिमां वदन्ति
चक्षु श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति

आज एकाकी होकर हम अपने अस्तित्व को नही बनाये रख सकते। हमें प्रगति की इस दौड मे मध्यम तथा समन्वय का मार्ग ग्रहण करना होगा, तभी हम शिक्षा के माध्यम से आध्यात्मिक, नैतिक एव धार्मिक मूल्यो का विकास कर सकेंगे। आयोग ने इस मध्यम मार्ग को स्वीकार भी किया है। यदि विज्ञान एव अहिंसा, विश्वास एव आस्था तथा व्यवहार से युक्त हो जायें तो मानव उपयोगिता, वैभव एव आध्यात्मिक ज्ञान का नवीन शीर्ष प्राप्त कर लेगा।

●

---

१. वही, पृष्ठ २०। पैरा १.६६
२. वही, पृष्ठ २०। पैरा १.६८

राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद का विलयन

सम्भवत शिक्षा-जगत् मे भी यह बहुत हो कम व्यक्तियों को मालूम होगा कि भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय द्वारा संचालित बुनियादी शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान को बन्द कर दिया गया है। राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा संस्थान को जो केवल बुनियादी शिक्षा के विभाग के रूप मे ही रह गया था, अब राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा संचालित पाठ्यक्रम और मूल्याकन विभाग के साथ मिला दिया गया है। और इस प्रकार कोठारी-आयोग द्वारा संस्तुत प्रस्ताव के किसी भी शैक्षिक स्तर का नाम 'बेसिक' न रखा जाय, सबसे पहले भारत सरकार द्वारा ही कार्यान्वित हुआ है। भारत सरकार का यह कार्य किसी भी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता। शिक्षा के किसी भी स्तर का नाम 'बेसिक अथवा बुनियादी' न रखने के सम्बन्ध मे आयोग ने जो तर्क दिये हैं, उस पर विभिन्न मत हो सकते हैं, परन्तु जब आयोग ने स्वीकार किया है कि बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त मूलत पक्के हैं, तो इन सिद्धान्तो पर शोध करने के लिए जो एक राष्ट्रीय संस्थान कायम किया गया था उसे समाप्त कर एक दूसरे विभाग के साथ मिला देने मे कोई औचित्य नही दिखाई पडता। शिक्षा-आयोग ने बुनियादी शिक्षा के एक से अधिक सिद्धान्तो को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर लागू करने की सिफारिश की है। अत यह उचित होता कि राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा-संस्थान अपना काम करता रहता और बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तो को शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर लागू करने के लिए कार्यक्रम बनाता—उस पर शोध करता और उसके सम्यक् प्रसार के विषय मे कार्यकर्ताओं का पथ-प्रदर्शन करता। अपने उत्तर मे यद्यपि श्री कृपाल ने आश्वासन दिया है कि बुनियादी शिक्षा पर शोध-कार्य होता रहेगा, परन्तु एक दूसरे विभाग की देखरेख मे वह काम पूरी शक्ति के साथ नही होगा। जो भी हो शिक्षा-आयोग की संस्तुति के अनुसार बेसिक शिक्षा की राख को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर फैलाने के लिए भारत सरकार के इस कदम से बुनियादी शिक्षा के उसूलो की रक्षा नही होगी। डेढ वर्ष से शिक्षा-आयोग की किसी संस्तुति पर अमल नही हुआ है—अमल हुआ है तो इसी संस्तुति पर जिसका सम्बन्ध बेसिक शिक्षा के नाम को मिटाने से है। हम नीचे दोनो पत्रो को मूल मे उद्धृत कर रहे हैं।

—संपादक

श्री पी० एन० कृपाल,
सचालक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद,
१६ रिंग रोड, नयी दिल्ली।

प्रिय श्री कृपाल,

बुनियादी शिक्षा विभाग का पाठ्यक्रम तथा मूल्याकन विभाग में मिला दिये जाने की जानकारी पाकर मेरी परिषद को गहरा दु ख और चिन्ता है। ऐसा माना गया है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद ने न सिर्फ बुनियादी शिक्षा विभाग के नाम का त्याग कर दिया है, बल्कि बुनियादी शिक्षा क सम्बन्ध में होनेवाले सभी शोध-कार्यक्रमों को भी खत्म कर दिया है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है। बुनियादी शिक्षा विभाग के कर्मचारियों का राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण-परिषद के विभिन्न विभागों म बाँट दिया गया है।

हमारे देश म बडी तादाद मे जो लोग बुनियादी शिक्षा का सक्रिय काम कर रहे है, उन्हे तथा बुनियादी शिक्षा के शिक्षा शास्त्रियों को बुनियादी शिक्षा विभाग के बन्द किये जाने की बडी चिन्ता है। शिक्षा के क्षेत्र म भारत ने अपना जो मौलिक अभ्यास किया है वह बुनियादी शिक्षा के रूप म देश के सामने आया इसीलिए केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय को राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा परिषद की स्थापना करने के लिए राजी करने में बडे प्रयत्न करने पडे थे। यद्यपि बुनियादी शिक्षा परिषद की स्थापना हुई लेकिन उस कभी अपना निजी भवन मयस्सर नहीं हो पाया न शोध तथा अन्य कार्यों के लिए पर्याप्त सुविधाएँ ही मिल सकी। धीरे धीरे उसे एक विभागीय अस्तित्व मिला और अब उसे भी समाप्त कर दिया गया है।

शायद यहाँ राधाकृष्णन् आयोग की रिपोर्ट में से कुछ शब्द उद्धृत करना मौजूँ होगा—' इस आन्दोलन को तोड मरोड और गलतबयानी से बचाने के और सही हुनर और तरीको का विकास करने के लिए कई वर्षों के समय और भारी कोशिशों की जरूरत होगी। (पेज ५५८)

मेरी परिषद का मानना है कि चूँकि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण-परिषद एक राष्ट्रीय सगठन है, इसलिए वह बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र म शोध तथा अन्य काम करने की जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं पा सकता। ऐसा उसी समय सम्भव हो सकता है, जब कि इस काम के लिए एक अलग विभाग ही हो। इसीलिए यदि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण-परिषद बुनियादी शिक्षा विभाग के बन्द करने-सम्बन्धी अपने फैसले पर फिर से विचार करती है, तो मेरी परिषद इस कार्य को प्रशसनीय मानेगी। मेरी परिषद यह स्वीकार करती है

कि शैक्षिक अनुसन्धान-विभाग के विभिन्न पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन-विभाग के बीच निकट सहयोग होना चाहिए लेकिन इसके साथ ही वह यह भी मानती है कि बुनियादी शिक्षा-विभाग के विलयन से इस उद्देश्य को हानि पहुँचती है।

मुझे विश्वास है, इस अनुरोध पर राष्ट्रीय शैक्षिक-अनुसन्धान और प्रशिक्षण-परिषद अनुकूलता से विचार करेगी।

सद्भावनापूर्वक आपका,
वजूभाई पटेल
अवैतनिक मंत्री

उत्तर

प्रिय श्री पटेल,

६ नवम्बर, '६७ को आपकी ओर से राष्ट्रीय शैक्षिक और प्रशिक्षण अनुसन्धान परिषद के संचालक तथा भारत सरकार के शिक्षा-सचिव श्री पी० एन० कृपाल को लिखे गये पत्र और उसी दिन भारत सरकार के शैक्षिक सलाहकार श्री जे० पी० नायक को बुनियादी शिक्षा-विभाग के विलयन के सम्बन्ध में लिखे गये पत्र के सन्दर्भ में मैं यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। भारत में बुनियादी शिक्षा के दर्शन और कार्यान्वयन के सम्बन्ध में जितनी आपको चिन्ता है, उतनी ही हमें भी है। जैसा कि आप जानते हैं, शिक्षा-आयोग ने अपनी रिपोर्ट में संस्तुति की है कि कार्यानुभव विद्यालयी शिक्षा में प्रत्येक स्तर के शिक्षण का अंग बनेगा। उच्च शिक्षा में राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रम को प्रवेश दिलाने के सम्बन्ध में भी विचार हो रहा है। हम कार्यानुभव का पाठ्यक्रम तैयार करने की कोशिश कर रहे हैं। विद्यालयी शिक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के अंग के रूप में कला, उद्योग और विज्ञान के शिक्षण का हम रा० शै० अ० प० में विकास कर रहे हैं। बुनियादी शिक्षा के सम्बन्ध में हमने जो प्रशासकीय प्रबन्ध किया है, उससे बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त विद्यालयी पाठ्यक्रम में समाविष्ट होंगे ऐसी हमारी राय है। शोध के क्षेत्र में अतीत में परिषद ने बुनियादी शिक्षा के लिए अनुदान दिया है और आगे भी वह इस कार्य के लिए अनुदान देती रहेगी, बशर्ते कि शोध-सम्बन्धी उपयुक्त परियोजना पेश की जाय।

(मूल अंग्रेजी से)

—विश्वासपूर्वक आपका,
ह० शि० व० क० मित्र

[नई तालीम

राजभाषा विधेयक : शैक्षिक दृष्टिकोण

उच्च शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ हों अथवा अंग्रेजी, इस विषय को लेकर काफी बहस-मुबाहिसा संसद में अथवा दूसरी समितियों में हुआ, फिर समस्या को चौराहे पर ईंट-पत्थर से हल करने की चेष्टा की गयी। सिद्धांततः बात किसीको अस्वीकृत नहीं थी। समय को लेकर ही मतभेद था। एक बात मन में थी कि अगर सब काम क्षेत्रीय भाषाओं में ही होने लगेगा और एक राष्ट्रभाषा अथवा सम्पर्क-भाषा का सूत्र छिन्न हो जायगा तो राष्ट्र बिखर जायगा। अतः इस पिरोनेवाले सूत्र का काम जो अंग्रेजी भाषा इस समय कर रही है, उसे तब तक रहने दिया जाय, जब तक 'हिन्दी' इतनी समर्थ न हो जाय कि वह अंग्रेजी का स्थान ले ले। कब तक हिन्दी को समर्थ माना जायगा, यह अहिंदी-भाषी राज्यों पर छोड़ दिया जाय और तब तक हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम हो। श्री चागला के त्याग-पत्र की सबसे बड़ी दलील यही थी। उस समय इस पत्रिका के अक्तूबर १९६७ के संपादकीय में यह आशंका व्यक्त की गयी थी कि इस तर्क का अर्थ होता है 'हिन्दी का उसी प्रकार का साम्राज्यवाद' जिस प्रकार अंग्रेजी का रहा है, जो राष्ट्र के प्रजातान्त्रिक ढाँचे में उचित नहीं होगा और जिसका विरोध होगा। अतः उचित होगा शीघ्राति-शीघ्र क्षेत्रीय भाषाओं को उच्चतम शिक्षा तक का माध्यम बनाना और राज्यों का सारा कामकाज उन्हींके माध्यम से करना। इस बीच में त्रिभाषा सूत्र के अन्तर्गत अंग्रेजी और हिन्दी का अनिवार्य अध्ययन होता रहे और 'जब' हिन्दी देश की राजभाषा का स्थान ग्रहण कर ले तो अंग्रेजी को छोड़ दिया जाय और इस 'जब' का निर्णय तो 'अहिन्दी' राज्य ही करेंगे।

परन्तु राजभाषा-संशोधन विधेयक को लेकर जो तूफान उठ खड़ा हुआ, उससे क्षेत्रीय भाषाओं की बात पीछे पड़ गयी है। असल बात, जिसका सम्बन्ध प्रजातान्त्रिक सिद्धान्त से और छात्र के व्यक्तित्व के विकास अथवा कुण्ठा से है, पीछे पड़ गयी है और आगे आ गयी है केन्द्र में नौकरी की बात। सारे तर्कों और ईंट-पत्थरों के पीछे नौकरी का यह स्वार्थ ही है। आरम्भ से ही यह रहा है—

सिद्धान्त की आड में, देश की एकता की रक्षा की आड में यही स्वार्थ बोलता रहा है। अब बात साफ हो गयी है और साफ कहा जाने लगा है कि हिन्दी राजभाषा हुई तो हिन्दीवालों को एक ही भाषा पढनी पड़ेगी और अहिन्दी भाषा प्रदेशों को अपनी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भी। इससे केन्द्रीय नौकरियों की प्रतिद्वन्द्विता में हिन्दीवाले जीतेंगे। अत सब अपनी भाषा पढ़ें और दूसरी अंग्रेजी। यह न्याय-सगत नहीं होगा। यह कितना थोथा तक है! अगर यह कहा जाता है कि हिन्दीवाले भी एक अहिन्दी (दक्षिण की हो) भाषा पढ़ें तो बात समझ में आती और राष्ट्रीय एकता की दोहाई का भी कुछ अर्थ होता। परन्तु यह तो ऐसी बात है, जिसके पीछे शुद्ध आज की केन्द्रीय नौकरी का रंगीन स्वार्थ बोल रहा है। इससे देश की राष्ट्रीयता को सबसे बडा खतरा है क्योंकि इससे देश सदा के लिए अंग्रेजी और गैरअंग्रजी वर्गों में बट जायगा। अत इसके मानने का अर्थ होगा—एक ऐसी अप्रजातान्त्रिक प्रवृत्ति को स्थान देना जिसकी शिला पर भारत का नया प्रजातन्त्र चकनाचूर हो जायगा। इसका दूसरा अर्थ होगा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास में अवरोध जिसका परिणाम होगा छात्र का कुण्ठित, अविकसित व्यक्तित्व जो राष्ट्र को ले डूबेगा। अत राजभाषा संशोधन विधेयक की बात छोड़कर शिक्षा की दृष्टि से हमें नीचे लिखी बातें करनी हैं

१ क्षेत्रीय भाषाओं को जल्दी-से जल्दी प्रारम्भिक स्तर से शोध स्तर तक शिक्षा का माध्यम बनाया जाय और उन्हीमें राज्य का सारा काम किया जाय।

२ हिन्दी भाषी राज्यों में ईमानदारी के साथ विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से एक दूसरी भाषा और अधिक अच्छा होगा—दक्षिण की कोई एक भाषा—पढ़ायी जाय।

३ अहिन्दी भाषी प्रदेशों में ईमानदारी के साथ अपनी क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त विद्यार्थियों को हिन्दी अनिवार्य रूप से पढायी जाय।

४ हिन्दी और अहिन्दी क्षेत्र दूसरी भाषा पढ़ाने का कार्य कक्षा १० के बाद, जिसको सामान्य प्रारम्भ की शिक्षा का अंतिम वर्ग मानना चाहिए करें। ऐसा इसलिए कि केन्द्रीय नौकरियों में उच्च शिक्षा के विद्यार्थी ही जाते हैं। अत दूसरी भाषा पढ़ाने का काम उच्च शिक्षा के स्तर पर ही हो। इस कार्य में अपेक्षाकृत कम पैसा लगेगा। प्रारम्भिक अथवा जूनियर हाईस्कूल स्तर पर दूसरी भाषा का पढ़ाना आर्थिक दृष्टि से शक्य नहीं होगा।

—वंशीधर श्रीवास्तव

अनुक्रम

जनवरी, '६८

मुखपृष्ठ नये साल की नयी सुबह (छविकार) अनिकेत

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

नयी तालीम : जनवरी '६८

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि सं० एल. १७२३

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व-सेवा-संघ की ओर से प्रकाशित खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमन्दिर

नयी तालीम
सर्व सेवा संघ की मासिकी
विशेषांक
फरवरी-मार्च '६८
मूल्य : एक रुपया

(दलनिष्ठ नही लोकनिष्ठ) कह सकते हैं। विज्ञान और अहिंसा का अर्थ है मनुष्य को बौद्धिक नैतिक इकाई के रूप मे स्वीकार करना। शरीर स अधिक मनुष्य एक आध्यात्मिक सत्य है और इसी बात को सामने रखकर उसके विकास की बात सोचनी चाहिए। इस विकास की पद्धति और परिस्थिति का निर्माण करना शिक्षण का काम है।

यत्रवाद और युद्धवाद की आज की सभ्यता मे अनुकूल परिस्थिति का निर्माण होना सभव नही है। उसके लिए आवश्यक है कि एक ओर मनुष्य का चित्त बदले और दूसरी ओर उसका वातावरण बदले। यह तब होगा जब मनुष्य का जीवन छोटे समुदायो मे सगठित होगा ताकि वह उत्पादन प्रकृति और समाज से एक साथ जुडा रह सके। इसलिए गाधीजी चाहते थे कि एक समुन्नत गाव मे ही जीवन का स्वाभाविक वातावरण बन सकता है।

गाव कैसा हो ? एक पूरा गणराज्य हो जिसमे दमनमुक्त सहकारी व्यवस्था हो आज के ऊँच-नीच धनी गरीब के भेद भाव न हो जहाँ यत्र और श्रम के शोपणमुक्त सहयोग से खेती-उद्योग पशुपालन मिश्रित उत्पादन होता हो तथा जहा लोग सभ्य किन्तु सादा और स्वाश्रयी जीवन बिताते हो और उसके लिए समान रूप से सबको आवश्यक साधन और सुविधाएँ प्राप्त हो।

बुनियादी तालीम के पीछे जीवन का जो चित्र (डिजाइन फार लिविंग) था उसे समझे बिना केवल रग चढाने की बात करने मे क्या सार है ? बात यह है कि सम्पूर्ण जीवन को एक साथ सामने रखकर सोचने की शक्ति विशेषज्ञो मे नही होती। अलग-अलग क्षेत्र के लिए विशेषज्ञ योजना बना सकते हैं लेकिन जीवन की योजना वही बना सकता है जिसने जीवन का शोध किया है जिसमे कल्पना है, दृष्टि है मूल्यो की भूमिका है। ऐसी समग्र दृष्टि शिक्षक मे ही हो सकती है। लेकिन आज तो वह सेठ और शासक का टहलुआ मात्र है। और आज के योजनाकार विकास की—चाहे शिक्षण का चाहे खेती और उद्योग आदि की—जो योजना बनाते हैं उसमे जीवन की कोई डिजाइन नही है। गाधीजी के पास पूरी डिजाइन थी। वह डिजा इन पूरी का पूरी छोडी या अपनायी जा सकती है। इसलिए बुनियादी तालीम का रग जैसी क्या चीज रह जायगी जब तक वह रग एक डिजाइन म नभरा जाय। हम सोच ले कि हमें कैसी डिजाइन चाहिए।

—राममूर्ति

आयोग-संस्तुत शिक्षा का लक्ष्य
बनाम
बुनियादी शिक्षा

कृष्ण माधव

किसी राष्ट्र के बच्चों को क्या शिक्षा दी जाय, इसका निश्चय उस राष्ट्र का जीवन-दर्शन करता है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति का जिन जीवन मूल्यों में विश्वास रहता है, उन्हींके अनुरूप वह शिक्षा प्रणाली विकसित करने की चेष्टा करता है। जीवन-दर्शन ही यह निश्चय करता है कि किस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे वांछित जीवनादर्शों के अनुरूप व्यक्तित्व का विकास हो। गांधीजी एक विशेष प्रकार के जीवन मूल्यों में निष्ठा रखते थे इसलिए वह देश में शोषण विहीन अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे—ऐसे समाज की, जिसमें समाज का जो अंतिम व्यक्ति है, उसका उदय प्रथम हो। परम्परागत किताबी शिक्षा पाये हुए व्यक्ति से इस प्रकार के समाज की स्थापना सम्भव नहीं थी, क्योंकि जिस व्यक्ति को हाथ से किसी समाजोपयोगी काम को करने की शिक्षा नहीं मिली है, वह दूसरों का शोषण करने की प्रवृत्ति का शमन नहीं कर पाता। इसलिए गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की नींव डाली और हाथ के उत्पादक काम को इस शिक्षा प्रणाली के केन्द्र में रखा। प्रारम्भ से अंत तक, अर्थात् जिस दिन से बालक शाला में आता है उस दिन से जबतक वह शाला में रहता है उस दिन तक वह एक समाजोपयोगी उत्पादक धंधे (शिल्प) को वैज्ञानिक ढंग से सीखता हुआ उसके माध्यम से पढ़े लिखे और अपने व्यक्तित्व का संस्कार करे, ऐसी संकल्पना गांधीजी की थी। ऐसा होगा तभी एक स्वावलम्बी व्यक्तित्व का विकास होगा शोषण की प्रवृत्ति रुकेगी और शोषण विहीन समाज की स्थापना होगी। गांधीजी के सामने यह उद्देश्य स्पष्ट था, इसलिए उन्होंने शिल्प को बुनियादी शिक्षा प्रणाली में केन्द्रीय स्थान दिया। यह शिल्प शिक्षा का माध्यम होगा, अलग से एक विषय नहीं होगा—शौकिया, केवल मनोरंजन के लिए सम्पादित होनेवाला काम (हॉबी) तो वह निश्चय ही नहीं होगा। उत्पादकता इस शिल्प शिक्षण की पहली शर्त है और स्वावलम्बन इसकी तजावी जाँच। इसलिए उन्होंने कहा कि शिल्प की शिक्षा कक्षा १ से कक्षा ८ तक चले और उन्होंने उसके लिए उतना ही समय दिया था, जितना अन्य दूसरे विषयों के शास्त्रीय अध्ययन को मिलाकर, अर्थात् आधे वक्त काम करना और आधे वक्त पढ़ना।

बाबा रोता क्यों नहीं ?

इन दिनों बाबा हँसता ही रहता है। इसलिए हँसता है कि रोना वाजिब नहीं है, अगरचे हालत रोने लायक है। और इसलिए भी हँसता है कि बाबा को उसका उपाय सूझा हुआ है। बाबा देखता है कि यह उपाय अगर लोगों को सूझेगा तो सारे भारत में आनन्द होगा। यह आनन्दमय निश्चित भविष्य ध्यान में रखकर बाबा हँसता है। और वह इसलिए भी हँसता रहता है कि वह इस दुनिया को निकम्मा समझता है। बहुत ज्यादा वास्तविक अस्तित्व इसको है, ऐसा बाबा को प्रतीत होता है।

खैर, मेरा मतलब है कि परिस्थिति बहुत शोचनीय है भारत की। क्या-क्या भयानक प्रकार हिन्दुस्तान में हो रहे हैं, ऐसा प्रश्न पूछने के बजाय यही पूछना बेहतर होगा कि कौनसे प्रकार नहीं हो रहे हैं! सार्वजनिक जीवन के विषय में जितने खराब प्रकार हो सकते है लाजिकली उतने सब हो रहे हैं। और इसलिए अन्दर से बहुत वेदना का अनुभव होता है। —विनोबा

[विनोबा-निवास, मुंगेर १६-२-६८]

शिक्षकों प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

कैसी डिजाइन ?

गाधीजी के किसी एक विचार को उनके दूसरे विचार से अलग रखने से पूरी बात समझ मे नही आती। अलग-अलग रखने से पूरा चित्र इतना अधूरा और खण्डित हो जाता है कि करीब-करीब अग्राह्य हो जाता है। यह बात विशेष रूप से उनके शिक्षण-सम्बन्धी विचारो पर लागू होती है। आजकल के शिक्षण से ऊबकर बहुत से लोग गाधीजी की बुनियादी या नयी तालीम की ओर मुडते हैं, लेकिन जब वे देखते हैं कि गाधीजी का एक विचार दूसरे विचार से अलग किया नही जा सकता तो वे बिदक जाते हैं, और अन्त मे उनके हाथ कुछ लगता नही।

वर्ष : १६
अंक : ७-८

जिस शिक्षण-आयोग की पिछले दिनो बहुत चर्चा रही उसने अपनी शक्ति भर पहली बार शिक्षण को राष्ट्रीय विकास के साथ जोडने की कोशिश की। स्वभावत उसका ध्यान गाधीजी के विचारो की ओर गये बिना रह नही सकता था। और, उसने बुनियादी तालीम के विचार को अत्यन्त मूल्यवान पाया—इतना मूल्यवान पाया कि साफ-साफ ऐसा कहना उसे जरूरी नही लगा। बस इतना कहकर रह गया कि बुनियादी तालीम का रंग नीचे से ऊपर तक पूरे शिक्षण पर चढना चाहिए।

सत्य और अहिंसा—ये दो गाधीजी के बुनियादी जीवन-मूल्य थे। आजकल की भाषा मे सत्य को विज्ञान और अहिंसा को लोकतंत्र

पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि सं० एल. १७२३

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित खण्डेलवाल प्रेस
एण्ड पब्लिकेशन्स मानमन्दिर, वाराणसी मे मुद्रित

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

कैसी डिजाइन ?

गाधीजी के किसी एक विचार को उनके दूसरे विचार से अलग रखने से पूरी बात समझ मे नही आती। *अलग-अलग रखने से पूरा चित्र इतना अधूरा* और खण्डित हो जाता है कि करीब-करीब अग्राह्य हो जाता है। यह बात विशेष रूप से उनके शिक्षण-सम्बन्धी विचारो पर लागू होती है। आजकल के शिक्षण से ऊबकर बहुत से लोग गाधीजी की बुनियादी या नयी तालीम की ओर मुडते हैं, लेकिन जब वे देखते हैं कि गाधीजी का एक विचार दूसरे विचार से अलग किया नही जा सकता तो वे बिदक जाते हैं, और अन्त में उनके हाथ कुछ लगता नही।

वर्ष : १६
अंक : ७-८

जिस शिक्षण-आयोग की पिछले दिनो बहुत चर्चा रही उसने अपनी शक्ति भर पहली बार शिक्षण को राष्ट्रीय विकास के साथ जोडने की कोशिश की। स्वभावत: उसका ध्यान गाधीजी के विचारो की ओर गये बिना रह नही सकता था। और, उसने बुनियादी तालीम के विचार को अत्यन्त मूल्यवान पाया—इतना मूल्यवान पाया कि साफ-साफ ऐसा कहना उसे जरूरी नही लगा। बस इतना कहकर रह गया कि बुनियादी तालीम का रंग नीचे से ऊपर तक पूरे शिक्षण पर चढ़ना चाहिए।

सत्य और अहिंसा—ये दो गाधीजी के बुनियादी जीवन-मूल्य थे। आजकल की भाषा मे सत्य को विज्ञान और अहिंसा को लोकतंत्र

(दलनिष्ठ नहीं, लोकनिष्ठ) कह सकते हैं। विज्ञान और अहिंसा का अर्थ है मनुष्य को बौद्धिक-नैतिक इकाई के रूप मे स्वीकार करना। शरीर से अधिक मनुष्य एक आध्यात्मिक सत्य है, और इसी बात को सामने रखकर उसके विकास की बात सोचनी चाहिए। इस विकास की पद्धति और परिस्थिति का निर्माण करना शिक्षण का काम है।

यंत्रवाद और युद्धवाद की आज की सभ्यता मे अनुकूल परिस्थिति का निर्माण होना संभव नही है। उसके लिए आवश्यक है कि एक ओर मनुष्य का चित्त बदले और दूसरी ओर उसका वातावरण बदले। यह तब होगा जब मनुष्य का जीवन छोटे समुदायो मे संगठित होगा ताकि वह उत्पादन, प्रकृति और समाज से एक साथ जुड़ा रह सके। इसलिए गाधीजी चाहते थे कि एक समुन्नत गाँव मे ही जीवन का स्वाभाविक वातावरण बन सकता है।

गाँव कैसा हो ? एक पूरा गणराज्य हो, जिसमे दमनमुक्त सहकारी व्यवस्था हो . आज के ऊँच-नीच, धनी-गरीब के भेद-भाव न हों, जहाँ यंत्र और श्रम के शोषणमुक्त सहयोग से खेती-उद्योग-पशुपालन-मिश्रित उत्पादन होता हो, तथा जहाँ लोग सभ्य किन्तु सादा और स्वाश्रयी जीवन विताते हो, और उसके लिए समान रूप से सबको आवश्यक साधन और सुविधाएँ प्राप्त हो।

—राममूर्ति

आयोग-संस्तुत शिक्षा का लक्ष्य
बनाम
बुनियादी शिक्षा

कृष्ण माधव

किसी राष्ट्र के बच्चों को क्या शिक्षा दी जाय, इसका निश्चय उस राष्ट्र का जीवन-दर्शन करता है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति का जिन जीवन मूल्यों में विश्वास रहता है, उन्हींके अनुरूप वह शिक्षा प्रणाली विकसित करने का चेष्टा करता है। जीवन-दर्शन ही यह निश्चय करता है कि किस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे वाञ्छित जीवनादर्शों के अनुरूप व्यक्तित्व का विकास हो। गांधीजी एक विशेष प्रकार के जीवन मूल्यों में निष्ठा रखते थे, इसीलिए वह देश में शोषण विहीन अहिंसक समाज की स्थापना करना चाहते थे—ऐसे समाज की, जिसमें समाज का जो अंतिम व्यक्ति है, उसका उदय प्रथम हो। परम्परागत किताबी शिक्षा पाये हुए व्यक्ति से इस प्रकार के समाज की स्थापना सम्भव नहीं थी, क्योंकि जिस व्यक्ति का हाथ ने किसी समाजोपयोगी काम को करने की शिक्षा नहीं मिली है, वह दूसरों का शोषण करने की प्रवृत्ति का शमन नहीं कर पाता। इसलिए गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा की नींव डाली और हाथ के उत्पादक काम को इस शिक्षा प्रणाली के केन्द्र में रखा। प्रारम्भ से अंत तक, अर्थात् जिस दिन से बालक शाला में आता है उस दिन से अबतक वह शाला में रहता है उस दिन तक वह एक समाजोपयोगी उत्पादक धंधे (शिल्प) को वैज्ञानिक ढंग से सीखता हुआ उसके माध्यम से पढ़े लिखे और अपने व्यक्तित्व का संस्कार कर, ऐसी संकल्पना गांधीजी की थी। ऐसा होगा तभी एक स्वावलम्बी व्यक्तित्व का विकास होगा, शोषण की प्रवृत्ति रुकेगी और शोषण-विहीन समाज की स्थापना होगी। गांधीजी के सामने यह उद्देश्य स्पष्ट था, इसीलिए उन्होंने शिल्प का बुनियादी शिक्षा प्रणाली में केन्द्रीय स्थान दिया। यह शिल्प शिक्षा का माध्यम होगा, अलग से एक विषय नहीं होगा—शौकिया, केवल मनोरंजन के लिए सम्पादित होनेवाला काम (हाबी) तो वह निश्चय ही नहीं होगा। उत्पादकता इस शिल्प शिक्षण की पहली शर्त है और स्वावलम्बन इसकी तेजाबी जाँच। इसलिए उन्होंने कहा कि शिल्प का शिक्षा कक्षा १ से कक्षा ८ तक चले और उन्होंने उसके लिए उतना ही समय दिया था, जितना अन्य दूसरे विषयों के शास्त्रीय अध्ययन का मिलाकर, अर्थात् आधे वक्त काम करना और आधे वक्त पढ़ना।

यहाँ 'शिल्प' शब्द को स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है। गांधीजी शिल्प का अर्थ 'ग्रामीण उद्योग' ही करते थे, 'शक्तिचालित केन्द्रीकृत उद्योग' नहीं। एक में मानव की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का उपयोग होता है, दूसरे में यंत्र द्वारा और यंत्र के मालिक द्वारा मानव का शोषण होता है। गांधीजी यंत्र के खिलाफ नहीं थे, परन्तु वहीं तक जहाँ तक वह मनुष्य के सुख-सुविधा का साधन बने और उसके बौद्धिक विकास का कारण हो, लेकिन जब वह उसके शोषण का साधन बनता है तो वह उसे त्याज्य मानते थे। इसीलिए उन्होंने बेसिक शिक्षा के मूल में शिल्प को रखा और साफ कहा कि इस शिल्प से छात्र के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। यह सोचना गलत है कि चूँकि गांधीजी के सामने औद्योगिक भारत का चित्र नहीं था, इसलिए उन्होंने 'शिल्प' के माध्यम की बात कही। वह औद्योगीकरण की अच्छाइयों को खूब जानते थे और भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में, जो अध्यात्ममूलक है, वे उद्योगमूलक भौतिकवाद के अभिशापों को भी पहचानते थे। विज्ञान और टेकनालाजी के गुण-दोषों से भी वह भली-भाँति परिचित थे और अपने अनेक लेखों में उन्होंने इनकी स्पष्ट व्याख्या भी की है और भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए विज्ञान और टेकनालाजी के उपयोग की वकालत भी की है। बेसिक शिक्षा, जिसे वह नयी तालीम कहते थे, उनकी इसी वकालत का परिणाम है। शिल्प की वैज्ञानिक शिक्षा, जिससे वह उत्पादक हो, और बुद्धि तथा मन का विकास करे, की सकल्पना में विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय ही तो है। भारत के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री चागला ने जब आयोग के अपने उद्घाटन-भाषण में कहा था कि इस देश की गरीबी को दूर करने के लिए विज्ञान और टेक्नालाजी का व्यापक प्रचार आवश्यक है, परन्तु शिक्षा के वैज्ञानिक और तकनीकी पहलुओं पर बल देते हुए भी हम अपने महान अतीत को न भूलें, हम आगे देखें और आधुनिक बनें। लेकिन हमारे पैर दृढ़तापूर्वक हमारे देश की धरती पर हों, तो वह अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की ही बात कही थी, वही जो शिल्पकेन्द्रित शिक्षा के रूप में गांधीजी ने कही थी।

परन्तु श्री चागला के आश्वासन के बाद भी आयोग ने शिक्षा के लक्ष्यों के सम्बन्ध में जो संस्तुतियाँ की है, बेसिक शिक्षा के लक्ष्यों से भिन्न हैं। यद्यपि आयोग ने बार-बार बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों की दुहाई दी है और कहा है कि बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त इतने महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर का मार्गदर्शन उनके आधार पर होना चाहिए और इस रिपोर्ट में जो संस्तुतियाँ की गयी हैं, वे भी इन्हींके आधार पर बनायी गयी हैं। हम इस अन्तर को तनिक विस्तार से देखेंगे।

आयोग कहता है कि शिक्षा राष्ट्र के जीवन के साथ सम्बन्धित होनी चाहिए, जिससे वह देशवासियों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप होकर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त साधन बन सके। इस व्यापक लक्ष्य की पूर्ति तभी होगी, जब (१) शिक्षा उत्पादक होगी, (२) वह सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने का साधन होगी, (३ लोकतंत्र को शक्तिशाली बनायगी, (४) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देगी, और (५) सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करेगी। ये ही पाँचों आयोग द्वारा संस्तुत शिक्षा के लक्ष्य हैं।

१. शिक्षा की उत्पादकता—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है शिक्षा को उत्पादक बनाना। शिक्षा को उत्पादक बनाने के लिए आयोग ने शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव के आयोजन की संस्तुति की है। कार्यानुभव द्वारा शिक्षा उत्पादक बने इसके लिए कार्यानुभव का तकनीकी और औद्योगीकरण से समन्वय आवश्यक है। यह तभी सम्भव होगा जब विज्ञान विद्यालयी शिक्षा का अनिवार्य विषय होगा। विज्ञान और तकनीकी का जब हाथ के काम से मेल होगा तभी शिक्षा उत्पादक होगी, ऐसा विचार आयोग का है। परन्तु कार्यानुभव का जो चित्र आयोग ने प्रस्तुत किया है उसकी रेखाएँ पुष्ट और स्पष्ट नहीं हैं। न तो उसकी संकल्पना स्पष्ट है और न पाठ्यक्रम में उसका स्थान (स्टेटस)। कुछ लोग कहते हैं कि कार्यानुभव में आग्रह 'उत्पादन पर है, शिक्षा पर नहीं, और दूसरे कहते हैं कि कार्यानुभव का तभी कुछ अर्थ होगा जब उससे बालक के व्यक्तित्व का विकास होगा। कुछ कहते हैं कि कार्यानुभव पाठ्येतर विषय है और उसकी परीक्षा न ली जाय। दूसरे कहते हैं कि कार्यानुभव अगर विद्यालयी शिक्षा के पहले स्तर से अन्तिम स्तर तक सतत विकासमान प्रवृत्ति का न रहा तो उसका कोई शैक्षिक मूल्य नहीं होगा और उससे छात्र में किसी गुण-कौशल या आदत का विकास नहीं होगा। स्वयं आयोग जहाँ एक ओर कार्यानुभव के दर्शन को बेसिक शिक्षा के दर्शन के समान बताता हुआ, उन्हें शिक्षा के उच्च प्रारम्भिक स्तर पर शिल्प का ही कार्यक्रम बताता है, वहीं दूसरी ओर उसे समाज-सेवा के कार्यक्रम के अन्तर्गत बताते हुए समाज-सेवा के शिविरों तक ही सीमित कर देता है। इसका प्रमुख कारण केवल यह है कि आयोग के सदस्य किसी विशेष जीवन-आदर्श से शासित नहीं हो रहे थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि आयोग विज्ञान, टेकनालाजी, तथा आध्यात्मिकता का समन्वय नहीं कर पाया है और समन्वय स्थापन के जिस पवित्र लक्ष्य को लेकर वह चला था वह आधुनिकता की आँधी में बह गया है। अत यदि आयोग के संस्तुतियों का कार्यान्वयन किया गया, तो भले ही देश की थोड़ी-बहुत भौतिक प्रगति हो जाय, विज्ञान और टेकनालाजी का प्रसार इस

प्रकार नही होगा, जिससे आध्यात्मिकता की रक्षा हो और ऐसे मानव का निर्माण हो जो शरीर के सुख के ऊपर आत्मा के सुख को तरजीह दे।

(२) शिक्षा-आयोग द्वारा संस्तुत दूसरा लक्ष्य है सामाजिक और राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना और इसके लिए आयोग ने सार्वजनिक स्कूल-पद्धति के विकास की और त्रिभाषा सूत्र में सुधार करने की संस्तुतियाँ की है। बेसिक शिक्षा ने राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए, देश के सभी बच्चो के लिए एक ही प्रकार के यानी बेसिक स्कूल की संस्तुति की थी और स्पष्ट कहा था कि देश के सभी बच्चे बेसिक स्कूलो में ही पढ़ेंगे, जहाँ बिना भेद-भाव के सब हाथ का उत्पादक उद्योग करेंगे। जहाँ अग्रेजी नही पढायी जायगी, सबके लिए अपनी मातृभाषा ही माध्यम होगी और सबको हिन्दुस्तानी (दोनो लिपियो में) सीखनी होगी। आयोग सार्वजनिक स्कूलो की स्थापना की संस्तुति करता हुआ भी विशिष्ट विश्वविद्यालयो की स्थापना की संस्तुति करता है। एक ही स्कूल में दो पाठ्यक्रम चलाने की संस्तुति करता है, मानो देश मे एक-दो शिक्षा की प्रणालियाँ चलाने की सिफारिश करता है। वह त्रिभाषा सूत्र में इस प्रकार परिवर्तन करता है, जिससे यदि प्रदेश चाहे तो देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन छोड दें। (उदाहरणार्थ, बगाली जिस छात्र को मातृभाषा है आयोग की परिवर्तित भाषा-नीति के अनुसार, यदि वह चाहे तो बगाली पढे, अंग्रेजी पढे, और तीसरी भाषा उडिया पढे और हिन्दी बिलकुल न पढे।) यह देश की राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने की बात नही है। फिर राजभाषा के अध्ययन को वैकल्पिक बनाकर और क्षेत्रीय भाषाओं को प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाने से इस एकता के नष्ट होने का खतरा और भी बढ जाता है।

आयोग ने यही किया, जिसका परिणाम हो रहा है आज का भाषा-संघर्ष। आयोग की रिपोर्ट पढने से तो ऐसा लगता है, मानो आयोग की सारी हलचलो के मूल में एक चेष्टा रही है कि समाज के एक विशिष्ट वर्ग को, अंग्रेजी पढे-लिखे लोगो को, जो विशेषाधिकार प्राप्त हो गये है वे अक्षुण्ण बने रहे। और उनकी सन्तान अनन्त काल तक इन अधिकारो का उपभोग करती रहे। आयोग के सामने साढे पाँच लाख गाँवो से बने हुए समग्र भारत को व्यापक दृष्टि से देखने का अभाव रहा है। सिफारिशें करते समय उसके सामने नगर, उद्योगोन्मुख नगर अधिक रहे हैं, गाँव कम, अंग्रेजी पढे लिखे नगर के विशिष्ट लोग अधिक रहे है, गाँव के गँवई-गँवार कम।

आयोग ने बेसिक शिक्षा के कुछ सिद्धान्तो को अपनाने की बात की है। बेसिक शिक्षा के जीवन मूल्यो को छोडकर, उसके 'शिल्प' के सिद्धान्त को छोडकर, उसकी विकेन्द्रित नीति को छोडकर, उसकी सर्वोदय और समानता की नीति को छोडकर, उसके कुछ सिद्धान्तों को अपनाने से कुछ नही होगा। ●

विद्यालयी शिक्षा का पाठ्यक्रम और शिक्षा-आयोग

भुवनेशचन्द्र गुप्त

शिक्षा-क्षेत्र में पाठ्यक्रम-सगठन से अधिक कोई महत्वपूर्ण समस्या नही है। देश की सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति के कारण भी इसमें परिवर्तन, परिष्कार एव परिवर्द्धन होता रहता है। सामान्यत राष्ट्र की नीति के अनुसार ही किसी देश विशेष की शिक्षा का पाठ्यक्रम सगठित किया जाता है। किसी भी देश, काल की प्रगति उसकी शिक्षा के पाठ्यक्रम को देखकर ही समझी जा सकती है, क्योकि समाज की माँग के अनुसार ही बच्चो में शिक्षा द्वारा कुछ भावना भरने का प्रयास किया जाता है। यदि शिक्षा को हम एक दौड मान लें और शिक्षा के उद्देश्य को अपना गन्तव्य स्थान या लक्ष्य तो पाठ्यक्रम को वह मार्ग कह सकते है, जिस पर चलकर हम अपने लक्ष्य पर पहुँच सकते हैं। अध्यापक तो केवल हमारा मार्गदर्शक होता है। कोठारी आयोग ने पाठ्यक्रम के सगठन और सुधार के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव दिये है —

(१) विश्वविद्यालयो, प्रशिक्षण महाविद्यालयो, शिक्षण सस्थाओं और माध्यमिक शिक्षा विभाग या पाठ्यक्रम में शोध करानी चाहिए जिससे कि पाठ्यक्रम में सतत् विकास होता रहे।

(२) इन शोधो के आधार पर पाठ्यक्रम में परिवतन करते जाना चाहिए।

(३) प्रत्येक शाला को अपनी आवश्यकताओ के अनुकूल नये पाठ्यक्रम पर प्रयोग करने की सुविधा एव स्वतन्त्रता अवश्य देनी चाहिए।

भाषा का शिक्षण

शाला-स्तर पर भाषा-शिक्षण मे भी परिवर्तन अपेक्षित है। इसके लिए भाषा सम्बन्धी नयी नीति का निर्माण होना चाहिए। भाषा-सम्बन्धी प्रस्ताव में आयोग ने निम्नाकित मार्ग-निर्देशन करनेवाले सिद्धान्त सुझाये है :—

(१) चूंकि हिन्दी भारत सघ की राजभाषा है अतः उसे इस रूप मे एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मातृ-भाषा के पश्चात् उसका द्वितीय स्थान है।

(२) अग्रेजी का सामान्य ज्ञान छात्रो के लिए भविष्य मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

(३) इन भाषाओ को सीखने के लिए उपयुक्त उम्र निम्न माध्यमिक स्तर अर्थात् कक्षा ८ से १० तक है। इस परिवर्तन में कम अध्यापकों की आवश्यकता होगी और व्यय कम लगेगा।

(४) हिन्दी अथवा अग्रेजी को उस समय स्थान देना चाहिए जबकि उसके लिए अधिक से अधिक रुचि एव आवश्यकता का अनुभव हो।

(५) किसी भी स्तर पर चार भाषाओ का शिक्षण अनिवार्य नही किया जाना चाहिए।

त्रिभाषा सूत्र में इन सिद्धान्तो के आधार पर निम्न प्रकार सुधार कर लेना चाहिए।

(१) मातृ-भाषा या प्रादेशिक भाषा।

(२) राजभाषा या सहयोगी भाषा जब तक वह चल रही है तथा

(३) एक आधुनिक भारतीय अथवा यूरोपीय भाषा जो (१) और (२) मे से न हो और शिक्षा के माध्यमवाली भाषा से अलग हो।

१. निम्नतर प्राइमरी स्तर पर छात्र केवल एक भाषा का अध्ययन ही करेगा, जो कि उसकी मातृ-भाषा या प्रादेशिक भाषा ही हो सकती है।

२. उन्नतर प्राइमरी स्तर पर शिक्षार्थी दो भाषाओ का अध्ययन करेगा, जो कि उसकी मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा तथा राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा होगी।

३. निम्न माध्यमिक स्तर पर वह तीन भाषाओ का अध्ययन करेगा, जो कि उसकी मातृ-भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा तथा राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा एव एक आधुनिक भारतीय भाषा होगी। यह छात्र पर निर्भर होगा कि वह राजभाषा अथवा सहयोगी राजभाषा का अध्ययन करे। किन्तु

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर केवल दो भाषाओ का ही अध्ययन करना अनिवार्य होगा।

४ प्रत्येक राज्य में अंग्रेजी अथवा हिन्दी की अपेक्षा, अंग्रेजी को छोडकर अन्य कोई महत्वपूर्ण आधुनिक पुस्तकालीय भाषाओ का अध्ययन ऐच्छिक रूप में कराने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसी प्रकार अहिन्दी क्षेत्रो में भी आधुनिक भारतीय भाषाओ का अध्ययन करने की व्यवस्था कुछ चुने हुए विद्यालयो में हिन्दी अथवा अंग्रेजी की बजाय सम्भव होनी चाहिए।

५ हिन्दी और अंग्रेजी का अध्ययन कालाश मे प्रत्येक स्तर पर निश्चित होना चाहिए। राजभाषा और सह राजभाषा को दो स्तरो पर निश्चित करना चाहिए—एक तीन वर्ष तथा एक छ वर्ष के अध्ययन के लिए।

६ उच्च शिक्षा स्तर पर किसी भी भाषा का अध्ययन अनिवार्य नही होना चाहिए।

७ राजभाषा हिन्दी का अध्ययन स्वेच्छा से करनेवालो के हेतु एक राष्ट्र-व्यापी कार्यक्रम सगठित करना चाहिए, जिससे कि उसका प्रसार हो सके, किन्तु यह अध्ययन का कार्य किसी पर जबदस्ती थोपा न जाय।

८ भारतीय भाषाओ की लिपियो में भारी अन्तर रहने के कारण भाषाओ का अध्ययन बडा बोझिल हो जाता है। इसके लिए आधुनिक भारतीय भाषाओ का कुछ साहित्य देवनागरी एव रोमन लिपियो में तैयार करना चाहिए। सभी भारतीय भाषाओ को अन्तर्राष्ट्रीय अक स्वीकार कर लेने चाहिए।

९ सामान्यत अंग्रेजी का अध्ययन पाँचवी कक्षा के पूर्व नही प्रारम्भ करना चाहिए, जब तक कि मातृभाषा पर छात्र का अधिकार न हो जाय। क्योकि कक्षा पाँच के पूर्व अंग्रेजी के अध्ययन पर बल देना शैक्षिक दृष्टि से दोषपूर्ण है।

१० सस्कृत अथवा अरबी जैसी प्राचीन भारतीय शास्त्रीय भाषाओ का अध्ययन कक्षा आठ से वैकल्पिक आधार पर विद्यालयो में प्रोत्साहित करना चाहिए। और समस्त विश्वविद्यालयो में इन भाषाओ के अधिक-से-अधिक केन्द्र खोले जाने चाहिए। कुछ चुनीन्दा विश्वविद्यालयो मे इन भाषाओ के 'उच्चतर अध्ययन-केन्द्र' भी खोले जाने चाहिए। भविष्य में कोई भी सस्कृत विश्व-विद्यालय नही खोला जाना चाहिए।

विज्ञान और गणित

विद्यालयी शिक्षण के प्रथम दशक में विज्ञान और गणित की शिक्षा अनिवार्य कर देनी चाहिए।

१. विज्ञान का अध्ययन—निम्न प्राइमरी कक्षाओं में विज्ञान का अध्ययन बच्चों के वातावरण के अनुकूल होना चाहिए। रोमन अक्षरों को कक्षा चार से सिखाना चाहिए, जिससे कि स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान के प्रतीक समझने में सुविधा हो, जिनका प्रयोग विज्ञान के मापन, मानचित्र, चार्ट तथा अकन सारिणियों मे किया जाता है।

२. उच्चतर प्राइमरी स्तर पर उचित ज्ञान-प्राप्ति पर ही सारा जोर होना चाहिए, जिससे कि वे तर्कपूर्ण ढंग से सोच सकें तथा उच्च स्तर पर ज्ञान तथा तर्क के सन्दर्भ में ठीक-ठीक निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त कर सकें। विज्ञान-शिक्षण में अलग-अलग विज्ञान की शिक्षा के दृष्टिकोण अपनाना सामान्य विज्ञान-शिक्षण की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होगा।

३. निम्न प्राइमरी स्तर पर विज्ञान-कक्ष (साइन्स कार्नर) तथा उच्च प्राइमरी स्तर पर एक लेक्चर-कम-लेबोरेटरी कक्ष की कम-से-कम आवश्यकता होगी।

४. निम्न माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को मानसिक अनुशासन के रूप मे विकसित करना चाहिए। इस स्तर पर भौतिक, रासायनिक एव जीव-विज्ञान तथा प्रायोगिक दृष्टिकोण की नवीन धारणाओं पर विज्ञान सीखने मे जोर डालना चाहिए।

५. उच्च विज्ञान की शिक्षा उन मेधावी छात्रो को मिलनी चाहिए जिनका चयन उन निम्न माध्यमिक स्तर के विद्यालयो से किया जायगा, जहाँ आवश्यक एव योग्य स्टाफ तथा प्रयोगशाला की सुविधा हो।

६. विज्ञान का शिक्षण देहाती-क्षेत्रों में कृषि के साथ सम्बद्ध करना चाहिए और शहरी-क्षेत्रो में टेक्नालाजी के साथ। किन्तु उनकी स्तरानुकूल उपलब्धियाँ और उच्च शिक्षा की सम्भावना दोनों प्रकार के विद्यालयो के लिए समान होनी चाहिए।

७. गणित का अध्ययन—गणित के अध्ययन को आधुनिक बनाने के लिए उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

८. गणित के पाठ्यक्रम को प्रत्येक स्तर पर उसके नियम एवं सिद्धान्तो तथा तर्कपूर्ण वैचारिकता के विकास के हेतु अत्यन्त आधुनिक बनाना चाहिए।

९. गणित और विज्ञान की शिक्षण-विधि—गणित और विज्ञान की शिक्षण-विधि आधुनिक होनी चाहिए। उसमें शोध और मूल सिद्धान्तो को समझाने का बुनियादी दृष्टिकोण होना चाहिए। इस दृष्टिकोण को बनाने के लिए शिक्षकों को निरन्तर सामग्री जुटानी चाहिए। प्रयोगशाला के कार्य में पर्याप्त

सुधार अपेक्षित है। क्षमतावान् बालक की विशेष आवश्यकता का ध्यान रखने की दृष्टि से इसमें पर्याप्त लोच होनी चाहिए।

सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान

१ भावात्मक समन्वय तथा अच्छे नागरिको के विकास के लिए सामाजिक अध्ययन का प्रभावशाली कार्यक्रम प्राथमिक आवश्यक्ता है।

२ पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय एकता एव मानव एकतावाले विचारो पर अधिक जोर देना चाहिए।

३ सामाजिक अध्ययन के शिक्षण म सभी स्तरो पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

कर्यानुभव

१ नयी समाज-व्यवस्था में कार्यानुभव का अच्छा अभ्यास दिया जाना चाहिए। निम्न प्राइमरी स्तर पर हस्तकला का सामान्य काम सिखाया जाना चाहिए परन्तु उच्च प्राइमरी स्तर पर कला-कौशल का ज्ञान देना उपयोगी होगा। निम्न माध्यमिक स्तर पर कारखाने अथवा फार्म में व्यावहारिक शिक्षण के रूप में और उच्च माध्यमिक स्तर पर शालाओ में विद्यालय की शिल्प शालाओ, खेतो, अथवा व्यावसायिक एव औद्योगिक उद्योगो में कार्यानुभव का शिक्षण कराया जाना चाहिए।

२ जहाँ शालाओं में शिल्पशाला (वर्कशाप) का अभाव हो या व्यवस्था न हो सके, वहाँ पर सस्ते मूल्य पर औजार दिलाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

३ इस योजना के सफलतापूर्वक कार्यान्वियन के लिए अध्यापको का प्रशिक्षण, शिल्पशालाओ का प्रायोजन और स्थानीय स्रोतो को गतिशील बनाने के लिए उसके साहित्य का निर्माण तथा कार्यक्रम की रूपरेखा बनाकर उसे लागू करना अनिवार्य है।

४ कार्यानुभव प्रत्येक स्तर की शिक्षा का अभिन्न अग होना चाहिए और प्रत्येक स्तर के विद्यार्थियो के लिए अनिवार्य होना चाहिए।

समाज-सेवा

१ भिन्न भिन्न आयु के लिए क्रमिक रूप में समाज-सेवा और सामुदायिक-विकास में सहयोग प्राप्त करने के कार्यक्रम सभी स्तर पर अपनाये जाने चाहिए।

२ श्रम एव समाज-सेवा-कैम्प वर्ष भर चलाने चाहिए और इस उद्देश्य के लिए प्रत्येक जिले में एक विशेष सगठन का निर्माण करना चाहिए। ये कैम्प समाज-सेवा के आयोजन करके शालाओ को समाज-सेवा कार्यक्रम की सुविधाएँ

प्रदान करेंगे। इस प्रकार के कायक्रम आदर्श रूप में पाँच प्रतिशत जिलो में प्रारम्भ करने चाहिए और शनै शनै इनका विस्तार दूसरे जिलो तक करते जाना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा

१ शारीरिक शिक्षा का शारीरिक क्षमता बनाये रखने की दृष्टि से बडा महत्व है जिससे कि व्यक्ति की शारीरिक क्षमता निपुणता मानसिक स्वास्थ्य और अन्य चारित्रिक तथा मानसिक विकास को ठीक-ठीक दिशा मिल सके।

२ वतमान शारीरिक शिक्षा कायक्रम को बच्चे की वाढ और उन्नति के बुनियादी सिद्धान्तो को दृष्टिगत रखते हुए पुन जाँच करके उसे नया आकार देना चाहिए।

नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा

१ नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा के लिए शाला में प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रीति से सगठित प्रयत्न किया जाना चाहिए। विश्व के महान् धर्मों के नैतिक मूल्यो की सहायता से ऐसा शिक्षण दिया जा सकता है।

२ नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो के विकास के लिए शाला के कायक्रम में प्रति सप्ताह एक या दो कालाश शिक्षण हेतु रखने चाहिए। इस विषय का स्वरूप व्यापक होना चाहिए तथा शाला के पाठयक्रम अलग-अलग करके उससे उसका ठीक ताल-मेल बैठाना चाहिए।

सृजनात्मक क्रियाएँ

१ भारत सरकार को कला शिक्षण की वतमान स्थिति का सर्वे करने के लिए विशेषज्ञो की एक समिति बठानी चाहिए और उस जायजे के आधार पर उसके विस्तार एव व्यवस्थित विकास की सम्भावना पर विचार करना चाहिए।

२ स्थानीय लोगो की सहायता से देश के कोने-कोने में बालवाडी एव बालभवनो का निर्माण करना चाहिए।

३ सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए छात्रो को विभिन्न प्रकार की पाठयेतर सहगामी क्रियाओ का सगठन करना चाहिए।

बालक एव बालिकाओ के पाठ्यक्रम मे अन्तर

१ महिला-शिक्षण की राष्ट्रीय कौंसिल या हसा मेहता समिति ने जो सस्तुति की है उसे कोठारी-आयोग स्वीकार करता है। समिति के अनुसार लिंग के आधार पर पाठ्यक्रम में कोई भेद नही होना चाहिए।

२ गृह विज्ञान बालिकाओ के लिए अनिवाय विषय न होकर वैकल्पिक विषय होना चाहिए।

३ फाइन-आर्ट एव सगीत के शिक्षण की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए, और गणित तथा विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

नया पाठ्यक्रम और बुनियादी शिक्षा

१ बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त हैं—उत्पादक क्रियाएँ, पाठ्यक्रम का उत्पादन कार्य तथा वातावरण के साथ परस्पर सम्बन्ध एव स्थानीय समाज के साथ सम्पर्क। ये सिद्धान्त इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनसे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मार्ग निर्देशन लेना चाहिए और उसी के आधार पर शिक्षा की पद्धति गढी जानी चाहिए।

२ सार रूप में इस रिपोर्ट के सिद्धान्त इसी आधार पर रखे गये हैं।

३ अत शिक्षा के किसी एक भी स्तर पर बुनियादी शिक्षा का नाम देना आवश्यक नही है।

राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग की सस्तुति के अनुसार शिक्षा के किसी स्तर का नाम बुनियादी शिक्षा नहीं होना चाहिए क्योंकि उनकी दृष्टि से बुनियादी शिक्षा के मूल तत्त्व शिक्षा के प्रत्येक सोपान को अनुप्राणित और निर्देशित करेंगे। आयोग के विचार से बुनियादी शिक्षा के मुख्यत तीन मूल तत्त्व होते हैं, जिनका अनुमोदन आयोग के प्रतिवेदन मे सर्वत्र दृष्टिगत होता है। वे मूल तत्त्व आयोग ने निम्नलिखित बताये हैं —

(१) शिक्षा में उत्पादकता।

(२) उत्पादन के साथ शिक्षा का समन्वय (प्राकृतिक एव सामाजिक परिवेश) तथा

(३) शाला एव समाज का निकट सम्पर्क।

शिक्षा-आयोग द्वारा उपर्युक्त जिन मूल तत्त्वो की चर्चा की गयी है, वास्तव में बुनियादी शिक्षा की असफलता के मूल कारण वे ही हैं। इस पर भी शिक्षा-आयोग द्वारा उन्हें मूल्यवान तत्त्व मानना और 'बुनियादी शिक्षा' नाम की अस्वीकृति एक प्रकार की प्रवचना ही मानी जायगी। सत्य तो यह है कि न तो आयोग को बुनियादी शिक्षा मे ही विश्वास है और न आयोग द्वारा कल्पित समाज बुनियादी शिक्षा द्वारा कल्पित समाज के समरूप ही है। आयोग ने पाश्चात्य आदर्शों एव उसके रूप को भारतीय चौखटे में रखकर देखने का प्रयास किया है जो कि कदापि हितकर नही है। आयोग की सस्तुति का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग ने बुनियादी शिक्षा को न तो निकट से देखा है, न उस पर गहराई से विचार ही किया है न उसको जाँचा या परखा है, क्योंकि आयोग ने उपर्युक्त जिन तत्त्वो को बुनियादी शिक्षा

२ माध्यमिक स्तर

(१) निम्न माध्यमिक स्तर-कक्षा ८ से १० तक—

१ तीन भाषाएँ—अहिन्दी भाषी प्रदेशों में सामान्यत निम्नलिखित तीन भाषाएँ होनी चाहिए—

(१) मातृ भाषा अथवा प्रादेशिक भाषा।
(२) उच्च हिन्दी या निम्न स्तर की सामान्य हिन्दी, तथा
(३) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी।

हिन्दी भाषी क्षेत्र में सामान्यत निम्नांकित भाषाएँ होनी चाहिए—

(१) मातृ भाषा या प्रादेशिक भाषा।
(२) *अंग्रेजी या हिन्दी (यदि अंग्रेजी मातृ भाषा के रूप में ले ली गयी है)।*
(३) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

नोट—शास्त्रीय भाषा का अध्ययन भी वैकल्पिक आधार पर उपयुक्त भाषाओं के अतिरिक्त भी किया जा सकता है।

२ गणित।
३ विज्ञान।
४ इतिहास भूगोल तथा नागरिकशास्त्र।
५ कला।
६ कार्यानुभव तथा समाज-सेवा।
७ शारीरिक शिक्षा।
८ नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

(२) उच्च माध्यमिक स्तर, कक्षा ११ से १२ तक—

१ कोई दो भाषाएँ—जिनमें कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा, कोई आधुनिक विदेशी भाषा तथा कोई शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो।

२ *निम्नांकित में से कोई तीन विषयों का चयन करें—*

(१) एक अतिरिक्त भाषा।
(२) इतिहास।
(३) भूगोल।
(४) अर्थशास्त्र।
(५) तर्कशास्त्र।
(६) मनोविज्ञान।
(७) समाजशास्त्र।

भापा

भुवनेशचन्द्र गुप्त

आयोग ने त्रिभापा सूत्र में परिवर्तन करके नया सूत्र दिया है, जिससे प्रचलित त्रिभापा सूत्र की असफलताओ और कमियो से बचा जा सके और तीन भाषाओ के पढाने से राष्ट्र की एकता दृढ हो। आयोग द्वारा संस्तुत भाषा-नीति के अन्तर्गत छात्र तीन भाषाएँ पढ़ेंगे।

१. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा।

२ संघ की राजभाषा या सहयोगी भाषा (जब तक वह है)।

३. एक आधुनिक भारतीय भाषा या विदेशी भाषा, जो (१) या (२) के अन्तर्गत न ली गयी हो।

आयोग के इस सुझाव का एक परिणाम यह हुआ है कि अहिन्दी भाषी प्रदेशो में हिन्दी का अध्ययन नही रह गया है। इस संस्तुति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उस समय भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री चागला ने कहा—"जहाँ तक मैं समझता हूँ इस सुझाव के पीछे यह धारणा है कि हिन्दी का प्रसार छात्र को हिन्दी चुनने या न चुनने की स्वतंत्रता देने से होगा, उस पर हिन्दी लादने से नही। आयोग ने भी कहा है कि हिन्दी के स्वतंत्र अध्ययन का एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम बनाया जाय, पर अनिच्छुक लोगो पर हिन्दी की पढाई न लादी जाय।" (८.४३, पृ० १६३)

निम्न प्राथमिक स्तर पर (कक्षा १ से ४ तक) आयोग ने केवल मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा सिखाने का सुझाव दिया है। मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा का विकल्प छात्र की इच्छा पर होगा जो सर्वथा संगत और उचित प्रतीत होता है, क्योकि बालक की शिक्षा उसकी मातृभाषा से आरम्भ होनी चाहिए, जो कि उसकी अभिव्यक्ति का सहज साधन है। उच्च प्राथमिक स्तर पर *द्वितीय भाषा आरम्भ करने में कोई कठिनाई नही होनी चाहिए,* परन्तु यह द्वितीय भाषा कौनसी हो ? आयोग ने हिन्दी अथवा अंग्रेजी के बीच विकल्प रखा है और आयोग ने आशा की है कि 'हिन्दी क्षेत्र के प्राय सभी

बालक तथा अहिन्दी क्षेत्र के अधिकांश स्नातक द्वितीय भाषा के रूप में सम्भवतः अंग्रेजी सीखेंगे, परन्तु अहिन्दी क्षेत्र के अनेक स्नातक हिन्दी भी ले सकते हैं।" (८ ३६, पृ० १९३) इस उद्धरण से यह स्पष्ट ही है कि आयोग उच्च प्राथमिक स्तर पर अंग्रेजी प्रारम्भ करना चाहता है, हिन्दी तो केवल मन को समझाने के लिए रखी गयी है। एक सौ पचास वर्षों के अंग्रेजों के शासन और उसके प्रसार के अथक परिश्रम के बावजूद अंग्रेजी भारत के दो प्रतिशत लोगों तक भी नहीं पहुँच पायी है। ऐसी भाषा क्या भारत की पचास करोड़ जनता की सम्पर्क-भाषा बन सकती है ? बच्चों की इस आयु पर स्ट्रकचरल विधि से ही क्यों न हो, अंग्रेजी के नाम पर कुछ शब्द एवं वाक्य सिखा देने से क्या सम्पर्क-भाषा का काम चल सकेगा ? इस अवस्था पर अंग्रेजी को प्रारम्भ करने का अर्थ होगा कि न्यूनतम शिक्षा की आयु तक बच्चे को भारत की सम्पर्क-भाषा से वंचित रखना और उसे भारतीय जनमानस से अलग-अलग करके भारतीय संस्कृति से वंचित कर देना। यदि शिक्षाविदों और अंग्रेजी-प्रेमियों का यही रुख रहा तो भारत की कोई सम्पर्क भाषा विकसित ही न हो सकेगी और हमारी संततियाँ सदा-सर्वदा के लिए अंग्रेजी भाषाविदों से ज्ञान की याचना करती रहेंगी। शिक्षा-आयोग का विचार भी भारतवर्ष को 'ग्रहण करनेवाले सिरे पर' (रिसीविंग एण्ड आफ नालेज) सदा-सर्वदा के लिए रखने का नहीं है। फिर आयोग की यह सद्भावना कैसे पूरी होगी, इसकी ओर आयोग ने कोई संकेत नहीं दिया है। दूसरे, आयोग ने अपना उद्देश्य 'भारतीय एकीकरण' का रखा है, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या दस वर्ष की आयु से अंग्रेजी का अध्ययन उसका युक्तियुक्त समाधान है, और आज का भारतीय जनमानस क्या अंग्रेजी को राष्ट्रीय-एकीकरण का साधन मानने को तैयार है ? चाहे अतीत में अंग्रेजी कुछ बुद्धिजीवियों के एकीकरण का साधन ही क्यों न रही हो ? आज हमें स्वतंत्र प्रजातंत्र के सापेक्ष्य में इस प्रश्न का हल ढूँढ़ना होगा। अतीत में भी अंग्रेजी कुछ पढ़े लिखे लोगों की सम्पर्क-भाषा ही थी, परन्तु भारतीय विशाल समुदाय और कुछ पढ़े-लिखे लोगों के बीच इसने जो गहरी खाई खोद दी है, क्या वह आज भी भरी जा सकी है ? अतः उच्च प्राथमिक कक्षा के प्रथम वर्ष (पाँचवी कक्षा) में हिन्दी तथा अहिन्दी, दोनों ही क्षेत्रों में एक अन्य भारतीय भाषा प्रारम्भ करनी चाहिए न कि अंग्रेजी। अतः हिन्दी राज्यों में हिन्दी से परे कोई दूसरी भारतीय भाषा और अहिन्दी राज्यों में हिन्दी का अध्ययन अध्यापन कराया जाना चाहिए। अंग्रेजी को जितनी जल्दी सम्पर्क-भाषा के पद से हटाया जायगा, भारतीय संस्कृति की स्थापना की दृष्टि से उतना ही अच्छा होगा।

आयोग की संस्तुति है कि मातृभाषा क्षेत्रीय भाषा को विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की शिक्षा का माध्यम बनाना चाहिए। आयोग चाहता है कि

'विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग' यह लक्ष्य दस वर्षों में प्राप्त कर ले। (१-५१, पृ० १३) साथ ही क्षेत्रीय भाषाएँ प्रदेशो में प्रशासन का माध्यम बना दी जायें, ताकि प्रादेशिक भाषाओं के माध्यम से लोग उच्च अधिकारी बन सकें। अत विद्यालयो एव महाविद्यालयो में आधुनिक भारतीय भाषाओ को पढाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए और विश्वविद्यालया की उच्च कक्षाओ में एक साथ दो आधुनिक भारतीय भाषाएँ पढना सम्भव करना चाहिए। परन्तु यदि छात्र एक तीसरी अतिरिक्त भाषा भी पढना चाहे तो वह वैकल्पिक रूप से लेकर उसका अध्ययन कर सकता है। (१-५४, पृ० १४) आयोग ने अखिल भारतीय शिक्षा-सस्थानो एव विश्वविद्यालयो में अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम बनाये रखने पर जोर दिया है। उसकी सस्तुति है कि सर्वोत्तम कोटि के स्नातकोत्तर अध्ययन और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शोध-कार्य के लिए छ महा-विद्यालय खोले जायें, जिनमें अंग्रेजी भाषा ही शिक्षा का माध्यम हो। इन विश्वविद्यालयो में अध्यापन-कार्य करने के लिए समस्त देश से अध्यापको का चयन किया जाय और उनमे अखिल भारतीय स्तर से चयन करके छात्रो को प्रवेश दिया जाय। इन विश्वविद्यालयो को वर्तमान विश्वविद्यालयो मे से ही चुन लिया जाय। इन अखिल भारतीय सस्थाओ में अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहे, इसके स्थान पर हिन्दी को लाने के लिए कालान्तर में विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा स्तर नीचे न गिरने पाये, जिससे कि छात्र उन्हे अंग्रेजी या हिन्दी के स्थान पर अध्ययन करें। आयोग ने यद्यपि संस्कृत भाषा के अध्ययन के महत्व को स्वीकार किया है, किन्तु उसने सस्कृत के नये विश्वविद्यालयों के खोलने के विचार को स्वीकार नही किया है। एक प्रकार से आयोग ने सस्कृत की अवहेलना की है। जिस व्यक्ति को भी तथ्यो का ज्ञान है, वह इस बात को अस्वीकार नही कर सकता कि भारतीय सस्कृति में सस्कृत ने महान् योग दिया है। भारतीय जीवन का कोई भी अग ऐसा नही है, जिस पर सस्कृत का गहरा प्रभाव न पडा हो। भारत का अधिकाश प्राचीन साहित्य, सस्कृत में ही सुरक्षित है। आयोग ने इन महत्वपूर्ण बातो पर ध्यान नही दिया है।

आयोग की सस्तुति के अनुसार "अंग्रेजी इस देश की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तकालयी भाषा, (ऐसी भाषा जिसके माध्यम से विश्व का बढता हुआ ज्ञान प्राप्त किया जा सके) रहेगी और इस हैसियत से उच्च शिक्षा में इसकी आवश्यकता पड़ेगी। अत इस भाषा का दृढ आधार शालाओ में ही रखा जाय और अंग्रेजी कक्षा ५ से ही पढायी जाय।" आयोग कक्षा तीन से अंग्रेजी पढाने के पक्ष में नही हैं। (८-४६, पृ० १६७)

"आयोग की भाषा-सम्बन्धी नीति के कार्यान्वित होने पर आयोग शिक्षा

में जो क्रान्ति लाने का लक्ष्य लेकर चला था, वह प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि व्यवहार में आयोग की भाषा-नीति 'प्रादेशिक भाषा-नीति' की ही विरोधी बन जायगी, क्योंकि छात्रों का झुकाव अधिकतर अंग्रेजी की ओर ही होगा, जो कि भारतीय भाषाओं के विकास में सदा बाधक रहेगी। इस संस्तुति के बड़े दूरगामी परिणाम होंगे, जो कि समाजवादी राष्ट्र की दृष्टि से कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। इसके परिणामस्वरूप समस्त राष्ट्र में शिक्षा की दो धाराएँ एक साथ बहेंगी—एक सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य धारा, जिसमें प्रादेशिक भाषाएँ ही शिक्षा का माध्यम होंगी और दूसरी उच्च शिक्षा की विशिष्ट धारा, जिसमें अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम होगी। इन विशिष्ट विश्वविद्यालयों में आयोग की संस्तुति के अनुसार अध्ययन एवं अध्यापन का माध्यम अंग्रेजी ही रहेगा। क्योंकि यदि किसी छात्र की आकांक्षा और प्रतिभा शोध करने की है तो उसे अपनी मातृभाषा से अधिक अंग्रेजी पर ध्यान देना होगा और मातृभाषा को छोड़ना या गौण स्थान देना होगा, तभी वह विशिष्ट विश्वविद्यालयों का स्नातक हो सकेगा। इसका परिणाम यह होगा कि मातृभाषा की शिक्षा के साथ सदा-सर्वदा के लिए हीनत्व की भावना जुड़ जायगी। अतः अंग्रेजी का पठन-पाठन विद्यालय स्तर से ही अबाध गति से निरन्तर चलता रहेगा। सम्भवतः यही कारण है कि आयोग ने कक्षा ५ से या उच्च प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेजी पढ़ने का सुझाव रखा है।''

(वंशीधर श्रीवास्तव, 'नयी तालीम')

अतः अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने की संस्तुति करके आयोग अपने मूल लक्ष्य से भटक गया है, जो कि उसकी समस्त हलचलों के मूल में रहा है अर्थात् शिक्षा को भारतीय जन-जीवन से सम्बन्धित करना। यह कार्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही हो सकेगा, किसी विदेशी भाषा के माध्यम से नहीं। जिन्हें यह बात समझ में नहीं आती और जो इसमें साम्प्रदायिकता की गन्ध देखते हैं वे राष्ट्र के अमंगल एवं स्वार्थ की भाषा बोलते हैं। अतः इस विश्वविद्यालय की बात संस्तुत करके आयोग ने भारतीय भाषाओं के विकास की राह में बहुत बड़ा अवरोध उत्पन्न कर दिया है। ''स्पष्ट और अस्पष्ट, दोनों ही ढंगों की वकालत की है उससे लगता है, उसका एक प्रमुख ध्येय ही यह था। राजभाषा हिन्दी की पूरी तरह अवहेलना ही आयोग ने नहीं की, अपितु भारतीय भाषाओं के साहित्य के लिए रोमन लिपि का सुझाव ही कमीशन की उक्त मनोवृत्ति का सूचक है। भारत के सभी राज्यों के मुख्यमंत्री कई वर्ष पूर्व एक मत से देवनागरी लिपि को सामान्य लिपि स्वीकार कर चुके हैं, पर आयोग की दृष्टि में राष्ट्रीय निर्णयों का भी कोई महत्व नहीं रहा।'' (प्रकाशवीर शास्त्री, 'नवभारत टाइम्स')

आयोग का संशोधित फार्मूला पूर्ण रूप से राष्ट्र एवं संविधान के विरुद्ध है। इसके अन्तर्गत हिन्दी और अंग्रेजी को वैकल्पिक रखा है, जिसका अभिप्राय यह होगा कि छात्रों के लिए हिन्दी का पढ़ना आवश्यक नहीं होगा, जब कि वैधानिक रूप से हिन्दी राष्ट्रभाषा है। अतः आयोग द्वारा प्रस्तावित फार्मूला पूर्ण रूप से राष्ट्र एवं संविधान के विरुद्ध है। ठीक बात तो यह होती कि त्रिभाषा सूत्र के स्थान पर आयोग द्विभाषा सूत्र प्रस्तावित करता—हिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी और आधुनिक भारतीय भाषा, और अहिन्दी क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा और हिन्दी।

अन्य विषयों का अध्ययन

१. विज्ञान एवं गणित—आयोग ने विज्ञान-शिक्षण को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया है और उसे विद्यालय पाठ्यक्रम का एक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण अंग मानकर बच्चों के लिए अनिवार्य विषयों की श्रेणी में रख दिया है। इस उद्देश्य की सफलता के हेतु आयोग ने प्राथमिक स्तर पर बच्चों को रोमन लिपि सिखाने का सुझाव दिया है, ताकि वे अन्तर्राष्ट्रीय संकेतों को समझ सकें।

आयोग ने विज्ञान-शिक्षण का प्रारम्भ निम्न प्राथमिक स्तर से आरम्भ करने का सुझाव दिया है। आयोग के अनुसार इस स्तर पर विज्ञान-शिक्षण का उद्देश्य भौतिक एवं जैविक वातावरण के मूल तथ्य, घटनाओं तथा प्रक्रियाओं का बोध कराना है। निम्न प्राथमिक स्तर की पहली एवं दूसरी कक्षाओं में विज्ञान-शिक्षण बालक के भौतिक तथा सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित होगा तथा तीसरी-चौथी कक्षाओं में विज्ञान के मूल तत्त्व तथा तथ्य सिखाये जायँगे।

उच्च प्राथमिक स्तर पर विज्ञान-शिक्षण का आग्रह वातावरण से अलग हटाकर ज्ञान-प्राप्ति तथा तार्किक ढंग से विचार करने की दक्षता प्राप्त करना होना चाहिए। आयोग ने 'सामान्य-विज्ञान' को अनावश्यक बताते हुए सुझाव दिया है कि सामान्य-विज्ञान की अपेक्षा इस स्तर पर विज्ञान-शिक्षण भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र तथा ज्योतिर्विज्ञान के रूप में होना चाहिए। कक्षाओं की दृष्टि से आयोग ने विषयों का वर्गीकरण निम्नांकित रूप में किया है :—

कक्षा ५—भौतिकशास्त्र, भूगर्भशास्त्र और जीव-विज्ञान।

कक्षा ६—भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र तथा जीव-विज्ञान।

कक्षा ७—भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव-विज्ञान तथा ज्योतिर्विज्ञान।

आयोग का सुझाव है कि निम्न माध्यमिक स्तर पर भौतिकशास्त्र, रसायन-शास्त्र, जीव-विज्ञान तथा भूमि से सम्बन्धित विज्ञानों को पढ़ाया जाना चाहिए। निम्न माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को मानसिक अनुशासन के रूप में विकसित किया जाना चाहिए तथा प्रतिभावान छात्रों के लिए एडवान्स कोर्स की व्यवस्था

करनी चाहिए। विज्ञान की शिक्षा कृषि तथा टेक्नालोजी को जोडनेवाली होनी चाहिए।

उच्च माध्यमिक स्तर पर आयोग ने विज्ञान की अनिवार्यता सभी बच्चो के लिए नही मानी है, अपितु इस स्तर पर छात्रो के लिए विविध विषयो की व्यवस्था रहेगी। छात्रो को भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, भूगर्भशास्त्र, जीव-विज्ञान एव वनस्पति शास्त्र में से किन्ही तीन विषयो का चयन करना पडेगा।

गणित का आधुनिक शिक्षा में जो महत्वपूर्ण स्थान है, आयोग ने उसे स्वीकार किया है और उसे शिक्षा-क्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया है, क्योकि यह विषय भौतिक विज्ञान एव जैविक विज्ञान दोनो विषयो के विकास में महत्वपूर्ण योग देता है। इसी कारण प्राथमिक स्तर पर गणित के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव है कि अकगणित एव बीजगणित, दोनो को पृथक्-पृथक् रखना उचित नही है, अपितु इन दोनो को स्वीकृत करके समन्वित रूप से पढाने की आवश्यकता है, जिससे गणित के उन सिद्धान्तों एव नियमो पर बल दिया जाय जिनसे तर्कयुक्त चिन्तन का विकास किया जा सके। आयोग के अनुसार निम्न तथा उच्च माध्यमिक स्तरो पर गणित के पाठ्यक्रम को आधुनिकतम बनाया जाना चाहिए।

आयोग के उपर्युक्त सुझावो का चिन्तन करने के पश्चात ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग रूसी शिक्षाक्रम से अभिभूत है और सामान्य विज्ञान पढाने के स्थान पर इतने शीघ्र मूल विज्ञानो को प्रारम्भ करने का सुझाव दे बैठा है। आयोग विज्ञान से भी इतना अभिभूत प्रतीत होता है कि उसे 'साधन' न मानकर 'साध्य' मान बैठा है। आयोग यह मानता है कि सभी छात्रो में विज्ञान-अध्ययन करने की क्षमता और रूझान है। यदि यह सत्य भी हो तो इसे विज्ञान को अनिवार्य बनाने का एक परिणाम यह होगा कि भारत में कला तथा ज्ञान के अन्य क्षेत्रो की उपेक्षा की जायगी। फिर भी यह सही है कि आज के युग में विज्ञान का कुछ ज्ञान सबको होना चाहिए, परन्तु उसके लिए 'सामान्य विज्ञान' ही अधिक उपयोगी होगा।

सामाजिक अध्ययन

आयोग ने प्राथमिक तथा निम्न माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विषयो के शिक्षण में समन्वय पर जोर दिया है। सामाजिक अध्ययन की विषय-सामग्री में राष्ट्रीय एकता एव मानव एकता के विचारों पर भार देने की संस्तुति आयोग ने की है। इसके लिए सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में उन महापुरुषो को स्थान दिया जाना चाहिए, जिन्होंने मानव-जाति को शान्ति एव समृद्धि के मार्ग पर अग्रसर किया है। आयोग की संस्तुति के अनुसार माध्यमिक स्तर पर

भारतीय इतिहास का अध्ययन विश्व इतिहास के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान का अध्यापन विशेष विषयों के रूप में कराने की भी सस्तुति आयोग ने की है। इस प्रकार सामाजिक अध्ययन का जो रूप राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग ने सुझाया है, वह बुनियादी शिक्षा की भावना के अनुरूप ही है।

शारीरिक शिक्षा

आयोग ने शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम के निर्माण हेतु निम्नांकित सिद्धान्तों को आधार मानने का सुझाव दिया है—

१. शारीरिक शिक्षा बच्चों की रुचि तथा क्षमता को ध्यान में रखकर बनाना चाहिए।
२ परम्परागत खेलों एव शारीरिक क्रिया-कलापों को भी उचित स्थान मिलना चाहिए।
३ शारीरिक क्रिया-कलापों के प्रति गर्व की भावना का विकास होना चाहिए।
४ शारीरिक शिक्षा में सहयोग एव उत्तरदायित्व वहन करने की भावना का विकास करनेवाले शारीरिक क्रियाकलापों को स्थान मिलना चाहिए।
५. शारीरिक शिक्षा में विशेष रुचि रखनेवाले, योग्य एव प्रतिभाशाली छात्रों को विशेष निर्देश देने की व्यवस्था पाठ्यक्रम में होनी चाहिए।
६ कार्यक्रम स्थानीय परिस्थिति एव आर्थिक साधनों के अनुकूल बनाये जाने चाहिए।

कला एवं पाठ्येतर सहगामी क्रियाएँ

आज के इस वैज्ञानिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान की शिक्षा पर इतना अधिक ध्यान दिया जाने लगा है कि ललित कलाओं को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा है। शिक्षा-क्षेत्र में कलाओं की शिक्षा का अभाव सौन्दर्यात्मक मूल्यों के ह्रास का कारण है, अत आयोग ने भारत सरकार से अनुरोध किया है कि वह एक विशेष कमेटी नियुक्त करे और इसके विकास को सभी सम्भावनाओं एव साधनों का उपयोग करे। इस कार्य के लिए स्थानीय सहायता से 'बालभवन' खोलने का सुझाव देकर शाला और समाज दोनों को सक्रिय सहयोग के लिए आमन्त्रित किया है। साथ ही विश्वविद्यालय में कला की स्थापना करके शोध एव अनुसंधान को विशेष महत्व देने की सस्तुति की है। इसी प्रकार छात्रों की रुचि एव क्षमता का ध्यान रखकर सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए पाठ्येतर सहगामी क्रियाओं के अन्तर्गत प्रिय कार्यों, वादविवाद प्रतियोगिता, नाटक आदि का आयोजन अवश्य किया जाना चाहिए।

कार्यानुभव

आयोग की सस्तुति के अनुसार समग्र शिक्षाक्रम को 'उत्पादन' अथवा 'कार्यानुभव' से जोड देना है। कक्षाओ म कार्यानुभव का उद्देश्य बालको को अपने हाथो का स्वय उपयोग करने की शिक्षा देना है, जिससे उनका बौद्धिक एव भावनात्मक विकास हो सके। आयोग ने कार्यानुभवो को अन्य शैक्षिक अनुभवो के समान ही उपयोगी माना है, परतु उसने इस बात पर विशेष बल दिया है कि 'कार्यानुभव' वैज्ञानिक एव तकनीकी ज्ञान से सयुक्त हो। परन्तु विद्यालयो में कार्यानुभव' केवल शारीरिक श्रम ही रह जायगा, क्योकि वहाँ समवाय की कोई चर्चा या उल्लेख नही है। दूसरे आयोग का कार्यानुभव का सुझाव विद्यालय म वर्कशाप, खेत या उद्योग के अभाव में बुनियादी शिक्षा के समान असफल होगा। देश ने विज्ञान और तकनीक का मार्ग चुना है। इसलिए आयोग ने प्रारभ से ही कार्यानुभव के साथ विज्ञान एव तकनीकी ज्ञान को सयुक्त करने की सलाह दी है। कार्यानुभव को वास्तविकता प्रदान करने के लिए उसे स्थानीय प्रचलित उद्योग धधो, वर्कशाप, फैक्टरी आदि के साथ ताल-मेल बैठाना आवश्यक है। परन्तु देश की वर्तमान परिस्थिति में क्या यह सम्भव है ?

नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा

आयोग ने नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो की शिक्षा के रूप में एक नया विषय पाठयक्रम में रखा है। उसके अनुसार शिक्षा के दो तरीके है—(१) परोक्ष रूप से और (२) प्रत्यक्ष रूप से। आयोग ने कहानियो के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्रदान करने का सुझाव दिया है।

स्त्री शिक्षा

आयोग ने स्त्री शिक्षा पर हसा कमेटी की सस्तुतिया को स्वीकार कर लेने का सुझाव दिया है। इसके परिणामस्वरूप स्त्री और पुरुषो के पाठ्यक्रम में लिंग के आधार पर कोई भेद नही रहेगा। गृह विज्ञान वैकल्पिक विषय बन जायगा। सगीत तथा ललित-कलाओ की सुविधाएँ बढाते हुए भी छात्राओ को गणित एव विज्ञान विषय लेने के लिए प्रोत्साहन अवश्य देना चाहिए। परन्तु इन विषयो के अध्यापन के लिए अधिक अध्यापिकाओं की आवश्यकता होगी। अत उन्हें गणित तथा विज्ञान के शिक्षण के लिए तैयार करने हेतु विशेष प्रयास करने चाहिए। इस प्रकार आयोग की सस्तुति के अनुसार स्त्रियो को भी पुरुषो के समकक्ष लाने का प्रयास किया गया है। यही कारण है कि आयोग ने बालक-बालिकाओ के लिए समान पाठ्यक्रम का सुझाव दिया। ●

शैक्षिक प्रशासन

लक्ष्मेन्द्र कुमार शर्मा

शिक्षा का गिरता स्तर इस बात की ओर संकेत करता है कि शिक्षा के प्रशासन में कहीं पर दोष है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति बहुत अंश तक शिक्षा के प्रशासनिक तंत्र पर निर्भर करती है। यदि प्रशासनिक तंत्र कुशल है तो शिक्षा का स्तर ऊँचा होगा और प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा।

यद्यपि शिक्षा संविधान में राज्य की अनुवर्ती सूची में है, फिर भी राज्य तथा केन्द्र दोनों ही शिक्षा के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। आयोग ने यह *अनुभव किया है कि शिक्षा का प्रशासन ऐसा हो, जिससे समुदाय तथा शिक्षा में* सम्बन्ध बना रह सके। यह तभी सम्भव होगा, जब शैक्षिक प्रशासन का आधार विकेन्द्रीकरण हो। (पृष्ठ ४४४)

शैक्षिक प्रशासन के तीन प्रमुख स्तर हैं —(१) केन्द्र, (२) राज्य, (३) स्थानीय निकाय। राज्य सरकार स्थानीय निकायों में शैक्षिक प्रशासन के लक्ष्य का निर्माण कर सकती है। शिक्षा के नियोजन में राज्य सरकार की प्रमुख भूमिका रहती है। आयोग के अनुसार विद्यालयी शिक्षा का सम्पूर्ण दायित्व राज्य पर है और स्थानीय समुदाय की सहायता से शिक्षा के कर्तव्य का निर्वाह करना है। विद्यालयी शिक्षा स्थानीय तथा राज्य की साझेदारी है और उच्च शिक्षा का दायित्व केन्द्र तथा राज्य का है। (पृष्ठ ४४७, पैरा १८)

स्थानीय प्रशासन

आयोग ने स्थानीय प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिफारिशें की हैं —

हमारा तात्कालिक उद्देश्य यह होना चाहिए कि ग्राम-क्षेत्रों में ग्राम-पंचायतें तथा नगर-क्षेत्रों में नगरपालिकाएँ स्थानीय विद्यालयों को अनुदान प्रणाली के माध्यम से चलायें। यह उद्देश्य राष्ट्रीय नीति के रूप में अपनाया जाय।

जिला-स्तर पर कुशल स्थानीय शिक्षा निकाय (लोकल एजुकेशन अथारिटी) की स्थापना की जाय। यह जिला शिक्षा परिषद् (डिस्ट्रिक्ट एजुकेशन बोर्ड) के नाम से अभिहित किया जाय। इसको विश्व विद्यालय स्तर से नीचे की समस्त शिक्षा के विकास एवं संचालन का अधिकार दिया जाय।

• जिला विद्यालय परिषद के क्षेत्र में बड़ी नगरपालिकाओं को छोड़कर जिले का सम्पूर्ण क्षेत्र होना चाहिए। महानगरपालिकाओं में भी इस प्रकार की परिषदें होनी चाहिए। इस परिषद का कार्य जिले में शिक्षा विकास के लिए योजनाएँ बनाना भी है। इस परिषद का कार्य एवं शिक्षा-सचिव करे, जो भारतीय शिक्षा-सेवा का व्यक्ति (आई ई एस) हो।

राज्य स्तर पर शिक्षा प्रशासन

यद्यपि शिक्षा के अनेक विषया, यथा केन्द्रीय विश्व विद्यालयों, व्यावसायिक प्रशिक्षण, चिकित्सा अनुसन्धान आदि की व्यवस्था केन्द्र सरकार करती है तो भी माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा का दायित्व राज्य सरकारों पर है। राज्य सरकारो के सम्बन्ध म प्रशासन सम्बन्धी सुझाव इस प्रकार है —

• राज्य स्तर पर एक वैधिक परिषद का निर्माण किया जाय। इसका अध्यक्ष राज्य-मंत्री हो। इसमें राज्य के विश्वविद्यालयो, शिक्षा के विभिन्न अंगो के निर्देशको तथा कुछ शिक्षा शास्त्रियो का प्रतिनिधित्व हो। इस परिषद का काय राज्य का शिक्षा सम्बन्धी परामर्श देना हो। इस परिषद का प्रतिवेदन विधान सभा मे प्रस्तुत किया जाय।

• शिक्षा सचिव भारत सरकार के परामर्शदाता की भाँति राज्य का प्रख्यात शिक्षाशास्त्री हो। शिक्षा सचिव की नियुक्ति प्रशासकीय अधिकारियो में से न हो।

• उच्च स्तर पर अधिकारी थोड़े नियुक्त किये जायें, जिससे व्यय मे कमी की जा सके। ये अधिकारी योग्य एव कुशल व्यक्ति होने चाहिए।

• राज्य म राज्य शिक्षा-सेवा (स्टेट एजुकेशनल सर्विस) आरम्भ की जाय। इसमें प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियाँ हों। जिला विद्यालय परिषदो के सचिव प्रथम श्रेणी के हो। इस सेवा में ७५% नवीन भर्ती तथा २५% को विभागीय उन्नति दी जाय। द्वितीय श्रेणी में निरीक्षक एव अध्यापक हो। इसमें ०% पदो पर नयी भर्ती हो।

• राज्य में शिक्षा प्रशासको के प्रशिक्षण के लिए सभी अराज-पत्रित के लिए राज्य-शिक्षा संस्थानो में सेवा-कालीन कार्यक्रम आयोजित किये । सम्मेलन, सेमीनार तथा विचार-गोष्ठियाँ हो।

राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा प्रशासन

कोठारी-आयोग के अनुसार शिक्षा की इमारत की तीन मंजिलें हैं। उच्च शिक्षा तीसरी मंजिल है। तीनो मंजिलों में आपस में सम्बन्ध होना ही चाहिए। अतः आयोग के सुझाव इस प्रकार हैं।

• राष्ट्रीय शिक्षा का नियोजन करना।

- शैक्षिक तथा सास्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करना।
- सघ क्षेत्रों में वित्त, सचालन तथा व्यवस्था करना।
- हिन्दी-प्रचार विकास तथा समृद्धि।
- राष्ट्रीय सस्कृति का सरक्षण एव विकास।
- यूनेस्को के साथ कार्य करना।
- छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करना।

आयोग ने उपर्युक्त कार्यों को कुशलतापूर्वक करने के लिए ये सुझाव दिये है :—

- शिक्षकों की स्थिति तथा अध्यापकों की शिक्षा में सुधार।
- शिक्षा में सभी क्षेत्रों मे मानव-शक्ति का नियोजन।
- शैक्षिक अवसरो की समानता।
- अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था।
- माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायिक रूप का विकास।
- वैज्ञानिक तथा शैक्षिक अनुसधान पर बल देना।

केन्द्र इन सभी कार्यों को शिक्षा-मत्रालय के अन्तर्गत करता है। अत शिक्षा-मत्रालय को प्रशासन-सम्बन्धी सुझाव इस प्रकार दिये गये हैं —

- प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री को शिक्षा सचिव एव परामर्शदाता नियुक्त करना। इसका कार्यकाल ६ वर्ष हो।
- सयुक्त सचिवो के पदों पर राज्य के शिक्षा विभागों से व्यक्तियो को नियुक्त करना।
- शिक्षा-मत्रालय में सांख्यिकी विभाग की स्थापना करना।
- शिक्षा-परामर्शदाता-परिषद् को गत्यात्मक बनाना।
- विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग एवं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एव प्रशिक्षण-परिषद् को प्रभावशाली बनाना।

शिक्षा-आयोग ने स्थानीय, राज्य तथा राष्ट्र, तीनों स्तरों पर प्रशासन को सुदृढ करने के महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इन सुझावों की एक ही ध्वनि है—शिक्षा को स्थानीय आवश्यकता तथा परिस्थितियो के अनुसार विकेन्द्रित किया जाय।

विकेन्द्रीकरण सहज ही नही हो जायगा। इसके लिए राज्य, राष्ट्र तथा स्थानीय निकायों को एक-दूसरे से सन्नद्ध होकर कार्य करना पडेगा तभी विविधता में एकता के दर्शन होंगे, अर्थात् शिक्षा के इस स्वरूप के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण के चरम लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे। ●

हिन्दी समिति के कुछ प्रकाशन

१ हलायुध कोश

हलायुध भट्ट

यह ग्रन्थ संस्कृत के प्राचीन कोशकार श्री हलायुध भट्ट के अभिधान रत्न माला नामक ग्रन्थ का सटीक अभिनव संस्करण है। इसे श्री जटाशंकर जोशी द्वारा सम्पादित कराकर 'हलायुध कोश' के नाम से प्रकाशित किया गया है। इधर कुछ दिनों से यह अप्राप्य था। परन्तु अब संशोधित संस्करण प्राप्त है।

मूल्य २५ रुपया

२ उर्दू-हिन्दी शब्दकोश

स्व० श्री मुहम्मद मुस्तफा खाँ "मद्दाह"

हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला बृहत् कोश है। इसमें हजारों अरबी फारसी तुर्की और उर्दू शब्दों की प्रामाणिक व्याख्या की गयी है। मूल शब्दों को नागरी लिपि में भी दिया गया है।

मूल्य १६ रुपया

३ भाषा (जो वान्द्रियाज)

अनु० श्री जगवंशकिशोर बलवीर

मानव समाज के लिए भाषा की समस्या स्वयं सिद्ध है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक ने भाषा के प्रमुख तत्त्वों उपकरणों, व्याकरण और शब्दकोश का विस्तृत विवेचन किया है। हिन्दी पाठकों और भाषा शास्त्र के अध्ययन करनेवाले छात्रों का वांछित लाभ होगा।

मूल्य ७.५०

४ भाषा विज्ञान पर भाषण

भाग १ व २ एफ० मैक्समूलर के० एम०

अनु० डा० हेमचन्द्र जोशी

इस पुस्तक को दो भागों में प्रकाशित किया गया है। इसमें मैक्समूलर के रायल इन्स्टीटयूट में दिये गये भाषणों का अनुवाद है। हिन्दी के छात्रों एवं पाठकों के लिए इसका अनुवाद प्रसिद्ध भाषाविद् डा० हेमचन्द्र जोशी से कराया गया है।

मूल्य ८ रुपया

कृपया व्यापारिक सुविधाओं के लिए लिखें :

सचिव
हिन्दी समिति, सूचना विभाग
उत्तरप्रदेश शासन
लखनऊ

कार्यानुभव

प्रताप सिंह

कुछ वर्षों पूर्व विद्यार्थी को दस्तकारी या उद्योग द्वारा शिक्षा देने की बुनियादी शिक्षा-प्रणाली चली। उसके पश्चात् बहूद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में उद्योग को स्थान देने का दौर चला। अब शिक्षा में कार्यानुभव की चर्चा है। नये-नये आयोग और नये-नये प्रतिवेदन हमारे देश का ढर्रा-सा बन गया है।

इन सबके पीछे एक बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वह यह कि वर्तमान शिक्षा से हम असन्तुष्ट हैं। यह निकम्मी और बेकारी बढ़ानेवाली साबित हुई है। अतः इसमें परिवर्तन लाने का प्रयत्न होना ही चाहिए। कभी परिवर्तन वांछनीय और उपयोगी होता है, कभी निरर्थक और पैसा, समय तथा शक्ति खपानेवाला।

हमारा दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि हमारे शिक्षा विषयक परिवर्तन कुछ ऐसे ही रहे हैं। शिक्षा में उद्योग के नाम पर बहुत छीछालेदर हुई है और हो रही है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि कुछ विचारकों के मतानुसार तथा कुछ देशों की देखादेखी हम शिक्षा में उद्योग लाना तो चाहते हैं, पर हमारे स्वयं के दिलों में उसका कोई स्थान नहीं है। श्रम को हीन समझने की मनोवृत्ति हमारे मन में ऐसी जमकर बैठी है कि कोई भी श्रमसाध्य कार्य प्रारम्भ होते ही समाप्ति की ओर बढ़ने लगता है। बुनियादी शिक्षा में और बहूद्देशीय माध्यमिक शिक्षा में उद्योग के नाम पर जो कुछ किया गया और आज भी किया जा रहा है, वह इसका प्रमाण है।

बुनियादी विद्यालयों में पढ़े लिखे और सम्भ्रान्त लोगों के बच्चे नहीं पढ़ते। बुनियादी और गैर-बुनियादी, दो प्रकार के विद्यालय चले और चल रहे हैं। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में एक वर्ष का समय इसलिए बढ़ाया गया था कि

वहाँ से विद्यार्थी कोई उद्योग सीखकर स्वावलम्बी बनकर निकलें। लगभग सत्तर प्रतिशत विद्यार्थी विभिन्न कारणो से उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने में असमर्थ रहते है। अत उददेश्य यह था कि जिनकी शिक्षा इसी स्तर पर समाप्त हो रही है वे केवल नौकरो के लिए दफ्तरो के दरवाजे खटखटानेवाले बलक ही न बनें पर कुछ हुनर सीखकर निकलें, जिससे जीविकोपार्जन संभव हो। पर क्योंकि उद्योग के प्रति हीन मनोवृत्ति के लोगो के बच्चे भी इन माध्यमिक विद्यालयो में पढते थे उन्होंने धीरे धीरे यहा से उद्योग को तराशना शुरू कर दिया जिससे आज वह एक दिखावे की चीज बनकर रह गया है। उच्च माध्यमिक शिक्षा की अन्तिम कक्षा ग्यारहवी से उद्योग को निकाल दिया गया है। दसवी कक्षा की परीक्षा के साथ उद्योग की अन्तिम परीक्षा समाप्त हो जाती है। नाम के लिए परीक्षा तो रखी गयी है पर इसमें उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं समझा गया। अन्य विषयो की तुलना में उद्योग को बहुत कम समय दिया जाता है। फिर भला विद्यार्थी इस विषय पर क्यो ध्यान देने लगे। आज की शिक्षा परीक्षा का लक्ष्य लेकर ही चलती है। जिस विषय का परीक्षा की दृष्टि से कोई महत्व नहीं वह उपेक्षणीय बन गया है। अब केवल कहने को शिक्षा में उद्योग रह गया है। जिस उददेश्य से चलाया गया था वह तो समाप्त हो गया।

शिक्षा-आयोग की कल्पना

अब आया है शिक्षा में कार्यानुभव। शिक्षा-आयोग ने अपने प्रतिवेदन में ही इसको इस तरह प्रस्तुत किया है कि शिक्षा में उद्योग द्वारा जो उपलब्ध किया जा सकता है वह स्पष्ट नहीं है। इतना ही स्पष्ट है कि विद्यार्थी को ज्ञानात्मक विषयो के अध्ययन के साथ साथ अपने हाथो से भी कुछ कार्यों का अनुभव करना चाहिए। आयोग के विचार में वतमान शिक्षा अत्यधिक किताबी है। उत्पादक कार्यानुभव से उसमें सुधार लाया जा सकेगा। इससे होनेवाले शैक्षणिक, सामाजिक और व्यावहारिक कुछ लाभो की आशा भी आयोग ने व्यक्त की है पर वह बहुत स्पष्ट नहीं है। आयोग ने कार्यानुभव को आगे की प्राविधिक-शिक्षा की तैयारी भी माना है।

आयोग के अनुसार प्राथमिक स्तर पर हाथ का काम बच्चों के बौद्धिक तथा भावात्मक विकास में सहायक होता है। माध्यमिक स्तर पर कोई दस्तकारी विशेष सिखायी जा सकती है जिससे प्राविधिक विचार धारा और सृजनात्मक योग्यता पनप सके। दस्तकारी के साथ-साथ खेतो, कारखानो या जीवनोपयोगी अन्य कार्यों में भी विद्यार्थियो का हाथ बँटाना आवश्यक समझा गया है। प्रत्येक

विद्यालयों में या कुछ विद्यालयों में सम्मिलित रूप से एक कारखाना होना चाहिए। विद्यार्थियों को खेत तथा अन्य व्यावसायिक या प्रौद्योगिक प्रतिष्ठानों में भी काम करना चाहिए। इस प्रकार कार्यानुभव-क्षेत्र की व्याख्या की गयी है और उपलब्ध साधन-सामग्री तथा प्रनिश्चित मार्गदर्शकों के अनुसार प्रत्येक विद्यालय को कार्यानुभव का कार्यक्रम बनाने की छूट भी दी गयी है।

आयोग बुनियादी शिक्षा को भी भुला नहीं सका। अतः उसका नाम लेकर इतना तो कहना ही पड़ा कि कार्यानुभव-दर्शन या बुनियादी शिक्षा-दर्शन में निकट का सम्बन्ध है। साथ-साथ यह भी स्वीकार करना पड़ा कि बुनियादी शिक्षा में कार्यानुभव होता है। बुनियादी शिक्षा का एक जीवन्त सिद्धान्त शिक्षा को उत्पादन-कार्य के साथ समन्वित करना है परन्तु उसमें दस्तकारी या उद्योग का दायरा बड़ा सीमित रहा है। अतः आयोग का सुझाव है कि बुनियादी शिक्षा में भी नये समाज की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना चाहिए।

आयोग को भारत के अस्सी प्रतिशत गाँवों का भी ध्यान आया और उसने विचार व्यक्त किया है कि गाँवों में कार्यानुभव कृषि और साधारण प्राविधिक प्रक्रियाओं के सहारे ही अधिक सम्भव है। गाँवों में जहाँ कारखाने खोलना सम्भव नहीं है वहाँ विद्यार्थियों के उपयोग के लिए सस्ते औजारों की पेटियाँ बनाकर भेजी जायँ। दूसरी तरफ शहरों के विद्यार्थियों को कृषि का अनुभव कराने के लिए शहरी विद्यालयों में बगीचे लगाये जायँ।

क्योंकि सभी विद्यालयों में तत्काल ऐसा करना सम्भव नहीं होगा, अतः आयोग का सुझाव है कि कुछ विद्यालयों से प्रारम्भ करके शीघ्रातिशीघ्र उसका विस्तार किया जाय। संक्रमण काल में बच्चे अपने घरेलू धंधों में कार्यानुभव करें। इनमें भी विद्यार्थियों को *नवीन वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रक्रियाओं की* ओर प्रवृत्त किया जाय। आयोग की सम्मति में कार्यानुभव की सफलता काम के आधुनिकीकरण पर ही निर्भर है।

शिक्षक साधन-सामग्री और कार्यक्रम के विस्तार के सम्बन्ध में भी आयोग ने सुझाव दिये हैं। शिक्षकों के अल्पकालीन प्रशिक्षण की बात कही है कारीगरों से भी काम लेने का सुझाव दिया है और शिक्षाधिकारियों को भी इस योजना से अवगत कराने की आवश्यकता समझी है।

विचारणीय प्रश्न

विचारणीय प्रश्न है कि बुनियादी तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में दस्तकारी तथा उद्योग को जो स्थान दिया गया है उसकी तुलना में इस कार्यानुभव योजना में क्या विशेषता है? क्या पुरानी चीज को ही यह नया नाम

नहीं दिया गया है ? क्या व्यक्ति के विकास की, समाज निर्माण की या बेकारी दूर करने की इसमें अधिक क्षमताएँ है ? इस प्रकार के कई प्रश्न मस्तिष्क में चक्कर लगा जाते है।

इनके पीछे छिपा वह मूल प्रश्न फिर सामने आता है कि शिक्षा में उद्योग-दस्तकारी को स्थान ही क्यो दिया गया ? इस प्रश्न के समुचित उत्तर पर ध्यान न देकर नयी-नयी कल्पनाएँ और नये-नये प्रयोग चलाने का प्रयत्न हो रहा है, जिसका कोई सुफल आज दिखाई नही पडता।

शिक्षा में दस्तकारी तथा हुनर का प्रवेश केवल कार्यानुभव के लिए ही नही किया गया, वरन् इसलिए कि व्यक्तित्व के विकास का यह एक बहुत ही कारगर माध्यम है। साथ ही बुनियादी तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा में इसका एक बहुत बडा लक्ष्य स्वावलम्बन रहा है। वैसे व्यक्ति के जीवन का कोई पहलू इससे अछूता नही रहता। शारीरिक, बौद्धिक, चारित्रिक, भावात्मक, सामाजिक सभी प्रकार का विकास इससे सम्भव है अनेक विषयो का समन्वित ज्ञान इसके द्वारा होता है, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि व्यापक बनती है और स्वावलम्बन के कारण आत्म विश्वास दृढ होता है। व्यक्ति निर्भयता तथा स्वतंत्रता का अनुभव करता है और उसमे कई सद्गुण और अच्छी आदतें पनपती है। उद्योग तथा दस्तकारी म व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारने की अपार क्षमता भरी पडी है। इतनी क्षमता किसी एक ज्ञानात्मक विषय में तो नही ही है, पर सबको मिलाकर भी नही है। विद्यार्थी करके सीखता है। उसको इससे सृजनात्मक आनन्द प्राप्त होता है, जो कि व्यक्ति की एक उच्च स्तरीय उपलब्धि है। इन क्षमताओ के कारण ही पाठ्यक्रम मे ढेर सारे विषय होते हुए भी दस्तकारी तथा उद्योग को स्थान दिया गया है। बेरोजगारी की समस्या आज की हमारी विकट समस्याओं मे से है। इसका समाधान भी सतत चलनेवाली दस्तकारी या उद्योग से ही सम्भव है। फिर इसके स्थान पर यह बिखरा कार्यानुभव कैसे उपयोगी होगा, यह समझ में नही आता।

कार्यानुभव के लिए कल्पना की गयी है कि वह खेत में, कारखाने में, घर मे, विद्यालय में, कही भी किसी काम के रूप में हो सकता है। इसका अर्थ यही हुआ कि इसके द्वारा कोई निश्चित हुनर बच्चा नही सीखेगा। वह जब जो सुविधा हुई काम करता रहेगा। अत शिक्षा के द्वारा बेकारी को हल करने की समस्या ज्यो की त्यो बनी रहेगी।

कार्यानुभव के उदाहरण

अपने खेत और घर के साधारण कार्यों को भी कार्यानुभव में शामिल किया गया है। इस प्रकार कार्यानुभव के कार्यक्रम की रूपरेखा कुछ विचित्र-सी बन

गयी है। कुछ राज्यो ने इसको कार्यान्वित करने का निश्चय किया है। यह इसके चलानेवालो के सामने भी इसके उद्देश्य स्पष्ट नही हैं। कुछ दिनो पूर्व एक कार्यगोष्ठी इस सम्बन्ध में हुई थी। उसके विचार बिन्दुओ में एक यह भी था कि विद्यालय में चपरासी न रखा जाय। बच्चे वहाँ का सब काय करें। उस काय को कार्यानुभव के रूप में स्वीकार किया जाय।

इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पादन के सम्बन्ध म भी है। आयोग ने कहा है कि काय उत्पादक हो। किस काय को उत्पादक माना जाय इसमें विचारका का मतैक्य नही है। इसीलिए चपरासी के काम को इसी श्रेणी म लिया जा रहा है। इस तरह विभिन्न प्रकार का सूझ-बूझ अभी इस सम्बन्ध में चल रही है।

क्योंकि सरकार ने आयोग का प्रतिवेदन मान लिया है और कुछ राज्यो ने भी इसे चलाने का निश्चय कर लिया है। शिक्षाधिकारी तथा शिक्षक भी इसे चलाने में अपनी तत्परता दिखाना चाहते है। यह कायक्रम आदेशो द्वारा ऊपर से नीचे पहुँचने की उतावली में है। परन्तु न तो अभी इसकी कोई सुव्यवस्था बनी है न उद्देश्य और रूपरेखा ही स्पष्ट है। अत इसका मनमाना अर्थ लगाया जा रहा है।

हाल ही में कुछ शिक्षाधिकारियो ने एक कला तथा औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र का निरीक्षण यह पता लगाने के लिए किया कि अध्यापकों को कार्यानुभव योजना चलाने का प्रशिक्षण देने मे केन्द्र क्या कर सकता है। उनका विचार था एक-एक माह के प्रशिक्षण के लिए अध्यापकों को भेजना जिसम वे केन्द्र म चलनेवाले उद्योगो, हुनरों में से कोई एक सीख लें। जब उन्हें बताया गया कि एक माह में तो किसी हुनर का अ, आ भी नही सीखा जा सकता तब उन्होंने अधिकाधिक तीन माह के लिए भेजने की सम्भावना व्यक्त की। इस पर भी उनसे कहा गया कि तीन माह के अल्प समय म भी वे बच्चों को सिखाने योग्य तो क्या बनेंगे स्वयं भी बहुत कम—नगण्य सा—सीख पायेंगे। उन्होंने कहा बस। उनको दो चार चीजें बनाना सिखा दीजिये, जिससे वे ही चीजें व बच्चो से बनवा सकें। यह है कार्यानुभव का स्वरूप, जिसे हमारे शिक्षाधिकारी अबतक समझे हुए है।

इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि दस्तकारी की पूर्णता उसके द्वारा स्वावलम्बन और व्यक्तित्व के विकास जैसी तो कोई बात सम्भव नही है। स्वय उद्योग या दस्तकारी एक तमाशा बनकर रह जायगी।

केवल दिमागी दौड के विषय हम पर इतने हावी हो गये है कि हाथ के काम को तो हम पनपने ही नहीं देते। न बुनियादी शिक्षा का प्रयोग निष्ठा से चलाया गया न उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का ही। जब दस्तकारी इन योजनाओं

में ही न पनप सकी तो कार्यानुभव के ढीले-ढाले, लचीले कार्यक्रम में उसके पनपने का प्रश्न ही समाप्त हो जाता है। इस तरह शिक्षा में उद्योग की हत्या ही आयोग के द्वारा हो गयी है।

आयोग का सुझाव है कि विद्यार्थी आस पास के खेतों और कारखानों में कार्यानुभव प्राप्त करें। यह सुझाव व्यावहारिक नहीं लगता। वहाँ यदि वे जायें भी तो कौन अपनी वस्तु उनके हाथों बिगड़ने देगा? क्या शिक्षक के लिए यह सम्भव होगा कि वह वहाँ जाकर बच्चों के कार्य को देखे? क्या खेतवाला और कारखानेदार इसको अपने काम में दखल देने देगा? विद्यार्थी यदि मजदूर की तरह वहां काम करना चाहें तब भी उनको वहाँ सुविधा मिलना कठिन है। हमारे देश में न तो वह हवा है न सुविधाएँ। यहाँ तो घर के लोगों के लिए भी पूरा काम नहीं होता तब बाहर के लोगों को काम में लाने की तो बात ही क्या हो सकती है?

एक धुँधला चित्र

एक मुख्य बात है इस योजना के उद्देश्यों को पूर्णतया समझने की। अत सर्वप्रथम आवश्यकता यह है कि शिक्षा के उच्चातिउच्च अधिकारी से लेकर प्राथमिक शिक्षा के शिक्षक तक प्रत्येक कार्यकर्ता इसे समझे। गोष्ठियों, साहित्य प्रकाशन छोटे छोटे दलों में विचार विमर्श आदि द्वारा यह कार्य किया जाय। उद्देश्य और क्रियात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा स्पष्ट होने पर ही इसका ठीक स्वरूप सामने आ सकता है। उसके प्रकाश में ही इसकी सही तुलना बुनियादी तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा से भी की जा सकती है। यदि यह उनको तुलना में निर्बल लगे तो फिर उनके स्थान पर यह नया नाम देकर इसको लाने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। उन्हीं योजनाओं को सचेत करके निष्ठापूर्वक चलाने का पुन प्रयत्न किया जाय। बिना पूरी तरह सोचे-समझे एक योजना को चला देना समय, शक्ति तथा धन का अपव्यय ही करना है। समझ के बिना न आस्था पैदा होती है और न आस्था के बिना सफलता मिलती है।

जो कार्यानुभव आयोग ने सुझाये है वे तो बुनियादी तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की सतत चलनेवाली दस्तकारियों और उद्योगों के साथ भी हो सकते है।

नया नाम नयी योजना शिक्षकों का नया प्रशिक्षण और विद्यार्थियों का नया शिक्षण और वह भी सब अस्पष्टता के कोहरे से घिरा, कुछ विचित्र तथा अटपटा ही लग रहा है। कब हमारी शिक्षा नीति सबल बनकर व्यक्ति तथा राष्ट्र की समस्याओं को हल करने में समर्थ हो सकेगी? कुछ नहीं कहा जा सकता।●

कार्यानुभव : बेसिक शिक्षा के उद्योग का विकल्प

वंशीधर श्रीवास्तव

शिक्षा-आयोग ने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास के लिए जिन सस्तुतियो को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है, उनमें कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरियन्स) भी एक है। आयोग ने माना है कि कार्यानुभव शिक्षा को जीवन से जोड़ने की एक कड़ी है। हमारी शिक्षा जीवन की वास्तविक परिस्थितियो से दूर ले जाने-वाली किताबी और अनुत्पादक है। कार्यानुभव द्वारा वह उत्पादक बनेगी। अतः आयोग की सस्तुति है कि कार्यानुभव को प्रत्येक स्तर पर सामान्य अथवा व्यावसायिक शिक्षा का अभिन्न अग बना दिया जाय।

कार्यानुभव की कल्पना

आयोग के अनुसार कार्यानुभव की परिभाषा है—"छात्रो द्वारा विद्यालय में, घर में, खेत में, कारखाने में, अथवा किसी भी दूसरी उत्पादक परिस्थिति में जो जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से मिलती-जुलती है, सक्रिय भाग लेना।" (आयोग का प्रतिवेदन . पृष्ठ–७–१ २५) आयोग लिखता है—"कुछ दिन पूर्व गाधीजी ने इस देश में बेसिक शिक्षा के रूप में एक क्रान्तिकारी प्रयोग किया था। कार्यानुभव की सकल्पना मूलत बेसिक शिक्षा की सकल्पना के ही समान है। हम कह सकते हैं कि यह सकल्पना उनके शैक्षिक विचारो की, उस समाज के सन्दर्भ में जो औद्योगीकरण के मार्ग पर चल पड़ा है, पुनर्व्याख्या (रि-इंटरप्रिटेशन) है।" (पृष्ठ–८–१.२८) मैं इसे यों समझता हूँ कि आयोग द्वारा सस्तुत कार्यानुभव बेसिक शिक्षा के उद्योग का विकल्प है—बदली परिस्थितियो के लिए बदला हुआ विकल्प। कम-से-कम शिक्षा-आयोग ऐसा ही मानता है। वह दोनो में बहुत अन्तर करके नहीं देखता। इसीलिए वह एक दूसरे स्थान पर (पृष्ठ–२०२–८ ७५) कहता है कि—"कार्यानुभव की सकल्पना का बेसिक शिक्षा के जीवन-दर्शन से निकट का सम्बन्ध है। बेसिक शिक्षा का

कायक्रम भी प्रादमरी स्कूल में सभी बच्चा के लिए कार्यानुभव की शिक्षा थी, यद्यपि जो उद्योग पाठ्यक्रम क लिए प्रस्तावित किये गये थे उनका सम्बन्ध गाँव के घरेलू उद्योग धन्धा से ही था और यद्यपि अभ्यास मे बेसिक शिक्षा कुछ शिल्पो (क्राफ्टो) में ही सीमित हो गयी थी, फिर भी उसने शिक्षा का उत्पादकता से जोडने के मूलभूत सिद्धान्त पर हमेशा जोर दिया था। अब आवश्यकता इस बात की है कि बेसिक शिक्षा के कायक्रमो को उस समाज की आवश्यकता के अनुरूप बनाया जाय, जिसे विज्ञान और तकनीकी सहायता से बदलना है। दूसरे शब्दो मे, कार्यानुभव को नयी समाज-व्यवस्था के अनुरूप प्रगतिगामी (फारवर्ड लुकिंग) होना चाहिए।'

प्रतिवेदन क आठवें अध्याय म पाठ्यक्रम की चर्चा करत हुए आयोग ने फिर लिखा है कि— हमलोगा द्वारा प्रस्तावित कार्यानुभव की कल्पना बेसिक शिक्षा के उत्पादक उद्योग के समान ही है। शिक्षा क प्रारम्भिक स्तर पर दोना कायक्रमो के बीच की समानता बहुत निकट की है।" (८ १०६) इस स्तर के लिए आयोग ने कार्यानुभव के जो पाठ्यक्रम सुझाये है उनकी इस स्तर की बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम से लगभग अभिन्नता-सा है। नीचे दी हुई सूचियो से यह स्पष्ट हो जायगा —

बेसिक शिक्षा के उद्योग मुख्य और गौण

(कक्षा १ से ८ तक)

१ पुस्तक शिल्प (बुक क्राफ्ट) कागज और गत्ते का काम
२ कताई-बुनाई
३ गृह विज्ञान (सिलाई, बुनाई, कढाई, रसोई बनाना, गृह-सुसज्जा, रोगी शुश्रूषा, आदि।)
४ बागवानी और खेती
५ बेंत और बाँस का काम
६ चमड का काम
७ काष्ठकला (बढईगिरी)
८ धातु का काम
९ साबुनसाजी
१० टेलरिंग (दर्जी का काम)
११ रंगाई-छपाई
१२ पशुपालन और दुग्धशाला का काम
१३ फल सरक्षण

१४ दरी निवार, आसन गलीचे बुनना

१५ मधुमक्खी पालन

१६ हाथ-कागज बनाना

१७ मिन्टी का काम और बतन बनाना

आयोग द्वारा संस्तुत कार्यानुभव

लोअर प्राइमरी (कक्षा १ से ५ तक)

१ कागज काटना

२ गत्त काटना और मोड़ना

३ मिटटी अथवा प्लास्टिक के माडल बनाना

४ कताइ जहाँ वातावरण मे स्वाभाविक हो

५ सरल सिलाई

६ गमले अथवा खेत में पौधे उगाना

७ नाक सब्जी उगाना

उच्च प्राइमरी (कक्षा ६ से ८ तक)

१ बेंत और बाँस का काम

२ चमडे का काम

३ बतन बनाना

४ सुई का काम (सिलाई कढ़ाई)

५. बुनाई

६ बागवानी

७ माडल बनाना

८ फ्रट वक

९ फाम पर काम करना (खेती)

लोअर सेकेण्डरी (कक्षा ९ १०)

१ लकडी का काम

२ धातु का काम

३ टोकरी बनाना

४ चमड़े का काम

५ सेरेमिक्स

६ साबुन बनाना

७ चमड़ा सिझाना

८ बुनाई

९ बिजली की मरम्मत
१० भोजन बनाना
११ माडल बनाना
१२ सरल वैज्ञानिक यन्त्र बनाना
१३ कमरे की सुसज्जा
१४ गलीचा दरी बनाना
१५ जिल्दसाजी
१६ खिलौने बनाना
१७ कपड़े की छपाई
१८ लिनोकटिंग
१९ लकड़ी पर खोदाई का काम
२० सरल कृषि के यन्त्र बनाना
२१ पशुओं की देखभाल
२२ भूमि की देखभाल
२३ वर्कशाप प्रैक्टिस

हायर सेकेण्डरी

क्रियाएँ लोअर सेकेण्डरी की ही भाँति, परन्तु अधिक वर्कशाप प्रैक्टिस।

वस्तु, शिक्षा-आयोग ने कार्यानुभव की जो व्याख्या की है, उससे बेसिक शिक्षा की समानता पर जो जोर दिया है और ऊपर कार्यानुभव की जो सूची दी है, उससे नीचे लिखी बातें स्पष्ट हो जाती है —

१—शिक्षा-आयोग की राय में कार्यानुभव बेसिक शिक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त—उद्योग के सिद्धान्त—का प्रसार है, आयोग के शब्दों में—उदयोगोन्मुख नये समाज की पृष्ठभूमि में बेसिक शिक्षा के एक सिद्धान्त की पुनर्व्याख्या है।

२—अत कार्यानुभव के लिए जो काम चुना जाय वह इस प्रकार का हो, जिसका शैक्षिक मूल्य हो जैसा मूल अथवा गौण उद्योग का बेसिक शिक्षा में था। शैक्षिक मूल्य उसी काम का होता है, जिसमें बौद्धिक प्रक्रिया निहित होती है। हाथ के जिस काम से बुद्धि का विकास हो, वही कार्यानुभव के लिए चुना जाय। बेसिक शिक्षा में उद्योग बौद्धिक विकास का साधन था। विद्यार्थी यदि किसान और मजदूर की तरह उत्पादन मात्र के लिए यान्त्रिक ढग से काम करता है तो उस काम के लिए न तो बेसिक शिक्षा में कोई स्थान था और न कार्यानुभव में उसे कोई स्थान मिलना चाहिए। अत जो यह समझते है कि कार्यानुभव का मूल आग्रह उत्पादन पर है अत सिद्धान्त पक्ष पर ध्यान न देकर

काय पर ही ध्यान दिया जाय, और जिस प्रकार एक किसान या मिस्त्री उत्पादन करता है, उसी प्रकार उत्पादन का अनुभव छात्रा को दिया जाय, वे गलत समझते हैं। स्कूल में शारीरिक श्रम सम्बन्धी चार प्रकार के काम होते हैं—खेतना, खेलकूद, अव्यवस्थित काम और शैक्षिक काम। कार्यानुभव के अन्तर्गत अन्तिम प्रकार के काम ही आने चाहिए। यह राय उन शिक्षा विशारदों की भी है, जो कार्यानुभव पर विचार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम और मूल्यांकन विभाग द्वारा आयोजित 'कार्यानुभव सेमिनार' में शामिल हुए थे। उनकी स्पष्ट राय है कि कार्यानुभव में शैक्षिक और सामाजिक उपलब्धि का अधिक मूल्य है, आर्थिक उपलब्धि तो गौण है। यहाँ कार्य का अर्थ है 'शैक्षिक काय', अर्थात् इस प्रकार का काय जो छात्र के मस्तिष्क के संस्कार में सहायक हो सके, तर्कपूर्ण ढंग से सोचना सिखलाये, और उसके चरित्र के विकास का साधन हो। इस प्रकार का काम जो केवल यांत्रिक ढंग से किया जाय कार्यानुभव के कार्यक्रम में नहीं आना चाहिए। वही काम जो सप्रयोजन सिखाया जाय और कुशलतापूर्वक सीखा जाय तथा बुद्धिमानी के साथ किया जाय, कार्यानुभव कहलायगा। संक्षेप में बेसिक शिक्षा में मूल उद्योग चुनने के लिए जो शर्तें थीं, वही शर्तें कार्यानुभव के लिए भी होनी चाहिए। उसे शौकिया एक "हॉबी" के तौर पर करना अथवा कुछ पैसा कमाने के लिए यंत्रवत् करना गलत है।

३—कार्यानुभव के लिए वही प्रवृत्तियाँ चुनी जायें, जिनका सम्बन्ध समुदाय की आवश्यकताओं से हो, नहीं तो प्रयोजनहीन होने से उनका सामाजिक और आर्थिक महत्व नहीं रहेगा और वे अनुत्पादक बन जायेंगी। उत्पादकता की आयोग ने कार्यानुभव की आवश्यक शर्त रखी है। कार्यानुभव एक समाजोपयोगी उत्पादक प्रवृत्ति है। समाज अपने को धारण करने के लिए जिन उद्योग-धन्धों का अवलम्बन करता है और जिन परिस्थितियों में काम करता है, उनसे विभिन्न परिस्थितियों में कार्यानुभव का अभ्यास समाज-विमुख होने से निरर्थक होगा। समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन के जो कार्यक्रम चलाता है, उन कार्यक्रमों में भाग लेने से ही उपयोगी कार्यानुभव की प्राप्ति होगी। अतः हाथ के जिस काम के द्वारा छात्र अपनी क्षमता के अनुकूल समुदाय में उपयोग होने योग्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करते, उस काम को कार्यानुभव के कार्यक्रम में स्थान नहीं देना चाहिए। एक ऐसी प्रवृत्ति जिसका अन्त समाजोपयोगी वस्तु के निर्माण में नहीं होता, और जो केवल खिलवाड़ बनकर रह जाता है, उसे कार्यानुभव में स्थान नहीं मिलना चाहिए। क्षमता और साधन होने पर भी यदि छात्र ऐसा सूत कातते हैं, जिसका कोई उपयोग नहीं हो सकता तो उसे 'कार्यानुभव' की श्रेणी में

नही रखा जायगा। प्रौढ़ो की शिक्षा के लिए कक्षाएं चलाना अत्यन्त महत्व का काम है। परन्तु मै इसे भी कार्यानुभव के श्रेणी में नही रखता। इसी प्रकार दूसरे समाज-सेवा के कार्यो को कार्यानुभव के अन्तर्गत मानना ठीक नही होगा।

४—कार्यानुभव में उन्ही प्रवृत्तियो अथवा उद्योग धन्धो को स्थान मिलना चाहिए, जिनका एक कक्षा से दूसरी कक्षा तक क्रमिक विकास सम्भव हो। अगर कार्यानुभव का लक्ष्य विद्यार्थी के व्यक्तित्व को सम्पन्न बनाना है, तो विद्यालय मे शिक्षा की जो प्रक्रियाएँ चल रही हैं, उनके साथ कार्यानुभव के लिए चुनी हुई प्रवृत्ति का पूर्ण समन्वय भी होना चाहिए। और यह समन्वय तभी सम्भव होगा, जब कार्यानुभव शैक्षिक दृष्टि से एक पूरी प्रक्रिया हो। प्रक्रिया का सतत विकास उसके शैक्षिक होने की आवश्यक शर्त है। बालक की बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओ के साथ-साथ क्रिया का भी विकास होना चाहिए। आयोग ने रूस के जिस कार्यानुभव का उदाहरण दिया है, (सप्लीमेन्ट्री नोट II, आयोग का प्रतिवेदन–पृष्ठ २२१–१२) उसमें पेपर कटिंग, कार्डबोर्ड अथवा प्लैस्टिसीन और मिट्टी के काम अथवा पौधो का उगाना और बागवानी अथवा सिलाई, कढाई और बुनाई आदि की सभी प्रक्रियाएँ अपने क्रमश विकसित रूप मे कक्षा ८ तक चलती हैं। पहली कक्षा की सरल प्रक्रियाएँ आगे की कक्षाओ में क्रमश अधिक उन्नत प्रक्रियाओ का रूप लेती जाती है। पेपर कटिंग का विकास क्रमश काडबोड और लकडी के काम में और बागवानी का विकास खेती में होता है। ये सारी प्रक्रियाएँ स्कूल के दूसरे विषयो से जैसे जीव शास्त्र, रसायन शास्त्र, गणित, सामान्य विज्ञान आदि से भी सम्बन्धित रहती है। इस प्रकार का सह सम्बन्ध बेसिक शिक्षा मे भी है, और अगर कार्यानुभव को शिक्षा की दृष्टि से भी उपयोगी होना है तो उसका उस प्रकार सम्बन्ध स्कूल के दूसरे विषयो से भी रहना चाहिए। कार्यानुभव उत्पादन की योजना नही है, शिक्षा की योजना है, शिक्षा को उत्पादक बनाने की योजना है। कार्यानुभव को बढई और मजदूर की तरह केवल उत्पादन की योजना मात्र बना लेने से उसमे से शिक्षा का तत्त्व खतम हो जायगा। तब उससे व्यक्ति का सस्कार नहीं बनेगा। अत राजस्थान के शिक्षा विभाग द्वारा प्रस्तावित पुस्तिका के कतिपय मार्गदर्शक सिद्धान्तो में दिया हुआ यह कथन कि कार्यानुभव का प्रयोजन *उद्योग शिक्षा न होकर उत्पादन है, अत एक किसान या मिस्त्री जिस प्रकार* उत्पादन करता है उसी प्रकार का अनुभव छात्रो को दिया जाना चाहिए, भ्रामक है। यह पूरी योजना को गलत समझना-समझाना है। और राजस्थान का यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय शिक्षा-सस्थान द्वारा आयोजित सेमिनार में स्वीकृत नहीं हुआ।

५—डाक्टर जाकिर हुसैन ने शैक्षिक कार्य के चार लक्षण बताये हैं कार्य की समस्या को समझना, उसको पूरा करने के लिए योजना बनाना, उसका कार्यान्वयन और मूल्यांकन। कार्यानुभव के लिए जो प्रवृत्तियाँ चुनी जायँ उनके सम्पादन में ये चारों लक्षण हों, नहीं तो प्रवृत्ति का शैक्षिक मूल्य नष्ट हो जायगा।

६—कार्यानुभव विद्यालय के पाठ्यक्रम का अविभाज्य अंग है। उसे पाठ्यक्रम में न रखकर केवल एक पाठ्येत्तर विषय अथवा हाबी अथवा फुटकर प्रवृत्ति की तरह मानना गलत होगा। अतः कार्यानुभव की योजना अनिवार्य रूप से सभी विद्यार्थियों के लिए होनी चाहिए। कार्यानुभव पाठ्यक्रम का अंग है और पाठ्यक्रम के दूसरे विषयों की तरह टाइमटेबुल में उसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

७—विद्यालय के दूसरे विषयों का जो महत्व है वही महत्व कार्यानुभव का भी होना चाहिए और उसका मूल्यांकन भी होना चाहिए तथा छात्र की कक्षोन्नति पर भी इसका प्रभाव पड़ना चाहिए। मूल्यांकन के लिए मूल्यांकन की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया जाय। अध्यापक और विद्यार्थी नियमित रूप से कार्यानुभव की प्रगति का लेखा रखें और कार्यानुभव की प्रयोजन और सैद्धान्तिक परीक्षाएँ भी हों। इस कार्य का मूल्यांकन सतत प्रक्रिया हो और आन्तरिक मूल्यांकन की सफल पद्धति का विकास किया जाय क्योंकि केवल वाह्य परीक्षा द्वारा कार्यानुभव का सफल मूल्यांकन नहीं हो सकता।

८—कार्यानुभव के लिए कितना समय दिया जाय यह काम करनेवाले छात्रों की अवस्था और क्षमता कार्यानुभव की प्रकृति और स्थानीय परिस्थिति पर निर्भर करेगा, फिर भी कार्यानुभव के लिए विद्यालय के कुल समय का एक-तिहाई से कम नहीं मिलना चाहिए, ऐसा विचार उन सभी शिक्षाशास्त्रियों का था, जो ऊपर लिखे हुए भारत सरकार द्वारा आयोजित कार्यानुभव के सेमिनार में शामिल हुए थे। अर्थात् यदि स्कूल में प्रतिदिन काम के लिए कुल छह घंटे हों तो कम-से-कम दो घंटे कार्यानुभव के लिए रखे जायँ और ये दो घंटे लगातार हों। इससे कम समय देने से कार्यानुभव खिलवाड़ रह जायगा और कार्यानुभव को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने का लक्ष्य ही समाप्त हो जायगा।

कार्यान्वयन

कार्यानुभव के कार्यान्वयन के लिए आयोग ने साधन और प्रशिक्षित अध्यापकों की बात रखी है। यह ठीक है, क्योंकि साधन और प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव में कार्यानुभव की योजना उसी प्रकार असफल रहेगी जिस प्रकार बेसिक

शिक्षा अनेक प्रदेशों में रही है। अतः कार्यान्वियन की समस्या के हल के लिए आयोग ने तीन बातें सुझायी हैं (पृष्ठ–२०२, २०३–८.७८) :—

१. अध्यापकों का प्रशिक्षण

इस कार्य के लिए प्रत्येक राज्य में विशेष संस्थाएँ खोली जायँ। आयोग ने पंजाब राज्य का उदाहरण दिया है और आशा प्रकट की है कि इसी प्रकार का प्रबन्ध अन्य राज्य भी करेंगे। प्रत्येक स्कूल में प्रशिक्षित अध्यापक का होना आवश्यक है। दूसरे देशों में इस प्रकार के कार्यक्रम के लिए कुशल और अर्ध-कुशल कारीगरों और व्यावसायिक स्कूलों के स्नातकों का, जिन्हें अध्यापक के काम का अल्पावधि प्रशिक्षण दे दिया जाता है, इस्तेमाल करते हैं। हमारे यहाँ भी, जहाँ सम्भव हो, इसे करना चाहिए। ऐसे अध्यापक एक या एक से अधिक स्कूलों में काम करें।

२. साधन

यथाशक्ति गाँव के स्कूलों के साथ उचित फार्म संलग्न किये जायँ, परन्तु जब तक यह न हो गाँव के खेतों में कृषि सम्बन्धी कार्यानुभव दिये जायँ। गाँव और शहर के बड़े-बड़े स्कूलों में कारखाने (वर्कशाप) खोले जायँ, जिससे उद्योगों की वैज्ञानिक शिक्षा दी जा सके।

३. कार्यक्रम का विकास

आयोग ने सुझाव दिया है कि कार्यान्वियन के लिए १९६७-६८ तक सभी स्तर के एक प्रतिशत स्कूलों में योजना आरंभ कर दी जाय। १९७१-७२ तक २० प्रतिशत स्कूल योजना के अन्तर्गत आ जायँ और १९७६-७७ तक सभी स्कूलों में कार्यानुभव की योजना लागू हो जाय।

उन सुझावों को देते समय निःसन्देह आयोग के सामने बेसिक शिक्षा के प्रसार की कठिनाइयाँ रही है और उसने अनुभव किया है कि साधन और प्रशिक्षित अध्यापकों के बिना कार्यानुभव की योजना भी सफल नहीं होगी। परन्तु चूँकि बेसिक शिक्षा के विगत २० वर्षों के प्रयोग के फलस्वरूप देश के अधिकांश विद्यालयों में शिल्प का कार्यक्रम चल रहा है और जो स्कूल बेसिक नहीं है वहाँ भी किसी-न-किसी प्रकार के हाथ का काम होता है, अतः सभी प्रकार के स्कूलों में कार्यानुभव का कुछ-न-कुछ काम तो आरम्भ किया ही जा सकता है और जिन बेसिक स्कूलों में साधन और प्रशिक्षित अध्यापक दोनों ही मौजूद है, वहाँ तो शिल्प का पूर्ण कार्यक्रम प्रारम्भ करना ही चाहिए। बेसिक स्कूलों में चलनेवाला शिल्प का कार्यक्रम कार्यानुभव की योजना का "प्रारम्भ बिन्दु" बन सकता है। जहाँ भी सम्भव हो, पड़ोस के खेतों, फार्मों और

कारखानों में भी अनुभव दिया जाय, परन्तु देश की परिस्थिति को देखते हुए, इसकी सम्भावनाएं कम है और राज्य को विद्यालय के भीतर ही कार्यानुभव प्रदान करने का प्रबंध करना चाहिए।

उचित वातावरण का सृजन

कार्यानुभव की दृष्टि से समाज में उचित वातावरण के सृजन की भी आवश्यकता है। देश में उचित वातावरण के अभाव में कार्यानुभव का वैसे ही विरोध होगा, जैसे बेसिक शिक्षा का हुआ है। बेसिक शिक्षा के विरोध के कारण सबको ज्ञात है। जो परिस्थितियाँ बेसिक शिक्षा के प्रारम्भ के पहले देश में थी, तीस वर्ष के बाद भी वैसी ही हैं। आज भी बौद्धिक वर्ग में शारीरिक श्रम के प्रति विरोध की भावना है। अंग्रेजी का मोह और हाथ से काम न करने का भाव आज भी ज्यों-का-त्यों है। और इसमें सन्देह नहीं कि देश का बौद्धिक वर्ग कार्यानुभव की योजना का वैसे ही विरोध करेगा, जैसे उसने बेसिक का किया था। आयोग ने तीन सुझाव ऐसे दिये हैं, जिन्हें अगर ईमानदारी से कार्यान्वित किया गया तो देश में अनुकूल हवा बनेगी और कार्यानुभव की योजना सफल होगी। ये सुझाव हैं—

१ क्षेत्रीय भाषाओं को प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा से लेकर उच्चतम स्तर की शिक्षा का माध्यम बनाना।

२ सार्वजनिक शिक्षा के लिए एक सामान्य विद्यालय प्रणाली (कामन सिस्टम आफ पब्लिक एजुकेशन) का सृजन और

३ समाज-सेवा के कार्य को सभी स्तर की शिक्षा का अभिन्न अंग बना देना।

मेरा विचार है कि अगर हमारी शिक्षा प्रणाली ने इन तीनों सुझावों को नहीं अपनाया और इनमें से किसी एक का भी विरोध हुआ तो कार्यानुभव की योजना सफल नहीं होगी। इन तीनों सुझावों का कार्यान्वियन, ईमानदारी से शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वियन, कार्यानुभव की योजना की सफलता की आवश्यक शर्तें हैं। और अगर कार्यानुभव की योजना सफल नहीं हुई अर्थात् देश के प्रत्येक छात्र ने अपने हाथ से समाजोपयोगी काम करना न सीखा तो पढ़े लिखे बेकारों की फौज बढ़ती रहेगी और देश की शिक्षा-पद्धति देश को ऐसे कार्य-कुशल नागरिक *नहीं दे सकेगी, जिसकी इस उद्योगोन्मुख कृषि प्रधान देश को आवश्यकता है।* इसीलिए आयोग ने कार्यानुभव को शिक्षा के व्यावसायीकरण की आवश्यक शर्त रखी है।●

माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण

सुरेश भटनागर

शिक्षा-आयोग ने माध्यमिक ही नहा शिक्षा के सभी स्तरा पर शिक्षा का व्यावसायीकरण प्रस्तावित किया है क्योंकि हमारी शिक्षा प्रणाली को पढे लिखे ऐसे बेकार नहीं उत्पन्न करना है जिन्हे अपने हाथ मे कुछ करना ही नहीं आये बल्कि ऐसे कुशल एव व्यावहारिक व्यक्तिया का निर्माण करना है जो पढने लिखने के अलावा समाजोपयोगी उत्पादक धधो के करने की क्षमता भी रखते हों।

युग का बदलता मा यताओ क बीच हमारा देश प्रगति की दौड में अन्य उन्नत देशा की तुलना में सैकड़ो वर्ष पीछे है। हम चाहते है हम उन्नत देशा के समकक्ष आ जाय। इस प्रक्रिया म हम जब तक उनके समकक्ष पहुचेंगे वे और भी आगे बढ चुकेंगे इसका कारण है हमारे ज्ञान का आधुनिक विज्ञान तथा तकनीकी के साथ सम्बन्ध नहीं रहता है। अत हमें अपनी शिक्षा प्रणाली को आधुनिक विज्ञान और तकनीक पर भी आधारित करना होगा।

इसलिए आयोग ने उत्पादन तथा उत्पादन के आपसी सम्बन्धो पर विचार करके शिक्षा क पुनर्निर्माण की योजना का आधार इस प्रकार प्रस्तुत किया है —

१ विज्ञान शिक्षा एव सस्कृति आधार होना चाहिए।

२ सामान्य शिक्षा म कार्यानुभव अभिन्न अग के रूप में आना चाहिए।

३ उद्योग कृषि तथा व्यापार की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण होना चाहिए।

४ कृषि तथा सम्बन्धित विज्ञान पर विशेष बल देते हुए विश्वविद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण क्या ?

शिक्षा-आयोग के व्यावसायीकरण की कल्पना का स्वरूप आगे दिया जा रहा है —

प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा

'कक्षा ७ या ८' के बाद लगभग २० प्रतिशत विद्यार्थी पढ़ना छोड़कर काम-धंधे मे लग जायें और लगभग २० प्रतिशत किसी व्यवसाय की शिक्षा में। शेष ६० प्रतिशत सामान्य शिक्षा की धारा में बने रहें।

इसी प्रकार १० वर्ष की सामान्य शिक्षा के बाद अर्थात् निम्न माध्यमिक स्तर के बाद भी लगभग ४० प्रतिशत विद्यार्थी पढ़ना लिखना छोड़कर काम-धंधे में लग जायें और लगभग ३० प्रतिशत व्यावसायिक शिक्षा में। शेष लगभग ३० प्रतिशत सामान्य शिक्षा की धारा में २ वर्ष तक और अर्थात् कक्षा १२ तक बने रहे।

इस व्याख्या के बाद अध्याय २ १८ में आयोग ने सुझाव दिया है कि कक्षा १० तक सबको सामान्य शिक्षा दी जाय और इस कक्षा तक न किसी प्रकार स्पेशलाइजेशन हो और न डाइवर्सफाइड कोर्सेज का प्रबंध हो। स्पेशलाइ-जेशन कक्षा ११ से प्रारम्भ हो और इस स्तर पर अर्थात् उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा ११ और १२ के विद्यार्थियो को अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न विषय लेने की सुविधा हो। परन्तु वे चाहे विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त करें अथवा कला के विषयो में प्रत्येक दशा में, उन्हे कार्यानुभव, आर्ट और क्राफ्ट के विषय लेने होगे। इस प्रकार इन दोनो विषयो को रखकर आयोग ने इस सामान्य शिक्षा को भी व्यावसायोन्मुख बनाया है, जिससे कक्षा १२ की सामान्य शिक्षा के बाद भी प्रत्येक विद्यार्थी को हाथ से उपयोगी काम करने का अनुभव हो। अगर वह उच्च व्यवसाय की शिक्षा में न भी जाना चाहे तो किसी धंधे में लग सके। इस प्रकार जो विद्यार्थी सामान्य शिक्षा की धारा म न रहे, आयोग ने उनके लिए प्रारम्भिक स्तर के बाद और सेकेण्डरी स्तर के बाद भी, व्यावसायिक शिक्षा की सस्तुति की है चाहे वह अंशकालीन हो अथवा पूर्णकालीन।

शिक्षा-आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण के लिए जो कल्पना की है उसके अनुसार निम्न माध्यमिक "लोअर सेकेण्डरी' स्तर पर अर्थात् कक्षा ८ से १० तक २० प्रतिशत छात्रो को व्यावसायिक शिक्षा १९८५ ८६ तक प्राप्त हो जानी चाहिए। इसी प्रकार कक्षा ११ १२ में १९८५ ८६ तक ५० प्रतिशत छात्रो को व्यावसायिक शिक्षा देने की कल्पना आयोग ने की है।

आयोग लिखता है, ' जिन महत्वपूर्ण सुधारो को हम सुझा रहे हैं, उनमे से एक है उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण एव व्यावसायिक पाठ्यक्रमो मे कुल छात्र सख्या का ५० प्रतिशत लेना भी है।

(आयोग प्रतिवेदन, पृष्ठ १७३ ७ ४७)

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के दोनो स्तरो पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार दिये हैं—

१ निम्न माध्यमिक स्तर

१ औद्योगिक प्रशिक्षण-सस्थानो में प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् के पाठ्य क्रम भी हैं। यदि इन पाठ्यक्रमो में प्रवेश की आयु १४ वर्ष कर दी जाय तो प्राथमिक पाठशाला से निकलने के पश्चात् छात्रो की बहुत बडी सख्या इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश ले लेगी। यह आयु १६ वर्ष है और इसे घटाकर १५ वर्ष कर दिया गया है।

२ वे छात्र जो कक्षा ६ या ८ के पश्चात् पढना छोड देते हैं, वे पारिवारिक व्यवसाय में काम करते है। कुछ का विचार यह होता है कि वे लघु स्तरीय उद्योग या व्यापार करेंगे। ऐसे लोगो के लिए अशकालीन पाठ्यक्रमो की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे वे योग्यता प्राप्त कर सकें एव अपने कौशल का विकास कर सकें।

आयोग ने सस्तुति की है—"शिक्षा विभाग में अलग से एक अनुभाग की स्थापना की जाय जो ऐसे युवको के सम्पर्क में रहे और उन्हें पूर्णकाल या अश-काल के आधार पर सामान्य शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण का उचित अवसर प्रदान करे।"

३ ग्रामीण क्षेत्र के अधिकाश छात्र परिवार के खेतों में काम करेंगे। उन्हें भावी शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा एव व्यावसायिक कुशलता का प्रशिक्षण प्राप्त करने के अवसर प्रदान किये जायें।

४ लडकियाँ बहुत बडी सख्या में विद्यालय छोडने के तुरत या कुछ देर बाद, विवाह कर लेती हैं। उनके लिए गृहविज्ञान तथा सामान्य शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। (पृष्ठ १७३, ७ ४८)

२ उच्चतर माध्यमिक स्तर

आयोग ने इस स्तर पर बहुत बडी सख्या में व्यावसायिक पाठ्यक्रमो की व्यवस्था की है —

१ आयोग का सुझाव है कि पूर्वकालीन अध्ययन की सुविधाओं के प्रसार के साथ-साथ, उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, अशकालीन पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए, चाहे वह प्रवर्धित उद्योगो, दिन के पश्चात्, मिले-जुले एव पत्राचार पाठ्यक्रमो के द्वारा हो।

२ औद्योगिक प्रशिक्षण सस्थानो में अधिकाश पाठ्यक्रम ऐसे हो, जिनकी प्रवेश-योग्यता कक्षा १० उत्तीर्ण हो।

३ ये पाठ्यक्रम स्वास्थ्य, व्यापार, प्रशासन, लघु उद्योग एव ऐसे कार्यों

का प्रशिक्षण दें, जिनका समय छह मास से तीन वर्ष तक का हो एव छात्रों को प्रमाणपत्र या डिप्लोमा दिया जाय।

शिक्षा-आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण पर इतना अधिक जोर दिया है कि इस अभियान को चलाने के लिए केन्द्र सरकार को, केन्द्र-शासित राज्यों को सहायता देने की सस्तुति की है। अमेरिका का सन्दर्भ देते हुए आयोग ने सघ सरकार पर ही माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण का दायित्व सौंपा है। (पृष्ठ १७४, ७ ४६)

माध्यमिक स्तर पर विद्यमान व्यवस्था के अनुरूप व्यवसायी शिक्षा का प्रावधान उतना नहीं है, जितना आगामी बीस वर्षों में चाहिए। वर्तमान की स्थिति निम्न सारिणी से स्पष्ट हो जायगी।

सारिणी—१

व्यावसायिक विद्यालयों के प्रकार (१९६१-६२)

[आयोग प्रतिवेदन, पृष्ठ १८२]

क्रम	सस्थाओं के प्रकार	सस्थाओं की सख्या	कुल छात्र	सस्थानुसार छात्र सख्या
१	कृषि	१०६	८,४२८	८०
२	इजिनियरिंग तथा प्राविधिक	२९५	८६,२२८	२९२
३	चिकित्सा	१७७	११,२५७	६४
४	शिक्षक प्रशिक्षण	१,१३४	१,२१,६५२	१०७
	सभी व्यावसायिक सस्थान	३,८४६	४,१६,०६३	१०६

माध्यमिक स्तर पर ये विद्यालय केवल ३ प्रतिशत आवश्यकता पूरी करते है। १९६५-६६ मे इसमें २ २ प्रतिशत वृद्धि हुई। १९८५-८६ में निम्न माध्यमिक स्तर पर २० प्रतिशत वृद्धि होनी चाहिए, यह परिकल्पना आयोग की रही है।

शिक्षा-आयोग ने आगामी बीस वर्षों मे व्यावसायिक विद्यालयों में २४,१२,००० छात्रों के प्रवेश की व्यवस्था की है। इसी प्रकार व्यावसायिक महाविद्यालयों मे ६,८७,३०० छात्रों की व्यवस्था की है, जो कुल छात्र-सख्या का ४३ प्रतिशत है। आयोग ने अपना लक्ष्य ५० प्रतिशत निर्धारित किया है।

शिक्षा-आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की प्रगति तथा उपलब्धि किस प्रकार आँकी है, यह इस सारिणी से स्पष्ट हो जायगा।

सारिणी—२

माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा

[आयोग प्रतिवेदन, पृष्ठ १७२]

स्तर वर्ष	व्यावसायिक शिक्षा में प्रवेश (हजारों में)			कुल प्रवेश का प्रतिशत		
	छात्र	छात्राएँ	योग	छात्र	छात्राएँ	योग
कक्षा ८ से १०						
१९६५ ६६	९० (१९ ७)	४७ (१९ २)	१३९ (१९ ७)	१ ९	३ ३	२ २
१९७०-७१	२२२ (१९ ७)	११३ (१९ २)	३३५ (१९ ६)	३ ४	५ ०	३ ८
१९७५ ७६	५४६ (१९ ७)	२७२ (१९ २)	८१८ (१९ ६)	६ ०	७ ६	६ ४
१९८० ८१	१,३४४ (१९ ७)	६५५ (१९ २)	१,९९९ (१९ ६)	११ ०	१२ ४	११ ४
१९८५ ८६	३,३०५	१,५६८	४,८७३	२० ०	२० ०	२० ०
कक्षा ११ स १२						
१९६५ ६६	४७७ (८ ६)	८७ (१२ ६)	५६४ (९ ३)	४० ७	३८ ५	४० ३
१९७०-७१	७२१ (८ ६)	१५७ (१२ ६)	८७८ (९ ५)	४२ ५	४० २	४२ १
१९७५ ७६	१,०८९ (८ ६)	२८४ (१२ ६)	१,३७३ (९.५)	४६ ३	४४ ५	४५ ९
१९८० ८१	१ ६४५ (८ ९)	५१४ (१२ ७)	२,१५९ (९ ७)	४८ १	४७ २	४७ ९
१९८५ ८६	२,५०२	९३४	३,४३६	५० ०	५० ०	५० ०

विद्यालयी स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा

आयोग ने विद्यालयी स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं।

१. केन्द्र-सरकार की ओर से १४ से १८ वर्ष के लड़के-लड़कियों के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों को आरम्भ करने के प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए अमेरिका के स्मिथ-ह्यूडाएक्ट के समानान्तर संघ-सरकार पर ही इसका उत्तरदायित्व होना चाहिए। व्यावसायिक संस्थान मार्ग-प्रदर्शन, निर्देशक सूचनाएँ एवं अन्य सामग्री प्रधानाध्यापकों, अध्यापकों, अभिभावकों के लिए बनाने हेतु कार्य करें।

२. जहाँ तक प्रतिभाशाली छात्रों का प्रश्न है, उन्हें अलग से पाठ्यक्रम न दिलाकर उसीके अन्तर्गत सघन कार्य कराकर इस अभाव को पूरा किया जा सकता है।

३. इस समय देश में ३५६ पालीटेकनीक संस्थान हैं, जिनमें ११,१३,००० छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था है।

४. आयोग ने जूनियर टेक्नीकल स्कूलों के नाम को बदलकर 'टेकनिकल हाईस्कूल' कर देने की सिफारिश की है। आई० टी० आई० तथा टेकनीकल हाईस्कूल 'उत्पादनोन्मुख प्रशिक्षण' की व्यवस्था करें।

कक्षा ११ तथा १२ के लिए अधिकांश संस्था में पाठ्यक्रम प्रस्तुत किये जाने चाहिए। आयोग ने कहा है—इस स्तर पर, पालीटेकनीक संस्थानों के साथ-साथ हमारी सामान्य शिक्षा-प्रणाली को भी व्यावसायिक करना होगा।

व्यावसायीकरण का अभिन्न अंग : कार्यानुभव

व्यवसाय के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए आयोग ने कार्यानुभव प्रस्तावित किया है। कार्यानुभव को आयोग ने इस प्रकार परिभाषित किया है—हम कार्यानुभव को विद्यालय, घर, कार्यशाला, खेत, फैक्ट्री या किसी अन्य उत्पादक कार्य में सहयोग देने के रूप में परिभाषित करते हैं।

आयोग ने शिक्षा के हर स्तर पर कार्यानुभव लागू करने की बात कही है। कार्यानुभव का मूल आधार है—'विद्यार्जन तथा धनार्जन' की प्रक्रिया को साथ-साथ सम्पन्न करना। वास्तविकता यह है कि कार्यानुभव से श्रम के प्रति निष्ठा का दृष्टिकोण विकसित होगा।

आयोग ने उच्च कक्षाओं में कार्यानुभव के बारे में कहा है—उच्च कक्षाओं में यह कला शिक्षण का रूप ले सकता है, जिससे छात्र की रचनात्मक योग्यता एवं प्राविधिक चिन्तन का विकास हो, तब भी कार्यानुभव, जीवन की वास्तविक

परिस्थितियों में दिया जा सकता है, जैसे—कटाई या बुवाई के समय खेतो पर काम कराना या किसी पारिवारिक इकाई में किसी प्रकार का उत्पादन-कार्य करना एव इसी प्रकार के अवसरो का अधिकाधिक उपयोग करना।

आयोग ने कहा है—हर विद्यालय या विद्यालयो के समूह के लिए एक कार्यशाला की व्यवस्था आगामी दस वर्षों में हो जानी चाहिए। कार्यानुभव कार्यशाला प्रशिक्षण का स्वरूप निम्न माध्यमिक स्तर पर ले सकता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर जहाँ पर छात्र अधिक परिपक्व होते हैं और तुलना में उनकी सख्या भी कम होती है, उन्ह कार्यानुभव कार्यशाला, खेतो एव औद्योगिक तथा व्यापारिक सस्थानो में दिया जाना चाहिए। (पृष्ठ २०२,८ ७३)

विद्यालय शिक्षण में अनेक प्रकार की सामग्रियो की आवश्यकता पडती है। उन सामग्रियो का उत्पादन भी कार्यानुभव के द्वारा विद्यालयो एव सस्थाना म होना चाहिए। कहा गया है कि कुछ चुने हुए सस्थान (वैज्ञानिक तथा तकनीकी) पूर्ण स्तर पर उत्पादन करें और कुछ सस्थानो में विद्यालयो एव कालेजो के लिए कार्यशाला एव प्रयोगशाला में काम आनेवाले यत्रो का उत्पादन हो और कुछ सस्थाएँ फर्नीचर, सहायक सामग्री आदि का उत्पादन करें।

छात्रवृत्ति और व्यावसायीकरण

आयोग ने माध्यमिक स्तर पर अनेक प्रकार की छात्रवृत्तियो की व्यवस्था, व्यावसायीकरण के लिए की है। आयाग के शब्दो में—व्यावसायिक विद्यालयो में छात्रवृत्तियों का प्राविधान अधिक है। यह अनुपात सामान्य शिक्षा की छात्रवृत्तियो से अधिक है। इससे आगे विकास के आधार इस प्रकार होने चाहिए १—प्रवेश में उदारता की नीति, २—छात्रवृत्तियो की धनराशि म वृद्धि। (पृष्ठ ११८, ६ ३१)

भारत जैसे देश में अधिकाश व्यक्ति अपने बच्चो को व्यावसायिक शिक्षा इसलिए नही दिला पाते कि उनकी आर्थिक स्थिति इस योग्य नही होती। इसीलिए आयोग ने व्यावसायिक शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियो की मात्रा में उदारता की सस्तुति करके व्यावसायीकरण को सफल बनाने का प्रयत्न किया है।

व्यावसायीकरण उपलब्धियाँ

माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण से अनेक समस्याओ का अत हो जायगा। ये समस्याएँ अभी विकराल हैं। बाद में इनका शमन होगा। आयोग ने बुनियादी शिक्षा के समान ही नौकरियों को प्रोत्साहित नही किया है। देश का प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र की आवश्यकता के लिए कार्य करे और उसके कार्य का हर अश राष्ट्र विकास में योग दे, यही आयोग की नीति है।

व्यावसायीकरण के उपयोग से होनेवाली उपलब्धियाँ इस प्रकार होगी—

१ रोजगार एव शिक्षा का समन्वय सीधा हो जायगा।

२ व्यक्ति की जीवन यापन करने के लिए दफ्तरो की अपेक्षा अपने बाजुओ पर निर्भर करने की क्षमता का विकास होगा।

३ शिक्षा के व्यावसायीकरण से देश की आर्थिक स्थिति सुधरेगी एव जन शक्ति के नियोजन का उपयोग किया जायगा।

४ हर पढे लिखे व्यक्ति को प्रमाण पत्र के साथ-साथ रोजगार दिया जा सकेगा।

५ छात्रो म शिक्षा की साद्देश्यता का दृष्टिकोण विकसित होगा। उन्हें अनुभव होगा कि राष्ट्र निर्माण के लिए उनकी भी आवश्यकता है।

६ माध्यमिक शिक्षा क व्यावसायीकरण स भारतीय परिस्थितियो एव स्रोतो का उचित उपयोग किया जा सकेगा।

७ विज्ञान तथा तकनीको को आधार मानने से आधुनीकरण की दिशा म प्रगति होगी।

इसीलिए आयोग ने स्पष्ट सस्तुति की है—माध्यमिक स्तर की शिक्षा का व्यावसायीकरण कर दिया जाय। और इतने व्यवसायी-पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिये जायें कि माध्यमिक स्तर की कुल सख्या के आधे विद्यार्थी उनमे खप सकें।

वास्तविकता यह है कि माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण नयी योजना नही है, परन्तु देश की वतमान स्थिति का देखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप रोजगार दें। यह तभी सम्भव हो पायगा जब शिक्षा म हर स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा दी जायगी। माध्यमिक स्तर शिक्षा के सभा स्तरो से अधिक महत्वपूण इसलिए है कि इसके पश्चात् ५० प्रतिशत छात्रो को जीवनयापन के लिए प्रयत्न करने पड जाते है। यदि इस अवसर पर उन्हे काम नही दिया गया ता मानव शक्ति का अप व्यय हागा। मानव शक्ति का अपव्यय राष्ट्र की क्षति है। अत माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण आवश्यक है।

•

वाली अनेक विषम एव गम्भीर समस्याओ का समाधान सरलता से किया जा सकता है। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के शिक्षा-सस्थानो में जो समस्याएँ उठती रहती है, उनका सीधा सम्बन्ध छात्र और अभिभावको से प्राय नही रहता है। इनका मुख्य सम्बन्ध अध्यापको के वेतन और वृत्ति-सम्बन्धी कुछ सुविधाओ तक सीमित रहता है। समस्याओ की विविधता और विकरालता तो शिक्षा के उच्च स्तर अर्थात् कालेज और विश्वविद्यालयो म देखने में आती है। कोठारी-आयाग ने कालेज और विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षा-क्षेत्र में उठनेवाली विविध समस्याओ पर बडी गम्भीरता से विचार किया है और जो सुझाव दिये हैं, वे बडे ही महत्वपूर्ण हैं।

कोठारी-आयाग ने विश्वविद्यालयो के स्वरूप, शिक्षा, विकास और उनमें उठनेवाली दैनन्दिन की समस्याओ पर तथा सामान्यत सम्बद्ध कालेजो और उनकी समस्याओ पर पृथक् रूप से विचार किया है।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा

सामान्यत दो प्रकार के विश्वविद्यालय होते है, एक तो वे जो विविध प्रकार के शिक्षण के साथ ही अध्येताओ और अध्यापको के आवास की व्यवस्था भी करते है। इन्ह आवासीय विश्वविद्यालय कहा जाता है। प्राचीन भारत में बडे-बडे विश्वविद्यालय तक्षशिला, नालन्दा, विक्रम, काम्पिल्य प्रभृति आवासीय विश्वविद्यालय ही थे। आधुनिक भारत के विश्वविद्यालयो का गठन बहुत कुछ पश्चिमीय देशों के विश्वविद्यालयों के आधार पर किया गया है। इसलिए उनके गुण और दोष इनमें भी आये है। कोठारी-आयोग के सदस्या के मस्तिष्क में भारतीय विश्वविद्यालयो के गठन पर विचार करते समय, आदर्श पश्चिमीय विश्वविद्यालय ही रहे हैं। उन्होने भारत के आवासीय विश्वविद्यालयो के जो उद्देश्य निर्धारित किये है, वे बडे ही उदात्त एव सार्वभौम हैं। समाज के सर्वांगीण विकास एव उन्नति का दायित्व आयोग ने विश्वविद्यालयो पर ही डाला है। सामान्य शिक्षा से लेकर विविध क्षेत्रो में उच्च स्तर के शोध-कार्यों के साथ ही साथ प्रौढ शिक्षा जैसे अति महत्वपूर्ण कार्य का भार भी इन्ही पर डालने की सिफारिश आयोग ने की है। आयोग ने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के जो आदर्श निर्धारित किये हैं, सक्षेप में वे इस प्रकार हैं

(१) ज्ञान के नये प्रकाश को प्राप्त कर सत्य के अन्वेषण में पूरी शक्ति एव निर्भयता से व्याप्त रहते हुए प्राचीन शास्त्रों के ज्ञान भण्डार की युग के नये आलोक में अनुरूप व्याख्या करना।

(२) जीवन के सभी क्षेत्रों में उचित नेतृत्व का विकास करना एव युवक और युवतियो में बौद्धिक विकास के साथ साथ शारीरिक

और मानसिक उन्नति करते हुए नैतिक मूल्यो के प्रति आस्था जागृत करना ।

(३) कृषि, कला, आयुर्वेद, विज्ञान, तकनीकी, शिल्प प्रभृति समाजोपयोगी क्षेत्रो के लिए सुयोग्य स्त्री-पुरुषो को उपयुक्त प्रशिक्षण देना ।

(४) सामाजिक न्याय और समानता का प्रोत्साहन देत हुए उपयुक्त शिक्षा से सामाजिक वैषम्य और भेद भाव को मिटाना ।

(५) सुसस्कृत व्यक्ति एव समाज के निर्माण के लिए आवश्यक उदात्त विचार और मूल्यो की अध्यापक तथा छात्रो में स्थापना ।

आज के सामाजिक एव शैक्षिक विकास क्रम में कुछ विशिष्ट प्रकार के दायित्व भारतीय विश्वविद्यालयो को अपने ऊपर अवश्य लेने चाहिए । जैसे—

(क) राष्ट्र की बौद्धिक चेतना के विकास के लिए समुचित प्रयत्न ।

(ख) प्रौढ शिक्षा के प्रसार के कार्यक्रम ।

(ग) दुर्वह एव बोझिल सामाजिक रूढिया का परित्याग ।

(घ) शिक्षित जीवन के विकास के लिए देश में केन्द्रो का निर्माण ।

निम्नाकित तीन कार्यक्रमो को आगामी बीस वर्षों में अवश्य क्रियान्वित कर लेना चाहिए—

(क) उच्च शिक्षा के स्तर और अनुसधान कार्यो में मौलिक विकास होना चाहिए ।

(ख) राष्ट्रीय आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए बहुमुखी उच्च शिक्षा का प्रसार होना चाहिए ।

(ग) विश्वविद्यालयो की कार्यविधि तथा प्रशासन-पद्धति में सुधार होना चाहिए ।

कोठारी शिक्षा-आयोग द्वारा निर्दिष्ट ये उद्देश्य और आदर्श ऐसे है, जिनकी देश के बहुमुखी विकास के लिए वस्तुत ही आवश्यकता है । ये आधारभूत बातें हैं । इनके बिना कोई भी विकासशील देश उन्नति के मार्ग पर आगे बढ नही सकता । अत उच्च शिक्षा के विकास एव प्रसार में उक्त सिद्धान्तो की उपेक्षा नही की जा सकती ।

प्रमुख विश्वविद्यालय

कोठारी शिक्षा-आयोग ने कुछ प्रमुख (मेजर) विश्वविद्यालयो की स्थापना के लिए सस्तुति की है । नयी भूमि में, नये सिरे से इनकी स्थापना की आवश्यकता नहीं है । परन्तु वर्तमान विश्वविद्यालयो में से ही लगभग छह को प्रमुख

विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित करने के लिए कहा गया है। इनमें एक आई. आई. टी. और एक कृषि विश्वविद्यालय को सम्मिलित अवश्य करना चाहिए।

१. प्रत्येक प्रमुख विश्वविद्यालय में स्नातक स्तरीय तथा स्नातकोत्तर स्तरीय छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की सुविधा दी जानी चाहिए।

२. प्रमुख विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग में कार्यकर्ताओं की नियुक्ति विशेष छान-बीन के पश्चात् सुयोग्य व्यक्तियों की होनी चाहिए एवं प्रत्येक विभाग में एक परामर्शदात्री समिति की स्थापना अवश्य की जानी चाहिए।

३ यह आवश्यक है कि प्रमुख विश्वविद्यालयों में उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए लगभग पचास अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना हो। भारतीय भाषाओं के विशेष अध्ययन की व्यवस्था भी अवश्य की जानी चाहिए।

सामान्य विश्वविद्यालय

दूसरे सामान्य विश्वविद्यालयों की प्रगति की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रमुख विश्वविद्यालयों के विशिष्ट प्रतिभावान् स्नातकों को प्राध्यापकों के रूप में दूसरे विश्वविद्यालयों में नियुक्त किया जाना चाहिए। इनमें लेक्चरार, रीडर और प्रोफेसरों को विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सुविधाएँ देनी चाहिए। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि इन विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कालेजों के प्राध्यापकों को प्रमुख विश्वविद्यालयों में कुछ समय के लिए अवश्य निवास करना चाहिए। विश्वविद्यालयों एवं कालेजों के विशिष्ट विद्वान् और वैज्ञानिकों को बुलाकर, विशिष्ट क्षेत्रों में अनुसन्धान-कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा विशेषज्ञों की व्याख्यानमालाओं का भी प्रबन्ध करना चाहिए।

सम्बद्ध कालेजों का विकास

कोठारी शिक्षा-आयोग ने जिस प्रकार से सामान्य विश्वविद्यालयों में से छह को प्रमुख स्थान देकर विशिष्ट दिशा में विकसित करने का सुझाव दिया है, उसी प्रकार से कुछ समुन्नत सम्बद्ध कालेजों को भी विश्वविद्यालयों की सीमा से पृथक् स्वतंत्र रूप से विकसित करने का सुझाव दिया है। पहले भी कुछ विशेष प्रकार की संस्थाओं को सीमित अधिकारसम्पन्न विश्वविद्यालय का दर्जा देकर उनके कार्य को प्रोत्साहन दिया जाता रहा है। गुरुकुल कांगड़ी, काशी विद्यापीठ, दिल्ली की जामिया मिल्लिया, अहमदाबाद का गुजरात विद्यापीठ प्रभृति इसी प्रकार की संस्थाएँ हैं। ये स्वायत्त हैं और स्वयं परीक्षाएँ लेकर छात्रों

को उपाधियाँ वितरित करती है। आयोग के सुझाव के अनुसार यदि सम्बद्ध कालेजों का स्वायत्त रूप में विकास किया जायगा तो उनका स्वरूप उक्त संस्थाओं जैसा ही होगा या कुछ भिन्न, इस सम्बन्ध में अभी से स्पष्ट भविष्य वाणी करना सम्भव नही है। यह उनके स्वरूप और कार्य पर निभर करेगा।

तीन श्रेणियाँ

कोठारी शिक्षा-आयोग ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे उपर्युक्त तीन प्रकार की संस्थाओं का सुझाव दिया है। आई० आई० टी० और कृषि विश्वविद्यालय तो पहले से ही अपने विशिष्ट क्षेत्र म स्वतंत्र रूप से काय कर ही रहे है। उनके छात्र और अध्यापक दोनो को ही अन्य विश्वविद्यालयों से अधिक ही सुविधाएँ प्राप्त हैं, कम नहो। इनको प्रमुख विश्वविद्यालय के रूप में विकसित करने पर काय की अधिक सुविधाएँ प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नही। आज भी इनमें चयन के पश्चात् विशिष्ट छात्र ही प्रविष्ट हो पाते हैं। आगे यह चयन और भी कठिन बन सकता है। अन्य प्रकार के प्रमुख विश्वविद्यालयों में मानव सम्बद्ध अनेक अन्य विषयो का विशिष्ट अध्ययन हो सकता है। इनम भी विशिष्ट प्रतिभा के छात्र ही प्रवेश पा सकते है। कुछ सम्बद्ध कालेजो को विश्वविद्यालयो से स्वायत्त रूप में विकसित करने में उनके भूतकाल के अच्छे काय को मान्यता एव प्रोत्साहन देना ही मुख्य प्रतीत होता है। वस्तुत सम्बद्ध कालेजो की स्वायत्तता का क्षेत्र यह होना चाहिए (१) उनमें प्रवेशार्थी छात्रो का चयन (एक निश्चित स्तर और उद्देश्य को दृष्टि में रखकर), (२) प्राध्यापको की नियुक्ति और तरक्की (३) पाठ्य विषयों का निर्धारण (४) अध्यापन-पद्धति, परीक्षा तथा अध्यापन का माध्यम, (५) शोध-काय की दिशाएँ तथा क्षेत्र।

अध्यापन मे सुधार

आयोग ने विश्वविद्यालयो एव कालेजो के अध्यापन में सुधार के लिए भी कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं—

(१) प्रत्येक विश्वविद्यालय एव उच्चस्तरीय कालेज में एक सम्पन्न पुस्तकालय के लिए हर प्रकार का प्रयत्न होना चाहिए। अच्छा पुस्तकालय किसी भी शिक्षण-संस्था का मेरुदण्ड होता है, जिसके पुष्ट आश्रय के बिना छात्र और अध्यापक दोनो ही दुबल रहते हैं।

(२) छात्रों में मौलिक चिन्तन की प्रवृत्ति को जागृत एव प्रोत्साहित करना चाहिए। बिना समझे विषयो को रटकर परीक्षा पास करने की वृत्ति को अनुत्साहित करना चाहिए।

(३) किसी प्राध्यापक को वर्ष के एक सत्र में सात दिन से अधिक अनुपस्थित नही रहना चाहिए।

(४) प्राध्यापको की सभी नयी नियुक्तियाँ शैक्षणिक वर्षारम्भ से पूर्व अवकाश के दिनो में कर देनी चाहिए और किसी प्राध्यापक को सत्र बीच में छोड़ने की अनुमति नही देनी चाहिए।

इसके साथ ही आयोग को यह सिफारिश भी जोर देकर करनी चाहिए थी कि 'सत्र के मध्य में किसी अध्यापक को सेवामुक्त न किया जाय।'

(५) अध्यापन पद्धति में सुधार के लिए वि० अ० आ० के द्वारा एक विशिष्ट समिति की नियुक्त की जानी चाहिए।

(६) सब शैक्षणिक विश्वविद्यालयों मे बाह्य परीक्षाओ के स्थान पर वही के अध्यापको द्वारा छात्रो के कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

(७) परीक्षको को पारिश्रमिक देना बन्द कर देना चाहिए और वर्ष में किसी भी अध्यापक को पाँच सौ उत्तरपुस्तको से अधिक नही दी जानी चाहिए।

अन्तिम सुझाव कुछ अव्यवहार्य सा प्रतीत होता है। किन्तु विश्वविद्यालयीय परीक्षाओ में जब बाह्य पर परीक्षक नियुक्त नही किये जायँगे और वहाँ के अध्यापक छात्रो के कार्य के आधार पर उसका मूल्यांकन करेंगे तो उसके लिए उन्हे अतिरिक्त पारिश्रमिक देने की आवश्यकता नही पडेगी। परन्तु इस सिद्धान्त का, जब तक की यह परीक्षा-पद्धति समाप्त नही कर दी जाती, सर्वत्र पालन व्यवहार्य एव वाञ्छनीय नही है।

शिक्षा का माध्यम

आयोग ने सिद्धान्त रूप में तो विश्वविद्यालय स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओ का माध्यम के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु इसके कार्यान्वियन की अवधि दस वर्ष निर्धारित की है। इसके साथ ही आयोग ने स्नातक कक्षाओ तक ही क्षेत्रीय भाषाओ को माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। स्नातकोत्तर कक्षाओ के लिए तो केवल अग्रेजी को ही माध्यम बनाये रखने की सिफारिश की है। अध्यापको के लिए क्षेत्रीय भाषा के ज्ञान के साथ अग्रेजी का ज्ञान आवश्यक माना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग के मत से अग्रेजी के बिना शिक्षा में पूर्णता सम्भव नही है। कम-से-कम उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए तो अग्रेजी का अच्छा ज्ञान आवश्यक है ही। अग्रेजी के ज्ञान के बिना किसी

भारतीय विश्वविद्यालय में किसी भी विषय की उच्च शिक्षा प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इसीलिए बी० ए० को प्रथम वर्ष में अंग्रेजी को एक ऐच्छिक पाठ्य-विषय के रूप में पढ़ाने की सिफारिश की है।

आयोग ने उच्च शिक्षा पर विचार करते समय भाषाओं के अध्ययन-क्रम में संस्कृत की कहीं चर्चा तक नहीं की है। संस्कृत की उपेक्षा करके न तो हम अपनी क्षेत्रीय भाषाओं को समृद्ध बना सकते हैं और न 'भारतीयता' की ही रक्षा कर सकते हैं। संस्कृत का आश्रय लेकर ही आज तक क्षेत्रीय भाषाएँ पनपती, फूलती और फलती रही है। संस्कृत एक ऐसा स्रोत है, जो सहस्रों वर्षों से सैकड़ों भाषाओं को विपुल शब्द राशि लुटाकर भी 'अक्षय' बना हुआ है और रहेगा। उसकी रचना कुछ ऐसी वैज्ञानिक पद्धति पर हुई है कि उसका शब्द भंडार कभी समाप्त हो ही नहीं सकता। विश्व की ऐसी कोई शिष्ट भाषा नहीं है, जो किसी-न किसी रूप में संस्कृत की अनुजीवी न रही हो।

छात्रों में अनुशासन की समस्या

कोठारी शिक्षा-आयोग का ध्यान छात्रों में अनुशासन की समस्या की ओर भी आकृष्ट हुआ है। इसके समाधान के लिए आयोग ने कुछ सुझाव दिये हैं। यदि विश्वविद्यालयों और कालेजों के अधिकारी उन सुझावों पर ईमानदारी से अमल करें तो कुछ अंशों तक छात्रों की समस्याओं का समाधान प्राप्त किया जा सकता है। आयोग के कुछ सुझाव इस प्रकार हैं —

(१) सभी उच्च शिक्षण संस्थाओं में नव प्रविष्ट छात्रों के मार्गदर्शन के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था या कार्यक्रम होने चाहिए, जिससे वे नये वातावरण में स्वयं को अनुकूल बना सकें। प्रत्येक छात्र को एक शिक्षा परामर्शदाता से सम्बद्ध कर देना चाहिए, जिससे वे अपनी कठिनाइयाँ उसके समक्ष प्रस्तुत कर सकें और वह उन्हें उनके सामान्य जीवन एवं अध्ययन-कार्यक्रम में समुचित सहायता दे सके।

(२) लगभग २५ प्रतिशत स्नातक कक्षाओं के छात्रों को और ५० प्रतिशत स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्रों को छात्रावासों में निवास की सुविधा मिल जानी चाहिए। विद्यालयों में केवल अध्ययन के लिए आने वाले छात्रों के लिए भी अध्ययन-कक्ष होने चाहिए, जिनके साथ जलपान-गृह हो जो अल्प मूल्य पर वस्तुएँ दें।

(३) एक सहस्र छात्र-समूह के लिए कम-से-कम एक परामर्शदाता अवश्य होना चाहिए।

(४) न केवल सत्र काल म अपितु अवकाश के समय मे भी विविध प्रकार के उपयोगी कार्यक्रमो को चलाने के लिए एक छात्र कल्याण समिति होनी चाहिए, जो पूरे समय कार्य करे।

(५) प्रत्येक छात्र छात्रसघ का सदस्य रहेगा, परन्तु छात्रसघ का सगठन इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रत्येक छात्र को किसी-न किसी आयोजन में अवश्य ही भाग लेने का अवसर प्राप्त हो जाय।

(६) छात्रसघ का चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति से विविध छात्र-परिषदो के द्वारा होना चाहिए तथा उन छात्रो को पदाधिकारी नही बनाना चाहिए, जो दो या तीन वर्ष पर्यन्त एक ही श्रेणी में रहे है।

(७) छात्र और अध्यापको की एक सयुक्त समिति की स्थापना होनी चाहिए जो छात्रो की वास्तविक कठिनाइया को समझे और उन्हें दूर करे।

(८) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्रतिवर्ष किसी विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालयों एव कालेजो के छात्रसघो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन आयोजित करना चाहिए।

(९) शिक्षा का सव्यूहन कुछ इस प्रकार का होना चाहिए कि युवक और युवतियाँ शिष्टता के मूल्य को समझें और अपने आचरण में लायें।

(१०) बडी ईमानदारी से छात्रो की शिक्षा-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए और एक शक्ति-सम्पन्न कार्यपालिका की स्थापना होनी चाहिए जो अशान्ति की घटनाओ की रोक-थाम कर सके।

ऊपर की पक्तियो से यह बात स्पष्ट है कि आज के छात्रो की अनुशासन हीनता के कारणो का आयोग ने गम्भीरता से अध्ययन किया है तथा उसे दूर करने के लिए कुछ उपयोगी सुझाव भी दिये हैं, जो वस्तुत महत्वपूर्ण हैं।

हमारे युग और हमारी वर्तमान शिक्षा-पद्धति का एक सबसे बडा दोष यह है कि उसमें कहीं पर भी नैतिक शिक्षा पर ध्यान नही दिया जाता है। घर से विश्वविद्यालय पर्यन्त यह स्थिति एक जैसी ही है। एक शिशु माता की गोद से विश्वविद्यालय की शिक्षा पर्यन्त, शैशव से यौवन की सीढी तक, धोखा, भ्रष्टाचार, छल-कपट, बेईमानी आदि म दूषित वातावरण में श्वास लेते-लेते आगे

बढ़ता चलना है। नैतिक धरातल पर चरित्र का निर्माण और विकास करनेवाले आलोक से वह प्राय. वंचित रहता है। यही कारण है कि वयस्क होने पर या उससे पूर्व भी, झूठ बोलने में, छल-कपट करने में, क्लास में या बाहर धोखा देने में, लड़कियों का पीछा करने में, बड़ों को अपमानित करने में, बिना परिश्रम के परीक्षाओं में अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के अनुचित साधनों के प्रयोग करने में, दूषित कार्य करके भी सदा अस्वीकारने में, हड़ताल या आन्दोलन का दबाव डालकर अन्याय्य बातों को भी मनवाने आदि कार्यों के करने म वह कभी झिझकता नहीं है। शुभ परामर्श भी बहुधा उसे अशुभ प्रतीत होता है। इसलिए छात्रों का सुधार करने से पूर्व उस समाज को ही सुधारने की आवश्यकता है, जो उन्हें दूषित बनाता है और पथभ्रष्ट करता है। आज स्वार्थ और निम्न स्तर की राजनीति का प्रवेश प्रत्येक क्षेत्र में हो गया है। शिक्षा का क्षेत्र भी उससे अछूता नहीं रहा है। अवाछनीय व्यक्तियों ने सरस्वती के मन्दिरों को भी दूषित कर दिया है। नि सदेह, अनुशासनहीनता की समस्या गम्भीर है, परन्तु इसका सम्बन्ध केवल छात्र-वर्ग से नहीं, पूरे समाज से है—लोकसभा से लेकर ग्रामपंचायत तक। सबके परिशोधन की आवश्यकता है। तभी इस गम्भीर समस्या का वास्तविक समाधान प्राप्त हो सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि कोठारी शिक्षा-आयोग ने छात्रों में सार्वभौम रूप से व्याप्त अनुशासनहीनता पर गम्भीरता से विचार किया है एवं उसको दूर करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण परामर्श दिये हैं। आयोग ने स्थिति की गम्भीरता को खूब आँका है, किन्तु उसके कारणों की परीक्षा में वह अधिक गहरायी तक नहीं उतर पाया है। मेरे विचार में किसी भी समस्या के समाधान का हल खोजते समय उसके मूल कारणों की खोज अवश्य करनी चाहिए। अनुशासित माता पिता, अनुशासित परिवार, अनुशासित समाज, अनुशासित शिक्षक, अनुशासित प्रिंसिपल, अनुशासित प्रबंधक, अनुशासित उप-कुलपति, अनुशासित नेतागण, अनुशासित शासक (प्रधान मंत्री, मुख्यमंत्री एवं मंत्रिगण), अनुशासित राज्य-कर्मचारी जब तक अनुशासन-बद्ध नहीं बनते हैं तब तक नयी पीढ़ी में अनुशासन-बद्धता की आशा करना व्यर्थ है।

छात्रों में अनुशासनहीनता की समस्या के समाधान के लिए आयोग ने जो सुझाव दिये हैं, कालेज और विश्वविद्यालयों के प्रबंधक यदि उन्हें पूर्ण रूप से क्रियान्वित करें तो आशा करनी चाहिए कि एक अच्छी मात्रा में स्थिति में सुधार हो सकता है। ●

'नयी तालीम' मासिक का प्रकाशक-वक्तव्य

(न्यूजपेपर रजिस्ट्रेशन ऐक्ट (फार्म न० ४, नियम ८) के अनुसार हरएक अखबार के प्रकाशक को निम्न जानकारी प्रस्तुत करने के साथ साथ अपने अखबार में भी वह प्रकाशित करनी होती है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है। —स०)

(१)	प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
(२)	प्रकाशन का समय	माह में एक बार
(३)	मुद्रक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	नयी तालीम मासिक राजघाट वाराणसी–१
(४)	प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	नयी तालीम मासिक, राजघाट वाराणसी–१
(५)	सम्पादक का नाम	धीरेन्द्र मजूमदार
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	'नयी तालीम मासिक, राजघाट वाराणसी–१
(६)	समाचार-पत्र के संचालकों का नाम-पता	सर्व सेवा संघ (वर्धा) राजघाट वाराणसी (सन् १८६० के सोसायटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था) रजिस्टर्ड न० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

वाराणसी, ता० २९.२.६८

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट
प्रकाशक

शालाओं में सामुदायिक जीवन

के० एस० आचार्लु

यह बडी ही प्रसन्नता की बात है कि शिक्षा-आयोग ने सुझाया है कि "प्रत्येक शिक्षा सस्था को अपने यहाँ सुन्दर सामुदायिक जीवन का विकास करना चाहिए और उसमे अधिकाधिक भाग लेने का तथा उसका सगठन-सचालन करने का पूरा-पूरा अवसर छात्रो को देना चाहिए। शाला की कक्षाओ में, छात्रालयो में, खेल के मैदानो में और अन्य क्षेत्रों में भी इसके लिए पर्याप्त अवसर मिल सकते हैं। उदाहरण के लिए छात्र नौकरो का काम खुद कर सकते हैं। छात्रालयो से सम्बन्धित श्रम-काय कर सकते हैं, कक्षाओ में भी अनेक प्रकार के काम कर सकते हैं। ऐसे कामो से न केवल श्रमनिष्ठा निर्माण होगी, बल्कि काफी आर्थिक व्यय भी बच सकता है। इस बारे में शिक्षा-आयोग ने बुनियादी प्रशिक्षण-सस्थाओं की परम्पराओ की प्रशसा की है, जहाँ नौकर चाकर, रसोइये आदि कोई अतिरिक्त श्रमिक नही रखे जाते हैं। आयोग ने सिफारिश की है कि सभी स्कूल-कालेजो में बुनियादी शिक्षा-सस्थाओं को यह सामुदायिक जीवन पद्धति लागू की जानी चाहिए।

नयी तालीम का सिद्धान्त और व्यवहार, दोनो ने स्कूलों में सामुदायिक जीवन के महत्व पर काफी बल दिया है। यह सामुदायिक जीवन प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण मे औद्योगिक कार्यक्रमो के साथ शिक्षण का एक उत्तम माध्यम है। छात्रो में बौद्धिक, भावनात्मक तथा नैतिक वाछनीय वृत्तियो, सस्कारों, क्षमताओ के निर्माण तथा विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालनेवाली सस्था स्कूल कालेज हैं। इस बात की ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है कि शालाओं का जीवन मुख्यत लोकतन्त्रात्मक है या नहीं, क्योंकि जो समाज लोकतन्त्रात्मक जीवन-व्यवस्था को महत्व देता है, उसके लिए आवश्यक मनोवृत्ति, रुचि तथा प्रवृत्ति पर शालेय जीवन का ही विशेष प्रभाव पडनेवाला है। यदि बचपन से ही बच्चों को शालेय जीवन मे यह सस्कार दिया जाय और अनुकूल अवसर दिये जायें कि वे जिम्मेदारी निभा सकें, अधिकार का सदुविनियोग कर सकें, साथियो की

आलोचना सुन सकें इत्यादि, तो आज के जैसे अव्यवस्थित, पथभ्रष्ट, और कुत्सित राजनीतिक सत्ता की होड के भद्दे दृश्य न देखने पडें। आज स्कूलों में पाठ्यक्रम की पढाई मे, प्रतियोगिताप्रधान प्रवृत्तियो में, खेल के मैदानो में और नौकर-शाही प्रशासन मे ऐसे जीवन की नींव डाली जा रही है, जो आगे चलकर नौकरशाह और तानाशाह बनाये, अनुशासनहीन, गैर-जिम्मेदार और अर्थलोलुप नागरिक तैयार करे।

जीवन में लोकतन्त्र के मूल्य को प्रतिष्ठित करना बडा कठिन है। पाठ पढाना और उसका महत्व समझाना ही पर्याप्त नही है। उससे कुछ नहीं बनता। यदि शाला का सामुदायिक जीवन ही इस प्रकार से सगठित किया जाय कि छात्र प्रत्यक्ष जीवन में लोकतान्त्रिकता का अनुभव कर सकें, तभी छात्रो में सामाजिक तथा लोकतान्त्रिक मूल्य रूढ हो सकते हैं। प्रेम, पडोसी से प्रेम, आपसी सद्भाव आदि सामाजिक गुण तभी आ सकेंगे, जब इनका परस्पर-सम्बन्धो में प्रत्यक्ष अनुभव करने का मौका मिले।

प्रो० एम० एल० जैक्स के अनुसार छात्रो मे सद्गुणो का, सहकारी वृत्ति और मैत्री भावना का विकास छात्रो के नित्य जीवन मे परहित चिन्ता के अभ्यास का परिणाम है। इसके लिए छात्रो को शालेय समाज के हित में अपनी जिम्मेदारी निभाने का, स्वय अनुशासित रहने का सतत अभ्यास करना होगा, उनकी बुद्धि इस ढग से तैयार होनी चाहिए कि वे स्पष्टता के साथ, भावुकता छोडकर तर्कशुद्ध रीति से विचार कर सकें, उनको इस बात का अनुभव मिलना चाहिए कि सहयोग से तथा शुद्ध साधनो से उत्तम लक्ष्य सिद्ध होते हैं। उक्त सज्जन का कहना है कि ये सारे गुण शालेय जीवन की स्वाभाविक विशेषताओ का परिणाम है। शाला की विशेषता यह होनी चाहिए कि "वहाँ आत्मविश्वास का वातावरण हो, सहयोग की पृष्ठभूमि हो, न्यायपूर्ण जीवन हो, जिम्मेदारियो का सुन्दर और व्यापक विभाजन हो, किशोरावस्था की प्रतिभाओं के खिलने के लिए पर्याप्त अवसर हो, स्पर्धा के बजाय सहकार की भावना हो और पढाई की पद्धति विवेकपूर्ण और प्रतिभासम्पन्न हो। ऐसी सहज विशेषता जिस शालेय जीवन में हो और उसे पर्याप्त ज्ञान का आधार मिल जाय तो वहाँ इतनी सहकारिता की भावना निष्पन्न होगी, जो सैकडो व्याख्यानो से भी प्राप्त नहीं हो सकती।" (एम० एल० जैक्स–"माडर्न ट्रेण्डस इन एजुकेशन")

यह दुर्भाग्य की बात है कि आज हमने छात्रो के सामने जिस लोकतान्त्रिक सगठन का नमूना पैदा किया है, वह केवल राजनीतिक ढाँचा है। उसका नित्य जीवन-व्यवहार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहा है, जीवन का प्रमुख अग बनना तो दूर रहा। यही देखने में आता है कि लोकतान्त्रिक पद्धति ससद, विधान-

मण्डल और राजनीतिक पक्षों की बैठकों तक ही सीमित हो गयी है। यदि शालेय जीवन के अविभाज्य अंग के तौर पर लोकतांत्रिक विचार और व्यवहार दाखिल नही होते हैं, तो लोकतंत्र का यह राजनीतिक स्वरूप भी टिकनेवाला नही है। स्कूलों और कालेजों में सेवाप्रधान और लोकतंत्रात्मक मनोवृत्ति का विकास करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए स्कूल-कालेजो को समुदाय बनकर रहना चाहिए; केवल समूह या भीड बने नही रहना चाहिए।

सामुदायिक जीवन के कारण विकास का मार्ग खुलता है, परस्पर स्नेह और सौहार्द की वृद्धि के लिए अवसर मिलता है और अपने साथियों को ठीक से समझने का अच्छा मौका मिलता है। साथी साथ-साथ काम करते-करते एक-दूसरे के साथ अधिक सद्भावपूर्ण होते है, एक-दूसरे के अधिक निकट आते हैं और एक-दूसरे का अधिकाधिक सम्मान करना सीखते है। शालाओं के सामुदायिक जीवन का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम कक्षा की पढाई से भिन्न, अनौपचारिक बैठको और गोष्ठियो का है। वे अन्य उत्पादक कामों की तुलना में किसी प्रकार कम महत्व के नही है। उनसे प्राप्त होनेवाले अनुभव अत्यन्त मूल्यवान हैं। व्यवस्थित रूप से बैठको का आयोजन करके एकसाथ बैठकर चर्चा-विचार करना एक बात है, सहज रूप से रसोई घर के कोने में, पानी की टकी के पास खेल के मैदान में या काम के समय में और ऐसे ही सैकड़ो प्रसगों में अनौपचारिक रूप से साथी मिलते है और चर्चा करते है, यह बिलकुल ही दूसरी बात है। परन्तु ये मिलन और ये चर्चाएँ पारस्परिकता बढ़ाने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं, वास्तविक समाधान के अनोखे अवसर हैं।

पुराणपंथी शिक्षाशास्त्री विश्वास नही कर पाते हैं कि इस प्रकार का लोकतंत्र सम्भव है कि जिसमें सब लोग समान रूप से भाग ले सकें, वह भी शालाओं में व्यावहारिक हो सकता है। उनको शका है कि ऐसा कुछ प्रयत्न होता भी हो तो उसका मूल्य मनोरंजनात्मक कार्यक्रमविशेष से अधिक कुछ हो सकता है। दूसरे कुछ लोगो के सामने प्रश्न है कि क्या छोटे-छोटे बच्चे चर्चा-विचार कर सकेंगे और क्या वे सामुदायिक जिम्मेदारी समझ सकेंगे? ऐसे सब शंकाशील लोगों को जान डूई ने निम्न शब्दो में निरुत्तर कर दिया है कि "आज तक कोई तानाशाह ऐसा नही हुआ—चाहे छोटा हो या बड़ा रहा हो, जिसने अपने समर्थन में यह नही कहा कि हमें प्रजा के बारे में शंका है कि वह राज्य का प्रशासन चलाने योग्य है।...बच्चों में अभिक्रम और विधायक शक्ति का विकास करने का उत्तम उपाय यही है कि उन्हें वही करने दिया जाय। चाहे अधिकार हो या रुचि, दोनो उनका उपयोग और अभ्यास करने से ही आनेवाली बाते हैं।" ("जान डूईस फिलासफी")

स्कूल केवल पढ़ाई करने का ही स्थान नही है, वह एक प्रकार का समाज

है। लोकतंत्र बालिगों के समाज का प्रशासन चलानेवाली मात्र एक पद्धति ही नहीं है, वह एक जीवन-पद्धति भी है, जिसमें सहयोग और सहविचार के माध्यम से सत्ता और सद्गुणों में सहभाग लेने का अवसर सबको मिलता है। कोई कारण नहीं कि बच्चों का समुदाय इस प्रकार के लोकतंत्र को न अपना सके। सामूहिक उत्तरदायित्व, जो कि लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण गुण है, केवल बड़ों की ही बपौती नहीं है। बच्चे सदा ठीक ही चलेंगे, ऐसी बात नहीं है लेकिन उनकी राय भी मूल्यवान है और उनसे भी राय लेना आवश्यक है। यह तो सबका अनुभव है कि औसत बालिग व्यक्ति बहुत उत्तम नहीं होता है।

प्रो० डब्ल्यू० बी० क्यूरी ने इस बात पर बड़ा जोर दिया है कि "बन्धन हीन स्कूल के बच्चों के समुदाय अपनी समझ के अनुरूप किसी भी विषय पर हमारे औसत बालिगों की अपेक्षा अधिक सगत निर्णय ले सकते हैं।" ('दि स्कूल डब्ल्यू० बी० क्यूरी)

जिन लोगों को बुनियादी शालाओं और बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालयों के सामुदायिक संगठनों का अनुभव है, उन्हें इस बारे में कोई शंका नहीं है। बच्चे जिस ढंग से इन बुनियादी शिक्षा संस्थाओं में शालेय समाज का काम चलाते हैं, उनमें कितनी जिम्मेदारी की भावना है कैसा अनुशासन है, किस तरह का भाईचारा है और कितनी समझदारी है, इन सबको प्रत्यक्ष देखने पर ही विश्वास होता है। बुनियादी शाला के जीवन में सामुदायिक जीवन और सामुदायिक संगठन ही प्रमुख तत्त्व है।

लेकिन एक बात निश्चित है। शाला का विकास वास्तविक सक्रिय समुदाय के रूप में करना चाहिए। शालेय समाज के संगठन और कार्य-संचालन का पूरा-पूरा भार विद्यार्थियों पर ही होना चाहिए उसमें कहीं कोई लाग-लपेट नहीं रहनी चाहिए। शाला का स्वायत्त प्रशासन खाली दिखावे की चीज नहीं होनी चाहिए। जाली लोकतंत्र नहीं होना चाहिए। वास्तविक, गंभीर, शैक्षणिक कार्यक्रम होना चाहिए। श्री अर्नेस्ट ग्रीन ने बड़े आग्रह के साथ कहा है कि 'बच्चों को प्रत्यक्ष दिखाइये कि स्कूल का संचालन कैसे होता है। शिक्षा में यदि कोई सार्वभौम मूल्य है तो वह है सभ्य समुदाय के रूप में साथ रहना, रह निवास करना। श्री ए० एस० नील की बातें भी हमारे पुराने शिक्षाशास्त्रियों के लिए अजीब लगेंगी, क्योंकि उन्होंने भी यही बात जोरों से कही है कि शिक्षा में स्वायत्त-शासन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं, सप्ताह भर पाठ्यक्रम के विषयों की पढ़ाई से बढ़कर, एक साप्ताहिक आमसभा का मूल्य कई गुणा अधिक है। यदि प्रत्येक स्कूल में ढंग का वास्तविक स्वायत्त शासन का सिलसिला जारी हो—लेकिन हाँ, वह शिक्षकों के ऊपर पुलिस-कारवाई करने

जैसी बेहूदी चीज न हो—तो नयी पीढ़ी ऐसी तैयार हो सकती है, जो सामाजिक समस्याओं को उच्च कोटि की नैतिकता के साथ सुलझानेवाली है। ('दट ड्रेडफुल स्कूल ए० एस० नील)

यदि बड़ों और छोटों के बीच वास्तविक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं रहा तो शालेय प्रशासन व्यर्थ है। बड़े लोगों के मन में बच्चों के प्रति शंका बनी रहे वे उन्हें सन्देह की दृष्टि से ही देखते रहें तो काम नहीं बनेगा। प्रसंग आने पर बच्चों के अन्दर प्रधान अधिकारी का तथा अन्य कार्यकर्ताओं का डटकर सामना करने की भी हिम्मत और सुविधा होनी चाहिए। जो भी चर्चा हो, ठोस और वास्तविक होनी चाहिए, खाली गपशप नहीं। (डब्ल्यू० बी० क्यूरी)

बच्चों में व्यक्तिगत विकास तथा सामाजिक आवश्यकता दोनों के बीच सन्तुलन रखने की कला तो प्रत्यक्ष जीवन के अनुभवों से ही आ सकती है। सामुदायिक वातावरण यदि हर प्रकार के भय से मुक्त हो, तो निश्चित ही वहाँ मैत्री और सद्भाव का विकास हो सकता है। इससे बालक प्रसन्न रहेंगे अपने प्रति निर्भय और आश्वस्त रहेंगे।

शिक्षक तथा अधिकारियों को बालकों के रक्षक बनना चाहिए लेकिन साथ ही बालकों को खुली छूट भी देनी चाहिए। इससे होगा यह कि बच्चों में परम्परागत अन्धरूढ़िवाद को तोड़ने की हिम्मत आयेगी, बच्चों में सेवा की तथा जिम्मेदारी की भावना जागृत होगी, जिससे वे बड़े होकर समाज की विधायक सेवा करनेवाले बन सकेंगे बजाय इसके कि रूढ़ियों के गुलाम बने रहें।

आज हमारे देश में शाला-कालेजों के अन्दर आये दिन जो अनुशासन हीनता देखने में आती है उसका एक कारण यह भी है कि ठेठ किशोरावस्था से शालेय समुदाय के कामों में छात्रों को वहाँ की सामाजिक तथा शैक्षिक प्रवृत्तियों में सक्रिय योग देने का अवसर नहीं मिलता है।

प्रा० बेकर ब्रोनेल ने अनुरोध किया है कि छात्रों को जीवन में महत्वपूर्ण योगदान देने का मौका देना चाहिए। उनके कथनानुसार चूंकि किशोरों को जीवन की प्रमुख घटनाओं और महत्वपूर्ण प्रसंगों में सक्रिय भाग लेने नहीं दिया जाता है इसीलिए स्कूल-कालेज उनके लिए निराशा और कुण्ठा का जन्मस्थान बन जाते हैं। वहाँ उनकी भावनाओं को सही आधार नहीं मिलता है, उद्दण्डता का शौक चढ़ता है अश्लील शब्दों का प्रयोग सहज पनपने लगता है अमुक काम सिद्धि के लिए उग्र और हिंसापूर्ण व्यवहार करने लगते हैं और ऐसी सब परिस्थितियों के बीच हम अपेक्षा रखे हुए हैं कि ये बड़े होकर महान् लोकतंत्र के समाज-जीवन में बड़ी बड़ी जिम्मेदारियाँ सफलतापूर्वक संभालेंगे। शिक्षा तब तक सफल नहीं हो पायेगी जब तक सहकारमूलक सामूहिक काम का प्रत्यक्ष अनुभव छात्रों को नहीं मिलता और 'जब तक प्रत्यक्ष जीवन प्रसंगों

में, छोटा ही सही लेकिन एक वास्तविक समुदाय बनाकर, मिलजुलकर परस्पर प्रेम और सहकार के साथ काम करने का उन्हें अभ्यास न कराया जाय।"
('दि कालेज एण्ड दि कम्युनिटी")

अल सी० केला और मेरी एल० रैसी अपनी पुस्तक "एजुकेशन एण्ड दि नेचर आफ मैन" में कहते हैं– 'अच्छा जीवन जीना सीखने का उपाय अच्छा जीवन जीना ही है। स्वेच्छा से लोग लोकतन्त्रात्मक, जीवन-पद्धति को अपना सकें इसका उपाय यही है कि उन्हें प्रत्यक्ष उस पद्धति का अनुभव लेने दें, उत्तरदायित्व की वृत्ति सीखने का उपाय यही है कि उन पर उत्तरदायित्व सौंप दिया जाय। यदि छात्रों के सामने सारी बातें पहले से तैयार और बनी-बनायी ही प्रस्तुत की जायें प्रत्यक्ष अनुभव का तत्त्व उनके शिक्षण में से निकाल लिया जाय, केवल आज्ञापालन ही उनका काम रह जाय तो फिर वह कोई जिम्मेदारी उठाना और निभाना कैसे सीख सकेंगे? जिम्मेदारी के साथ जीना सीखने के लिए वैसा जीने का अवसर उन्हें देना चाहिए प्रत्यक्ष अनुभव लेने देना चाहिए।"

इसलिए शिक्षा का आद्य कर्त्तव्य यह है कि छात्रों को सामुदायिक वृत्ति के विकास का अवसर दिया जाय और सहजीवन की कला सिखायी जाय। शिक्षा को चाहिए कि छात्रों को वह इस योग्य बनाये कि वे मानव के जीने योग्य संसार का निर्माण कर सकें। श्री बेन एस० मोरिस पूछते हैं कि क्या शिक्षा सहकारी और बन्धुत्वपूर्ण समाज निर्माण नहीं कर सकती जहाँ मनुष्य का व्यक्तिगत विकास और सामाजिक आवश्यकताएँ, दोनों जीवन के बुनियादी मूल्यों के द्वारा सध सकें जो कि आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है?

हमें स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा न हो कि वे केवल चर्चा विचार करने तक ही सीमित रह जायें, बल्कि वे वास्तविक समस्याओं पर ठोस विचार कर सकें, वे मुक्त चर्चा करके उस पर अमल कर सकें, ऐसा होना चाहिए। यदि छात्र समाज पर पाबन्दी लगा दी जाय कि वे यह सब नहीं कर सकते, प्रत्यक्ष काम करके अनुभव नहीं ले सकते, खुलकर प्रयोग नहीं कर सकते, तो फिर ऐसे समुदायों को 'लोकतान्त्रिक' कहने का कोई अर्थ नहीं है। चर्चा का परिणाम यदि कार्यरूप में परिणत नहीं होता है तो उस चर्चा में वास्तविकता नहीं आ सकती।

इंग्लैंड, अमरीका तथा और भी कई यूरोपीय राष्ट्रों में और हमारे देश के सैकड़ों बुनियादी विद्यालयों में शालेय स्वायत्त प्रशासन का जो प्रत्यक्ष अनुभव आया है उससे यह निःसंदिग्ध रूप से सिद्ध हो गया है कि शालाएँ बालकों तथा किशोरों को जिम्मेदारी के काम निभाने के, सामाजिक वृत्ति तथा स्वानुशासन की भावना का विकास करने के भरपूर अवसर दे सकती हैं। इस कार्यक्रम के लिए न अतिरिक्त धनराशि की आवश्यकता है, न किसी विशेष सुविधा की जरूरत है। आवश्यकता है केवल दृष्टि और इच्छा की। ●

समाज-सेवा : कुछ विचार

राधाकृष्ण

शिक्षा-आयोग के प्रमुख सुझावों में एक यह है कि व्यापक पैमाने पर राष्ट्रीय समाज-सेवा कार्यक्रम लागू किया जाय। इसका कारण यह बताया गया है कि आज शिक्षितों और अशिक्षितों के बीच, बुद्धिजीवियों और जनसाधारण के बीच जो दुर्भाग्यपूर्ण अन्तर आ गया है, वह इससे मिटाया जा सकेगा। समाज-सेवा अच्छी और उपयोगी शिक्षा का एक प्रमुख सहयोगी अंग मानी जाती है। इसलिए यह सुझाव रखा गया है कि समाज-सेवा का कुछ कार्य शिक्षा के आवश्यक विषय के तौर पर सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य बना दिया जाय। इसके समर्थन में यह दलील दी गयी है कि यह चरित्र-निर्माण में, अनुशासन की वृत्ति बढ़ाने में, शरीरश्रम के प्रति आस्था उत्पन्न करने में और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जगाने में सहायक होगा।

इस विषय के सम्यक् परीक्षण के लिए इस कार्यक्रम के कुछ पहलुओं का उल्लेख आवश्यक होगा। ये पहलू हैं :

१. सभी विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीय समाज-सेवा को अनिवार्य बनाना।

२. इस विषय को शिक्षा के अविभाज्य अंग के रूप में आयोजित करना।

३. कार्यक्रम के कुछ पहलू, जैसे—शाला का सामुदायिक जीवन, समाज-विकास के कार्यक्रमों में भाग लेना।

४. सेवा-कार्य उपयोग और सुविधाजनक हो सकने की दृष्टि से कार्यक्रम की अवधि।

अनिवार्यता से सेवा-भाव की हानि

किसी कार्यक्रम को सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य बनाने की कल्पना बड़ी आकर्षक अवश्य लगती है, परन्तु देश भर के सभी स्कूलों और कालेजों में

किसी एक कार्य का सर्वमान्य हो जाना और व्यापक मात्रा में उसे कार्यान्वित कर देना कोई साधारण उपलब्धि नही है। कई अधिनायकवादी राष्ट्रो में भी समाज सेवा अनिवार्य नही है। प्राय एक सुझाव आया करता है कि पाठ्य-पुस्तकें ऐसी होनी चाहिए, जो देशभर में समान रूप से पढायी जायें, और सर्वत्र एक ही पाठ्यक्रम लागू हो। ये सारे सुझाव और ऐसे अन्य कार्यक्रम भी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सुझाये जाते है। लेकिन हमारे देश में विविधता और जटिलता इतनी अधिक है कि शायद ही कोई एक कार्यक्रम ऐसा बन सकता है, जो थोडा-बहुत सुधार कर लेने की छूट देने पर भी सर्वमान्य हो सके। समाज-सेवा को एक अनिवार्य कार्यक्रम बनाने का परिणाम यही होगा कि समाज-सेवा के प्रति विद्यार्थियो की मनोवृत्ति विपरीत हो जायगी। राष्ट्रीय एकता की भावना दबाव से या अनिवार्यता का जोर देकर उत्पन्न नही की जा सकती। यह योजना अव्यावहारिक है, केवल इसलिए नहीं कि इतनी बडी संख्या में इसे लागू करना आसान नही है, बल्कि इसलिए भी कि इतने बड़े पैमाने पर सभी प्रारम्भिक शालाओ म इसे दाखिल करने की पूर्वतैयारी भी पर्याप्त रूप में नही हो पायी है, न इसके लिए आवश्यक साधन सामग्री समाज-विकास योजना मे उपलब्ध है। 'अनिवार्य' शब्द सेवा की भावना और उत्साह को समाप्त कर देता है, और 'राष्ट्रीय' शब्द का इतना अर्थ रह जाता है कि केन्द्र-शासन द्वारा आयोजन बने, केन्द्र से सहायता मिले और केन्द्र ही सारा काम चलाये। वास्तव में कोई भी कार्यक्रम राष्ट्रीय तभी होगा जब वह लोकमानस का प्रतिबिम्ब रूप हो, लोकभावना से उत्स्फूर्त हो।

पिछले कुछ महीनो मे, विशेषतया जिन परिस्थितियो में यह कार्यक्रम लागू किया गया है, उन्हे दुर्भाग्यपूर्ण कहा जायगा। यह सही है कि देशमुख-कमेटी ने ऐसी एक योजना सुझायी थी, परन्तु 'छात्र असन्तोष' के समय उसे जल्दबाजी मे लागू करने से क्षति ही पहुँची है। राष्ट्रीय सेवा ऐसी कोई जादू की छडी नही है, जो छात्र-समाज के सारे रोगो को छू मन्तर से मिटा दे या छात्रो की उस प्रबल शक्ति को राष्ट्र की सेवा की दिशा में मोड दे। शिक्षा एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है, एक कठिन काम है और जब तक शिक्षा नही सुधरेगी, तब तक छात्रो और युवको की समस्या के समाधान की अपेक्षा करना व्यर्थ है। यदि शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का मानवी मूलधन (ह्यू मन इन्वेस्टमेण्ट) मानते हैं, तो राष्ट्रसेवा की भावना को समुचित और उपयोगी शिक्षा का एक आनुषंगिक फल होना चाहिए।

यदि विश्वविद्यालयी शिक्षा में दायित्वपूर्ण नेतृत्व के विकास को और चरित्रनिर्माण को प्रमुख स्थान दिलाना है, तो स्वानुशासन और आत्मनियन्त्रण

का शिक्षण ही उसका साधन हो सकेगा। अनेक शिक्षा-शास्त्रियो का मानना है कि यह शिक्षण तो छात्रो को स्वेच्छा से अपनी रुचि के अनुसार कोई भी समाजसेवा का कार्य चुनने की छूट देने से ही हो सकेगा। इससे छात्र अपनी ही स्वेच्छा से उस कार्य को स्वीकार करेगा और उसके लिए स्वय अनुशासित रहेगा। समाज-सेवा की सफलता की कुजी यही है कि वह कार्य छात्रो द्वारा स्वेच्छा से चुना हुआ हो, दबाव से थोपा हुआ न हो। विश्वविद्यालय के छात्रो को इससे दुहरा लाभ होगा। विद्यार्थी स्वय ही मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक यह विचार कर सकेगा कि कौनसा कार्यक्रम उपयोगी रहेगा, और पूरा विचार करके ही कार्यक्रम को वह अपनायगा। छात्रो के स्वनिर्णय की इस वृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए और उनके निर्णय का आदर करना चाहिए। इस दृष्टि से समाजसेवा का अनिवार्य बनाने के प्रश्न पर गम्भीरता से पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

शिक्षा का अभिन्न अंग बनाना कठिन

हो सकता है कि समाज-सेवा की कार्य-योजना बनाना और उसे कार्यान्वित करना कदाचित् उतना कठिन न हो, परन्तु उसे शिक्षा का अभिन्न अग बनाना अवश्य कठिन है। अधिकाश शिक्षक और प्रशिक्षक कार्यक्रम को महत्व देने के लिए इसे वार्षिक परीक्षा के साथ जोड देंगे। लेकिन ऐसा कदम उठाने से बढकर दुःस्थिति और कुछ नही होगी। दूसरी हानिकर बात है शिक्षको के काम को फौजी अधिकारियो के हाथ में सौप देना। इस कार्यक्रम के शैक्षिक तत्व तो उन योजनाओ के भीतर ही मिलेंगे, जो कार्यक्रम को पूरा करने के लिए ली जायेंगी, और उनमें ज्ञान और जानकारियो का समावेश करके उन्हे अधिक ग्राह्य, ज्ञानवर्धक और एक-दूसरे से सम्बद्ध बनाया जा सकता है। योजनाओ के चयन और नियोजन में छात्रो को बहुत सारा ज्ञान दिया जा सकता है। समस्या को समझने में, समस्या की तह तक जाने मे, विवेचन करने मे, योजना बनाने म और उसके सम्भावित परिणामो के विषय में उन्हे काफी शिक्षण दिया जा सकता है। योजना को कार्यान्वित करने और काम का मूल्याकन करने मे भी शिक्षा होती है और वे टोलियाँ अपने अनुभवो का आदान प्रदान कर सकती हैं। ऐसा कहा जाता है कि इस कार्यक्रम का एक प्रमुख लक्ष्य है—विद्यार्थियो को देश की तात्कालिक प्रमुख समस्याओ के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार करने और समझने के लिए प्रेरित करना। राष्ट्रीय महत्व के सामयिक प्रश्न जैसे, भारत की आर्थिक स्थिति में सुधार, भारत की सांस्कृतिक परम्परा, आधुनिक *भारत की राजनीतिक संस्थाएँ और उनके कार्य, राष्ट्रीय प्रशासन-पद्धति के गुण-*दोष आदि पर भी चर्चा होगी। यदि इन योजनाओ को बनाने की पद्धति लोकतान्त्रिक ढग की हो, और उनको सहकारी पद्धति से अमल में लाने का प्रयत्न

हो, जिसमें शिक्षक और छात्र सबका सहभाग हो, तो शिक्षा की दृष्टि से वह बडा ही लाभदायक होगा। योजना की सफलता का महत्वपूर्ण अग योजना की तैयारी में अन्तर्निहित है, योजना के नियोजन की अवधि में ही नहीं, बल्कि शिक्षा की पूरी अवधि में, जिससे छात्रो का इस कार्यक्रम में आसानी से समजन हो सके, और उन्हे ऐसा न लगे कि पढाई के बीच में यह एक बाधा उपस्थित हो गयी है या एक बोझ आ गया है। गत १५ २० वर्षों का अनुभव यह रहा है कि जीवन मूल्य क्रमश शालेय जीवन तक सहज प्रवाहित नही हो पा रहे है, विश्वविद्यालयो के योजना बना लेने मात्र से और न शालाओ में बनी भावना को बडी उम्र तक बनाये रखने की वृत्ति ही रहती है। शिक्षा काल में मूल्यो कलाओ और वृतियो का निरन्तर अभ्यास शुरू से अन्त तक चलना चाहिए तभी वे स्थायी होंगे और उनका प्रभाव भी रहेगा।

समाज-सेवा का क्षेत्र

सुझाया गया है कि समाज सेवा के साथ निम्न सहायक प्रवृत्तियाँ चलनी चाहिए —१ व्यायाम, २ समाज सेवा और कार्यानुभव ३ सामान्य शिक्षण और ४ सामुदायिक जीवन।

व्यायाम पर तथा शालेय जीवन के समय ही सामुदायिक प्रवृत्तियो के अवसर निर्माण करने पर जोर दिया गया है, यह बहुत उचित है, क्योकि इनसे समाज सेवा की तैयारी हो जाती है। व्यायाम का अपने में ही महत्व है। खेद की बात यह है कि समाज-सेवा को कार्यानुभव का विकल्प मान लिया गया है। यद्यपि कार्यानुभव समाज सेवा का बहुत बडा अश हो सकता है, तथापि इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि समाज-सेवा की योजनाओ और शिविरो में ही कार्यानुभव देना वाछित नही होगा। कार्य कौशल कार्यानुभव का महत्वपूर्ण तत्त्व है। अन्यथा काम की उपलब्धि मन्द होगी, निरर्थक और अनुपयोगी होगी। कार्यानुभव यदि कुशलतापूर्ण होना है तो कालेज जीवन के पूरे समय में उसे जारी रखना होगा, ताकि कुछ-न-कुछ कौशल प्राप्त हो ही। समाज सेवा का शिक्षण देने का उद्देश्य यह नही है कि विकास-योजनाओ में अकुशल श्रमिको के बदले छात्रो को नियुक्त कर लें। श्रमिको की आज कमी नही है। केवल श्रमिको की सख्या ही बढानी है तो यह सारा प्रयास व्यर्थ है, इसका विरोध ही होनेवाला है। योजना में जो धन लगाया जाता है और जो व्यक्ति लगते हैं, उन दोनो का औचित्य सिद्ध होना चाहिए। हमारा मुख्य ध्यान इस बात की ओर होना चाहिए कि सर्वसामान्य कुशलता का ठीक से उपयोग हो सके, प्रत्येक समस्या को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयास हो और वैयक्तिक हितो की ओर से लोगो का ध्यान राष्ट्रीय

हित की ओर मोड़ा जाय। इन सबके लिए केवल परिश्रमालय चलाने से भी कुछ अधिक करने की आवश्यकता है। कई स्पष्ट योजनाएँ सुझायी गयी हैं। इस बात का ध्यान रखना होगा कि उन योजनाओं की स्थानीय आवश्यकता कितनी है। फिर उनमें यह भी देखना होगा कि प्राथमिकता किसे दी जाय। सड़कें बनाना, तालाब खोदना, सिंचाई की सुविधाएँ, क्षेत्रीय विकास, सार्वजनिक सेवाओं का विकास, जंगल बढ़ाना, भूमि का कटाव रोकना, साक्षरता तथा स्वास्थ्य के कार्यक्रम आदि कई काम हैं, जिन्हें ऐसी योजनाओं में शामिल किया जा सकता है। यदि इन योजनाओं को पाँचवें वर्ष तक चलाने का क्रम रखा जाय, तो किसी काम को अधूरा छोड़ जाने का प्रश्न उठेगा नहीं। यह योजना बनाना और अन्त तक काम पूरा करने का दायित्व कालेजों को लेना चाहिए। चूँकि स्कूल की ओर से ही काम की योजना चलायी जायगी, इसलिए कार्यक्रम के बाद स्कूल में वापस जाने पर भी छात्र क्षेत्रीय कार्य का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

इस स्तर पर योजना की विशेष तफसील से चर्चा करना बहुत उपयोगी नहीं होगा। कार्यक्रम को कितनी दृढ़ता से उठाते हैं, उसे कितना समर्थन देते हैं, कालेज के काम के दिनों में क्या-क्या बुनियादी सुधार करते हैं और इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए संगठन के ढाँचे के क्या-क्या परिवर्तन करते हैं, इन बातों पर बहुत कुछ निर्भर है। प्रधान मंत्री को परामर्श देने के लिए बनी हुई तथा शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा नियुक्त अध्ययन-समितियों ने संगठन के तथा आर्थिक प्रश्नों के बारे में कुछ सुझाव जरूर दिये हैं। लेकिन इस स्थिति में जिस बात पर विशेष महत्त्व देना है, वह यह है कि इस कार्यक्रम को लागू करने का तरीका क्या हो, क्योंकि प्रारम्भ में इन्हें लागू करने के जो तरीके होंगे, उनका विशेष प्रभाव होता है। पहले नीति-निर्धारण कर लेना चाहिए और फिर विश्वविद्यालयों को उस नीति के अनुसार चलने का, तथा राष्ट्रीय स्तर पर संकल्प करने का निश्चय करना चाहिए। इस सारे कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का काम आज विश्वविद्यालयों को ही उठाना चाहिए, निम्न कक्षाओं को नहीं। बुनियादी शालाओं और हायर सेकेण्डरी स्कूलों को तो छोटे-मोटे उद्योगों में, विद्यालय-परिवार के संगठन में और विद्यालय के खेत और आँगन को साफ और सुन्दर रखने में ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। आज के आज हमें यह निश्चय करना चाहिए कि हमारी शालाओं में घंटी बजाना, समाचार लाने-ले जाने, कमरे बुहारने जैसे कामों के लिए डी-वर्ग के कर्मचारियों को हरगिज नहीं रखना है। दूसरा काम यह करना चाहिए कि जो-जो व्यक्ति तथा जो-जो संस्थाएँ ऐसी योजनाओं में विशेष रुचि रखती हैं, अनुभव रखती हैं, और आवश्यक पुरुषार्थ कर सकती हैं,

उनको इन कामा में खोचना चाहिए। उन व्यक्तियो और सस्थाओ को अव श्यक आर्थिक तथा व्यवस्था-सम्बन्धी अन्य सुविधाएँ देनी चाहिए। इन सबके उत्तम प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध करना चाहिए। स्नातकोत्तर कक्षाओ के पाठयक्रम में भी इस प्रकार का परिवतन करने पर बल देना चाहिए जिससे अन्यान्य विषयो का पारस्परिक सम्बन्ध जुडे। जैसे विकास योजना के साथ अर्थशास्त्र का समाज विज्ञान के साथ सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओ का समन्वय करना चाहिए। कालेजो तथा विद्यालयो का अभ्यासक्रम अब ऐसा बनना चाहिए कि उनसे समाज-सेवा की भावना परिपुष्ट हो और शास्त्रीय चर्चा भी सामाजिक और राष्ट्रीय हित साधने पर केन्द्रित हो।

गत कुछ वर्षों से सर्वोदय आन्दोलन की ओर से युवको का एक शान्ति सगठन खडा करने का प्रयास किया जा रहा है जिसका नाम तरुण शान्ति-सेना है। उसका प्रारम्भ अनिवाय सैनिक प्रशिक्षण के विकल्प के रूप में हुआ है और उसका उद्देश्य है युवको को स्वानुशासन तथा अहिंसामूल सगठन करने का अवसर मिले। यह युवको के लिए आकर्षक कार्यक्रम रहा है, और जगह जगह ऐसे सगठन खडे भी हुए है। इन लोगो के समय समय पर शिविर होते है जिनमें सामूहिक जीवन का प्रत्यक्ष सेवा-काय का स्वस्थ मनोरजन के साथ वैचारिक ज्ञान का पदार्थपाठ दिया जाता है। इस शान्ति सेना का मूल लक्ष्य अहिंसा की प्रतिष्ठापना तथा संघर्षों का अहिंसक हल खोजना है। इसके साथ ही प्राथमिक उपचार तथा सफाई के कार्यक्रम भी सिखाये जाते है। शिविर मे आनेवाले लोग व्यक्तिगत जिम्मेदारी तथा सामूहिक सहयोगात्मक अनुशासन की वृत्ति सीखते हैं। पिछले वर्ष बिहार के अकालग्रस्त इलाको मे तरुण शान्ति-सैनिको ने अमूल्य सेवा की है। राष्ट्रीय स्तर के शिविरो के माध्यम से तरुणो मे राष्ट्रीय भावना और विशाल दृष्टिकोण का विकास होने में सहायता मिलती है। यद्यपि यह आरम्भ बहुत छोटा है फिर भी मेरा विश्वास है कि समाज-सेवा तथा देश के विकास का विशाल और व्यापक मार्ग प्रशस्त करने म यह प्रयास विशेष सहायक सिद्ध होगा। देश म अनेक प्रबुद्ध शिक्षक है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा के काम कर रहे है। सम्मान और प्रशसा की कामना न रखते हुए मौन सेवा कर रहे है। ऐसे सेवा-कार्यों का समुचित सगठन किया जाय तो राष्ट्रीय स्तर पर समाज-सेवा के सिद्धान्त को स्वीकार करने के लिए बडा अनुकूल मानस निर्माण हो सकता है।

•

उभरता है कि 'सस्कृत क्यो ? आधुनिक परिस्थितियो में जब कि भारतीय विद्यालयो में प्रत्येक छात्र को मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्रभाषा (यदि वह मातृभाषा नही है) तथा विदेशी भाषा अग्रेजी का अनिवार्य रूप से अध्ययन करना पडता है, तो उस पर सस्कृत पढने का अतिरिक्त भार क्यो डाला जाय ? सस्कृत की क्या उपादेयता है ? आखिर पाठ्यक्रम म इसे अनिवार्य स्थान क्या दिया जाय ?

भाषा-शास्त्रियो के मतानुसार सस्कृत की पूर्ववर्तिनी जो मूल भारोपीय भाषा कभी अस्तित्व म रही होगी, पूर्णरूपेण लुप्त हो चुकी है। अत सस्कृत को ही ससार की सब प्राचीन भाषा होने का श्रेय प्राप्त है और ऋग्वेद का ससार का सवप्रथम साहित्यिक कीर्तिस्तम्भ होने का। किसी भी विषय का गम्भीर अध्ययन करने के लिए उसके आरम्भ तथा तदोपरान्तिक विकास को जानने की सहज प्रवृत्ति होनी चाहिए। भारत की ही नहीं, ससार की सभी प्राचीन-अर्वाचीन भाषाओ का सम्बन्ध सस्कृत से रहा है। यह हमारी आधुनिक उत्तर भारतीय भाषाओ की जननी तथा दक्षिण भारतीय भाषाओ की पोषक है। जब हम इन आधुनिक भाषाओ तथा विदेशी भाषा या भाषाओ का अध्ययन करते है तो फिर सस्कृत भाषा, जिसकी प्राचीनता एव महत्ता को विदेशियो ने भी स्वीकार किया एव सराहा है, का अध्ययन क्यो न किया जाय ? इसका ज्ञान ससार की समस्त भाषाओ के जन्म, पोषण एव विकास की कहानी जानने के लिए भी तो आवश्यक है। आज व्यतीत हुए कल की नीवो पर स्थित है और हमारा साप्रत ज्ञान आज तक के सचित अनुभवो का परिणाम है। तो क्या हम आज की महत्ता से चकाचौध हो कर उसे ज म देनेवाले कल की नीवो को तोड दें ? अपने साप्रत ज्ञान से विमुग्ध होकर उन सचित विबोधनो एव अनुभवो को भूल जायँ, जिनसे साप्रत ज्ञान का अस्तित्व स्थिर है ? किसी भी कार्य को सफल बनाने के लिए हम पूवज्ञान की अपेक्षा सदैव रहती है और इसीलिए हमें पूवज्ञान क स्रोत सस्कृत भाषा एव साहित्य को छोडना नही चाहिए।

अग्रेजी साहित्य को छोडकर सस्कृत साहित्य ससार का विशालतम साहित्य है। विश्व की कोई भी प्राचीन भाषा ऐसी नही, जिसका साहित्य सस्कृत-साहित्य की तुलना के लिए प्रस्तुत किया जा सके। यूरोप की सास्कृतिक भाषाओ—ग्रीक और लैटिन के साहित्यो को मिला दिया जाय तो भी सस्कृत-साहित्य उससे कई गुणा अधिक होगा। मनुष्य तथा समय के वज्र प्रहारो को सहन करने तथा बहुत कुछ नष्ट हो जाने के पश्चात् भी जब यह स्थिति है तो हम इसके मूल साहित्य की समृद्धि एव विशालता का अनुमान सहज रूप से कर सकते है। महाकाव्य, खण्ड काव्य, गीति काव्य, नाटक, प्रकरण डिम,

प्रहसन, सट्टक, कथा, आख्यायिका, चरित्र, चम्पू, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, इतिहास पुराण, धर्म, दर्शन, नीति इत्यादि पर उपलब्ध ग्रन्थ संस्कृत-साहित्य की विशालता के परिचायक हैं। साहित्य की जितनी विद्याओं के उदाहरण हमें संस्कृत भाषा के साहित्य में मिलते हैं, उतने शायद ही किसी अन्य भाषा में विद्यमान हो। ऐसे सुंदर, समृद्ध एवं विशाल साहित्य को छोड़ना हितकर नहीं होगा। जर्मन कवि गेटे जब अभिज्ञान शाकुन्तल का अनुवाद पढ़कर आत्मविभोर हो उसका प्रशस्ति-गान कर उठता है तो क्या हम उस साहित्य से विमुख रहें ? उसके अमूल्य रत्नों से अपरिचित रहें ? अभिज्ञान शाकुन्तल तथा गीता और उपनिषदों के अंग्रेजी अनुवाद से जब यूरोपीय लोगों के मन आकृष्ट तथा उसके अध्ययन के लिए प्रेरित न हो उठते हैं, तो हम अपने ऐसे साहित्य का रसास्वाद क्यों न करें ? संस्कृत का भाषागत सौन्दर्य भी अपूर्व है।

संस्कृत हमारे धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की भाषा है। धर्म ऐसा जिसमें समीकरण की वह क्षमता हो कि विरोधी तत्त्वों तक को भी अपने में मिला ले, जिसको विजयी विदेशी शासक अपना लें, जो समस्त संसार में समादृत हो, दर्शन ऐसा, जो सर्वांगीण हो, जिसमें सदसत् द्वैताद्वैत, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक एवं भौतिकवाद तक सम्मिलित हों और जिसका विदेशियों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की हो, संस्कृति ऐसी जो सर्व प्राचीन, प्रशस्त एवं उदार हो। ऐसे धर्म, दर्शन एवं संस्कृति की भाषा को, जो युग-युगों से विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट करती रही हो हम कैसे छोड़ दें ?

दूसरी भाषाओं के समान संस्कृत केवल एक भाषा ही नहीं, वरन् एक अपूर्व ज्ञान का भण्डार है। इसमें हम अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, शिल्पशास्त्र, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद इत्यादि विभिन्न विषयों पर अनेकानेक प्रामाणिक ग्रन्थ मिलते हैं, जो इन विषयों के सम्यग्ज्ञान एवं अनुसन्धान के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारत के प्राचीन इतिहास के ज्ञान तथा निर्माण के लिए भी संस्कृत भाषा का ज्ञान आवश्यक है। हम प्राचीन साहित्य के अध्ययन द्वारा तात्कालिक परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं अपने पूर्वजों के आचार-व्यवहार, धर्म-कर्म, रीति रिवाज जान पाते हैं। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का अध्ययन वैदिक जीवन की झाँकी हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, तो रामायण महाभारत का परिशीलन तात्कालिक परिस्थितियों का परिचय देता है। इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थों एवं सन्दर्भों के अनुशीलन तथा निरूपण से हम विवादास्पद ग्रंथियाँ सुलझाने में सफल हो सकते हैं। अब भारत के प्राचीन इतिहास के

सम्यक ज्ञान एवं निर्माण के लिए संस्कृत के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

संस्कृत अनेक विषयों के सर्वपाक्षिक परिशीलन के लिए भी आवश्यक है। धर्म दर्शन नीति शिल्प संगीत गणित ज्योतिष आयुर्वेद, इत्यादि विषयों के गहन एवं सर्वपाक्षिक अध्ययन के लिए प्राचीन शिलालेखों तथा हस्तलेखों के अध्ययन के लिए तथा मुद्रा विज्ञान के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य है। संस्कृत बिना इन विषयों का अध्ययन सर्वांगीण नहीं बन पाता और इनमें पारंगत होने के लिए संस्कृत की जो महत्ता है वह इन विषयों के विद्वान् अच्छी प्रकार से बता सकते है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के लिए भी संस्कृत आवश्यक है। हम जानते है कि संस्कृत भाषा तथा साहित्य बहुत समृद्ध है। संस्कृत में उपलब्ध साहित्य की विविध विधाओं का आधुनिक भाषाओं के साहित्यों में निवेश कर हम उन्हें भी विशाल एवं समृद्ध बना सकते है और संस्कृत के शब्द ग्रहण कर उनके शब्द भण्डार को अधिक विस्तृत बना सकते है।

संस्कृत में शब्द निर्माण की विचित्र शक्ति है। संस्कृत भाषा तथा उसकी व्याकरण के सम्यक ज्ञान से राष्ट्रभाषा तथा प्रान्तीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में सफल प्रयास हो सकते हैं। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित डा० रघुवीर द्वारा पारिभाषिक शब्दों का निर्माण इस परिकथन का प्रमाण है। आज हम अपनी आधुनिक भाषाओं में विशेषतया राष्ट्रभाषा हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों का निर्माण कर उन्हें अधिक सशक्त बनाना है। हमारे विधान में राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के लिए संस्कृत से शब्द ग्रहण का स्पष्ट निर्देश है। इसलिए हमें संस्कृत से विमुख नहीं होना चाहिए।

प्रायः देखा गया है कि संस्कृत जाननेवाले विद्यार्थी हिन्दी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में अधिक अधिकार रखते हैं। इन भाषाओं पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संस्कृत सहायक होती है।

संस्कृत भाषा ही केवल ऐसी भाषा है जो समस्त भारत को एक सूत्र में बाँधता है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के विषय में जनता में मतैक्य नहीं है परन्तु काश्मीर से कन्याकुमारी एवं असम से सौराष्ट्र तक कोई प्रदेश अथवा जनपद ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें संस्कृत के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा की भावना न हो। संस्कृत हमारे धर्म दर्शन एवं संस्कृति की भाषा है और हमारी राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है। आज जब कि सारे देश में राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत करने के लिए इतने प्रयास किये जा रहे हैं तो इस भावना को उत्पन्न करने वाली संस्कृत भाषा को पाठ्यक्रम में अनिवार्य स्थान दिया जाय ऐसा हमारा निश्चित मत है।

संस्कृत हमें सत्य एवं अहिंसा का सन्देश देती है और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की ओर अग्रसर करती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे भवन्तु निरामया', 'समत्वम एव साधु', इत्यादि अनेक सूक्तियाँ हमें समग्र संसार एवं सब जीव-जन्तुओं के हित में सोचने तथा कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। यह ऐसी भाषा है जो सबको सत्य, अहिंसा, समानता, बन्धुत्व एवं शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व का पाठ पढाती है। आज मानवता को जीवन म इन्ही मूल्यों की आवश्यकता है।

संस्कृत एशिया तथा यूरोप के देशों के साथ हमारी सांस्कृतिक शृंखला के रूप में है। मध्य एशिया, साईबेरिया, मंगोलिया, चीन, तिब्बत, जापान इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, अरब, ईरान तथा अफगानिस्तान के साथ संस्कृत का किसी-न-किसी रूप में या किसी-न किसी समय पर प्रभाव एवं सम्बन्ध रहा है। अब यूरोप तथा अमेरिका में भी इसका अध्ययन एवं प्रसार होने लगा है। भारतीय भाषा तथा परिवार के लोग इसके महत्व को समझकर जब सब देशों में इसके अध्ययन में तत्पर हैं तो हम भारतवासी इसका अध्ययन छोड दें यह एक विडम्बना-सी लगती है। विदेशों में संस्कृत के प्रभाव एवं प्रसार से एक सद्भावना उत्पन्न होती है। उस सद्भावना को सर्वव्यापी बनाने के लिए भी हमें संस्कृत का अधिकाधिक अध्ययन, प्रचार एवं प्रसार करना चाहिए।

संस्कृत भाषा का अध्ययन इसकी अमूल्य निधियों को अन्य भाषाओं में अनूदित कर संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने की दृष्टि से भी वाञ्छनीय है। इससे संस्कृत न जाननेवालों को भी लाभ होगा और अनुवादक यश एवं अर्थ का अर्जन भी करेगा।

संस्कृत ग्रीक तथा लैटिन की भाँति मृत भाषा नहीं है। इसका हमारे जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिन्दुओं के सभी संस्कार इस भाषा के प्रयोग से ही सम्पन्न होते हैं। आज भी इस भाषा को पढने, लिखने, समझने तथा बोलनेवाले विद्यमान हैं। आज भी इस भाषा में क्रिया-कलाप चलते है, जो नाटक खेले तथा रेडियो से प्रसारित किये जाते है। इसमें पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं और नव-साहित्य निर्माण होता है। यह एक जीवित और आधुनिक भाषा है जिसका अध्ययन दूसरी भाषाओं के समान आवश्यक है।

अतः इस सम्बन्ध में कोठारी-कमीशन की संस्तुतियों की हमें अवहेलना करनी चाहिए।

शिक्षा-योजना तथा उपलब्ध मानव-साधन

द्वारिका सिंह

सभी स्तरो पर भारतीय शिक्षा के सिद्धान्त निरूपण तथा व्यावहारिक प्रक्रिया की रूपरेखा निश्चित करने के निमित्त कोठारी शिक्षा आयोग का गठन सन् १९६४ में किया गया। आयोग ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट सुझाव प्रस्तुत किये है कि शिक्षा के लिए उपलब्ध भौतिक साधनो तथा मानव-साधनो का राष्ट्रीय कल्याण के निमित्त किस प्रकार प्रयोग किया जाय।

नामांकन सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति के सम्बन्ध में आयोग की संस्तुति है कि आगामी बीस वर्षों के अन्तर्गत —

(क) प्रत्येक बच्चे के लिए कम से-कम सात वर्षों की अवधि की अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाय तथा निम्न माध्यमिक शिक्षा का यथासाध्य अधिकाधिक विस्तार किया जाय।

(ख) प्रशिक्षित जन-शक्ति की आवश्यकता तथा समुचित स्तर निर्वाह को ध्यान में रखते हुए इच्छुक तथा सुयोग्य छात्रो के निमित्त उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयी शिक्षा की व्यवस्था की जाय। साथ ही आर्थिक दृष्टि से विपन्न छात्रो को समुचित सहायता दी जाय।

(ग) व्यावसायिक, प्राविधिक एव जीवकोपार्जन सम्बन्धी शिक्षा पर बल दिया जाय और कृषि और उद्योग के विकास के लिए आवश्यक प्रवीणता प्राप्त व्यक्ति तैयार किये जायें।

(घ) प्रतिभा की पहचान तथा उसके पूर्णतः विकास में सहायता की जाय।

(च) सामूहिक निरक्षरता को दूर किया जाय, तथा वयस्क शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाय।

(छ) शैक्षिक सुविधाओ में समानता प्रदान करने का प्रयास किया जाय।

माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा में नामांकन नीति —

(क) पिछली तीन योजनावधियो मे माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा की माँग बहुत बढ़ी है और भविष्य में और अधिक होने की सम्भावना है। इस प्रकार इसका लक्ष्य बहुत ऊँचा हो जायगा, जो अपने देश के धन, जन तथा साधनो से पूरा नही किया जा सकता। अत उच्चतर माध्यमिक तथा विश्वविद्यालयो में कुछ चुने हुए योग्यतर व्यक्तियो के ही प्रवेश की नीति काम में लायी जानी चाहिए।

(ख) माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा के लिए सक्षम इच्छुक सभी छात्रों के लिए शिक्षा की व्यवस्था निकट भविष्य में नही की जा सकती, क्योंकि अपने साधन सीमित हैं। ऐसी स्थिति म इस लक्ष्य की पूर्ति का प्रयास करत हुए कम से-कम विशेष प्रतिभा-सम्पन्न छात्रो की शिक्षा की व्यवस्था तो कर ही देनी होगी। ऐसे छात्रो के आर्थिक व्यवधान छात्रवृत्तियाँ देकर दूर किये जायें।

सुयोग्य शिक्षको की उपलब्धि, भौतिक साधन तथा वित्त इत्यादि कुछ ऐसे तत्त्व है, जिनके अभाव में किसी भी शिक्षा प्रणाली का स्वाभाविक विस्तार अवरुद्ध हो जाता है। जनता की माँग के दबाव के कारण इन तत्त्वो की अनिवार्यता की शर्त में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। देश के महान कल्याण के निमित्त इन छोटे-छोटे प्रलोभनो से बचना चाहिए।

जीविका के उपलब्ध साधन शैक्षिक सुविधाओ के प्रसार की योजना के उत्तम आधार है। तीन बातो को दृष्टि में रखकर इसे समझना है

१ जीविका के विभिन्न साधनो में नियुक्त होनेवाली जनसख्या के अनुमान को सदैव सकलित आँकडो के आधार पर अद्यतन बनाये रखना चाहिए।

२ उत्पादित जन शक्ति के गुण पर भी यथेष्ट बल दिया जाना चाहिए।

३ शैक्षिक सुविधाओ के प्रसार के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय विभिन्न जीविका-साधनो में जन-शक्ति की आवश्यकता ही एकमात्र कसौटी नही होनी चाहिए।

प्राक्कलन (इस्टीमेटस) का शैक्षिक तात्पर्य—राष्ट्रीय आवश्यकता, जीविका के विभिन्न साधनों तथा जन शक्ति के उपयोग के सम्बन्ध में प्राक्कलन तैयार करने का तात्पर्य यह है कि —

(क) यदि बड़े पैमाने पर शिक्षितो की बेकारी की समस्या से बचना है तो सामान्य माध्यमिक तथा उच्चतर शिक्षा के अनियोजित एव अनियन्त्रित विस्तार को रोकना होगा।

(ख) माध्यमिक शिक्षा के औद्योगीकरण के निमित्त विशेष और जोरदार प्रयास करना होगा तथा विश्वविद्यालय स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का विकास करना होगा।

(ग) राज्य तथा राष्ट्र, दोनो स्तरो पर ऐसी सस्थाओ की व्यवस्था करनी होगी जो राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा विभिन्न व्यवसायो के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियो के अनुपात को सतुलित रखें, जिनमें यह आश्वासन रहे कि प्रत्येक व्यवसाय के लिए सुप्रशिक्षित कार्यकर्ता प्राप्त होंगे तथा उन्हे योग्यतानुसार काम मिल जायगा।

राष्ट्रीय स्तर पर योजना-आयोग एक ऐसी स्थायी समिति का निर्माण करे जो शिक्षित जन-शक्ति तथा राष्ट्रीय आवश्यकता का सतत अध्ययन करती रहे तथा समय-समय पर एतत्सम्बन्धी अपनी नीति तैयार करती और दुहराती रहे।

राज्य स्तर पर भी वैसी ही समिति रहे, जो राज्य के आवश्यकतानुसार वही सब काय करे, जो उपर्युक्त समिति राष्ट्रीय स्तर पर करे।

प्रत्येक स्नातक को डिग्री या डिप्लोमा के साथ जीविका भी मिले।

अभीष्ट की प्राप्ति के लिए हमें राष्ट्र, राज्य तथा जिला स्तर पर ऐसी समन्वित योजनाएँ कार्यान्वित करनी होगी, जिनके लक्ष्य होंगे—(क) जन्म लेनेवालो की सख्या प्राय आधी हो जाय, (ख) जीविकाजन के क्षेत्र का विस्तार हो तथा (ग) युवको को विशेष व्यवसाय में प्रशिक्षित करनेवाली शिक्षा की व्यवस्था हो।

भारतीय जन-समुदाय वतमान की विभूतियों से बहुत हद तक वचित रह कर अपने परम्परागत कृषि, गृह-उद्योग, पशु-पालन प्रभृति व्यवसायो में आँखें बन्द कर लगा हुआ है। उसके पास अद्यतन ज्ञान का प्रकाश नही कि वैज्ञानिक अनुसधानो का ज्ञान देख-समझकर उनसे लाभ उठा सके। दूसरी तरफ पढ़े लिखे लोग हैं। वे अपनी जीविका के लिए कुछ-न-कुछ व्यवसाय अपनाये हुए है। उनकी चारित्रिक विशेषता हो गयी है, शरीर-श्रम से परहेज।

अत हमें जहाँ पहली श्रेणी के व्यक्तियो के लिए ज्ञानाजन की परिस्थिति उत्पन्न करनी होगी, वहाँ दूसरी श्रेणी के साक्षरी ज्ञानसम्पन्न जन-समुदाय के लिए छोटे-मोटे उत्पादक उद्योगो में प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी होगी।

इस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए निम्नलिखित कायक्रम निश्चित हों

१ प्रारम्भिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक शिक्षा प्रक्रिया में उत्पादन का समावेश।

२ सभी स्तरों तथा सभी प्रकार के कामो में लगे शिक्षित व्यक्तियों में श्रम निष्ठा का प्रादुर्भाव।

३ मस्तिष्क से काम करनेवालो के लिए लघु उद्योगों में प्रशिक्षण की व्यवस्था, ताकि अपने अवकाश के क्षणो में वे उत्पादक कार्य कर सकें।

४ राष्ट्र तथा राज्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर विभिन्न फैकल्टीज में नामाकन की व्यवस्था।

५ बड़े-बड़े कारखानो का प्रयोगशाला के रूप में उपयोग।

६ तकनीकी शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों को काम दिलाने का आश्वासन।

७ तकनीकी शिक्षा पाने के अभिलाषियों के लिए उसकी व्यवस्था।

८ समुदाय के कल्याणाथ समुदाय की सहायता एव सहयोग से योजना-निर्माण। ●

आयोग द्वारा संस्तुत मूल्यांकन का नया कार्यक्रम

डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी

लिखित परीक्षा के विरुद्ध विगत कई वर्षों से बहुत कुछ लिखा-पढ़ा जाता रहा है। शिक्षा के बिभिन्न आयोगों और समितियों ने लिखित परीक्षा के गुण-दोषों का पर्याप्त विवेचन किया है। मुदालियर-कमीशन ने भी परीक्षा-प्रणाली में सुधार के लिए अनेक व्यावहारिक सुझाव दिये हैं, जिनके परिणामस्वरूप परीक्षा-प्रणाली मे सुधार के अनेक प्रयास हुए है। मूल्याकन के एक नये सुधार-आन्दोलन ने जन्म लिया है जिसको देश में अधिकाधिक स्वीकृति मिली है।

शिक्षा-आयोग ने भी अपने प्रतिवेदन में मूल्याकन के लिए एक समूचा अध्याय दिया है। आयोग लिखता है—'मूल्याकन सतत प्रक्रिया के रूप में शिक्षा की समग्र प्रणाली का अभिन्न अग है और शैक्षिक लक्ष्यो से उसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह विद्यार्थी की अध्ययन-पद्धति और अध्यापक की शिक्षण-विधियों पर अत्यधिक प्रभाव डालता है और इस प्रकार यह शैक्षिक योग्यता की जाँच करने में ही सहायता नही करता, बल्कि शिक्षा के गुणात्मक स्तर को भी ऊँचा उठाने में सहायक होता है। इसीलिए मूल्याकन की विधियाँ उपयुक्त, वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय और व्यावहारिक होनी चाहिए।'

अत, परीक्षा-पद्धति में सुधार करने और मूल्यांकन के कार्यक्रम को प्रभाव-पूर्ण बनाने के लिए आयोग ने निम्नांकित सुझाव दिये हैं :—

१—मूल्याकन के नवीन दृष्टिकोण का प्रयोजन होगा लिखित परीक्षा-पद्धति में सुधार, जिससे वह छात्र को शैक्षिक उपलब्धियो को मापने का विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ साधन बन सके, और छात्रो के विकास के उन महत्वपूर्ण पहलुओं को मापने के लिए, जिनको लिखित परीक्षा द्वारा माप नहीं सकते, विभिन्न शैलियो की खोज। (६–६५–६८ पृष्ठ, २४३-२४४)

२—निम्न प्राथमिक स्तर—इस स्तर पर मूल्याकन का लक्ष्य होगा छात्रो

की आधारभूत कुशलताओ की उपलब्धियो में सुधार और उनमें सम्यक आदतों और दृष्टिकोणा के निर्माण मे सहायता करना। (९–६९, पृष्ठ २४४)

३—उच्चतर प्राथमिक स्तर—इस स्तर पर आन्तरिक परीक्षा के रूप में लिखित परीक्षाओ के अतिरिक्त मौखिक तथा निदानात्मक परीक्षाओ का प्रयोग किया जाय। बालक के विकास अथवा बढोत्तरी की जाँच के लिए सरल सचित अभिलेखपत्रो (क्यूमुलेटिव रेकार्डस) का क्रमश प्रयोग किया जाय। (९ ७१)

४—प्राथमिक स्तर की समाप्ति पर बाह्य परीक्षा होनी चाहिए। राज्य मूल्याकन परिषद द्वारा निर्मित सरल, किन्तु सुघरे हुए मानव टेस्टो के आधार पर जिला शिक्षा अधिकारी जिले के समस्त स्कूलों की परीक्षा लें, जिससे अन्तर विद्यालय समान स्तर-उपलब्धि की जाँच हो सके। प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति पर छात्रो को सर्टिफिकेट भी दिये जाय। इस बाह्य परीक्षा के अतिरिक्त छात्र वृत्ति प्रदान करने के लिए अथवा विशेष प्रतिभा की खोज के लिए विशेष परीक्षाएँ ली जायँ। (९ ७४, पृष्ठ २४५)

५—बाह्य परीक्षाओ में सुधार—प्रश्न प्रत्र बनानेवालो की योग्यता में वृद्धि कर प्रश्न पत्र के प्रश्नो को यथाशक्य वस्तुनिष्ठ बनाकर प्रश्नो की प्रकृति मे सुधार कर जाँचने की विधि को अधिक वैज्ञानिक बनाकर बाह्य परीक्षा मे सुधार किया जाय।

६—प्राथमिक अथवा माध्यमिक परिषद् परीक्षा के अन्त में जो प्रमाण-पत्र दे, उनमें छात्रो द्वारा विभिन्न विषयो मे उपलब्ध अक दिये जायँ परन्तु वह पूरी परीक्षा में पास या फेल है, यह न लिखा जाय। विद्यालय की आन्तरिक परीक्षा और अभिलेखो, प्रपत्रो के आधार पर छात्र के मूल्याकन का प्रमाण-पत्र भी परिषद् द्वारा प्रदत्त प्रमाण-पत्र के साथ सलग्न किया जाय (९ ८० ८१, पृष्ठ २४६ ४७)।

७—प्रयोगात्मक विद्यालयो की स्थापना—कुछ ऐसे प्रयोगात्मक विद्यालयो की स्थापना की जाय जिन्हे अपना पाठ्यक्रम बनाने अपनी पाठ्यपुस्तकें निर्धारित करने, मूल्याकन के लिए अपनी प्रणालियों का प्रयोग करने और कक्षा १० के अन्त में स्वय अपनी परीक्षा लेने का अधिकार हो। विद्यालय शिक्षा परिषद इन प्रयोगात्मक विद्यालयो की सस्तुति पर छात्रो को प्रमाण-पत्र प्रदान करे। विद्यालय परिषद् द्वारा नियुक्त समिति इस प्रकार के स्कूलो की एक सूची बनाये, जिसमे अनुभव के उपरान्त परिवर्तन और परिवर्धन किया जाय। (९ ८२ ८३ पृष्ठ २४७)।

८—आन्तरिक परीक्षा पद्धति—आन्तरिक परीक्षा अधिक व्यापक हो और

इसके द्वारा छात्र के सभी पहलुओ की, उनकी भी, जिनकी जाँच बाह्य परीक्षा से नही हो सकती, जाँच हो। बाह्य परीक्षाओ के साथ-साथ आन्तरिक परीक्षाओ को भी प्रमाण-पत्र देने का आधार बनाया जाय।

आन्तरिक जाँच के लिए विभिन्न रीतियो का प्रयोग किया जाय। जैसे—निरीक्षण, शिक्षक-निर्मित परीक्षण (टेस्टस) मौखिक और प्रयोगात्मक परीक्षाएँ, रुचियो, रुझानो, क्षमताओ और कौशलो आदि की जाँच के लिए प्रमाणीकृत परीक्षण (स्टैण्डड टेस्ट)।

आयोग द्वारा संस्तुत मूल्याकन की इन विधियो का यदि अवलम्बन किया जायगा तो नि सन्देह छात्रो का मूल्याकन अधिक वस्तुनिष्ठ और उपयुक्त हो सकेगा और यह भी सम्भव है कि उनके उन पक्षो की भी जाँच हो जाय जो अब तक निबन्धात्मक लिखित प्रणाली द्वारा नही हो पाती थी। आयोग ने आन्तरिक परीक्षा पद्धति पर जोर देकर मूल्याकन के क्षेत्र में एक प्रगतिपूर्ण कदम उठाया है, क्योकि इससे छात्रो के पूरे वर्ष भर के काम का मूल्याकन होगा। अत वे परीक्षा के समय रट रटाकर किसी तरह परीक्षा पास करने के स्थान पर पूरे वर्ष पढने की चेष्टा करेंगे। इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव छात्रो के अनुशासन पर भी पडेगा।

ये संस्तुतियाँ अपने में महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण संस्तुति है प्रयोगात्मक विद्यालयो द्वारा अपनी परीक्षाएँ लेने की संस्तुति। प्रत्येक राज्य में ही नही, प्रत्येक जिले में, इस प्रकार के प्रयोगात्मक विद्यालयो को अवसर दिया जाय ऐसी संस्तुति आयोग ने की है। इस संस्तुति के कार्यान्वयन से परीक्षा प्रणाली में विकेन्द्रीकरण की नीति का प्रवेश होगा, जो एक प्रगतिपूर्ण कदम होगा। जितनी जल्दी हो सके इस संस्तुति का कार्यान्वयन हो, क्योकि यह अध्यापको में विश्वास नीति की परिचायक है, जिसकी आज बडी आवश्यकता है। इससे हमारा अध्यापक अपनी खोयी हुई गरिमा को प्राप्त कर सकेगा और इसका प्रत्यक्ष प्रभाव अनुशासन पर पड़ेगा। इसी प्रकार हाईस्कूल के प्रमाण पत्र में उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण न लिखकर केवल विषयो में प्राप्त अक लिख देने की संस्तुति भी महत्वपूर्ण है और इसका तत्काल कार्यान्वयन होना चाहिए।

शिक्षा आयोग ने अपने प्रतिवेदन म शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान द्वारा प्रचारित मूल्याकन प्रणाली को अपनाने की सिफारिश की है। वैसे तो मूल्याकन के लिए पूरे देश के लिए एक समान मूल्याकन पद्धति विकसित करने की चेष्टा उतनी ही गलत है जितनी एक समान पाठ्यक्रम अथवा पाठ्यपुस्तकें बनाने की बात। परन्तु इस संस्थान ने जो नये प्रकार के टेस्ट्स बनाये है उनमें अनेक तो उतने मूल्य के भी नहीं है, जितने मूल्य के कागज पर उन्हें लिखा गया है। उनमें

से कुछ तो दूषित और व्यर्थ भी हैं। आयोग को इस ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए था।

आयोग ने बाह्य परीक्षा के सुधार पर बल दिया है, परन्तु उसकी संस्तुतियों का पलड़ा बाह्य-परीक्षा के महत्व को कम करने की अपेक्षा उसको बढ़ाने की ओर अधिक झुका है। नहीं तो आयोग प्राइमरी के अन्त में जिलेभर में एक बाह्य-परीक्षा के आयोजन की संस्तुति न करता। आवश्यकता बाह्य-परीक्षा के महत्व को समाप्त करने की है। आज तो अध्यापक कोर्स की पुस्तकें न पढ़ाकर केवल बाह्य-परीक्षा में उत्तीर्ण होने की दृष्टि से पढ़ाता है। अधिकांश छात्र न पाठ्यपुस्तकें पढ़ते हैं और न अध्यापक के शिक्षण का ध्यान रखते हैं। वे तो केवल 'गेस पेपर्स' पढ़कर परीक्षोत्तीर्ण होने की सोचते हैं। अभिभावक अपने बच्चों के शारीरिक और मानसिक विकास की चिन्ता न करके केवल उनके बाह्य परीक्षा में उत्तीर्ण होने की बात को ही महत्व देते हैं। आज के अनुचित साधनों के प्रयोग के मूल में और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से छात्रों को भ्रष्टाचार सिखाने में बाह्य-परीक्षा प्रणाली का ही हाथ है। आज हमारे पूरे शैक्षिक जीवन पर इसीका नियंत्रण हो गया है। आयोग को स्पष्टतः इस नियंत्रण के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए था, जैसा उसने नहीं किया है। उसने आन्तरिक परीक्षाओं द्वारा और अभिलेखों द्वारा बालक के समस्त व्यक्तित्व को स्कूल के भीतर ही जाँचने की सिफारिश तो की है परन्तु एकरूपता और सादृश्य के नाम पर बाह्य-परीक्षा प्रणाली को समानान्तर धारा को अक्षुण्ण गति से बहते रहने की संस्तुति कर, एक ऐसी मनोवृत्ति का परिचय दिया है, जिसे स्तुत्य नहीं कहा जा सकता। संभवतः रूस के प्रभाव से वह बच नहीं सका है।

बाह्य-परीक्षाओं के महत्व को कम करने का एक ही मार्ग है। वह यह कि नौकरी देनेवाली संस्थाएँ चाहे वे सरकारी हों अथवा गैर-सरकारी, अपनी परीक्षाएँ स्वयं लें और शिक्षा-परिषद अथवा विश्वविद्यालय के प्रमाण-पत्रों को नौकरी प्राप्त करने की आवश्यक शर्त न माना जाय। आयोग ने इस प्रकार की स्पष्ट संस्तुति नहीं की है। और जब तक यह नहीं किया जाता तब तक न तो बाह्य-परीक्षाओं के महत्व में कोई कमी होगी और न अध्यापक की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। अध्यापक की आज की अप्रतिष्ठा का मूल कारण यही कि छात्रों के मूल्यांकन में उसका कोई हाथ नहीं रह गया है। ●

शिक्षा-आयोग की महत्वपूर्ण संस्तुतियाँ

शिक्षण और राष्ट्रीय लक्ष्य

१. शिक्षण में जिस अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक सुधार की आवश्यकता है, वह है शिक्षा में परिवर्तन करना और उसे जीवन के साथ इस तरह सम्बद्ध करना, जिससे वह जनता की भावनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करे तथा इस प्रकार राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का वह शक्तिशाली यन्त्र बन सके। इस उद्देश्य के लिए शिक्षण को इस प्रकार विकसित करना चाहिए, जिससे वह उत्पादक और उत्पादक शक्ति को बढ़ा सके, सामाजिक और राजनीतिक एकता की प्राप्ति कर सके, लोकतन्त्र को शक्तिशाली बना सके, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ा सके और सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित कर सके।

शिक्षा और उत्पत्ति

२ उत्पत्ति के साथ शिक्षण को सम्बद्ध करने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम आवश्यक हैं।

(१) विज्ञान का शिक्षण—स्कूल की पढ़ाई में विज्ञान का शिक्षण एक अनिवार्य अंग होना चाहिए और बाद में विश्वविद्यालय-स्तर पर सभी पाठ्यक्रमों का एक अंग होना चाहिए।

(२) कार्यानुभव—सभी प्रकार के शिक्षण में कार्य का अनुभव उसके अनिवार्य रूप में शामिल होना चाहिए।

(३) कार्य के अनुभव को तकनीकी और औद्योगीकरण के साथ मिलाने का पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिए और उत्पादन की प्रक्रिया में विज्ञान का उपयोग होना चाहिए, जिसमें कृषि भी सम्मिलित है।

(४) व्यावसायीकरण—माध्यमिक शिक्षण में उत्तरोत्तर व्यावसायीकरण

होना चाहिए और उच्चतर शिक्षण में कृषि और तकनीकी शिक्षण पर आज की अपेक्षा अधिक जोर दिया जाना चाहिए ।

सामाजिक और राष्ट्रीय एकता

३ सामाजिक और राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति शैक्षणिक पद्धति का एक आवश्यक अंग है । राष्ट्रीय चेतना और एकता को दृढ बनाने के लिए निम्न-लिखित उपाय करने चाहिए

(१) सार्वजनिक स्कूल—शिक्षण के लिए सार्वजनिक स्कूल की पद्धति राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार करनी चाहिए और उसे क्रमिक रूप में अमल में लाने के लिए बीस वर्षीय कार्यक्रम बनाना चाहिए ।

(२) सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा—छात्रों के लिए सभी स्तरों पर सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा अनिवार्य होनी चाहिए । हर शिक्षण संस्था को अपने ढंग का सामाजिक जीवन विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए और स्कूल कालेजों में छात्रावास और खेल के मैदानों में छात्रों से आवश्यक काम कराना चाहिए ।

(३) प्राइमरी से लेकर अंडरग्रेजुएट तक शिक्षण में सर्वत्र छात्रों को सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कामों में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए ।

(४) एन० सी० सी० का कार्यक्रम चौथी पंचवर्षीय योजना के अंत तक जारी रखना चाहिए । अंडरग्रेजुएट स्तर तक लगभग ६० दिन के शिक्षण का पूरा कार्यक्रम चलाने का प्रयत्न करना चाहिए । समाज-सेवा के और भी विकल्प खोजने चाहिए और उनके अमल में आने पर एन० सी० सी० को ऐच्छिक कार्यक्रम बना देना चाहिए ।

(५) भाषा-सम्बन्धी नीति—शिक्षा-पद्धति में एक उपयुक्त भाषा-पद्धति का विकास होना चाहिए :

(क) स्कूल और कालेज के स्तर में मातृभाषा का प्रमुख दावा है । शिक्षा का माध्यम उसीको बनाना चाहिए । उच्च स्तर पर प्रशिक्षण के लिए क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाना चाहिए ।

(ख) क्षेत्रीय भाषाओं में, विशेषतः वैज्ञानिक और तकनीकी पुस्तकें और साहित्य तैयार करने के लिए प्रभावपूर्ण प्रयत्न होने चाहिए । यह

विश्वविद्यालयों का उत्तरदायित्व माना जाय और युनिवर्सिटी ग्राट कमीशन इसमें मदद करे।

(ग) अखिल भारतीय संस्थानों को आज की भाँति अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाये रखना चाहिए। यथासमय हिन्दी उसका स्थान ले सकती है। उसके लिए कुछ विशेष सरक्षण सम्बन्धी नियम बनाये जा सकते है।

(घ) क्षेत्रीय भाषाओं को सम्बद्ध क्षेत्रों के लिए यथाशीघ्र शासन की भाषा बना देना चाहिए, जिससे कि जो लोग क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से पढते है, वे उच्च सेवाओं की प्राप्ति से वचित न रह जायें।

(च) अंग्रेजी का शिक्षण और अध्ययन स्कूल के स्तर से लेकर ऊपर तक बढाते रहना चाहिए। अन्य अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं, जैसे रूसी भाषा को भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

(छ) स्कूल के स्तर पर और विश्वविद्यालय के स्तर पर भी कुछ ऐसी शिक्षण संस्थाएँ खडी की जानी चाहिए, जिसमें शिक्षा का माध्यम विश्व की कुछ महत्वपूर्ण भाषाएँ हो।

(ज) उच्च शैक्षणिक कार्य के लिए और बौद्धिक आदान-प्रदान के लिए उच्च शिक्षण में अंग्रेजी एक कडी की भाषा का काम करेगी। पर अंग्रेजी देश के अधिकांश लोगों के लिए कडी की भाषा नहीं बन सकती। ऐसा स्थान केवल हिन्दी ही ले सकती है और यथासमय उसे लेना ही चाहिए, क्योंकि यह सघ की राजभाषा है और जनता की कडी की भाषा है, इसलिए गैरहिन्दी प्रदेशों में उसके प्रसार के सभी उपाय करने चाहिए।

(झ) हिन्दी के अलावा सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान के लिए अनेक मार्ग निकालने चाहिए। भिन्न भाषावाले प्रत्येक प्रदेश में ऐसे कितने ही लोग होने चाहिए, जो दूसरी भारतीय भाषाएँ जानते हों। भिन्न भिन्न भारतीय भाषाएँ सिखाने के लिए हर विश्वविद्यालय में आयोजन होने चाहिए। बी० ए० और एम० ए० के स्तर पर दो भारतीय भाषाओं को मिलाने का प्रयत्न होना चाहिए।

(६) राष्ट्रीय चेतना का विकास—स्कूल की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्रीय चेतना का विकास होना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक

विरासत और भविष्य में महान् श्रद्धा के द्वारा यह भावना विकसित करनी चाहिए।

लोकतन्त्र के लिए शिक्षण

४ लोकतन्त्र को स्थायी बनाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम चलाये जा सकते हैं

(१) १४ वर्ष तक की आयु के बच्चों को उत्तम प्रकार का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षण दिया जाय। प्रौढ़ शिक्षण का भी कार्यक्रम चलाया जाय, जिससे निरक्षरता ही दूर न हो, जनता की नागरिक और व्यावसायिक प्रतिभा भी विकसित हो।

(२) सामाजिक और उच्चतर शिक्षण को व्यापक करके सभी प्रतिभा वाले बालकों के लिए विकास की समान सुविधाएँ दी जायँ, जिससे उनकी नेतृत्व-शक्ति का विकास हो सके।

(३) लोकतान्त्रिक मूल्यों के विकास के लिए स्कूलों का कार्यक्रम ऐसा हो, जिससे लोकतान्त्रिक मूल्य विकसित हो सकें, जैसे—वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सहनशीलता, जनसेवा, आत्मानुशासन स्वावलम्बन, श्रमनिष्ठा आदि।

शिक्षा और आधुनिकता

५ (१) आज के समाज में ज्ञान का विकास अत्यन्त तीव्र गति से हो रहा है और सामाजिक परिवर्तन भी तीव्र गति से हो रहा है, इसलिए शिक्षा-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन अपेक्षित है। अतः बालकों की जिज्ञासा को इस प्रकार जाग्रत करना चाहिए कि वे स्वतन्त्र रूप से सोचें, अध्ययन, मनन और निर्णय करें।

(२) इसके लिए समाज को स्वयं अपने को शिक्षित करना होगा।

सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य

६ (१) शिक्षा-पद्धति का मूलभूत सामाजिक नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर जोर देना चाहिए, इस दृष्टि से—

(क) केन्द्रीय और राज्य-सरकारों को अपनी सभी शिक्षण-संस्थाओं में विश्वविद्यालय शिक्षा-आयोग और धार्मिक और नैतिक शिक्षण समिति द्वारा जो सिफारिशें की गयी हैं, उनके आधार पर

शिक्षा में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का प्रवेश करना चाहिए।

(ख) निजी शिक्षण-संस्थाओं में भी ऐसा होना चाहिए।

(ग) स्कूल में इसका अनिवार्य क्रम तो रहे ही, कभी-कभी बाहर के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के शिक्षकों को बुलाकर भी ऐसा शिक्षण देना चाहिए।

(घ) विश्वविद्यालयों के धर्मों के तुलनात्मक अध्ययनवाले विभागों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि ये नैतिक मूल्य किस प्रकार अच्छे ढंग से लोगों को सिखाये जा सकते हैं। छात्रों और अध्यापकों के लिए ऐसा विशेष साहित्य भी तैयार करना चाहिए।

(२) अनेक धर्मोंवाले लोकतांत्रिक राज्य के लिए यह आवश्यक है कि वह सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन का विकास करे, जिससे उसके नागरिक एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह समझ सकें और एक दूसरे के साथ मिलकर प्रेम से रह सकें। स्कूलों और कालेजों में नागरिकता अथवा सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में एक महत्वपूर्ण अंश ऐसा रहना चाहिए, जिसमें सभी प्रमुख धर्मों के सम्बन्ध में अच्छे ढंग से चुनी हुई सामग्री रहे। उसमें यह बताना चाहिए कि विश्व के सभी महान् धर्मों में बुनियादी समानता है और वे सबके सब नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर एक समान जोर देते हैं। अच्छा हो कि इस विषय पर देश के सभी भागों में एक समान पाठ्यक्रम रखा जाय और एक ही सामान्य पाठ्यपुस्तकें हों। राष्ट्रीय पैमाने पर हर धर्म के अधिकारी और उपयुक्त विद्वानों द्वारा इस तरह का साहित्य तैयार करना चाहिए।

शिक्षा का ढांचा और स्तर

(१) शिक्षा का नया ढांचा इस प्रकार होगा

(१) स्कूल से पहले का शिक्षण एक से तीन साल तक।

(२) एक प्राइमरी स्तर ७ से ८ वर्ष का हो, जिसमें लोअर प्राइमरी ४ या ५ साल का हो और हायर प्राइमरी ३ या २ साल का हो।

(३) एक लोअर माध्यमिक स्तर तीन या दो साल का हो।

(४) एक हायर माध्यमिक स्तर, जिसमें दो साल सामान्य शिक्षण दिया जाय अथवा एक से तीन साल तक औद्योगिक व्यावसायिक शिक्षण दिया जाय।

(५) पहली उपाधि (डिग्री) के लिए तीन साल अथवा अधिक समय का एक उच्च शिक्षण-स्तर। उसके बाद दूसरी उपाधि अथवा शोध के लिए भिन्न भिन्न अवधियों का पाठ्यक्रम रहे।

(२) कक्षा १ में भरती होने की उमर कम-से-कम ५ साल हो।

(३) दसवें दर्जे के पहले किसी विषय में विशेषीकरण का प्रयत्न न किया जाय।

(४) माध्यमिक शालाएँ दो प्रकार की हों—हाईस्कूल, जिसमें १० साल का सामान्य पाठ्यक्रम रहे, और उच्च माध्यमिक शाला जिसमें ११ अथवा १२ साल का।

(५) हर माध्यमिक शाला को उच्च माध्यमिक स्तर पर ले जाने का प्रयत्न न किया जाय। केवल एक चौथाई स्कूलों को ऊपर उठाया जाय, जो अधिक बड़े और कार्यक्षम हों।

(६) एक नया माध्यमिक शिक्षण-पाठ्क्रम कक्षा ११ से शुरू किया। ११ और १२ कक्षा में भिन्न विषयों के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध हो।

७. (क) प्रीयुनिवर्सिटी कोर्स—१९७५ ७६ तक विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध कालेजों से प्रीयुनिवर्सिटी कोर्स उठाकर माध्यमिक शालाओं को दे दिया जाय और १९८५ ८६ तक २ वर्ष का उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम होना चाहिए।

(ख) सेकेण्डरी एजुकेशन बोर्डों का पुनर्गठन हो, जिससे वे हायर सेकेण्डरी स्तर की जिम्मेदारी भी सँभाल सकें।

८ लोअर और हायर माध्यमिक स्तरों पर १ से ३ वर्ष तक विभिन्न प्रकार के औद्योगिक व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू किये जायँ।

९ पहली उपाधि का पाठ्यक्रम तीन वर्ष से कम का नहीं होना चाहिए। दूसरी उपाधि का पाठ्यक्रम दो से तीन वर्ष का हो सकता है।

१०. (१) स्कूलों में शिक्षण के दिवस साल में ३९ सप्ताह कर देना चाहिए, और कालेजों और पूर्वप्राइमरी स्कूल में ३६ सप्ताह करना चाहिए।

प्रस्तावित रूप	विद्यमान रूप
(३) माध्यमिक	
कक्षा ८ से १२	
या	
कक्षा ९ से १२	
(ए) निम्न माध्यमिक शिक्षा	१ हाईस्कूल
कक्षा ८ से १०	
या	
कक्षा ९ और १०	
(बी) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा	
कक्षा ११ से १२	१ XI या पी० यू० सी०
	२ जूनियर कालेज (केरल)
	३ इण्टरमीडिएट कालेज (उ०प्र० बम्बई)
	४ प्री प्रोफेशनल प्री मेडिकल, प्री इंजिनियरिंग
(४) उच्च शिक्षा	
१ प्रोफेशनल डिग्री	एम० ए०, एम०एस-सी० एम० काम, एम० एड०, बी० ई०, एम० बी० बी० एस०, बी० एड०, बी० टी०, एल-एल० बी० ।
२ सामान्य डिग्री	बी०ए०, बी० एस-सी०, बी० काम० आदि इनमें प्रोफेशनल डिग्री नही है ।
३ अंडर ग्रेजुएट	ये सभी पाठ्यक्रम, जो पहली डिग्री दिलाते है ।
४ पोस्ट ग्रेजुएट	पहली डिग्री के बाद के सभी कोर्स, जैसे एम०ए०, एल-एल०बी०, बी० एड० आदि।
(५) सामान्य	
१ प्रथम स्तर की शिक्षा	१ इसमें प्री स्कूल तथा प्री प्राइमरी स्कूल सम्मिलित हैं ।
२ द्वितीय स्तर की शिक्षा	२ हाईस्कूल तथा हायर सेकेण्डरी स्कूल
३ तृतीय स्तर की शिक्षा	३ अंडर ग्रेजुएट तथा पोस्ट ग्रेजुएट

●

(२) सरकारी छुट्टियो के अलावा साल में १० दिन से अधिक की छुट्टियाँ नही होनी चाहिए। परीक्षा अथवा अन्य कारणो से स्कूलो में २१ दिन से अधिक और कालेजो में २७ दिन से अधिक पढाई बन्द नही रहनी चाहिए।

(३) छुट्टियो का पूरा उपयोग विभिन्न अध्ययनो, समाज-सेवा शिविरो साक्षरता-आन्दोलनो आदि कार्यो में करना चाहिए।

११ (१) शिक्षा के सभी स्तरो का स्तर ऊपर उठाने का ठोस प्रयत्न करना चाहिए।

(२) इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षण के विभिन्न स्तरो में आज की अपेक्षा कही अधिक परस्पर सहयोग हो।

एकरूपता

आयोग चाहता है कि जहाँ तक सम्भव हो पूरे भारत में शिक्षा का स्तर दो या एक-सा रहे। शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर एकरूपता का होना देश के शैक्षणिक ढाँचे की एकता के लिए आवश्यक है।

इसके लिए आयोग का प्रस्ताव निम्न प्रकार है

प्रस्तावित रूप	विद्यमान रूप
(१) पूर्व प्रारम्भिक	१ पूर्व प्रारम्भिक, २ पूर्व बुनियादी, बालवाडी ३ किंडर गार्टन, ४ मांटेसरी
(२) प्रारम्भिक (कक्षा १ से ७ या ८ तक)	१ प्राइमरी (कुछ राज्यो में) २ लोअर प्राइमरी
(i) निम्न प्रारम्भिक कक्षा १ से ४ या कक्षा १ से ५	३ जूनियर बेसिक ४ लोअर एलीमेंट्री
(ii) उच्च प्राइमरी कक्षा ५ से ७ या कक्षा ६ से ८	१ मिडिल (कुछ राज्यो, पंजाब आदि में) २ जूनियर हाईस्कूल (उ० प्र०) ३ अपर प्राइमरी स्कूल (गुजरात) ४ सीनियर बेसिक स्कूल ५ हायर एलीमेंट्री स्कूल (मद्रास) १ हाईस्कूल, २ हायर सेकेण्डरी स्कूल

प्रस्तावित रूप	विद्यमान रूप
(३) माध्यमिक कक्षा ८ से १२ या कक्षा ६ से १२	
(ए) निम्न माध्यमिक शिक्षा कक्षा ८ से १० या कक्षा ६ और १०	१ हाईस्कूल
(बी) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा कक्षा ११ से १२	१ XI या पी० यू० सी० २ जूनियर कालेज (केरल) ३ इण्टरमीडिएट कालेज (उ०प्र०, बम्बई) ४. प्री प्रोफेशनल, प्री मेडिकल, प्री इंजिनियरिंग
(४) उच्च शिक्षा	
१. प्रोफेशनल डिग्री	एम० ए०, एम०एस सी० एम० काम, एम० एड०, बी० ई०, एम० बी० बी० एस०, बी० एड०, बी० टी०, एल-एल० बी० ।
२. सामान्य डिग्री	बी०ए०, बी० एस-सी०, बी० काम० आदि इनमे प्रोफेशनल डिग्री नही है ।
३. अंडर ग्रेजुएट	ये सभी पाठ्यक्रम, जो पहली डिग्री दिलाते है ।
४. पोस्ट ग्रेजुएट	पहली डिग्री के बाद के सभी कोर्स, जैसे एम०ए०, एल-एल०बी०, बी० एड० आदि ।
(५) सामान्य	
१ प्रथम स्तर की शिक्षा	१. इसमें प्री स्कूल तथा प्री प्राइमरी स्कूल सम्मिलित हैं ।
२ द्वितीय स्तर की शिक्षा	२. हाईस्कूल तथा हायर सेकेण्डरी स्कूल
३. तृतीय स्तर की शिक्षा	३. अण्डर ग्रेजुएट तथा पोस्ट ग्रेजुएट

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष . १६
अंक ७-८

अनुक्रम

फरवरी मार्च '६८

●

निवेदन

• नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
• 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
• पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
• रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

नयी तालीम

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

चौथी योजना मे शिक्षा-व्यवस्था मे सुधार

अपने मत्रालय की मागो पर बहस का जवाब देते हुए केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री डाक्टर त्रिगुण सेन ने लोकसभा म घोषणा की है कि चौथी योजना मे शिक्षा-आयोग (कोठारी-आयोग) की सिफारिशो को शिक्षा के पुनर्गठन का आधार बनाया जायगा और १९६८-६९ से इन सिफारिशो को बडे पैमाने पर लागू किया जायगा। इस प्रसग मे उन्होने चार सूत्री कार्यक्रम लागू करने की बात कही है —

१—राष्ट्रीय सेवा का इस प्रकार विकास जिससे एन० सी० सी० अनिवार्य नही रहे और छात्र इसके अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा (खेलकूद) अथवा राष्ट्रीय सेवा के किसी कार्यक्रम मे शामिल हो सकें।

२—पुस्तक प्रकाशन सगठन का सम्बर्द्धन जिससे राष्ट्रीय एकता को बल मिले। भावनात्मक एकता के विकास तथा बच्चो के लिए पुस्तको का प्रकाशन राष्ट्रीय आधार पर किया जायगा। स्कूलो के लिए अच्छी पाठ्यपुस्तको के प्रकाशन का और विश्वविद्यालयो के लिए भारतीय भाषाओं मे पुस्तके तैयार करने का काम भी किया जायगा।

वर्ष : १६
अंक : ९

३—विज्ञान की शिक्षा का व्यापक विकास विशेषत विद्यालयी स्तर पर होगा। विद्यालय स्तर पर विज्ञान की शिक्षा को सुव्यवस्थित किया जायगा विज्ञान के शिक्षकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जायगा और स्कूलो को इसके लिए पर्याप्त

साधन दिये जायँगे। विज्ञान से सम्बन्धित संस्थानों के काम में सुधार किया जायगा और समन्वय स्थापित किया जायगा।

४—तकनीकी शिक्षा का विकास इस प्रकार किया जायगा कि उसको उद्योगों की जरूरतों से जोड़ा जा सके।

इसमे सन्देह नही कि इस चार सूत्री कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चलाया गया तो देश की शिक्षा मे कुछ सुधार होगा; परन्तु कोई बड़ा गुणात्मक सुधार नही होगा। इसी प्रकार यदि सभी राज्य-सरकारों ने डाक्टर सेन की बात मान ली और तत्काल प्रारम्भिक शिक्षा को निःशुल्क बना दिया और उसमे बालिकाओं, पिछड़ी जातियों और समाज के निर्धन तबकों के अधिकाधिक बच्चों को ले भी लिया तो भी इसमे शिक्षा में गुणात्मक सुधार होनेवाला नही है। यहाँ तक कि विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करनेवाले सभी संघटनो के प्रयासों को समन्वित कर विज्ञान के स्तर को ऊँचा करने की कोशिश में सफलता मिल जाने पर भी शिक्षा के क्षेत्र में वह क्रान्ति नही होने जा रही है, जिसकी देश को अपेक्षा है।

शिक्षा-आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन से शिक्षा के क्षेत्र मे क्रान्ति ऐसी कोई बात होगी या नही होगी, इस विवाद में न पड़कर हम यहाँ इतना ही कहना चाहेंगे कि शिक्षा-आयोग की सिफारिशों मे ही ऐसी महत्वपूर्ण सिफारिशें हैं, जिनकी चर्चा इस भाषण में होनी चाहिए थी और जिन्हे इस चार सूत्री कार्यक्रम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए था, क्योंकि तब चाहे क्रान्ति भले ही न होती; परन्तु शिक्षा में कुछ गुणात्मक सुधार अवश्य होते। हम यह नहीं कहते कि महत्वपूर्ण संस्तुतियों पर शिक्षा-मंत्री की दृष्टि नही है, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें इस प्रकार रेखांकित किया जाय कि उनकी ओर सबका ध्यान आकर्षित हो। शिक्षा-आयोग की वे महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नांकित हैं :

१—कार्यानुभव को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का अभिन्न अंग बना देना और माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण, जिससे शिक्षा उत्पादक हो और सक्षम व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव हो।

२—प्रारम्भिक स्तर से विश्वविद्यालयी स्तर तक क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना और राज्य-सरकारों द्वारा शासन का सारा काम क्षेत्रीय भाषाओं में होना, जिससे शिक्षित और अशिक्षित के बीच की खाई पटे। यह काम अधिक-से-अधिक दस वर्ष में हो जाना चाहिए।

३—पडोसी स्कूलो की स्थापना, जिससे देश मे शिक्षा की एक ही सार्वजनिक पद्धति चले और शिक्षा समाजवादी समाज के निर्माण मे सहायक हो सके।

४—शैक्षिक प्रशासन नियोजन और विकास के लिए जिले को इकाई के रूप मे विकसित करना जिससे राष्ट्रीय लक्ष्यो की भूमिका म स्थानीय परिस्थितियो म शिक्षा का नियोजन अधिक यथार्थ और प्रभावपूर्ण ढग से करना सम्भव हो।

आयोग की ये ऐसी सिफारिशे हैं जिनका कार्यान्वयन करने मे शिक्षा का रूप बदलेगा, शिक्षा जीवन के निकट आयगी उत्पादक बनेगी और प्रशासन मे विकेन्द्रीकरण की नीति का प्रवेश होगा। ये ऐसी बाते हैं जिनको आयोग ने बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त कहकर स्वीकार किया है और स्पष्ट शब्दो म घोषणा की है कि प्रतिवेदन को प्रस्तुत करते समय वह हर कदम पर इन वमूलो से निर्देशित हुआ है। चौथी पचवर्षीय योजना मे यदि शिक्षा का पुनगठन कोठारी-आयोग की सिफारिशो के आधार पर होने जा रहा है तो हम सचेष्ट प्रयास करना चाहिए कि राष्ट्र का अधिक-से-अधिक साधन इन महत्वपूण सिफारिशो के कार्यान्वयन म लगे नही तो सीमित साधनोवाले इस देश का धन ऐसी सिफारिशो को लागू करने म व्यय हो जायगा, जिनसे न तो शिक्षा के क्षेत्र मे कोई गुणात्मक सुधार होगा और न शिक्षा जन-जीवन से सम्बन्धित होकर देश के विकास का साधन बन सकेगी। हम ऐसा कुछ न करे, जिससे शिक्षा आज की तरह अनुत्पादक बनी रहे।

—वशीधर श्रीवास्तव

अध्ययन : विद्यार्थी-जीवन की आवश्यक शर्त

विनोबा

मुझे विद्यार्थियों की सभा में बोलना बहुत ही रुचिकर मालूम होता है। वैसे आम समाज में भी भाषण दिया जाता है, तो अच्छा लगता है। समाज का दर्शन होता है तो मुझे परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वेद नारायण ने कहा है—सहस्रशीर्षा पुरुष । परमात्मा के हजार हजार सिर हैं। जहाँ आम सभा होती है वहाँ सहस्रशीर्षा परमात्मा का दर्शन होता है। लेकिन विद्यार्थी-समाज में बोलने का मौका आता है तो मुझे रुचि मालूम होती है, वह रसप्रद मालूम होता है। इसका क्या कारण है? कारण यह है कि मैं आज ७३ साल का विद्यार्थी हूँ। आप जो यहाँ इकट्ठा हुए हैं, उनमें से १८ साल के, २० साल के २५ साल के हैं लेकिन मैं ७३ साल का विद्यार्थी हूँ। और कोई दिन जाता नहीं कि जिस दिन मैंने किसी विद्या का अध्ययन न किया हो। आज के दिन भी मेरा अध्ययन हुआ है और अध्यापन भी साथ-साथ हुआ है। अभी तो मैं एक ही स्थान पर १५ २० दिन बैठता हूँ लेकिन जब मैं पैदल घूमता था, तब घूमने में समय जाता था, २ ३ व्याख्यान होते थे उसमें समय जाता था लेकिन फिर भी रोज का अध्ययन चलता ही था। मुझे याद नहीं कि कोई दिन ऐसा गया हो कि जिस दिन हमने अध्ययन न किया हो। ऐसे कुछ दिन जरूर रहे हैं कि जब हमने खाना नहीं खाया हो, कम है लेकिन कुछ है। परन्तु जिस दिन अध्ययन न हुआ हो ऐसा कोई दिन गया हो याद नहीं।

बाबा निरंतर अध्ययन करता चला जा रहा है और हम देखते हैं, इन दिनों लड़के कितना अध्ययन करते हैं। परीक्षा के लिए तैयारी करते हैं। वे कहते भी हैं कि एक पेपर के बाद दूसरे पेपर के बीच में ७ दिन, ८ दिन, १० दिन का अवकाश दीजिये ताकि हम भरपूर तैयारी कर सकें। ७ दिन के तैयारी करके कण्ठ करके आयेंगे और जवाब लिख देंगे। अगर १५ दिन के बाद फिर से वही परीक्षा ली जाय तो फेल होंगे क्योंकि ७ दिन के लिए वह

तैयारी थी। यानी क्या हुआ ? मानो कास्टर आयल ले लिया। कास्टर आयल ले लेने से क्या होता है ? पेट की सफाई हो जाती है, कुछ भी बात बाकी नही रहती। परीक्षा का अर्थ हुआ कास्टर आयल। परीक्षा के बाद बस फिर कोरा कागज तैयार है। लड़का जैसा का तैसा है। सारी विद्या आयी और गयी।

ऐसे अल्प ज्ञान से भारत कभी आगे नहीं बढ सकता। भारत आजाद हो गया है तो उसकी कसौटी हो रही है। सारे विश्व मे भारत का कुछ असर तब पड सकता है जब भारत में अध्ययन-सम्पन्न और अनेक प्रकार के विद्या सम्पन्न ज्ञानी तैयार होगे। अन्यथा आज हालत यह है कि इधर-उधर थोडा सा ज्ञान हासिल कर लिया और फिर जिंदगी भर में अध्ययन है ही नही। एक दफा एम० ए० हो गये, तो फिर आगे कुछ नही। बहुत दफा मैं कहता हूँ कि एम० ए० तो तुमने कर लिया, और अब जो थोडा बाकी है, वह भी कर लो, तो पूरा हो जायगा। तो पूछते है कि उसके आगे क्या किया जाय ? तो मैं कहता हूँ जरा 'डी' किया जाय, 'डी। वे समझेंगे डी० लिट्०। लेकिन डी० लिट० की बात नही हो रही है। एम० ए० के बाद 'डी' और जोडने की बात है। एम० एड० बस इतना बाकी है। कहने का सार यह है कि यह तो नाममात्र का एम० ए० है। न कुछ आता है न जाता है। ज्ञान तो है ही नही। और क्या है ? क्या ताकत है ? ताकत भी नहीं है। छाती कितनी चौडी है ? छातियाँ कमजोर है। मिलिटरी के लिए लोगो को लेना होता है, तो ३२ इंच चौडी छाती चाहिए और कोई खास बीमारी नहीं होनी चाहिए, तो बस ले लिया जायगा। ऐसे कितने लोग निकलेंगे ? बहुत ही कम परसेण्ट निकलेंगे। यानी मिलिटरी के लिए भी परसेण्टेज कम है, और विद्या तो है ही नही। और काम भी कुछ नहा जानते। खाना जरूर जानते है। बस, समाप्तम्। अगर कही यात्रा पर निकले या मिलिटरी में गये और रसोई बनाने का मौका आया, तो रसोई बनाना भी जानते नही। यानी कोई भी काम नही जानते। अब इसमें विद्यार्थियो का दोष नही है, उन्हे जो विद्या दी जाती है, उस विद्या का ही दोष है।

मैं तो कहना यह चाहता था कि विद्यार्थियो को अत्यन्त अध्ययनसम्पन्न बनना चाहिए। तब उनकी वाणी भी खुलेगी। बिना वाणी के मनुष्य चिंतन ही नही कर सकता। मनुष्य में और दूसरे प्राणियो में क्या फर्क है ? आप देखेंगे कि कई प्राणी चूँ चूँ चूँ चूँ बस इतना ही जानते है। वे इससे ज्यादा बोल नही सकते। कौवो की एक ही भाषा है—का का का का। एक का का

हो गया तो दुनिया भर के सारे कौवों की भाषा हो गयी। एक होता है चू चू चू, एक है ट्यूं ट्यूं ट्यूं, एक होता है दू दू दू दू। ऐसे कुछ क वाले हैं, च वाले है, ट वाले है, ड वाले हैं और ठ वाले भी है। एक बोलता है म्याओ, उसका नाम मयूर है। और दूसरा मार्जार (बिल्ली) है। वह भी म्याओ-म्याओ बोलता है। वह म वाला है। तो ये सारे तरह-तरह के पक्षी हैं और उनके शब्द सीमित है और मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो सांगोपांग प्रत्येक विचार शुद्ध ढंग से बता सकता है। इस वास्ते वाणी का सम्यक् उपयोग समझना, उत्तर-पे-उत्तम शब्द ठीक अर्थ में बोलना, कम-से-कम शब्दों में अपना आशय सुव्यक्त करना यह बहुत बड़ी शक्ति भगवान ने मनुष्य को दी है। यह शक्ति विकसित होनी चाहिए।

ऐसा क्या स्कूल मे होता है ? कोई-कोई विद्यार्थी ही प्रज्ञावान होंगे, लेकिन सबको प्रज्ञा मिलनी चाहिए और उसके साथ-साथ वाणी उनकी उत्तम होनी चाहिए। लेकिन जब अध्ययन ही नही है, तो क्या किया जाय ?

विद्यार्थी = परीक्षार्थी

परीक्षा मे धमकी होती है। परीक्षा का घेराव भी होता है। विद्यार्थी कहते है कि हमको पेपर नकल करने का हक होना चाहिए और हम पर इस प्रकार की रोक नही होनी चाहिए। ताकि हम पास हो जायें। तो ऐसे विद्यार्थी तो वास्तव मे विद्यार्थी ही नही है। एक अच्छा शब्द उनके लिए हिन्दी मे है 'परीक्षार्थी'। विद्यार्थी नही, परीक्षार्थी। अब परीक्षार्थी शब्द भी गलत है, 'नोकरीअर्थी' होना चाहिए। ये नौकरीअर्थी हैं। नौकरी के लिए परीक्षा होनी है। वहाँ भी नौकरी की उम्मीद ही है। लेकिन यह उम्मीद बिलकुल गलत है। आप लोग जानते है भारत में ५० करोड़ लोग है। अभी २० परसेंट लोगो को तालीम मिलती है। इसका मतलब है कि १० करोड़ लोग शिक्षित हैं। उन १० करोड में से नौकरियो में तो ५५ लाख है, और ५ लाख आर्मी (फौज) में है। भारत में कुल नौकर ६० लाख है तो १० करोड़ शिक्षित में से ६० लाख को नौकरी मिलेगी। आज स्थिति ऐसी है। अब आप सोच लीजिये कि १६ मनुष्यो में से १ को नौकरी मिले तो बाकी १५ क्या करेंगे ? हमने कई दफा कहा है कि यह सरकार तो कहलाती है कांग्रेस-सरकार और मिली-जुली सरकार भी है। लेकिन यह सरकार क्या करती है ? कम्युनिस्ट बनाने के कारखाने खोलती है। क्योंकि लोगो को शिक्षा मिल जाय, नौकरी न मिले, तो क्या होता है ? वे लोग कम्युनिस्ट बन जाते हैं। संस्कृत में एक कहावत है—असन्तुष्टाः द्विजा नष्टाः। द्विज होते है पढ़े-लिखे लोग।

पढे लिखे लोग यदि असन्तुष्ट हैं, तो वे नष्ट होते है। हमने नयी कहावत बनायी है—"असन्तुष्टा द्विजा कम्युनिष्टा।" यानी पढे लिखे लोग असन्तुष्ट होने हैं तो कम्युनिस्ट बनते हैं।

इसका मतलब यह है कि आज की हवा में अध्ययन-शून्यता है। हमारे इंजीनियर अगर पुल बनायेंगे तो कोई भरोसा नहीं कि पुल टिकेगा ही। ऐसे इंजीनियर बनें, तो वे किस काम के? जो परीक्षा में पास हो, लेकिन काम करना न जानते हों, उनको नौकरी देना खतरनाक हो जायगा।

भारत का विचार

हमारे जितने सारे ज्ञान विज्ञान के भाग हैं, वे उज्ज्वल होने चाहिए, तब भारत का सिर ऊँचा होगा, भारत दुनिया में टिकेगा और अपना मिशन परिपूर्ण करेगा। अन्यथा, अगर अध्ययन शून्यता रही तो फिर समझ लीजिये कि भारत की कोई ताकत बनेगी नहीं।

मैंने आप लोगों के सामने अध्ययन का महत्व रखा। आपको अध्ययन के लिए समय मिला है। कोई बोझ आपके सिर पर रखा नहीं है। माता-पिता आपका पालन पोषण करते हैं। आपको पढाने के लिए बड़े बड़े प्रोफेसर रखे जाते हैं। इतना सारा इन्तजाम करके खूब अध्ययन करने का आपको मौका दिया गया है। उसके बाद संसार में जब आप दाखिल होंगे तब इतना समय मिलना मुश्किल है।

कुछ बाबा के जैसे लोग होते हैं जो किसी प्रकार समय निकाल लेते हैं। कैसे समय हासिल करते हैं बाबा? ५॥ बजे बाबा को निद्रा आती है। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि बाबा इतना बूढ़ा होने के बाद भी इतनी जल्दी सोता है। लेकिन बाबा ५॥ बजे सोयेगा और जिस वक्त आप सोने की तैयारी करेंगे, उस वक्त जाग जायगा। आप सारे सो जाते हैं तो बाबा जागता है, सर्वत्र शान्ति, कोई आवाज नहीं, तब बाबा अपना चिन्तन मनन ध्यान करता रहेगा। १२, १२॥ बजे से शुरू करेगा और ४, ४॥ घण्टा अध्ययन के लिए, चिन्तन के लिए, ध्यान के लिए, समाधि के लिए बाबा को बड़ा सुन्दर समय मिलेगा। लेकिन शाम को जल्दी सो जायगा। वेद में वर्णन आया है— 'यो जागार तमृच कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।" जो बड़ी फजर जागता है। उसको विद्या प्राप्त होती है, वेद उसको प्राप्त होते हैं, संगीत उसको प्राप्त होता है। सुबह बड़ी फजर उठ करके जो अध्ययन करेगा उसके लिए सब वरदान हैं। परन्तु आज तो यह होता है कि लड़के १२॥ बजे सोयेंगे, कोई १० बजे भी सोते होंगे। जल्दी सो गये तो १० समझ लीजिये। यह भी लिखा है गीता में—'या

निशा सर्व भूतानाम् तस्या जागर्ति संयमी।" जब सारे लोग सो जाते हैं तो संयमी पुरुष जागते हैं। "यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः" और जब ये सारे जागते रहते हैं तो वह सोयेगा। यह भारत का बहुत बड़ा विचार है।

भारत का एक सिद्धान्त है कि मरण के समय जो धारणा होगी, तदनुसार अगला जनम मिलेगा। इसलिए मृत्यु के समय परमात्मा का चिन्तन करो और कोई सद्विचार रखो तो तदनुसार अगले जनम में उत्तम गति मिलेगी। यह भारत का अपना विचार है। लेकिन यह वश अपने हाथ की बात है कि मरण के समय कैसा क्या विचार आयगा ? तो, कहा कि रोज मरने का अभ्यास करो। जैसे नाटक से पहले उसकी पूर्वतैयारी करते है, ऐसे मरने का पूर्व-प्रयोग करो। रात को जो निद्रा होती है वह छोटी सी मृत्यु ही है। मनुष्य का एक दिन खतम होता है और दूसरा दिन उगनेवाला है। जैसे मरते समय जो चिन्तन होगा तदनुसार अगला जनम मिलता है, वैसे रात को सोते समय जो चिन्तन होगा, अगले दिन सुबह उठते ही वही अंकुरित होगा, वही स्फुरित होगा। इसका बहुतो ने अनुभव लिया है। मुझे तो इसका बहुत ही अनुभव आता है। बड़े-बड़े कठिन प्रश्न आये। उनकी चर्चा मे दिन भर करता रहा। उत्तर मिला नही। रात को सोते समय फिर से चिन्तन किया और सो गया। सुबह उठा तो एकदम उत्तर मिल गया। जो उत्तर दिनभर सोचने से मिला नही था, वह दूसरे दिन उठते ही मिल गया, क्योंकि बीच में गाढ निद्रा आ गयी और निद्रा के पहले उसी प्रकार का चिन्तन हुआ, तो निद्रा की समाप्ति मे वही विचार एकदम खुल करके निकला और उसका जवाब मिल गया। यह तो बाबा ने कई दफा अनुभव किया है।

आप लोग जानते है बीज जमीन में, मिट्टी मे, बोया जाता है। उस पर मिट्टी ढाँक देते है। अगर मिट्टी न ढँकें, तो पक्षी बीज खा जायँगे। मिट्टी से ढँकने पर जब वह बीज दीखता नही है, तो बच्चे समझते है कि बीज हमने बोया, लेकिन उठा ही नही। मालूम नहीं क्या हुआ। लेकिन उस पर मिट्टी डाली है, तो अन्दर ही अन्दर वह अंकुरित होता है। दो-तीन दिन मे वह उठ जाता है। उसी प्रकार रात को सोते समय अपने चित्त मे जो विचार बोया गया उसको गाढ निद्रा की मिट्टी से ढँका गया। तो दूसरे दिन एकदम अंकुरित होता है। इसलिए सोने समय परमात्मा का ध्यान करना चाहिए या विद्या का चिन्तन करना चाहिए। लेकिन अभी किया क्या जाता है ? मरण के समय यानी निद्रा के समय ? सिनेमा अनन्तरम् निद्रा। सिनेमा देखकर सोते है। फिर

सिनेमा के वे सारे चित्र आँखो के सामने आये, कान में घुसे, और वह सुबह उठने ही सिनेमा के गाने शुरू कर देता है। यानी हिन्दुस्तान का अध्ययन का जो अनुभव है वह सबका सब हम भूल गये हैं। जो थोडा-बहुत पढनेवाले हैं, उन विद्यार्थियो का अध्ययन कब चलता है? रात को। दिनभर खाना हुआ, पीना हुआ, थकान भी आ गयी और रात को सोने के बदले अध्ययन शुरू कर दिया और पुस्तक भी क्या पढते है? अंग्रेजी। अगर कुछ हिन्दी वगैरह होती तो कुछ समझ में भी आये। अंग्रेजी कुछ समझ में नही आती। तो क्या करते है? चाय पीते है? चाय पी-पीकर के जागते हैं। उसके बजाय अगर जल्दी सो जायें, शान्ति से निद्रा लें, बडी फजर जल्दी उठें और प्रातःकाल की मगल-वेला में अध्ययन करें, तो घण्टेभर के अध्ययन में जो ज्ञान प्राप्त होगा, वह दूसरे समय ३-३ घण्टे पढने पर भी नही मिलेगा। क्योंकि चित्त शान्त, एकाग्र रहता है। निद्रा ले चुके है, इसलिए चित्त प्रसन्न है। ऐसी हालत में मुँह धो लिया और बैठ गये अध्ययन के लिए, तो उस प्रसन्न चित्त पर थोडे में एकदम ज्ञान की छाप पडती है। जो अन्य समय में पडती नही। इसलिए जिस किसीने प्रातःकाल का समय खोया, उसने अपनी आत्महत्या कर ली। बाकी का सारा समय उसका रजोगुण, तमोगुण का होता है। प्रातःकाल का जो समय होता है, वह सत्वगुण का होता है और इस वास्ते उस समय जरा अध्ययन करते हैं, तो उत्तम अध्ययन होता है।

यह सारा मैने आपके सामने इसलिए रखा कि आप विद्यार्थी हैं। आप पर भारत की आशा है। आप अगर अध्ययन-शून्य बन गये, तो समझ लीजिये कि हिन्दुस्तान गिरता जायगा। आज ऐसी हालत है कि बडे-बडे नेता लोगो को भी अध्ययन के लिए समय नही है। नाम तो है मन्त्री। मन्त्री का मतलब चिट्ठी-उट्ठी रखनेवाले, फाइल-वाइल रखनेवाले नही। वास्तव में मन्त्री यानी मनन करनेवाला। तो, मन्त्री लोग बहुत कुछ कह डालते हैं। लेकिन मनन के लिए उसको समय नही है।

मन्त्री बनने से चिन्तन-मनन के लिए समय नही रहता हो सो बात नही है। मैं कहना चाहता हूँ कि आजादी की लडाई में जितने नेता हो गये, वे सारे अध्ययन सम्पन्न थे। श्री अरविन्द, राजा राममोहन राय, रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, अबुल कलाम आजाद, डा० एनी बेसेंट, भगवानदास—सब अध्ययनशील थे। लोकमान्य तिलक का दिनभर राजनीति में समय जाता था और रात को १२ बजे सोने के लिए जाते थे तो वेद का अध्ययन करते थे। जब जेल में गये तो, एक जेल में वेदो पर किताब लिखी और एक जेल में

गीता पर किताब लिखी। ऐसे अध्ययन-सम्पन्न थे वे। पुराने नेता अध्ययन सम्पन्न थे, इसीलिए उनकी प्रतिभा चमकती थी। अगर प्रतिभा नहीं चमकती तो स्वराज्य मिलनेवाला था नहीं। पं० नेहरू से मैंने एक बार पूछा कि आपको अध्ययन के लिए समय मिलता है कि नहीं? तो बोले—'मिलता क्या है, खींच लेता हूँ।' 'कहाँ से खींचे लेते हैं?' बोले—'रात को तो १२ बजे तक फाइल चलती है। उसके बाद सोने का समय होता है। सोने से पहले एक घण्टा चुरा लेता हूँ। 'कितना समय रखा है सोने के लिए?' बोले—'रात को सोने के लिए रखे हैं ६ घण्टे, और दिन में रखा है आधा घण्टा। कुल ६॥ घण्टे। लेकिन दिन का आधा घण्टा ज्यादातर मिलता नहीं और रात के छ घण्टे में से एक घण्टा चुराकर ले लेता हूँ।' तो उनको इलेक्शन के लिए जाना पड़ता था। हवाई जहाज में बैठे-बैठे अध्ययन करते थे। इस प्रकार से उन्होंने अध्ययन किया, तो उस अध्ययन के परिणामस्वरूप उन्होंने दुनिया का इतिहास लिखा, भारत का इतिहास लिखा। वे सारे ग्रंथ अत्यन्त अध्ययन के बिना लिखे नहीं जा सकते थे। हमारे नेता उस जमाने के ऐसे थे। अब ऐसे नेता कहाँ से आयेंगे? आज जो लड़के हैं आगे जाकर इन्हींमें से नेता पैदा होंगे। इस वास्ते आपका अध्ययन अत्यन्त उत्तम होना चाहिए यह हमारी राय है।●

(मुजफ्फरपुर में छात्रों के बीच दिये गये भाषण से)

बेसिक शिक्षा का समवाय-पक्ष
समवाय और उद्योग

वंशीधर श्रीवास्तव

बेसिक शिक्षा के जिस पक्ष का आरम्भ से ही विरोध हुआ है वह है उद्योग अथवा दस्तकारी द्वारा दूसरे सभी विषयो का ज्ञान देना। गाधीजी ने १९३७ ईसवी में 'हरिजन' नामक पत्र में बुनियादी शिक्षा पर अपने विचार व्यक्त करने के आठ वर्ष पहले 'यग इडिया' में लिखा था, "जब हमारे बालक पाठशालाओ में भरती होते हैं तो उन्हे पेन्सिल और पुस्तको की नही, परन्तु देहात के उन सीधे-सादे औजारो की जरूरत है, जिनका वे आजादी से उपयोग कर सकें और जिनके जरिये वे कुछ कमा भी सकें। इसका मतलब शिक्षा के तरीको में क्रान्ति है।"[1]

परन्तु इस क्रान्ति के लिए देश के शिक्षा-शास्त्री १९३७ ई० में भी तैयार नही थे, और आज भी तैयार नही हैं। यह क्रान्ति तभी होती जब शिक्षा के माध्यम के रूप में शिल्प अथवा दस्तकारी को वही महत्व दिया गया होता जो गाधीजी चाहते थे या विनोबा चाहते हैं। अर्थात् केवल उद्योगो का ही वैज्ञानिक ढग से शिक्षण हो और इस शिक्षण के लिए उस ज्ञान-समूह में से, जिसे हम शास्त्रीय विषय कहते हैं, ज्ञान के प्रसग ले लिये जायें। परन्तु यह नही हुआ और जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट में ही कहा गया कि "जहाँ तक सम्भव हो सके' अन्य विषयो की शिक्षा किसी केन्द्रीय दस्तकारी से ही दी जाय। इस रिपोर्ट का तीसरा प्रस्ताव, जिसका सम्बन्ध समवाय से है, इस प्रकार है —

यह परिषद् गाधीजी की इस तजबीज का समर्थन करती है कि इस तमाम मुद्दत (सात से चौदह वर्ष की आयु तक) में शिक्षा का केन्द्र किसी किस्म की उत्पादक दस्तकारी होनी चाहिए और बच्चों में जो दूसरे गुण पैदा करने हैं

---

१ यग इडिया, ११-७-१९२९ ई०

और उनको जो शिक्षा-दीक्षा देनी है, उसका सम्बन्ध, जहाँ तक हो सके इसी केन्द्रीय दस्तकारी से होना चाहिए और इस दस्तकारी का चुनाव बच्चों के वातावरण और स्थानीय परिस्थिति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।[1]

"जहाँ तक हो सके" का यह वाक्यांश गांधीजी की समवाय की बुनियादी संकल्पना के प्रति एक प्रकार का विरोध-सा है। गांधीजी की संकल्पना में उद्योग अथवा हाथ के काम साध्य थे और दूसरे विषय चाहे वे जितने भी महत्व के हों, केवल साधन थे। उनकी पृथक् सत्ता की आवश्यकता यदि वे समझते, तो साक्षरता शिक्षा नहीं है—ऐसा वे नहीं कहते। परन्तु जाकिर हुसैन समिति के 'शिक्षा-शास्त्री-सदस्य' परम्परित विषयों की शिक्षा को अधिक महत्वपूर्ण मानते थे। उनकी राय थी कि बालकों के व्यक्तित्व के सम्यक् विकास के लिए उनका अध्यापन आवश्यक है। अगर उन्हें उद्योग अथवा कर्म से समवायित करके पढ़ाया जा सके तो अच्छी बात है, क्योंकि तब व्यक्तित्व का विकास सन्तुलित होगा, परन्तु अगर उन्हें समवायित करके नहीं पढ़ाया जा सकता तो या तो 'उन्हें समवाय के अन्य दो केन्द्रों से सम्बन्धित करके पढ़ाया जाय', जिसकी चर्चा इसी रिपोर्ट में दूसरी जगह की गयी है,[2] और नहीं तो

१ बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा—जाकिर हुसैन समिति का विवरण और विस्तृत पाठ्यक्रम—प्रकाशक हिन्दुस्तानी तालीमी संघ—१९३९, पृष्ठ २।

२ अपनी रिपोर्ट में हमने खेती और बढ़ईगिरी दो बुनियादी धन्धों का विस्तृत पाठ्यक्रम वर्गक्रम से दिया है। इन पाठ्यक्रम की तफसील को अगर छोड़ भी दें तो भी हमें विश्वास है कि सामान्य पाठ्यक्रम के विषयों को, इन दोनों में से किसी भी दस्तकारी के द्वारा (खेती और बढ़ईगिरी) सिखाया या समन्वित किया जा सकता है। शिक्षा का यही उद्देश्य है कि बालक जिस वातावरण में पैदा होता है और पलता है, उस वातावरण को बुद्धिमानीपूर्वक समझे और उसको अपने काम में ला सके। इसीलिए यह जरूरी है कि शिक्षा के विभिन्न विषय परस्पर एक-दूसरे के साथ और बालक के जीवन के साथ, सम्बन्ध रखते हों। इसीलिए हम लोगों ने मनुष्य-जीवन के तीन पहलुओं को शिक्षा का केन्द्र माना है—एक तो प्राकृतिक वातावरण, जिसमें वह जन्म लेता है, दूसरा सामाजिक वातावरण, जिसमें उसकी जिन्दगी बीतती है और तीसरा धन्धे का काम (शिल्प या दस्तकारी) जिसमें पहले दोनों पहलू सहज रूप से मिलते हैं, क्योंकि किसी धन्धे के मार्फत ही मनुष्य प्रकृति की शक्तियों का उपयोग करके सामाजिक जीवन बिताता है। (बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ—१९३९, पृष्ठ ६५)

किसी भी दूसरी 'शिक्षा-जगत् में मान्य मनोवैज्ञानिक शिक्षण-पद्धति से पढ़ाया जाय' जिसका स्पष्ट उल्लेख सन् १९५४ में भारत सरकार के शिक्षा सलाहकार बोर्ड की उस बैठक में हुआ, जिसमें बेसिक शिक्षा की संकल्पना को देश के सामने स्पष्ट किया गया।[1]

उद्योग द्वारा समवाय के विषय में यह विचार-भेद सन् १९३९ में पूना के पहले ही बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन में प्रकट हो गया। इस सम्मेलन में औंध के रहनेवाले श्री भारतानन्द ने समवाय पद्धति पर चर्चा करते हुए कहा, "शिक्षा देने समय शिक्षक के दिमाग की पृष्ठभूमि में ज्ञान सम्पूर्ण रीति से दस्तकारी से ही जुटा हुआ हो। उसे यह खयाल हो कि मैं दस्तकारी सिखा रहा हूँ—अपनी पूरी योग्यता से। अलग-अलग समय में उसे अलग विषयों की फिक्र नहीं होनी चाहिए। अगर वह सोचेगा कि मैं अमुक विषय दस्तकारी द्वारा पढ़ाने लगा हूँ, तो जरूरी है कि वह उस विषय को कोई मुख्य वस्तु समझे, जैसे हम अपने विचार भाषा द्वारा प्रकट करते हैं, लेकिन मुख्य चीज विचार होता है, न कि भाषा...बुनियादी तालीम कहती है—'बच्चे का दस्तकारी

१ जैसा कि शिक्षा की किसी भी अच्छी प्रणाली में होना चाहिए, बुनियादी शिक्षा में भी ज्ञान का क्रिया, व्यावहारिक अनुभव और पर्यवेक्षण से सम्बन्ध होना चाहिए। इसीलिए बुनियादी शिक्षा निर्विवाद रूप से यह मानती है कि पाठ्यक्रम के विषय सहसम्बन्ध के तीन मुख्य केन्द्रों के साथ सम्बन्धित होने चाहिए—अर्थात् शिल्प प्राकृतिक वातावरण और सामाजिक वातावरण से जिस समझदार अध्यापक ने अच्छी ट्रेनिंग पायी हो, वह जो भी ज्ञान बच्चों को देना चाहता हो, जो उसके लिए आवश्यक और उसकी रुचि के अनुसार हों, वह सह-सम्बन्ध के इन केन्द्रों में से किसी एक से सम्बन्धित कर सकता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता तो इसका अर्थ यह है कि या तो उसमें अपेक्षित बुद्धि नहीं है अथवा पाठ्यक्रम में ज्ञान की ऐसी बातें रख दी गयी हैं जो उस विशेष अवस्था में आवश्यक और महत्वपूर्ण नहीं हैं। यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि पाठ्यक्रम में बातें ऐसी होंगी जो ऊपर बताये गये तीन केन्द्रों में से किसी एक के साथ भी आसानी से सम्बद्ध नहीं की जा सकतीं। ऐसी सूरत में उन चीजों को अध्यापन की उन पद्धतियों से पढ़ाया जा सकता है जो किसी भी अच्छे स्कूल में इस्तेमाल की जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि ऐसे पाठों में भी रुचि और प्रेरक शक्ति के सिद्धान्त और अभिव्यक्ति के सिद्धान्त का महत्त्व मानना पड़ेगा। (बुनियादी शिक्षा सन्दर्शिका—शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धान मंत्रालय—१९५७, पृष्ठ ७ ८)

सिखा दो और उसके साथ जो भी सिखाना चाहते हो सिखा दो।' कम से कम मैं तो यही सोचता हूँ। पाठ्यक्रम को अलग-अलग पाठ्य विषयों में बाँटना और शिक्षकों को उन पाठ्य विषयों को दस्तकारी से जोड़ना मेरे खयाल में एक अस्वाभाविक तरीका हो सकता है।" भारतानन्दजी का यह विचार समवाय और 'बुनियादी शिक्षा-पद्धति' पर गांधीजी के विचारों का अधिक ठीक प्रतिनिधित्व करता है।

भारतानन्दजी के इस कथन के बाद जब कुछ सदस्यों ने कहा कि भारतानन्दजी की बात साफ-साफ समझ में नहीं आयी तो पूना परिषद के अध्यक्ष डाक्टर सैयदेन ने इस पर अपना मत देते हुए कहा—'वास्तव में प्रश्न यह है कि हम दस्तकारी को ही मुख्य पाठ्य विषय मानें या उस ज्ञान को मुख्य विषय मानें जो हम सिर्फ दस्तकारी द्वारा देना चाहते हैं। मेरा अपना खयाल है कि अगर हम बाकी सभी महत्वपूर्ण पहलुओं को छोड़कर दस्तकारी को ही मुख्य वस्तु मान लेंगे तो वर्धा-योजना का गाम्भीर्य कुछ कम हो जायगा। सबसे मुनासिब दृष्टिकोण यह है कि हम दस्तकारी को शिक्षा का माध्यम मान लें और उसके द्वारा बच्चे की सारी शक्तियों का विकास करें। जो ज्ञान शिक्षक को बच्चे को देना है उसकी रूपरेखा अपने मन में स्थिर करनी चाहिए। बच्चे को सिर्फ कारीगर ही नहीं बनाना है उसे समाज, देश और संसार का एक बहुमूल्य अंग बनाना है।

इसी सभा में काका कालेलकर जैसे विद्वान भी थे जिन्होंने मध्य भाग ग्रहण किया। उन्होंने कहा— यह जो अनुबन्ध के साथ सिखाने का तरीका है (काका साहब समवाय के स्थान पर अनुबन्ध शब्द को अधिक उचित मानते हैं) वह हमें बहुत दूर तक ले जा सकता है और जब हम किसी दस्तकारी के साथ ज्ञान देने बैठते हैं तब तो दुनिया की सब बातें उसमें आ सकती हैं क्योंकि दस्तकारी में कुदरत से कच्चा माल लेकर मनुष्य अपनी कुशलता (दस्तकारी) से ऐसा रूप देता है कि वह मनुष्य समाज के काम की बन जाती है। इस तरह प्रकृति का परिचय, मनुष्य शक्ति का परिचय और सामाजिक जीवन की रचना का परिचय, दस्तकारी के साथ ही आ जाता है। अनुबन्ध के ये तीन प्रस्थान हैं। इस प्रस्थानत्रयी के अन्दर न आ सके ऐसी कोई चीज दुनिया में है ही नहीं। जहाँ सीधा सम्बन्ध नहीं है वहाँ ठोक-पीटकर अनुबन्ध नहीं बनाना चाहिए। [१]

---

१ एक कदम आगे—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ—पृष्ठ ६६

मोगा (पंजाब) के रेवरेण्ड ए० ई० हार्पर और मिसेज हार्पर ने दस्तकारी को शिक्षा का केन्द्र किस तरह बनाया जाय और प्राथमिक शिक्षा के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल दस्तकारी की क्रिया से किस प्रकार निकाला जाय, के विषय पर बोलते हुए कहा—"हमारा काम का तरीका यह है कि बालक अपने लिए अपने भौतिक और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाला कोई प्रोजेक्ट (सयोजन) पसन्द कर लेता है और उसीके आधार पर शिक्षा दी जाती है। इसी तरह के प्रोजेक्ट्स के आधार पर बुनियादी तालीम भी क्यों न दी जाय बुनियादी पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा-क्रम में मेल मिलानेवाले तीन केन्द्र हैं—भौतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण और इन दोनों को मिलानेवाली दस्तकारी। तो फिर हर कक्षा के लिए दिलचस्पी का ऐसा केन्द्र क्यों न चुन लिया जाय, जो इन तीनों पहलुओं का मेल मिला दे। मसलन, अगर बुनियादी दस्तकारी खेती हो तो, 'बाग', 'रोटी', 'खेती के जानवर', 'हमारा भोजन', 'पेड़', 'किसान और उसका काम' इत्यादि विषय पसन्द किये जा सकते हैं। इसी तरह अगर बुनियादी दस्तकारी कातना और बुनना हो तो 'कपास', 'हमारे कपड़े', 'राष्ट्रीय जीवन में चरखा', विषय मेल मिलाने (समवाय) के दिलचस्प केन्द्र बनाये जा सकते हैं। इस तरह दस्तकारी की कला का नियमपूर्वक अभ्यास करने की प्रेरणा भी मिलेगी और भाषा, विज्ञान, गणित, समाज विज्ञान की जरूरत भी महसूस होगी।[1]

इस तरह पूना सम्मेलन में इस प्रकार के विचार भी प्रकट हुए कि दस्तकारी को छोटी-छोटी योजनाओं के रूप में लिया जाय, जिससे उनके द्वारा अधिक प्राकृतिक ढग से समवाय स्थापित किया जा सके। ऐसा करने से दस्तकारी की क्रियाएँ उप क्रियाएँ भी अधिक रोचक हो जायँगी और दूसरे विषयों का प्राकृतिक ढग से अनुबन्ध हो सकेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समवाय की समस्या को लेकर पूना सम्मेलन में जो चर्चा हुई उसका निष्कर्ष यही निकला कि केवल दस्तकारी की क्रियाओं-उपक्रियाओं से समवाय करने के स्थान पर अधिक मनोवैज्ञानिक यह होगा कि बालक के जीवन की दूसरी क्रियाओं को भी लिया जाय, जिससे समवाय का दायरा बढ़े। इस प्रकार के निर्णय से भले ही समवाय पद्धति मनोवैज्ञानिक और प्राकृतिक बनी हो, पर बेसिक-शिक्षा की मूलभूत संकल्पना कि बालकों को साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान इत्यादि सभी विषयों की शिक्षा

---

१. *एक कदम आगे—पृष्ठ २६३-६४*

उद्योग द्वारा ही दी जानी चाहिए, भुला दी गयी। दूसरे शब्दो में गांधीजी के क्रान्तिकारी विचारो के प्रति प्रच्छन्न विरोध और कमजोर समझौता की जो भावना जाकिर हुसैन समिति मे प्रकट हुई थी, वह पूना सम्मेलन में और भी दृढ हो गयी और केवल उत्पादक उद्योगो को शिक्षा के केन्द्र में रखने की बात पीछे पड गयी। गांधीजी चाहते थे, उद्योग द्वारा व्यक्तित्व का सस्कार और विकास। यह तभी सम्भव था जब उद्योग बालक की शिक्षा का सही माने में केन्द्र होता। समवाय को लेकर उद्योग के इस महत्व का कम करने का एक परिणाम यह हुआ कि 'उद्योग' बेशिक शिक्षा का केन्द्र नही रह गया और उद्योग का शिक्षण उद्योग में निष्णात ऐसे शिक्षको द्वारा ही हो, जो अन्य विषयो को भी जानते हो। जिससे उद्योग की प्रक्रियाओ और शेष विषयो में समान रूप से अंतर्दृष्टि हो—यह बात पीछे पड गयी, अवहेलित हो गयी।

जो भी हो पूना सम्मेलन समवाय मूलक शिक्षण के इतिहास में एक सीमा चिह्न है। समवाय के केन्द्र और ढग के विषय में, इस सम्मेलन में खुलकर चर्चा हुई और भविष्य मे काम करने के लिए निर्णय किये गये। यह तो नही कहा जा सकता कि इस विषय में अन्तिम शब्द कह दिये गये, और (शिक्षा के सम्बन्ध में 'अन्तिम शब्द' ऐसी कोई चीज होती भी नही) और सर्वसम्मत से एक राजपथ का निर्माण हो गया, फिर भी दो बातें तो कही ही गयी। एक तो यह कि समवाय का क्षेत्र अधिक व्यापक बनाया जाय और समवाय के लिए एक ही केन्द्र (उद्योग) को न लेकर उन दोनो केन्द्रो (प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण) को भी लिया जाय जिनकी सस्तुति डा० जाकिर हुसैन समिति ने की है। दूसरा यह कि समवाय स्थापित करने के लिए खींचातानी न की जाय और बनावटी समवाय न स्थापित किया जाय। पूना सम्मेलन का निर्णय निम्नांकित है —

> लेकिन यह समवाय या अनुबन्ध ख्वामख्वाह लादा नहीं जाना चाहिए बल्कि शिक्षा का ढग ऐसा होना चाहिए कि उसका समवाय न सिर्फ बुनियादी दस्तकारी के साथ हो, बल्कि बच्चे के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली कुदरती और सामाजिक घटनाओ से भी हो। ये घटनाएँ ऐसी हो, जिनसे काफी फायदा उठाया जा सके और बच्चो के बुनियादी ज्ञान के बढाने में सहायक हो।[1]

इस चर्चा और निर्णय के दो व्यावहारिक परिणाम हुए—एक तो यह कि समवाय-पद्धति सयोजन-पद्धति के निकट आ गयी और उसमें भी "योजनाओ

---

[1] एक कदम आगे—हिंदुस्तानी तालीमी सघ—१६३६, पृष्ठ २१६ अप्रैल, '६८]

और इकाइयों" के माध्यम से शिक्षण देने का विधान हुआ। बाद में समवाय पर जो पुस्तकें लिखी गयीं, उनमें यही सिद्धान्त रूप में भी कहा गया और उदाहरण देकर समझाया भी गया।

दूसरी ओर हिंदुस्तानी तालीमी संघ ने भी, जिसे गांधीवादी शिक्षा के कट्टर दृष्टिकोण का प्रतिनिधि समझा जाता था और जो दस्तकारी द्वारा ही समवाय करने के पक्ष में था, समवाय के केन्द्र की अपनी सकल्पना को अधिक व्यापक बनाया। बुनियादी तालीम के कार्यक्रम में उसने पांच प्रवृत्तियों को शिक्षा के माध्यम के रूप में चुना और उनका विस्तृत पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया। इन प्रवृत्तियों का बालक के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध था और इसके माध्यम से उन्हें समवायित पद्धति से अधिक-से-अधिक शिक्षा दी जा सकती है और उनके व्यक्तित्व का अधिक सन्तुलित विकास किया जा सकता था। ये प्रवृत्तियाँ निम्न हैं :—

(१) शुद्ध और स्वस्थ जीवन बिताने का अभ्यास।

(२) स्वावलम्बन का अभ्यास।

(३) किसी एक उत्पादक बुनियादी दस्तकारी का अभ्यास।

(४) समाज में नागरिकता का अभ्यास।

(५) रचनात्मक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का अभ्यास।[१]

समवाय के दायरे को इस प्रकार व्यापक बनाकर हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने बेसिक शिक्षा को 'जीवन के लिए तालीम' बनाने की चेष्टा की। यरवदा जेल से छूटने के बाद १९४४ ई० में गांधीजी ने नयी तालीम की व्याख्या करते हुए कहा था कि "यह जीवन के लिए तालीम है। इसका क्षेत्र सात से चौदह साल तक के बच्चे ही नहीं हैं। माँ के पेट में आने से लेकर, मरते हैं, वहाँ तक हमारा अर्थात् नयी तालीम का क्षेत्र है।" अतः समवाय के दायरे का यह विस्तार इस परिभाषा के अनुरूप ही हुआ।

०

१. आठ सालों का सम्पूर्ण शिक्षा-क्रम—हिन्दुस्तानी तालीमी संघ—१९४७, पृष्ठ ११

शिक्षा-दर्शन का एक क्रान्तिकारी आयाम

रोहित मेहता

मन प्रधान सम्यता मे जीवन की ओर देखने की दृष्टि मूलत मनोनिष्ठ ही होती है लेकिन अब श्री कृष्णमूर्ति ने अपनी युक्तियुक्त और विचार-संगत शैली में यह स्पष्ट दर्शाया है कि मन किस प्रकार अपने ही दायरे में चक्कर काटता रहता है और अपनी अखण्डता (कण्टिन्यूइटी) के क्षेत्र से किस प्रकार बाहर निकल ही नहीं पाता है। अपने इसी स्वभाव के कारण मन हमें आमूल परिवर्तन की दिशा में एक कदम भी नहीं ले जा पाता । लेकिन आज की इस आधुनिक सम्यता में आवश्यकता इसी आमूल परिवर्तन की है, समूची समाजरचना में ही आमूल क्रान्ति की है। इसलिए यह निश्चित है कि उस आमूल परिवर्तन के लिए हमें जो साधन खोजना है, और जिन मूल्यों का सहारा लेना है वे मन पर आधारित न हो यह जरूरी है। इसका अर्थ यह भी है कि हमें आजकल प्रचलित अनेक धार्मिक तथा अधार्मिक सभी रूढियो का त्याग करना होगा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि सहज भावनाओ के विरुद्ध चलना है उससे तो नयी उलझनें ही पैदा होगी, जो विश्व पहले से ही अनेक प्रकार की व्यक्तिगत और सामूहिक उलझनो से भरा है, वह और भी उलझ जायगा। श्री कृष्णमूर्ति भावनाओ के विपरीत चलने को नहीं कहते हैं, बल्कि मन अपने को जिस दायरे में समेटे रखता है, उस दायरे से बाहर निकलकर देखने को, मन के परे जो एक तत्त्व है उसे खोज लेने को कहते हैं। तो, उनके कथन में दो बातें है एक, मन की मर्यादाओं को समझना, और दूसरी, मन के बाहर का तत्त्व देखना। कैसे देखा जाय तो यह कोई द्विविध प्रक्रिया नहीं है, एक ही है क्योंकि ज्यो ही हम हर परिस्थिति में मन की मर्यादाओ को जानने और उनके प्रति सावधान होने लगते हैं, त्यो ही मन का दायरा टूटने लगता है उन मर्यादाओ के प्रति सावधान रहना ही उस घेरे को काटना है, और

इसीलिए उस स्थिति में मन के परे रहनेवाले तत्त्व का बोध भी स्वय होने लगता है। उस तत्त्व का बोध हुआ कि नया मार्ग सूझने लगता है और प्रत्येक व्यक्ति, विचार और पदार्थों के साथ के सम्बन्धों में परिवर्तन आ जाता है।

श्री कृष्णमूर्ति की पुस्तक "एज्युकेशन एण्ड दि सिग्निफिकेन्स ऑफ लाइफ" का मूल्याकन इसी भूमिका से किया जा सकता है। श्री कृष्णमूर्ति की जीवन की जो दृष्टि है उसी दृष्टि से इस पुस्तक में शिक्षासम्बन्धी कुछ मूलभूत समस्याओ पर विचार किया गया है। दूसरे शब्दो में, हम यह कह सकते हैं उन्होने इस पुस्तक में यह सिद्ध किया है कि शिक्षा की समस्याओं का समाधान खोजने के लिए मन प्रधान दृष्टिकोण पर्याप्त नही है, उसके लिए समस्त बन्धनो और बन्धनकारक सस्कारो से सर्वथा मुक्त मन की आवश्यकता है। कहने की आवश्यकता नही है कि यह पुस्तक बडी ही प्रेरणादायी है और सर्वथा नवीन दृष्टिकोण से भरी हुई है। प्रचलित शिक्षा-पद्धति के सामने—केवल प्राचीन परम्परागत पद्धति के ही नही, जिसे हम प्रगतिशील और उत्कृष्ट मानते हैं उसके सामने भी—शिक्षासम्बन्धी मान्यताओ और उपलब्धियो की दृष्टि से इस पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ चुनौती देनेवाला है।

पूरी पुस्तक का मुख्य सार तीन शब्दो में व्यक्त किया जा सकता है (१) भयमुक्ति, (२) प्रामाण्यमुक्ति और (३) अनुशासनमुक्ति। पुस्तक में इन शब्दो का प्रयोग नही किया गया है, लेकिन विवेचित विषय का सार इन शब्दो में आ जाता है। वैसे स्थूल रूप से देखें तो आज के प्रगतिशील शिक्षा-शास्त्री इन तत्त्वों को स्वीकार करने में हिचकेंगे नही, लेकिन श्री कृष्णमूर्ति जिस गहराई से इन का विवेचन करते हैं, उसे देखने पर मालूम होगा कि हमें अपनी मान्यताओं और सिद्धान्तो में आमूल परिवर्तन करना ही होगा। कोई आश्चर्य नही कि इस तथ्य का भान इससे पहले हमें हुआ ही न हो।

आज जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित है और जो शिक्षण-संस्थाएँ चल रही हैं वे मानवता की पोषक नही, बल्कि घातक हैं। कृष्णमूर्ति हमारा ध्यान मूल दृष्टि की ओर ही खीचते हैं, जिसमें हमें परिवर्तन करना आवश्यक है और जिसमें परिवर्तन न करने पर मनुष्य निश्चित ही एक स्वयचालित यत्र से अधिक कुछ नही रह जायगा। आज की सभ्यता मनोमूलक सभ्यता है, और इसमें मनुष्य को जीवन के सभी क्षेत्रो में मात्र एक मनोवैज्ञानिक यत्र बना देने का ही प्रयत्न चारो ओर से चल रहा है। शिक्षा-क्षेत्र में भी जब यही दृष्टिकोण दाखिल हो गया, तो यह मानव जीवन के लिए सबसे बडा खतरा है। कृष्णमूर्ति के *शब्दो में, आज हमारे सारे स्कूल और कालेज तथा विश्वविद्यालय 'मानव को*

अमुक एक प्रकार में गढने के साँचे हैं', जिसमें ढलकर मनुष्य रूढिप्रिय (कनफॉर्मिस्ट) बनता है, विजय का प्यासा बनता है और सुरक्षा (सेक्यूरिटी) के लिए लालायित होता है। कृष्णमूर्ति ठीक ही कहते है—"रूढिवाद के चलते मनुष्य औसत से ऊँचा नही उठ पाता है।" मनुष्य जहाँ औसत स्तर का ही रहा, वहाँ उसमें सृजनशीलता आ नही सकती। इसलिए यदि हमें शिक्षा को सृजनशील (क्रिएटिव) बनाना है तो शिक्षा की पद्धति और प्रक्रियाओ में से उन सब बातो को हटा देना होगा, जो हमें रूढिप्रियता की और सुरक्षा की लालसा की ओर ले जाती हैं। सृजनशील शिक्षा में औसत का स्थान प्रज्ञा लेगी। कृष्णमूर्ति का कहना है कि रूढिवाद और सुरक्षा की भावना के कारण मनुष्य की बुद्धि और मन, दोनों जड हो जाते हैं। वे कहते हैं—

'जिस रूप में जो अनुभव आये उसे उसी रूप में स्वीकार करें और उसका सामना करें, उससे भागें नहीं तथा उसे अपनी भावना के रग में रगें नही, किसी प्रकार दूषित न करें तभी हमारी बुद्धि सावित रहेगी, उसमें उत्तम जागृति निर्माण होगी और जो बुद्धि जागृत होती है वही अन्त स्फूर्ति (इन्ट्यूशन) कहलाती है और वही जीवन का सही मार्गदर्शक है।"

इस प्रकार प्रज्ञा को जागृत करना शिक्षा का प्रमुख काम है। इसी बात को विस्तार से समझाते हुए कृष्णमूर्ति कहते हैं—"हम भले ही खूब पढे लिखे हो, लेकिन यदि हमारे विचारो और भावनाओ में गहरा सामजस्य (डीप इटिग्रेशन) न हो तो हमारा जीवन अधूरा है, उसमें अतर्विरोध भरे होते हैं और वह अनेक प्रकार के भयो से बिखरा होता है। जब तक शिक्षा जीवन के प्रति समजस और समग्र दृष्टि नही देती है, तब तक वह निरर्थक है।"

जीवन के प्रति यह समग्र दृष्टि तब आ सकती है जब प्रज्ञा जागृत हो, जिससे मनुष्य खुद को एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में देख सके और जीवन की समग्रता को ग्रहण कर सके। ध्यान में रखने की बात यह है कि जब व्यक्ति किसी विचार या आचार विशेष का अनुगामी बन जाता है तब यह समग्रता की दृष्टि कभी नही आ सकती, वह पूर्णतया सामजस्यविहीन हो रहेगा। हमारी शिक्षा—चाहे वह पारम्परिक हो या प्रगतिशील—एक ऐसे तंत्र (टेक्नीक) से जकडी हुई है, जिससे व्यक्ति की क्षमता का तो विकास अवश्य होता है, परन्तु समग्रता की दृष्टि नही आ सकती। जैसे कृष्णमूर्ति कहते हैं : "इस शिक्षा से क्षमता आती है, पूर्णता (कम्प्लीटनेस) नहीं आती।" यह पूर्णता मनुष्य की वह समग्रता है जिसके बिना उसका जीवन 'अतर्विरोधो और दु खो का अड्डा बन जाता है।' वे यह नही कहते हैं कि ज्ञान और क्षमता अनावश्यक है, बल्कि

इनको वे अत्यावश्यक मानते हैं, लेकिन 'उन्होंको प्रमुख मान लेने से संघर्ष और उलझनें ही बढ़ती हैं।'

यहाँ वे क्षमता के दो भाग करते हैं—एक वह, जो महत्वाकांक्षा से प्रेरित होता है; दूसरा वह, जो प्रेम से उत्स्फूर्त होता है। महात्वाकांक्षा से प्रेरित होनेवाली क्षमता कठोरता और नृशंसता को जन्म देती है। हमारी वर्तमान शिक्षा विजय की लालसा पर अत्यधिक बल देती है, इसीलिए मानव को कठोर और क्रूर बनाती है। आज जो भीषण प्रतिस्पर्धा और आपसी संहार की तूफानी दौड़ चल रही है वह इसी बात का प्रमाण है। विशेष तकनीकी प्रवीणता के कारण जो क्षमता प्राप्त होती है उससे मनुष्य एकांगी बनता है, उस मनुष्य के लिए अंगविशेष ही प्रमुख बन जाता है, उसकी दृष्टि से 'पूर्ण' सर्वथा अदृश्य हो जाता है। श्री कृष्णमूर्ति ठीक ही कहते हैं "शिक्षा का अर्थ केवल कुछ जानकारी एकत्रित करना नहीं है, तथ्यों का संचय और संकलन करना ही शिक्षा नहीं है, शिक्षा तो जीवन को उसकी पूर्णता के साथ देखना है।" जीवन को पूर्णता के साथ देखना एकमात्र प्रज्ञा से ही सम्भव है। वर्तमान शिक्षा का यह जो विश्लेषण कृष्णमूर्ति कर रहे हैं उस पर आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों को गम्भीरता के साथ सोचने की जरूरत है।

श्री कृष्णमूर्ति कहते हैं "शिक्षा का प्रमुख काम ऐसे मानव का निर्माण करना है जो समग्र (इण्टेग्रेटेड) है और जो प्रज्ञावान (इण्टेलिजेण्ट) है। बिना प्रज्ञा के ही पदवीधर हो सकते हैं, यंत्रशास्त्रनिपुण हो सकते हैं, तकनीकी विशेषज्ञ बन सकते हैं। प्रज्ञा कोरी जानकारी का नाम नहीं है। यह पुस्तकों से प्राप्त होनेवाली नहीं है। न वह खण्डन-मण्डनात्मक बौद्धिक पाण्डित्य से निष्पन्न होती है। इसके विपरीत एकदम अनपढ़ आदमी इन पण्डितों से कहीं अधिक प्रज्ञावान हो सकता है। हम लोगों ने तो परीक्षा और पदवी को ही विद्या का मानदण्ड बना दिया है और मानव मन को इतना दीन और निस्तेज बना रखा है कि वह जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं से बचकर भागने की ही ताक में रहता है। लेकिन प्रज्ञा वह शक्ति है जो किसी भी वस्तु के अन्त सत्व का दर्शन करती है, जो 'है' उसे वह देख सकती है, और इसी शक्ति का विकास करने का नाम शिक्षा है।"

कृष्णमूर्ति जिसे प्रज्ञा कह रहे हैं वह निश्चित ही एक ऐसी शक्ति है, जिससे मनुष्य में जीवन की क्षण-क्षण बदलती हुई प्रत्यक्ष समस्या को ठीक से देखने की, समस्या जैसी 'है' वैसी ही ग्रहण करने की और उसका समुचित उपाय खोजने की सामर्थ्य उत्पन्न होती है। इसके लिए आवश्यक है कि

मन सदा ग्रहणशील रहे, निरन्तर सजग और सावधान रहे, तथा अपनी आकलनक्षमता को जागृत रखे। मन ग्रहणशील तभी हो सकता है जब वह बन्धनहीन और उन्मुक्त रहता है, किसी विशिष्ट विचार या आचार से जकड़ा नहीं होता है। वही मन 'वस्तुओं का वास्तविक मूल्य समझ सकता है जो मूल्य पूर्वग्रहमुक्त शोधन से और सजगता से ही जाना जा सकता है।" ग्रहणशील चित्त ही वास्तव में जीवन की समस्याओं का सही समाधान खोज सकता है। विशिष्ट विचारों से जकड़ा हुआ और लकीर का फकीर बना हुआ मन हमेशा भयभीत रहता है और किसी भी समस्या से बचने की ही तजवीज करता रहता है। आज की शिक्षा मनुष्य को अनेक पहलुओं से यही बचने की और सुरक्षा खोज लेने की ही विद्या सिखाती है, ताकि जीवन में कहीं असफलता का सामना न करना पड़े। आज समाज में 'सफल' मनुष्य का बड़ा मान होता है और सफल मनुष्य वह है जो अपने बचाव की कला का खूब उपयोग कर सकता है। यह निश्चित है जो व्यक्ति जीवन के प्रत्येक प्रसंग में अन्दर-अन्दर अपना बचाव खोजता रहता है, वह बुरी तरह भयग्रस्त रहता है। इसलिए आज की हमारी शिक्षा के मार्ग में भय का तत्त्व निहित है ही।

आदमी यदि सबसे अधिक किसीसे डरता है तो खुद से। वह अपने से बचकर भागने की हरदम कोशिश करता रहता है, और वर्तमान शिक्षा हमें यही सिखा रही है। शिक्षा के हमारे ढाँचे में अपने को पहचानने का माद्दा है ही नहीं। लेकिन शिक्षा का सही अर्थ 'अपने को ठीक से समझना' ही है। यह आत्मज्ञान जीवन के हर कदम पर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में—"मन की पूर्ण सावधानता ही आत्मज्ञान" है। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि इस ज्ञान की अपनी तकनीक है। यानी वे तकनीक मात्र का निषेध नहीं करते हैं। लेकिन उनका कहना सही है कि अमुक विशिष्ट तकनीक से ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि तकनीक तो ज्ञान की अभिव्यक्ति के प्रकार विशेष का नाम है। आज हमारी शिक्षा-पद्धति में ज्ञान से अधिक तकनीक को महत्व दिया गया है, इसलिए ज्ञान रहा ही नहीं। हम आज की शिक्षा के द्वारा विशेषज्ञों और टेक्नीशियनों का निर्माण कर रहे हैं जो अभिव्यक्ति की कला में सुनिपुण हैं, लेकिन अभिव्यक्त करने को उनके पास मूल में कुछ है ही नहीं। कृष्णमूर्ति कहते हैं—"चूंकि हमने जीवन की समग्रता को न जानते हुए केवल तकनीकी कुशलता प्राप्त की है, इसलिए यह टेक्नालाजी आज हमारे विनाश का साधन बन गयी है।"

ज्ञानशून्य तकनीकी शिक्षा मनुष्य को न केवल क्रूर और कठोर बनाती है,

बल्कि उससे मनुष्य की आश्वस्तता की भावना पुष्ट होती है। इसीलिए तकनीकी विद्या में पारगत व्यक्ति जीवन की समस्याओं का समाधान सुरक्षा की भावना की दृष्टि से ही खोजता है। लेकिन मनुष्य जब पूर्व निश्चित मनोवृत्ति को लेकर जीवन की ओर देखता है, तो वह जीवन को पूर्ण रूप से देख नही पाता। इसके विपरीत जो मनुष्य जीवन की पूर्णता को जानता है वह चाहे जिस प्रकार की समस्या का हल करने का साधन पा जाता है। कृष्णमूर्ति कहते हैं—"यदि किसीके पास वास्तव में कुछ कहने योग्य वस्तु है तो उसे कहने की उसकी अपनी शैली बनती है, किंतु आन्तरिक स्फूर्ति ही न हो तो केवल कहने की शैली का अभ्यास करने से वह कृत्रिम बनता है।"

हमारी वर्तमान शिक्षा में अत्यधिक प्रवीणताओ और विशेषज्ञताओ के बावजूद कृत्रिमता दूर नही हुई है, बल्कि भरी हुई है। सच तो यह है कि कृत्रिमता का मूल कारण ही विशेषज्ञता (स्पेशलाइजेशन) है। कृत्रिम जीवन हमेशा अनुकरणात्मक होता है, अभिक्रममूलक (इनिशियेटिव) नही। आज की शिक्षा हमें अनुकरणशील बनाती है, इससे हम अपनी रटी रटायी शैली का पुनरावर्तन करने में उत्तम यांत्रिक कौशल दिखा सकते है। हम अपने स्वतंत्र ढग से व्यवहार करने से डरते हैं, क्योकि हमें उस चीज का अनुभव नही है। जैसे जैसे हम अन्दर से सूखते जाते हैं, वैसे-वैसे बाहरी उपकरणो, शैलियो और अभिव्यक्ति की छटाओ पर अधिकाधिक जोर देते जाते हैं। वास्तव में हमारी शिक्षा की असली समस्या यही है। तकनीक अपने आप में कोई समस्या नही है। लेकिन आज हम विद्यार्थियो के सामने शिक्षा के सभी स्तरो में आचार और विचार के खास नमूने ही पेश करते जाते हैं और अपेक्षा रखते हैं कि विद्यार्थी उन्ही नमूनों का यथावत् अनुकरण करें। इस प्रकार की शिक्षा व्यक्ति की निजी अभिक्रमशीलता के मूल में ही आघात पहुँचानेवाली है। वह नमूना प्राय किसी वीर पुरुष का, अवतार का या किसी नेता का होता है, कभी तो विचारधारा का भी हो सकता है। हमारे तथाकथित धार्मिक शिक्षण का भी यही प्रयत्न रहता है कि बच्चो के सामने कोई-न-कोई पौराणिक या वैचारिक आदर्श प्रस्तुत किया जाय। फिर वही आदर्श प्रमाण बन जाता है, बच्चों को उसी आदर्श के पीछे चलना पड़ता है और उसीका अनुकरण करना पड़ता है। लेकिन समझने की बात यह है कि इस प्रकार एक आदर्श प्रस्तुत करके हम बच्चो के अमुक दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं, उनके मन में एक स्वरूप विशेष को अंकित कर देते है। इसका परिणाम यह होता है कि

बच्चा हर समस्या को ओर उसी दृष्टिकोण से देखने का आदी होता है, वही समूचे जीवन की ओर देखने का उसका दृष्टिकोण बन जाता है। लेकिन जो मन आदर्श विशेष को मान लेता है—वह आदर्श कितना ही सुंदर क्यों न हो, वह मन जीवन की पूर्णता का आकलन नहीं कर सकता। श्री कृष्णमूर्ति कहते है—

"विशेषज्ञों की ही तरह आदर्शवादियों को भी 'पूर्ण' से कोई मतलब नहीं है, उनके लिए अंश ही सब कुछ है। उत्तम आचरण का आदर्श प्रस्तुत कर देने से ही जीवन की पूर्णता का दर्शन नहीं हो जाता। ऐसे कई आदर्शवादी शिक्षक हैं जिन्होंने आदर्श के पीछे प्रेम को तिलांजलि दे दी है, अन्दर से बिलकुल नीरस हो गये है। बालक का अध्ययन करने के लिए, बालक को ठीक से समझने के लिए बिलकुल सजग, सावधान और तत्पर रहना होता है। इस सावधानता के लिए उत्तम प्रज्ञा और प्रेम आवश्यक है, आदर्श नहीं।"

इससे बहुत स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षकों का दायित्व कितना बड़ा है। शिक्षक को अत्यन्त सावधान रहना होगा कि कहीं वह खुद ही बालकों के मन पर हावी न हो जाय। उसका अपना व्यक्तित्व अथवा उसका पाण्डित्य बालकों के लिए प्रमाण न बन जाय। आज तो आदर्श शिक्षा का अर्थ—चाहे वह वामपंथी हो या दक्षिणपंथी—अमुक विचार या आचार का आदर्श प्रस्तुत करना ही हो गया है। आगे चलकर वह आदर्श ही अनुशासन का रूप ले लेता है। दूसरे शब्दों में, हर प्रकार के अनुशासन का जन्म विशिष्ट विचार या आचार से ही होता है। सभी शालाओं में—पारम्परिक तथा प्रगतिशील दोनों प्रकार के स्कूलों में—बालकों को अमुक एक विचार या आचार के आदर्श में ढालने का ही प्रयत्न किया जाता है। कभी-कभी यह प्रयत्न जबरदस्ती का रूप लेता है, तो कभी सौम्य होता है, समझाने-बुझाने का होता है। प्रयत्न चाहे जिस स्वरूप का हो, लेकिन वही प्रयत्न बराबर चलता है कि बालक को किसी-न किसी साँचे में ढाला जाय। इस प्रयत्न में निश्चित ही यह विचार निहित है कि हम बालक को यह रूप देना चाहते हैं जो वह नहीं है। वह जैसा 'है', उससे कुछ भिन्न 'बनाना' चाहते हैं। परन्तु, जैसे कृष्णमूर्ति कहते हैं, वास्तविक शिक्षा तो "बालक जैसा है वैसा ही उसे जानना है, वह क्या बने यह सोचकर उस पर कुछ-न-कुछ आदर्श थोपना नहीं।" बालक को उसके असली रूप में स्वीकार करना शिक्षा का आरम्भ है। परन्तु यह जानना तभी सम्भव है जब बालक पर कोई आदर्श लादने का या उसे अमुक साँचे में ढालने का प्रयत्न शिक्षक की ओर से न हो। बालक को

किसी कृत्रिम माध्यम से, आदर्श या पद्धति-विशेष के द्वारा देखना गलत है, यह उसका गलत रूप देखना है। कृष्णमूर्ति कहते हैं—

"शिक्षक यदि सही है तो वह किसी पद्धति-विशेष पर निर्भर नहीं रहेगा, प्रत्येक छात्र का अलग-अलग अध्ययन करेगा। हमारे पास जो बच्चे हैं वे कोई यंत्र तो हैं नहीं कि ठोक-पीटकर काम के लायक बना लें, वे तो चेतनवान् व्यक्ति हैं, ज्ञान, भावना और बुद्धि सब उनमें है, उनमें भी भय, प्रेम आदि वृत्तियाँ हैं। उनके साथ काम करना है तो हममें पूरी समझ, धीरज और प्रेम का तत्त्व भरपूर होना चाहिए।"

तो, प्रश्न यह है कि शिक्षा के आधारभूत यह सही समझ प्राप्त कैसे होगी? हमें पहले समझ लेना चाहिए कि सही शिक्षा सही शिक्षक पर निर्भर है। कृष्णमूर्ति ने कहा है कि सही शिक्षा के लिए बालकों को हर प्रकार के बन्धनों से, उनके मन को जकड़नेवाले सभी संस्कारों से मुक्त रखना परम आवश्यक है। लेकिन बालक जब स्कूल जाता है, उससे पहले ही घर की और समाज की परिस्थितियों का प्रभाव उस पर पड़ चुका होता है। अब स्कूल में आने पर उसके दिमाग में शिक्षक अपना संस्कार भरने की कोशिश करता है। और इस तरह से बालक के मन पर उसका अपना और शिक्षक का, दो-दो संस्कार लदने लगता है। इसलिए शिक्षा का मुख्य काम इन संस्कारों को मिटाना ही है, बालक के मन को बन्धनों से मुक्त करना ही है। यह काम तब हो पायेगा जब शिक्षक को अपने बन्धनों का भान हो। वह अपने संस्कारों और बन्धनों से अवगत हो जाता है तो कम-से-कम इतना तो करेगा ही कि बालक के मन पर अपना संस्कार लादने से रुक जाय। कहना न होगा कि इस प्रकार का शिक्षक अत्यन्त संवेदनशील होगा। ऐसी संवेदनशीलता की मन:स्थिति में ही बालक को ठीक से समझना सम्भव होता है। जो शिक्षक अपने संस्कारों और बन्धनों के प्रति सतत जागरूक रहता है वह बालक के अन्दर ऐसी योग्यता उत्पन्न करेगा कि वे अपने बन्धनकारक संस्कारों के प्रति सजग रहें। इस पद्धति से शिक्षक और छात्र दोनों बाहरी प्रभावों और संस्कारों के प्रति अधिक संवेदनमय होंगे। अपने संस्कारों के प्रति सजग रहनेवाले शिक्षक के मार्गदर्शन में छात्र भी समझ सकता है कि वह स्वयं क्या क्या बातें अपने ऊपर लाद लेता है और कौन-कौनसे नये मूल्य गढ़ लेता है। इतना समझ लेने के बाद वह यह भी समझ सकता है कि "वे स्थायी मूल्य कौनसे हैं, जो जीवन को किसी भी बन्धन में जकड़नेवाले नहीं हैं।"

शंका उठ सकती है कि इस प्रकार समस्त संस्कारों और पाबन्दियों से मुक्त हो जाने पर समाज में अनुशासन रह नहीं जायगा, नैतिकता का ह्रास होने लगेगा और समाज का पतन होगा। समझने की बात यह है कि समस्त संस्कारों से मुक्त मन की अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें कोई भी प्रतिक्रिया रह नहीं जाती। अनुशासन और अनुशासन-हीनता, दोनों मन की विशिष्ट प्रतिक्रियात्मक अवस्थाएँ ही हैं। वह विशिष्ट अवस्था मन के संस्कारों का ही परिणाम है। इसलिए जिसे हम स्वतन्त्रता समझते हैं, चूंकि वह एक प्रकार की अनुशासनहीनता ही है, इसलिए स्वतन्त्रता नहीं है, क्योंकि वह स्थिति संस्कारयुक्त स्थिति नहीं है। मन को जब संस्कारों से सर्वथा मुक्त करते हैं तभी मन और बुद्धि, दोनों संवेदनशील होंगे। लेकिन वह संवेदनशीलता दबाव से आनेवाली नहीं है। किसी विचार या आचार का अनुयायी बनना दबाव ही तो है। इसलिए संवेदनशील मनुष्य कभी अनुशासन-हीन नहीं हो सकता, न लापरवाह ही हो सकता है। कृष्णमूर्ति के शब्दों में "सुव्यवस्था अनुशासन से नहीं, प्रज्ञा से आती है।"

इसलिए शिक्षा में सुधार का आरम्भ शिक्षकों और माता-पिताओं के शिक्षण से होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शिक्षकों और माता-पिताओं को पहले अपने संस्कारों और बन्धनों से अवगत हो लेना चाहिए, तभी वे बालकों को ठीक से समझ सकेंगे। ठीक से समझना ही तो शिक्षा का श्रीगणेश है। जो शिक्षक छात्र को ठीक से समझता है वही उसे अन्त तक मार्ग दिखा सकेगा। जो शिक्षा छात्र को 'अपना ज्ञान' न कराये, वह शिक्षा ही नहीं है। अपना ज्ञान का अर्थ है, वह जैसा 'है' वैसा जानना। हमारे मन पर इतने संस्कार पड़े होते हैं कि हम यह जान ही नहीं पाते कि हम वास्तव में क्या 'हैं'। इस आत्मज्ञान के बिना व्यक्ति में अभिक्रम (इनिशियेटिव) का, पहल करने की वृत्ति का निर्माण नहीं हो सकता। इसलिए सही शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों को समान रूप से संस्कारमुक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। ●

शिक्षा में विकेन्द्रीकरण

देवेन्द्रदत्त तिवारी

विकेन्द्रीकरण का अर्थ है समाज के मुट्ठीभर लोगों के हाथ से जनता के हाथ में, केन्द्र के हाथ से स्थानीय इकाइयों के हाथ में और केन्द्रीय शासन के हाथ से नागरिकों के हाथ में, अर्थात् ऊपर से नीचे अधिकार और दायित्व का हस्तान्तरण। दूसरे शब्दों में, विकेन्द्रीकरण कोई विशेष प्रशासनिक प्रबन्ध नहीं है जिसमें सरकार की, विभिन्न स्तरों की अलग-अलग इकाइयों के बीच कुछ कार्यक्रमों का विभाजन हो, बल्कि उसमें राष्ट्र का दर्शन, जनता का दृष्टिकोण और समस्या के समाधान की बुनियादी पद्धति का भी समावेश है। उसमें सरकार की जगह नागरिक पर, और केन्द्रीय शासन की जगह स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाइयों पर जोर निहित है। विकेन्द्रीकरण लोकतंत्र की कोणशिला है।

विशाल दृष्टि से कहें तो, राजनीति में विकेन्द्रीकरण का अर्थ केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय शासन संस्थाओं के बीच सत्ता का सहभाग है, जिसमें स्थानीय संस्थाओं का कार्य और दायित्व प्रमुख है। अर्थनीति में विकेन्द्रीकरण का अर्थ है वृहत् उद्योगों के बजाय लघु उद्योगों का व्यापक फैलाव। शिक्षा-क्षेत्र में उसका अर्थ है कि शैक्षिक विकास में जनता का सहयोग और शाला तथा शिक्षकों को पूर्ण क्रिया-स्वातन्त्र्य। इसका अर्थ यह भी है कि इसमें सरकार का अथवा प्रशासकीय तंत्र का कम-से-कम हस्तक्षेप रहना चाहिए।

शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के प्रश्न पर दो पहलुओं से विचार किया जा सकता है: एक—केन्द्र से राज्य के स्तर पर विकेन्द्रीकरण और दूसरा—राज्य से स्थानीय संस्थाओं के स्तर पर विकेन्द्रीकरण। जहाँ तक शिक्षा को केन्द्र के हाथों से राज्यों के हाथों में विकेन्द्रित करने का प्रश्न है मॉण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के द्वारा यही प्रयत्न किया गया था और उसके परिणामस्वरूप शिक्षा राज्य का विषय बनी। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि स्वतन्त्रता से पहले शिक्षा पर केन्द्रीय नियंत्रण कम था, राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्राप्त थी जो स्वतंत्रता के बाद नहीं रही। जहाँ तक राज्य से स्थानीय संस्थाओं के स्तर पर शिक्षा

को विकेन्द्रित करने का प्रश्न है, यद्यपि सन् १९२९ में हरटाग कमेटी ने और १९४४ में सार्जेण्ट कमेटी ने उसके प्रतिकूल राय दी थी, फिर भी सन् १९५१ की खेर कमेटी तथा १९५७ की बलवन्तराय मेहता कमेटी की सिफारिशों के फलस्वरूप उस ओर काफी महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। अन्तिम दोनों कमेटियों ने त्रिस्तरीय पद्धति का सुझाव दिया—पहला ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, प्रखण्ड स्तर पर पंचायत समिति या क्षेत्र समिति, और जिला-स्तर पर जिला परिषद। इस प्रकार तीन बुनियादी इकाइयां मानी गयी थीं। इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि पहले विकेन्द्रीकरण की प्रमुख इकाई जिले को माना गया था, तो अब जिले की बढ़ी हुई जन संख्या और समस्याओं की वृद्धि को देखते हुए, तथा इसलिए भी कि स्थानीय प्रशासन में जनता का सहयोग अधिकाधिक मिल सके, ग्रामपंचायतों और क्षेत्रीय समितियों को विशेष प्रधानता दी जाने लगी। माध्यमिक शिक्षा-क्षेत्र में यद्यपि जनता के निजी प्रयत्नों का विशेष महत्व है, फिर भी अनुदान तथा मान्यता की पद्धति के द्वारा राज्य सरकार का बड़ा प्रभावकारी नियंत्रण माध्यमिक शिक्षा पर है। अभी तक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के नियंत्रण पर अलग से विचार किया जाता रहा है, परन्तु भारतीय शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया है कि प्राथमिक (एलिमेण्टरी) और माध्यमिक शिक्षा का नियंत्रण एक साथ जिला स्कूल बोर्ड के ही हाथों में रहे। इंग्लैंड और अमेरिका में स्कूल तक की सारी शिक्षा का और कुछ हद तक उच्च शिक्षा का भी प्रशासन लोकल बोर्ड या एल० ई० ए० के ही अधीन है।

वस्तुतः यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है कि स्थानीय प्रशासन की इकाई क्या हो, उसका आकार कितना रहे। इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा अन्य राष्ट्रों में भी इन इकाइयों का निश्चय आबादी, संचार साधन, जनता की इच्छा और ऐसी ही अन्य बातों के आधार पर किया जाता है। वहाँ गाँवों का आकार भिन्न भिन्न है—इंग्लैण्ड में एक देहात २६००० का है, तो लंकाशायर के रटलैण्ड में २० २२ लाख का है।[1] अमेरिका के स्कूल जिले की जन-संख्या भी समान नहीं है। नेब्रास्का में ४५५ था न्यूयार्क में १४०००। सन् १९६० की जनगणना के अनुसार।[2] हमारे यहाँ शिक्षा के प्रशासन की बुनियादी इकाई के रूप में जिला बहुत बड़ा पड़ता है। जिले की अपेक्षा प्रखण्ड अधिक सुविधाजनक

१. लन्दन के शिक्षा विभाग द्वारा प्रसारित ३१-१० ६६ की शिक्षा रिपोर्ट के अनुसार।

२ दि टीचर एण्ड स्कूल आर्गनाइजेशन—ले० लियो एम० चेम्बरलेन और लेस्ली डब्लू० किण्डरेड लिखी (चतुर्थ संस्करण १९६६) पृ० ६५।

होगा, क्योंकि एक प्रखण्ड में लगभग १०० गाँव होते हैं। सबसे महत्व की बात यह ध्यान में रखनी है कि शिक्षा की समस्याओं में स्थानीय जन-समुदाय का प्रत्यक्ष और सक्रिय सहयोग उपलब्ध होना चाहिए। इस दृष्टि से प्रखण्ड अधिक सुविधापूर्ण इकाई प्रतीत होता है। अन्य देशों के समान यहाँ भी माध्यमिक, व्यावसायिक अथवा अन्य उच्च शिक्षा के मामले में कई प्रखण्डों को आपस में मिलकर प्रयत्न करना आवश्यक होगा।

कुछ राज्यों में प्राथमिक शिक्षा का विकेन्द्रीकरण करने के लिए प्रखण्डों को बुनियादी इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। हाल के वर्षों का अनुभव बता रहा है कि *विकेन्द्रीकरण के परिणाम सन्तोषजनक नहीं रहे हैं।* इसके कई कारण हैं। एक कारण यह कि इसके दायित्व और अधिकार में हाथ बँटाने की जिला परिषदों की इच्छा नहीं थी। दूसरा यह कि क्षेत्र-समितियों के हाथों में आवश्यक निर्णय लेने के खास अधिकार नहीं दिये गये थे। तीसरा कारण था कि इन प्रखण्ड समितियों को ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर के मार्फत सरकारी नियन्त्रण के अधीन रखा गया था। अन्तिम कारण यह था कि अधिकांश अधिकारीगण शहरी जीवन के और वहाँ की सुविधाओं के आदी थे, इसलिए प्रखण्ड के केन्द्र स्थानों पर रहना नहीं चाहते थे क्योंकि वहाँ उनको शहर की सारी सुविधाएँ मिल नहीं सकती थीं।

स्थानीय संस्थाओं की अर्थात् जिला प्रखण्ड तथा ग्राम स्तरीय प्रशासन पद्धति की विफलता का सारा दोष राज्य तथा केन्द्र-सरकारों पर है, क्योंकि इस विकेन्द्रीकरण के प्रयत्न की ओर उन्होंने पूरी आस्था से सही और पूरा ध्यान नहीं दिया। यहाँ खेर कमेटी के कुछ अभिप्राय उद्धृत हैं[1] जो प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित हैं फिर भी सामान्य शिक्षण पर भी उससे काफी प्रकाश पड़ता है

१ विकेन्द्रीकरण का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए कि उससे स्थानीय नेतृत्व स्थानीय अभिक्रम और उत्तरदायित्व की भावना का निर्माण हो। परन्तु इस उद्देश्य पर कभी यथोचित बल नहीं दिया गया। इसके विपरीत *विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य स्थानीय चन्दा एकत्रित करना मान लिया गया।*

२ एक सामान्य निष्कर्ष स्पष्ट होता है कि प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन के साथ स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के प्रयोग की ओर अपेक्षाकृत अल्प ही ध्यान दिया गया और वह भी पूरे मन से नहीं दिया गया, और अभी तक यही स्थिति दीखती है।

१ प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में राज्य-सरकारों और स्थानीय संस्थाओं के सम्बन्धों पर शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (१९५४)।

[नयी

३ इतिहास बताता है कि सन् १८८२ में लार्ड रिपन ने इस प्रयोग को सफल बनाने के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किये थे उन पर उस समय के प्रशासकों ने अमल नहीं किया। उसने स्पष्ट कहा था कि यह नया प्रयोग तभी सफल हो सकेगा जब (१) स्थानीय संस्थाओं को पर्याप्त साधन सामग्री उपलब्ध करायी जाय (२) यदि अतिरिक्त व्ययसाध्य कार्य जोड़ते हैं तो साथ साथ अतिरिक्त आय के साधन भी दिये जायँ, (३) यदि सरकारी अधिकारी स्वतंत्र राजनैतिक जीवन के प्रारम्भिक छोटे छोटे प्रयत्नों में पूरी निष्ठा और तत्परता के साथ कटिबद्ध होकर जुटते हैं और वे यह अनुभव करते हैं कि इससे उन्हें प्रशासनिक और संचालन शक्ति के विनियोग का अधिक उत्तम क्षेत्र प्राप्त हुआ है। परन्तु दुर्भाग्य से इन सुझावों को जल्दी ही भुला दिया गया।

४ लोगों की यह आम धारणा थी कि प्राथमिक शिक्षा की कठिनाइयों का यह एक कारण है कि उसे स्थानीय संस्थाओं के हाथों में सौंपा गया, और यदि उसे सफल करना है तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि उसे राज्य के शिक्षा विभाग के प्रत्यक्ष नियंत्रण में लाया जाय, लेकिन इस धारणा को इतिहास ने निराधार सिद्ध कर दिया है।

इस पृष्ठभूमि में शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के प्रश्न के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना उपयोगी होगा। हमें शिक्षा के उद्देश्यों पाठ्यक्रमों, शिक्षण पद्धति, तकनीक, मूल्यांकन योजना और प्रशासन के पहलुओं पर विचार करना चाहिए। यद्यपि ये सब पहलू परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और मिले-जुले हैं, फिर भी प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करने की आवश्यकता है।

शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य

समाज द्वारा निर्धारित सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक लक्ष्यों के आधार पर शिक्षा के लक्ष्य और उद्देश्य तय किये जाते हैं। हमारे संविधान के प्राक्कथन में यह स्पष्ट कहा गया है कि हमारे यहां लोकतंत्र की स्थापना की जायगी और प्रत्येक व्यक्ति को न्याय समता और विचार-आचार की स्वतंत्रता प्रदान करने के सिद्धान्त पर अमल किया जायगा। निःसन्देह ये हमारे राष्ट्रीय लक्ष्य हैं। इस सन्दर्भ में देखें तो राधाकृष्णन् कमेटी, मुदलियार आयोग और हाल के राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग आदि किसी भी समिति ने जो कुछ कहा हो, उससे भिन्न शिक्षा के आगे कोई राष्ट्रीय लक्ष्य नहीं रखा गया। वर्तमान शिक्षा मंत्री संसद के द्वारा एक निश्चित राष्ट्रीय शिक्षा नीति तय करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह एक दुर्भाग्य की ही बात है कि

शिक्षा यद्यपि राज्य का विषय है, फिर भी निश्चित शिक्षा-नीति बनाने के मामले में राज्यों का कोई ध्यान नही रखा गया। जब राज्यों की ही यह स्थिति है, तब यह स्वाभाविक ही था कि स्थानीय सस्थाओ या स्थानीय इकाइयों—जिनमें से कई तो ससार के अनेक स्वतत्र राज्यों और राष्ट्रों जितनी बड़ी हैं—का ध्यान शिक्षा के लक्ष्य की ओर गया ही नही। मेरे कहने का मुख्य आशय यह है कि शिक्षा को सही दिशा देने के बारे में स्थानीय जनता का, बल्कि राज्यों का भी योगदान नही रहा।

अब दूसरे पहलू से विचार करें। यह एक निर्विवाद सत्य है कि जब हम कोई कार्यक्रम या योजना हाथ में लेते हैं तो उसके लक्ष्य और उद्देश्यों को आँखों के सामने स्पष्ट रखना ही चाहिए। शिक्षा एक बहुत बड़ा कार्यक्रम है, लेकिन यह भाग्य की विडम्बना ही है कि हमारे स्कूल और शिक्षक उन उद्देश्य के प्रति बिलकुल ही अनभिज्ञ हैं, जिसके लिए वे काम कर रहे हैं। शिक्षा के लक्ष्य और नीति के निर्धारण में उनको स्थान देने का प्रश्न ही नही है, बल्कि इस पर विचार ही नही होता है। स्थानीय समुदाय को इससे कोई वास्ता नही है और माता पिता की कोई आवाज नही है। शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षार्थियों का सहभागी के नाते स्थान है यह बात अभी हाल में मान्य हुई है। इन सबसे यही सिद्ध होता है कि शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करने में स्थानीय अभिक्रम काम नही कर रहा है। यही कारण है कि शिक्षा उद्देश्य हीन हो गयी है। अन्यान्य लोकतान्त्रिक राष्ट्रों की स्थिति ऐसी नहीं है कि वहाँ स्थानीय जनता, बल्कि प्रत्येक स्कूल के अपने लक्ष्य स्पष्टतया निर्धारित हैं और उन लक्ष्यों को सिद्ध करने के लिए वे पूरी शक्ति से काम करते हैं। इसीलिए इस देश में शिक्षा में स्थानीय आवश्यकताओं का कोई स्थान नहीं रह गया है।

यहाँ विभिन्न आयोगों और कमेटियों द्वारा जो लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं वे जन-साधारण की, अथवा स्कूल की, अथवा शिक्षक या शिक्षार्थी की समझ से परे हैं और इसीलिए उन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कदम उठाने के प्रति वे सर्वथा उदासीन रहते हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-आयोग ने देश के सामने आर्थिक समृद्धि और चारित्र्य विकास का लक्ष्य रखा, जिसका कोई अर्थ नहीं है। इस लक्ष्य के निर्धारण का कोई प्रभाव स्कूलों और शिक्षकों पर नहीं पड़ा, क्योंकि रिपोर्ट तैयार करनेवालों और क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं के बीच बहुत बड़ी खाई है।

शिक्षा के लक्ष्य या उद्देश्य कई प्रकार के हो सकते हैं। एक लक्ष्य यह

भी है जिसे मै बुनियादी मानता हूँ, वह श्री टी० पी० नन् के शब्दों में व्यक्तित्व का विकास (डेवलपमेंट आफ इंडिवी जुएलिटी) है। यह लक्ष्य हर समय के लिए सही है, और किसी भी शिक्षा-पद्धति में इस बात के लिए गुंजाइश रहनी ही चाहिए कि बच्चो को शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमता का पूरा विकास हो सके। कुछ लक्ष्य ऐसे भी होते है, जो विशिष्ट परिस्थिति की माग को सामने रखकर निर्धारित किये जाते है। जैसे—आर्थिक समृद्धि, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा, जन-संख्यावृद्धि का नियन्त्रण और राष्ट्रीय एकता—ये सब राष्ट्रीय स्तर के कुछ विशेष लक्ष्य है। इसी प्रकार राज्य तथा स्थानीय स्तर के भी कुछ विशेष लक्ष्य हो सकते हैं, कुछ विशेष लक्ष्य केवल स्कूल और शिक्षको से ही सम्बन्धित भी होते है। इन सबके प्रति जनता तभी जागरूक हो सकती है जब बुनियाद में काम करनेवाले लोग स्वयं अपनी उन्नति के एक साधन के रूप में उन लक्ष्यो को निर्धारित करें। इसके बिना शिक्षा-पद्धति की लीक बदल नही सकती।

पाठ्यक्रम—

छात्रो को किस पद्धति से ज्ञान दिया जाय इसका निर्णय आज प्राथमिक स्तरो में शिक्षा-विभाग करता है और उच्च स्तरो में सेकेण्डरी एजूकेशन बोर्ड या ऐसी ही कोई समिति करती है। लेकिन पाठ्यक्रम की रूपरेखा कौन तैयार करे, यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है। अधिनायकशाही राष्ट्रो में जहाँ कि सरकार का नियंत्रण सर्वोपरि है और जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अमुक सामाजिक आवश्यकता के अनुकूल एक विशिष्ट साँचे में ही ढालना होता है, वहाँ पाठ्य-क्रम का निर्माण और निर्धारण सरकार ही करती है। परन्तु प्रगतिशील प्रजातान्त्रिक राष्ट्रो में जहाँ कानून के द्वारा व्यापक नीति-नियमों को अंगीकार करना सम्भव है, पाठ्यक्रम का ब्यौरेवार निर्धारण स्कूल ही करते है।

जब से रूस ने अन्तरिक्ष में स्पुतनिक भेजा, तब से पाठ्य-विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। खासकर अमेरिका में राष्ट्रीय शिक्षा समितियाँ विभिन्न वैज्ञानिक विषयो के अभ्यासक्रम तैयार कर रही थी। लेकिन देखा गया कि वे अभ्यासक्रम विशेष रूप से सैद्धान्तिक, तात्विक और औसत बालक की पहुँच के परे हैं, इसलिए ऊपर से विशेषज्ञों द्वारा लादे गये उन अभ्यास-क्रमो के खिलाफ गम्भीर प्रतिक्रिया प्रकट हुई। अभ्यास-क्रम को समयानुकूल और ताजा बनाये रखना जरूरी है, तो उसके लिए यह भी जरूरी है कि एक तरफ बच्चों की क्षमता, सामाजिक माँग और आवश्यकता के, तथा दूसरी ओर उन विषयों के सही ज्ञान के बीच तारतम्य टूटने न पावे, दोनों का सन्तुलन न बिगड़े। जो

लड़के विश्वविद्यालयीन शिक्षा प्राप्त करनेवाले नही हैं, उन्हें आधुनिक या प्रौढ गणित पढाने का कोई प्रयोजन नही है। न्यूनतम रिपोर्ट में यह बिलकुल सही निर्देश दिया गया है कि हमें औसत बालको और औसत से नीचे के बालकों की शिक्षा पर सही ध्यान देना चाहिए। राष्ट्र की अपार मानवशक्ति उन्ही में है, और हमारी औद्योगिक और आर्थिक उन्नति प्रतिभावान बालकों से कम इन पर निर्भर नही है।

हमारे देश में पाठ्यक्रम बनाने की प्रक्रिया में केन्द्रीकरण की ओर बडा झुकाव है और इस मामले में शिक्षक को कुछ भी स्वतन्त्रता नही है। नेशनल इस्टीच्युट आफ एजूकेशन में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और मूल्यांकन का एक विभाग है, जिसे शालाओ के विभिन्न विषयो के अलग-अलग अभ्यासक्रम बनाने, बदलने और रद्द करने का अधिकार है। यदि यह मान्यता सही है कि शिक्षा को बच्चो की क्षमता, परिस्थिति और आवश्यकता पर आधारित होना चाहिए, तो सारे देश के लिए, जहाँ कि बहुत विभिन्नता है, एक समान पाठ्यक्रम तैयार करने के लिए केन्द्रीय विभाग या समिति बनाने का प्रश्न ही नही उठता। यह मानने का कोई कारण नहीं कि शालाओ का समुचित पाठ्यक्रम बनाने की क्षमता राज्य या स्थानीय स्तर पर नही है।

पाठ्यक्रम पर केन्द्रीय नियन्त्रण के समर्थन में आम तौर पर निम्न दलीलें दी जाती हैं। पाठ्यक्रम में एकरूपता इसलिए आवश्यक है कि माता-पिता का तबादला हो और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जायँ तो उनके बच्चो की पढाई में दिक्कत न हो। लेकिन यह कहने की आवश्यकता नही है कि ऐसे लोगों का प्रतिशत नगण्य जैसा है, और इतने के लिए समूची शिक्षा की स्वस्थ परम्परा का त्याग करना कोई पसन्द नही करेगा। समान पाठ्यक्रम के समर्थन में दूसरी दलील राष्ट्रीय एकता की है। लेकिन राष्ट्रीय एकता की समस्या का समाधान पाठ्यक्रम की एकरूपता नहीं है, बल्कि इससे तो कट्टर सैनिकीकरण (रेजिमेंटेशन) जैसी आग्रही वृत्ति निर्माण होगी। आग्रहशून्यता अच्छे पाठ्यक्रम का आवश्यक और अत्यन्त महत्वपूर्ण गुण है। जो समान और अपरिवर्तनीय पाठ्यक्रम राज्य या केन्द्रीय समिति द्वारा तैयार किया जाता है। उसमें छीजन अधिक प्रमाण में होती है। आवश्यकता न होने पर भी पाठ्यक्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता और छात्र न हो तब भी आर्थिक व्यय जारी रहता है। दूसरी तरफ अमेरिका जैसे बड़े राष्ट्रों में भी पाठ्यक्रम काफी लचीले हैं। स्टेनाफोर्ड में मैंने देखा कि लोकल बोर्ड ने एलक्ट्रानिक से सम्बन्धित पाठ्यक्रम को रद्द कर दिया, क्योंकि स्थानीय एलक्ट्रानिक कारखाना किसी दूसरे स्थान

पर स्थानान्तरित हो गया था। इस प्रकार के लचीलेपन अथवा अनाग्रह की कल्पना हमारे देश में नही की जा सकती। ज्ञान के क्षेत्र में नित नये क्षितिज तेजी से खुलते जा रहे हैं, जिसके कारण पाठ्यक्रम में नित्य परिवर्तन और संशोधन की आवश्यकता पड़ रही है। पाठ्यक्रम के निर्माण की प्रक्रिया को जब तक विकेन्द्रित न कर दिया जाय तब तक यह सम्भव नही है। जो अपरिवर्तनीय पाठ्यक्रम ऊपर से लादा जाता है, उसमें तो शिक्षक को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नही रहती है, और बच्चो की आवश्यकताओ और मांगो की भी सर्वथा उपेक्षा होती है। अगर हम कर सकते हैं तो आदर्श व्यवस्था यह है कि प्रत्येक बच्चे के लिए एक स्वतंत्र पाठ्यक्रम हो। अगर यह सम्भव नही है, तो कम-से-कम इतना तो होना चाहिए कि पाठ्यक्रम यथासम्भव लचीला और विविधताओं से पूर्ण हो। जब तक केन्द्रीय पाठ्यक्रम ही सर्वत्र लागू रहेगा—भले वह राज्य स्तर का हो चाहे केन्द्र स्तर का—तब तक शिक्षा-पद्धति में कोई सुधार सम्भव नही है। मै ऐसे लोगो में नही हूँ, जिन्हें शिक्षक पर भरोसा नही है। मुझे इस बात में शंका नही है कि तथाकथित विशेषज्ञो की अपेक्षा हमारे स्कूल शिक्षक अधिक उत्तम पाठ्यक्रम तैयार कर सकते है। (मूल अंग्रेजी से)

साहित्य-समीक्षा

उजाला लेखक तथा सम्पादक श्री कस्तूरचन्द गुप्त, मूल्य पचास पैसे
साक्षरता निकेतन, लखनऊ-५

उजाला साक्षरता निकेतन, लखनऊ की ओर से प्रकाशित होनेवाला एक समाचार और विचार पत्र है, जो मुख्य रूप से प्रौढ नवसाक्षरो तथा कम पढे लिखे लोगो के लिए है।

प्रौढ कार्यकर्ता महात्मा गाधी के जीवन और उनकी अनोखी देन की संक्षिप्त और उपयोगी जानकारी प्राप्त कर सकें इस हेतु ५७ पृष्ठो के इस सचित्र अंक में लेखक ने गाधीजी के जीवन, विचार और सामाजिक कार्य की जानकारी सहज और सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

गाधी-सवत्सरी के प्रसग मे गाधीजी का सन्देश देश के गांव गांव और घर घर तक पहुँचाने की बात सोची जा रही है। इस दृष्टि से प्रौढ शिक्षा के काय में लगे कार्यकर्ताओं को इस अंक से यथेष्ठ प्रकाश प्राप्त होगा ऐसी आशा है।

प्रौढ़ शिक्षा

वंशीधर श्रीवास्तव

प्रौढ शिक्षा का अर्थ है उन प्रौढो की शिक्षा जिन्हें विद्यालयो म सविधिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नही मिला है। शिक्षा तो जीवन-पर्यन्त चलनेवाली प्रक्रिया है और शिक्षा प्राप्त करने के लिए आयु की कोई सीमा-रेखा नही खीची जा सकती। फिर भी जब हम प्रौढ शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य १४ वर्ष से ४५ वर्ष तक के उन वयस्को की शिक्षा से होता है, जिन्होने विद्यालयो में अथवा विद्यालय के बाहर किसी प्रकार की शिक्षा नही पायी है। आज के युग में तेजी के साथ बदलते हुए ससार का सामान्य ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। प्रजातन्त्र के प्रौढ नागरिक के लिए तो शिक्षित होना और भी आवश्यक है, क्योंकि उसकी विवेक-बुद्धि पर ही प्रजातन्त्र की सफलता या असफलता निर्भर करती है। सन् १९४५ मे जेल से छूटने के बाद गाधीजी ने जब बुनियादी शिक्षा-क्षेत्र विस्तृत किया तो उन्होंने प्रौढो को बुनियादी शिक्षा देने की बात इसलिए की कि प्रौढो को नयी तालीम देने से ही नयी तालीम का वातावरण घरो में रहेगा और तभी बालको का नयी तालीम के लक्ष्यो और सिद्धान्तो में निष्ठा उत्पन्न होगी। वयस्का की शिक्षा का सबसे बडा लाभ यही है कि वयस्को के पढने लिखने से घरा में शिक्षा का वातावरण रहता है, जिसका बालकों को शिक्षा पर भी प्रभाव पडना है।

भारत में प्रौढ शिक्षा का त्रिविध महत्व है। (१) भारत में प्रजातन्त्र है—उसके वयस्को का पढा लिखा होना इसलिए आवश्यक है कि वे समझ-बूझकर वोट दें। (२) आज के विज्ञान युग में अपढ नागरिक उत्पादन और सुरक्षा का कार्य भी प्रभावपूर्ण ढग से नहीं कर सकता। आज तो उत्पादन और सुरक्षा, बहुत हद तक, नागरिकों की उन उत्पादन और सुरक्षा-कार्यों में, जो अधिकाधिक वैज्ञानिक होते जा रहे हैं, सक्रिय रूप से भाग लेने की योग्यता पर निर्भर है। आज के विज्ञान और तकनीकी के युग में साक्षरता और शिक्षा के बिना देश की प्रगति सम्भव नही है और देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं हो सकती। देश की आर्थिक योजनाओं में काम करनेवाले श्रमिक

१४ से ४५ वर्ष के वयस्क ही होते हैं और यदि वे निरक्षर और निपढ़ हैं तो आजकल के टेकनालाजिकल उद्योगों में उनका समझ-बूझकर काम करना कठिन है। (३) अनपढ़ व्यक्ति में परम्पराओं से चिपके रहने और परिवर्तन से बचने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अतः प्रौढ़ों की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि अपढ़ नागरिक अन्ध विश्वास का त्याग कठिनता से ही कर पाता है। यही कारण है कि कोठारी शिक्षा-आयोग ने अपने प्रतिवेदन में प्रौढ़-शिक्षा पर अलग से एक अध्याय लिखा है।

आयोग ने शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता नहीं किया है। उसका कहना है कि साक्षरता के कार्यक्रम को अगर किसी काम का होना है, उसे फंक्शनल होना चाहिए अर्थात् प्रौढ़ों का पढ़ना लिखना ही न सिखाया जाय, वरन् उनमें ऐसे गुणों कौशलों और अभिरुचियों का विकास भी किया जाय, जिससे वे अपना कार्य अधिक अच्छे ढंग से कर सकें। आयोग ने साक्षरता के कार्यक्रम के तीन आवश्यक पहलू बताये है—

१ साक्षरता जहाँ तक सम्भव हो उद्योग-आधारित हो और उसका उद्देश्य प्रौढ़ों को वह गुण और ज्ञान प्रदान करना हो, जिससे वे जो काम कर रहे है, उसे अधिक कुशलतापूर्वक कर सकें। इसे 'फंक्शनल लिटरेसी' कहा है।

२ राष्ट्र की महत्वपूर्ण समस्याओं में रुचि लेकर वे देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रभावपूर्ण भाग ले सकें।

३ उन्हें पढ़ने लिखने और हिसाब किताब करने का इतना ज्ञान दे दिया जाय, जिससे अगर वे चाहें तो स्वतन्त्र रूप से अथवा दूसरे की सहायता से अपनी पढ़ाई लिखाई जारी रख सकें। (१७-१४, पृष्ठ ४२५)

निरक्षरता का उन्मूलन

आयोग ने प्रौढ़ शिक्षा के निम्नांकित कार्यक्रम सुझाये हैं—

यद्यपि साक्षरता शिक्षा नहीं है, फिर भी साक्षरता के बिना शिक्षा पूर्ण नहीं होती। अतः निरक्षरता का उन्मूलन प्रौढ़ शिक्षा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम होना चाहिए। आयोग ने सिफारिश की है कि देश से निरक्षरता को दूर करने का प्रत्येक सम्भव साधन काम में लाया जाय और २० वर्ष की अवधि में देश से निरक्षरता समाप्त कर दी जाय। इसके लिए आयोग ने दोहरा कार्यक्रम बनाने की संस्तुति की है—

१ रचनात्मक पद्धति का उपयोग—इस पद्धति के अन्तर्गत उन वयस्कों की शिक्षा की व्यवस्था की जाय, जिनको सरलता से साक्षर बनाया जा सकता है।

इनको साक्षर बनाने के लिए बड़े-बड़े फर्मों को, वाणिज्यों और औद्योगिक केन्द्रों तथा दूसरे क्षेत्रों के मालिकों को उत्तरदायी बनाया जाय। सरकार इन संस्थाओं को प्रोत्साहन दे और आवश्यकता समझे तो अधिनियम बनाये।

सबसे पहले सार्वजनिक क्षेत्रों में काम करनेवालों को साक्षर बनाया जाय। सार्वजनिक क्षेत्रों के प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के लिए सरकार यह अधिनियम बना सकती है कि प्रत्येक फर्म या औद्योगिक केन्द्र के मालिक प्रत्येक निरक्षर कर्मचारी को उसकी फर्म या कारखाने में नियुक्ति के तीन वर्ष के भीतर साक्षर बना दें।

२ सार्वभौमिक पद्धति—इसके अन्तर्गत देश के समस्त शिक्षित स्त्रियों और पुरुषों को प्रौढ़-शिक्षा के काम में लगाया जाय। इस आन्दोलन में शिक्षकों, छात्रों तथा समस्त शिक्षा-संस्थाओं को सक्रिय रूप से सम्मिलित किया जाय। उच्चतर प्राथमिक, निम्न माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक व्यावसायिक विद्यालयों, तथा कालेजों और विश्वविद्यालयों के पूर्व स्नातक स्तर के सभी छात्रों को प्रौढ़ों को पढ़ाने का काम दिया जाय। वयस्क शिक्षा का कार्य छात्रों से समाज-सेवा शिविरों में भी कराया जा सकता है। प्रत्येक शिक्षा-संस्था अपने क्षेत्र की निरक्षरता को दूर करने का प्रयास करे। विद्यालय को सामुदायिक जीवन का केन्द्र बनाया जाय, जहाँ प्रौढ़ शिक्षा का नियमपूर्वक काम हो।

३ स्त्रियों की साक्षरता दूर करने के लिए केन्द्रीय समाज-कल्याण परिषद द्वारा संक्षिप्त कोर्सों का आयोजन किया जाय और ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियों को साक्षर और शिक्षित बनाने के लिए ग्राम-सेविकाओं की नियुक्ति की जाय।

४ साक्षरता को बनाये रखने के लिए चल और अचल पुस्तकालयों की योजना चलायी जाय और उपयुक्त पठन-सामग्री तैयार की जाय।

अनवरत शिक्षा

वास्तव में साक्षरता तभी सार्थक समझी जायगी जब वयस्क में अपनी शिक्षा को जारी रखने की अभिरुचि का सृजन हो जाय। इस प्रकार की अनवरत शिक्षा के लिए शिक्षा-आयोग ने निम्नांकित उपाय सुझाये हैं —

१ सभी प्रकार की तथा सभी स्तर की शिक्षा-संस्थाओं को प्रोत्साहित किया जाय कि वे अपने नियमित समय के पश्चात् उन वयस्कों को, जो नवसाक्षर हैं और आगे पढ़ना चाहते हैं, पढ़ाने लिखाने की व्यवस्था करें।

२ शिक्षा-संस्थाओं को ऐसे पाठ्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए, जिनके माध्यम से वयस्कों के सामान्य ज्ञान और अनुभव में वृद्धि की जा सके। अगर इन पाठ्यक्रमों का सम्बन्ध उनके दैनिक जीवन से रहेगा तो इनमें रुचि लेंगे,

क्योंकि इससे उन्हे अपने जीवन की समस्याओ को हल करने में सहायता मिलेगी।

३ वयस्को के लिए अशकालीन पाठ्यविषयो का आयोजन किया जाय, जिससे नव-साक्षर प्रौढो को पुन निरक्षर हो जाने से बचाया जा सके।

४ केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद प्रौढ स्त्रियो के लिए कुछ सस्थाएँ चलाती है। मैसूर राज्य में भी प्रौढ-शिक्षा के लिए विद्यापीठ हैं। इस प्रकार की सस्थाएँ देश भर में खोली जायँ।

५. किन्ही कारणो से जो वयस्क अल्पकालीन पाठ्यक्रमो का अध्ययन भी नही कर सकते उनके लिए पत्र-पाठ-योजना चलायी जाय और जो वयस्क पत्र-पाठ योजना द्वारा अपनी शिक्षा जारी रखना चाहे उनके लिए कभी-कभी शिक्षको से मिलने का कार्यक्रम बनाया जाय।

६ नवसाक्षरो के लिए पुस्तकालय चलाये जायँ। सभी विद्यालय में पुस्तकालय होते हैं। इनमें नवसाक्षरो की रुचियो और योग्यता के अनुसार पुस्तकें रखी जायँ और उन्हें सार्वजनिक पुस्तकालयो के रूप में सगठित किया जाय। सचल पुस्तकालयो का आयोजन किया जाय, जिससे नवसाक्षरो तक पुस्तको का पहुँचाना सम्भव हो सके।

आयोग ने प्रौढ-शिक्षा के सगठन और प्रशासन के लिए भी निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :—

१ प्रौढ-शिक्षा के प्रचार के लिए राष्ट्रीय प्रौढ शिक्षा-परिषद की स्थापना की जाय, जिसमें समस्त सम्बन्धित मत्रालयो का प्रतिनिधित्व हो। शिक्षा मत्रालय शीघ्र इस परिषद की स्थापना के लिए कार्यवाही करे।

२ इस परिषद का कार्य प्रौढ शिक्षा और प्रौढ-शिक्षक प्रशिक्षण के विविध कार्यक्रम बनाना और उनके सम्बन्ध में राज्य-सरकारो को परामर्श देना होगा।

३ यह परिषद देश में प्रौढ-शिक्षा का काम करनेवाली विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी सस्थाओ में सामजस्य और सम्पर्क स्थापित करेगी और इन्हें आवश्यक पठन-सामग्री तैयार करने के लिए प्रोत्साहन देगी। परिषद प्रौढ शिक्षा में अनुसन्धान-कार्य को भी प्रोत्साहित करेगी और समय-समय पर प्रौढ-शिक्षा की प्रगति की जाँच कर और उसके उत्तरोत्तर प्रगति का सुझाव देगा।

४ केन्द्रीय परिषद की भाँति राज्यो में भी प्रौढ-शिक्षा-परिषदो का निर्माण किया जाय और जिला स्तर पर प्रौढ शिक्षा समितियाँ बनायी जायँ।

५ प्रौढ-शिक्षा के क्षेत्रों में जो व्यक्तिगत सस्थाएँ कार्य कर रही हैं, उन्हें आर्थिक सहायता दी जाय। ●

स्वदेश-प्रेम और भाषाई हल

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

देश प्रेम की तरह हिन्दी प्रेम भी स्वातंत्र्य आन्दोलनयुगीन भारत के सामान्य जनजीवन में स्वाभाविक रूप में मर्यादित और सर्व प्रकार से गौरवपूर्ण राष्ट्रीय परम्परा में समाविष्ट विषय था। जब देश को स्वतन्त्रता मिली और इसका संविधान बनने लगा तो इसीलिए संविधान निर्माताओं को केन्द्र के लिए राजभाषा के रूप में हिन्दी ही तय करने में देर नहीं लगी। उस समय हिन्दी को इस रूप में स्थापित करने को १५ वर्षों की एक अवधि तय की गयी। यह अवधि तैयारी की अवधि थी—अंग्रेजी से चलकर हिन्दी पर राजभाषा के रूप में स्थित और स्थिर होने के लिए।

धीरे-धीरे पन्द्रह वर्षों का समय कहते-सुनते और हिन्दी के लिए कुछ भी किये बिना बीता। अचानक वह समय आया जब कि हिन्दी को लागू मानने की औपचारिकता सरकारी स्तर पर घोषणा के रूप में बरती गयी, बीते पन्द्रह वर्षों में हिन्दी को जब इस अवस्था पर सचमुच में लाने के लिए कुछ भी नहीं किया गया तब भी। इसलिए हिन्दी इस समय न भरकर आयी और न उभरकर आयी। *आयी केवल रिक्तता के साथ, न टाली जा सकनेवाली* सरकारी औपचारिकता के साथ। आयी समलकर बैठने के लिए नहीं। आयी बाट नापने और दूसरों का मुँह जोहकर नहीं पहचानी जा सकनेवाली वनवधू शकुन्तला की तरह शासकों की दुष्यन्तवृत्ति का शिकार होकर, लौटकर

चली जाने के लिए। सचमुच भारत के राष्ट्रीय जीवन में, इसके प्रशासन में हिन्दी अपरिचिता होकर रह रही है। दक्षिण भारत ने और विशेष रूप में राजाजी के तमिलनाड ने उसे 'कलमुँही' कहकर ही झिड़की दी है। राजाजी और उनकी स्वतंत्र पार्टी के लोगों ने तो गांधी, राममोहन राय, सुभाषचंद्र बोस की हिंदी को खुलआम अपने प्रबल और विशेष विरोध का विषय बनाया।

हिंदी पहले देश की अखण्डता की साधना का माध्यम थी। गांधीजी ने इसके प्रयोग पर इसी दृष्टि से बल दिया था। हिन्दी गांधीजी के बाद हिंदुस्तान को टुकड़ों में बाँटी जानेवाली बनने लग गयी है। खण्डित भारत के औचित्य का चिंतन राजाजी ने भी जिन्ना की समझदारी को एक सुलझा हुआ विवेक समझकर किया था। आज उनका हिंदीमय हिंदुस्तान के स्पष्टतया दक्षिण और उत्तर के दो टुकड़ों में विभक्त होने की सम्भावना मानने लगा है।

संभावनाओं और आशंकाओं का ऐसा तर्क अगर उन्हें वास्तविकता में बदल डालने की पृष्ठभूमि निर्माण कर दे तो वह काफी निष्करुण और भयावह है। इसलिए अब सँभाल हिन्दी की ही नहीं देश की भी अत्यावश्यक है।

स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने दक्षिण में हिन्दी विरोध को देखते हुए उन्हें यह आश्वासन दे रखा था कि अहिंदी भाषियों पर बलपूर्वक हिन्दी नहीं लादी जायगी और तत्सम्बन्धी सुरक्षा के लिए संसद में एक विशेष बिल पारित किया जायगा। स्वर्गीय शास्त्रीजी ने भी उसी तरह का आश्वासन दिया था। उन दोनों के बाद की इन्दिरा सरकार पर उनके आश्वासनों को पूरा करने की जिम्मेदारी आयी और इसने किया भी।

परन्तु अब भी यह मामला बन्द नहीं मालूम पड़ रहा है। पहलेपहल हिन्दीवालों के विरोध का शिकार उक्त बिल को होना पड़ा। उत्तर प्रदेश और बिहार प्रमुख विरोध-केन्द्र रहे। दिल्ली और अन्यान्य प्रान्तों में भी विरोधी विचार प्रवाह की ही उमस रही। अशान्ति और उपद्रव ही विरोध का संचालन करते रहे। बदले में बिल में हिन्दी हित को दृष्टि से कुछ परिवर्तन किये गये। ऐसे परिवर्तनों के सम्बन्ध में दक्षिण में प्रतिक्रिया चल रही है। हिंदी को खाक बनाने के काम में राष्ट्रीय सम्पत्ति में भी आग लगायी जा रही है, जैसे—रेलगाड़ियों स्टेशनों आदि। दक्षिणवाले अब बिल से सन्तुष्ट न होकर संविधान में परिवर्तन की माँग कर रहे हैं। अब तक की ऐसी बाना में आतंक की अगुआई ही अधिक रही है और सरकार का सुविचारित जोर बहुत कमज़ोर।

इतनी बातें तो हो चुकी पर अब क्या होगा, इसका सवाल है। पिछली

बार का हिन्दी विरोधी उपद्रव जो तामिलनाड में हुआ था और उसमें हिंसा की जो आग भड़की थी उससे संत विनोबा को अनशन तक करना पड़ा। सरकार के सामने उनकी तीन माँगें आयी। वे इस प्रकार थी—(१) भाषाई प्रश्न को लेकर हिंसा न की जाय, (२) अंग्रेजी न चाहनेवालों पर अंग्रेजी न लादी जाय, (३) हिन्दी न चाहनेवालों पर हिन्दी न लादी जाय। इन तीन शर्तों का सभी प्रान्तों के मुख्य मन्त्रियों ने और केन्द्रीय सरकार ने माना और राष्ट्रपुरुष विनोबा का अनशन भंग हुआ। एक समाधान देश को मिला।

हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किये जाने की बात दक्षिण भारत की सद्भावना पर छोड़ दी गयी जो अच्छा हुआ, परन्तु साथ ही छोड़ दिया गया उत्तर भारत की अंग्रेजीपरस्त नौकरशाही को अंग्रेजी के प्रयोग के लिए निरंकुश, जो बुरा हुआ। प्रशासन अंग्रेजियत के रोब और गरूरियत से सराबोर रहकर अंग्रेजी चलाता रहा। शिक्षण-संस्थाएँ भी भिन्नमार्गी नहीं रहीं। अखिल भारतीय सेवाओं में अंग्रेजी ज्ञान से हीन विद्यार्थियों का 'प्रवेश निषेध' तो था ही, प्रान्तीय सरकार की सेवाओं के लिए भी अंग्रेजी की प्रमुखता बनी। जब शासन की भाषा अंग्रेजी रही तो शिक्षा-संस्थाओं में क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम क्यों बनायी जातीं? फल यह हुआ कि अंग्रेजी का सभी जगह प्रभाव बना रहा और हिन्दी और दूसरी क्षेत्रीय भाषाएँ उपेक्षित रहीं। भारत की अनेकता को बाँधने में हिन्दी की डोर भी ढीली रही।

ऐसे ही समय में आया राजभाषा संशोधन विधेयक बिल, नेहरू और शास्त्री के आश्वासनों को कार्यरूप देने के लिए। राजभाषा विधेयक में दक्षिण-वालों के हिन्दी विरोध को शान्त करने की चेष्टा हुई, तो अंग्रेजी विरोध की उमस पैदा करायी जाने लगी हिन्दी प्रान्तों में। हिन्दी भाषी देशों ने 'हिन्दी चलाओ' से अधिक जोर दिया 'अंग्रेजी मिटाओ' पर। दक्षिणवालों ने कहा हिन्दी छोड़ो और अंग्रेजी रखो। उत्तर का उपद्रव शान्त हुआ तो दक्षिण में शुरू हुआ और अभी यद्यपि आग बुझी नहीं है, राख से ढक भर गयी है। हवा का हल्का झोंका आया कि राख हटी और जलते अंगारे प्रकट हो जायेंगे। इसका कोई हल है क्या? हाँ है, भारतीय भाषाओं का विकास और अंग्रेजियत के मोह का परित्याग कर अपनी संस्कृति से प्रेम। गांधीजी का अंग्रेजी ज्ञान हमारे मन्त्रियों एवं अफसरों से बढ़कर और अतिशय समादृत था अंग्रेजों की दुनिया में भी। परन्तु उनकी दृष्टि सबसे अधिक रही स्वभाषा प्रेम की ओर। हमारे मन्त्री हिन्दुस्तानी हाकिमों की अंग्रेजियत से मात खाते रहे। मार खाते रहे उसीसे, और हिन्दी का नाम लेने में भी हीनता का अनुभव

करते रहे। ऐसी बात है योग्य मन्त्रियो के सम्बन्ध मे अक्षर कटुओ की तो बात ही छोड़िये। राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर हिन्दी प्रान्तों में जो षडयन्त्र होता रहा इसके आगे मद्रास का आन्दोलन चर्चा योग्य भी नही है। अन्दर से हिन्दी विरोधी रहकर मन्त्रियो और अफसरों ने हिन्दी को बाहरी रूप मे टिकाया और गांधी के सभी कार्यक्रमो की तरह इसकी भी उन्होंने अतिशय उपेक्षा की। सिपाही ही पहरेदारी से बेखबर रहा। पिछली बार भी दक्षिण में हिन्दी में लगायी गयी आग का धुआं ही भर इन्होंने देखा और फिर चुप हो गये।

गुलाम हिन्दुस्तान मे राजनीति से ही हमारी जिन्दगी के सभी क्षेत्रों को नेतृत्व मिलता रहा है। भाषाई प्रश्न भी राजनीति के माध्यम से ही अपना समाधान ढूंढ़ता रहा है। गांधीजी ने हिन्दी हित की तमाम बातों में संलग्न रखा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंच पर भी आये और दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की भी स्थापना की। इस काम के लिए एक खास जत्थे का निर्माण किया जो आज तक काम कर रहा है। गांधीजी के बाद हिन्दी की उपेक्षित स्थिति को समाप्त करने की दिशा में सबसे अधिक प्रखर राजनीतिक पुरुष के रूप मे आये डा० राममनोहर लोहिया। पिछली शताब्दी में अपने सभामंचो से व्याख्यान के जरिये 'चौखम्भा' और 'जन' मे लिखकर तथा संसद के भाषणों में सरकार का इस प्रश्न पर कोसते हुए उन्होंने जो किया वह हिन्दी साहित्य क्षेत्र के अतिशय सम्मानित पुरुषो से भी क्या कम है। भाषाई प्रश्न पर नेतृत्व अब तक राजनीति का ही रहा है जहाँ तक उसके हल के प्रयास का सम्बन्ध है। लेकिन जहां तक उसे समस्या के रूप मे बिना समाधान की अवस्था में रखने की बात है राजनीति और साहित्य क्षेत्र के लोग बराबर बराबर दोषी हैं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के लिए गांधीजी के अथक प्रयास की चर्चा ऊपर की कुछ पंक्तियों में आयी है। उनके दो आदर्श अनुचर सन्त विनोबा एवं श्री जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में हिन्दी की प्रतिष्ठा के लिए अपने सभामंचो के जरिये काफी प्रयास किया। इनके हिन्दी भाषण भी दक्षिण के लोगों को छूते रहे और उनसे राष्ट्रप्रेम का दिव्य संदेश भी उन्हें मिलता आया। जयप्रकाश और विनोबा का स्वदेश प्रेम और स्वभाषा प्रेम उनकी असलियत में जाँच की चीजें नही बन सकती जो राजनीति एवं साहित्य दोनों के ही मंचों पर जरूरत से ज्यादा घिनौने साबित हो चुके है। सन् १९६७ के अकाल वर्ष में जब बिहार के असंख्य नर नारियों की लाश पचरा जानेवाली थी जयप्रकाशजी ने बिहार के हिन्दीभाषी नर नारियों के मुहं में उतना दाना

पहुँचाया कि जिससे अकाल उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। उसी प्रान्त के विद्यार्थियों ने उनके स्वदेश और स्वभाषा प्रेम को जाने बिना पटना स्थित उनके निवास-स्थान पर जाकर उनके विरुद्ध अभद्र प्रदर्शन किया। उनके सुविचारित प्रेस-वक्तव्य का बिहार के हिन्दी आन्दोलनवालों ने अभद्र ढंग से प्रतिवाद किया। क्या हिंदी आन्दोलनवाले जयप्रकाशजी की हिंदी सेवा का शतांश भी कर पायेंगे? 'छोटा मुँह और बड़ी बात' को चरितार्थ करनेवाला उनका वक्तव्य, पटने में विदेशी मेहमानों के मुँह पर अलकतरों की पुताई आदि जैसी बातों से क्या हमारा राष्ट्रीय सम्मान धराशायी नहीं हो जाता है? इतने दिनों से राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर सरकार के मन्त्रियों की ढिलाई, विश्वविद्यालयों के जीवन में हिंदी के प्रति निष्ठाहीनता का वातावरण उनकी तेज आवाज का शिकार क्यों नहीं हुआ? राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर उसी जयप्रकाश ने विनोबा की उपस्थिति में राष्ट्रीय पंचायत बैठाने की बात सबसे पहल की है जिसे हिंदी आन्दोलन वालों ने आसानी से अपने आक्रोश का शिकार बनाया। कल भी अगर राष्ट्र भाषा का प्रश्न सुलझाया जा सकेगा तो देश में जयप्रकाश और विनोबा से अधिक सम्मानित माध्यम ढूँढना किसीके वश की बात नहीं है।

दक्षिणवालों में गांधीजी ने हिन्दी सीखने की भूख जगायी थी और आज वे हिंदीद्रोह पर आमादा है। उनमें प्रेम से मनाने की शक्ति थी। प्रेम के अभाव में लगता है कि हम लोगों का मनाना कोई महत्व ही नहीं बना पा रहा है उनमें। हिंदीवालों के लिए हिंदी पहले से ही अपनी है। दक्षिणवालों को तो अब उसे अपनाना है और अपनाते हुए उन्हे भय भी लगता है। हिन्दी के लिए सही अपनत्व उनमें जगे, इस दिशा में उत्तर भारतीयों में दक्षिण की किसी एक भाषा को सीखने का आग्रह बनाना सही राय है। हिन्दी की उपेक्षा करनेवाले लोगों की भाषाओं को समादर देने की हमारी प्रवृत्ति ही उनमें अंग्रेजी के लिए अनुचित आग्रह को समाप्त कर सकेगी।

भाषाई उन्माद के आग्रही चाहे वे दक्षिण के हों अथवा उत्तर के, स्वदेश प्रेम के आदर्श से भूल से ही सही, लेकिन पीछे हट गये हैं। यह उन्माद अगर देश के टुकड़े कर डाले तो राष्ट्रद्रोह की सीमा में पहुँच चुके इस उन्माद से हमारा, आपका और हम लोगों के स्वदेश का सर्व प्रकार बचाव जरूरी है। स्वदेश की प्रेरणा जब पूरी मजबूत बनेगी, तब स्वभाषा उपेक्षिता का जीवन नहीं बितायगी। हिन्दी की व्यावहारिक उपयोगिता तब तक हिन्दी प्रान्तों में सरकार और समाज में अविलम्ब प्रचालित और प्रतिष्ठित हो ले। अन्यान्य प्रान्तों में भी ऐसा ही होगा।●

योजना-पाठ-संकेत

वंशीधर श्रीवास्तव

[जनवरी महीने के अंक मे होली की योजना का पाठ-संकेत दिया जा चुका है। प्रस्तुत पाठ-संकेत उसी क्रम में है।]

दिनांक	कक्षा ५	समय : १ घण्टा २० मिनट
योजना	:	होली उत्सव
उपयोजना	:	निमंत्रण-पत्र बनाना
सम्बन्धित विषय	:	हिन्दी
प्रसंग	:	निमंत्रण-पत्र लिखना

मुख्य उद्देश्य

१. छात्र निमंत्रण-पत्र बनाकर उसे अलंकृत करें।

२. अतिथि को आमंत्रित करने के लिए निमंत्रण-पत्र लिखें।

आवश्यक सामग्री

कैंची, गोंद, स्केल, पेंसिल, रंगीन पेंसिल, आलेखन बने कागज और मोटा रंगीन कागज।

सहायक सामग्री

१. विभिन्न प्रकार के निमंत्रण-पत्र तथा आलेखन।

पूर्वज्ञान

१. छात्र 'होली-उत्सव'-योजना की रूपरेखा निश्चित कर चुके है।

प्रस्तावना

१. तुम्हारी कक्षा ने 'होली-उत्सव' के लिए क्या-क्या कार्य चुना है ?
(निमंत्रण-पत्र बनाना, पिचकारी बनाना, रंग खेलना, गुझिया बनाना, आलू का ठप्पा, अल्पना तथा रंग बनाना और रंगमंच बनाना।)

२. आज के लिए क्या कार्य चुना है ? (निमंत्रण-पत्र बनाना)

३. निमंत्रण-पत्र की क्रिया आज तीन दिन पहले ही क्यों चुनी गयी है ?

(ताकि २-३ दिन पहले ही अतिथियों को आमन्त्रित कर सकें, जिससे वे अपनी तैयारी कर सकें ।)

४. होली-उत्सव के लिए किस प्रकार का निमन्त्रण-पत्र बनाओगे ?

प्रस्तुतीकरण

१ निमन्त्रण-पत्र कितने प्रकार के होते हैं ? (जन्म उत्सव, निमन्त्रण-पत्र, विवाह, होली, दीवाली आदि निमन्त्रण-पत्र) ।
अध्यापिका यहाँ विभिन्न प्रकार के निमन्त्रण पत्र कक्षा में प्रस्तुत करेगी ।

२. आजकल साधारणत किस तरह के निमन्त्रण-पत्र उपयोग में आते हैं ?
(विभिन्न छात्र विभिन्न उत्तर देंगे)

३. इन निमन्त्रण-पत्रों में कौनसा निमन्त्रण-पत्र ऐसा है, जिसमें लिफाफे की आवश्यकता नहीं है ? (मुड़ा हुआ गुलाबी रंग का) ।

४. होली निमन्त्रण-पत्र का क्या आकार रखोगे ? (आयताकार)

५. निमन्त्रण-पत्र बनाने के लिए कैसा कागज होना चाहिए ?
(मोटा तथा रंगीन)

६ रंगीन कागज क्यों चाहिए ?
(जल्दी गन्दा न हो, तथा यह देखने में सुन्दर लगता है ।)

७ तुम्हारा निमन्त्रण पत्र कितना लम्बा और चौड़ा होना चाहिए ?
(६" चौड़ा, ४½" लम्बा आधा खोलने पर, पूरा खोलने पर ९")
(सम्भव है छात्र ठीक नाप न बता सकें, अतः अध्यापिका अनुकूल नाप बतायगी)
अध्यापिका श्यामपट्ट पर उसका आकार खींचेगी ।

८. निमन्त्रण पत्र बनाने के लिए तुम सबसे पहले कौन-कौनसी क्रियाएँ करोगे ?
(नापकर उचित निशान लगाना और काटना ।)

९. निमन्त्रण-पत्र को आकर्षक बनाने के लिए क्या करना चाहिए ?
(आलेखन बनाना चाहिए ।)
यहाँ अध्यापिका विभिन्न प्रकार के आलेखन दिखायगी तथा प्रश्न पूछेगी ।

१०. इनमें से निमन्त्रण पत्र पर कौनसा आलेखन बनाना उपयुक्त होगा ?
(विभिन्न छात्र विभिन्न उत्तर देंगे) ।
छात्रों के सुझाव के पश्चात् अध्यापिका भी कटे हुए आलेखन को चिपकाने का सुझाव प्रस्तुत करेगी तथा कहेगी—

(१) यह आलेखन होली का प्रतीक है ।
(२) यह महत्त्वपूर्ण स्थान ब्रज का दृश्य है ।

नोट —कोई भी आलेखन लिया जा सकता है । अत यहाँ किसी एक आलखन का उदाहरण नहीं दिया जा रहा है ।

आदर्श प्रदर्शन

अध्यापिका छात्रो को अपनी मेज के चारो ओर अर्द्ध चन्द्राकार गोले में खड़ा करके उपयुक्त विधि से आदर्श प्रदशन करेगी तथा निम्न प्रश्न करती हुई क्रिया करेगी —

१ निमत्रण पत्र की कितनी लम्बाई तथा चौडाई रखेंगे ?
(६" चौ० ४½" ल० खोलकर ६")

२ निशान लगाते समय किन किन बातो का ध्यान रखेंगे ?
(पेंसिल नुकीली हो, टेढा-मेढा निशान न हो ।)

३ काटने समय कौन कौनसी सावधानिया बरतनी चाहिए ?
(एक साथ कटे, सफाई से कटे)

४ निमत्रण पत्र पर आलेखन चिपकाते समय तथा किनारी बनाते समय किन किन बातों को ध्यान में रखें ?
(सफाई से उपयुक्त जगह लगे)

वस्तुओ का वितरण

कागज, कैंची, रगीन पेंसिल, गाद, आलेखन बना कागज, स्केल तथा दफ्ती आदि वस्तुआ का वितरण ।

क्रियाशीलन

छात्र उपरोक्त विधि से निमत्रण-पत्र बनायेंगे और आलेखन चिपकायेंगे ।

निरीक्षण-कार्य

अध्यापिका व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण करेगी और आवश्यक्तानुसार सहायता देगी ।

मूल्याकन तथा नवीन पाठ की समस्या

१ निमत्रण-पत्र बनाने के पश्चात् अब क्या करना शेष है ?
(लिखना)

२ निमत्रण-पत्र पर क्या-क्या लिखा जाता है ?

प्रस्तुतीकरण

१ तुम होली निमत्रण पर क्या-क्या लिखोग ?
(शीर्षक, कार्यक्रम, सम्बोधन, विवरण आदि)

२ निमत्रण-पत्र के मुखपृष्ठ पर क्या लिखा जायगा ? (शीर्षक)

३ तुम्हारे निमत्रण-पत्र पर कौनसा शीर्षक लिखा जाय ?
(होली उत्सव निमत्रण पत्र)

४ निमत्रण पत्र पर कार्यक्रम कहाँ लिखोगे ?
(ऊपर के पृष्ठ में अदर की तरफ)

यहाँ अध्यापिका स्पष्टीकरण के लिए निमत्रण-पत्र का मुखपृष्ठ दिखायगी।

५ होली-उत्सव का कार्यक्रम क्या है ?
(विविध आमोद प्रमाद, होली मिलन, जलपान)

६ निमत्रण-पत्र में अतिथि को आमत्रित करने के लिए कहाँ लिखा जायगा ?
(अदर के दूसरे पृष्ठ पर)

७ अतिथि के लिए सम्बोधन में क्या शब्द लिखोगे ? (आदरसूचक)

८ कौनसा आदरसूचक शब्द लिखा जाय ? (मान्यवर)

९ सम्बोधन के पश्चात् क्या लिखा जाय ? (विवरण)

१० निमत्रण पत्र के अन्त में क्या लिखेंगे ? (नाम व पता)

श्यामपट्ट-कार्य

अध्यापिका छात्रो द्वारा प्राप्त प्रारूप तथा विधि को निम्न प्रकार से श्यामपटट पर लिखेगी—विधि को पहले क्रिया के समय ही लिख देगी।

विधि

१ आकार—आयताकार।

२ नाप—६" चौडा ४½" लम्बा—नाप लेते समय लम्बाई इसकी दुगनी होगी—९"। ३ बीच से मोडना। ४ अलकृत करना।

प्रारूप

अध्यापिका यहाँ पूर्ण प्रारूप का चित्र श्यामपट्ट पर बनायगी।

१ शीर्षक। २ कार्यक्रम। ३ आदरसूचक शब्द। ४ विवरण। ५ अन्त।

लिखित कार्य

अध्यापिका निमत्रण-पत्र का उपयुक्त प्रारूप श्यामपट्ट पर लिखेगी तथा छात्रो को बनाये गये निमत्रण-पत्र पर लिखने को कहेगी।

निरीक्षण कार्य

अध्यापिका व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण करेगी तथा अशुद्धियो का संशोधन करती जायगी।

कार्य समाप्त होने पर निमत्रण-पत्र एकत्रित कर उपयुक्त स्थान पर देगी। ●

वर्ष . १६
अंक ९

अनुक्रम

अप्रैल '६८

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

नयी तालीम : अप्रैल '६८

पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० सं० एल. १७२३

गाधी की हत्या हुई तो हमने सोचा कि भारत रूढियो मे जकडा हुआ ऐसा देश है कि गाधी को पचा नही सका। लुथुली के अफ्रीका का भी यही हाल था। लेकिन जब अमेरिका जैसे विज्ञान और वैभव में सिरमौर देश, डालर के ढेर पर बैठनेवाले और चन्द्रलोक की सैर करनेवाले देश में काले-गोरे जैसे प्रश्न पर किग (डा० मार्टिन लूथर किग) की हत्या हुई तो यह मानना पडा कि इस विज्ञान और वैभव में ही कही कोई जहर है जो मनुष्य को मनुष्य नही रहने दे रहा है। क्या है वह जहर ? कैसे निकलेगा ? क्या विज्ञान के साथ विकास का दूसरा भी कोई तत्त्व चाहिए जो अब तक गायब रहा है ?

गाधी से लेकर किग तक के बीस वर्षों ने यह सिद्ध कर दिया है कि हिंसा के साथ विज्ञान कितना खोखला, समता कितनी निरर्थक और वैभव कितना कुत्सित है। अहिंसा से जुडकर ही मनुष्य के लिए विज्ञान समता और समृद्धि की सार्थकता है। अहिंसा सन्त की आकाक्षा नही, नागरिक की आवश्यकता है। राममूर्ति

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा-सघ की ओर से प्रकाशित सण्डलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमंदिर, वाराणसी मे मुद्रित

भार्गवकुल विद्यालय
मई जून '१९६८

आचार्यदेवो भव

त्वं नो अस्या अमतेरुत
क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि
त्वं न ऊती तव चित्रया
धिया शिक्षया शचिष्ठ
गातुवित् ।

सम्पादकीय

शिक्षण : मनुष्यता की अन्तिम आशा

गाडी में मेरे सामने बैठे हुए दोनो यात्री, एक युवक और एक युवती आस्ट्रेलिया के थे। चर्चा शुरू हुई तो बडी मुक्त बुद्धि से वे हर प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करते थे। होते होते चर्चा डा० मार्टिन लूथर किंग की हत्या पर होने लगी। मैंने पूछा "क्या कारण है कि अमेरिका जैसे समृद्ध और उन्नत देश मे भी ऐसी घटनाएं घटती जा रही हैं? केनेडी की हत्या हुई, और अब किंग की हुई। आखिर, यह सब क्यो हो रहा है? विज्ञान और टेकनालोजी की सभ्यता मनुष्य को मानवता की इतनी सामान्य बात भी क्यो नहीं सिखा पा रही है? मेरी बात सुनकर युवती ने अपनी किताब नीचे रख दी, और युवक कुछ गभीर हो गया। एक क्षण रुककर बोला "मनुष्य के चित्त में कोई चीज है जिसे धन दौलत की यह सभ्यता छू नहीं पा रही है। ...निश्चित ही समस्या चित्त के अन्दर है।' मैंने फिर पूछा "उपाय क्या है?' उसने उत्तर दिया शिक्षण! शिक्षण के सिवाय और कुछ नही।' युवती कुछ लम्बी साँस लेते हुए बोली 'शिक्षण मनुष्य की अन्तिम आशा है (एजूकेशन इज ह्यूमैनिटीज लास्ट होप)।

मनुष्य ने परमेश्वर को अनावश्यक कर दिया, अपने ज्ञान विज्ञान से प्रकृति पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया, लेकिन वही मनुष्य अपने पडोसी के साथ प्रेम के साथ नही रह पा रहा है। क्यो? उसके चित्त मे वह कौनसी चीज है जो उसे पडोसी से नहीं जुडने दे रही है? हम दुनिया मे देख रहे हैं कि गाँव हो, शहर या देश हो, अगर पडोसी पडोसी के साथ पडोसीपन का सम्बन्ध न रखकर परायेपन का सम्बन्ध रखेगा तो सघर्ष की चिनगारियाँ सहार की लपटें बनकर समाज को स्वाहा कर डालेंगी। अब यह बात किससे छिपी है कि आपस के सघर्ष कितने भयकर होते हैं—युद्ध से भी अधिक भयकर। फिर भी होश कितने लोगो को है? मनुष्य के चित्त में जो पशु तत्त्व है उसे घिसने और कम करने की जगह उसे बराबर बढ़ावा कहाँ से मिलता रहता है? किस तरह उत्तेजित होकर पूर्वाग्रह प्रचण्ड उन्माद बन जाते हैं और मनुष्य कितनी

आसानी से विवेक खो बैठता है। पडोसी को हर वक्त पडोसी से भय है। कितनी विचित्र बात है कि जो बीसवीं शताब्दी शिक्षण, तकनीक और विज्ञान में इतनी अधिक उन्नत है वह इतिहास में सबसे अधिक खूनी भी सिद्ध हुई है। राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा, विश्व विजय की महत्त्वाकांक्षा, वर्ण बहिष्कार, वैचारिक शत्रुता आदि प्रश्नो को लेकर इस शताब्दी में सगठित नर सहार हुए हैं, और होते चले जा रहे हैं। विज्ञान ने मनुष्य को जो शक्तियाँ दी हैं, उनका इस्तेमाल दिनोदिन मनुष्य द्वारा मनुष्य को समाप्त करने मे किया जा रहा है। एक अजीब पागलपन का शिकार मनुष्य जैसे अपने को समाप्त करने पर उतारू है। पडोसी को न पहचानने की बात सचमुच कितनी छोटी है लेकिन समस्या कितनी बडी बन गयी है।

इस समस्या की जड कहाँ है ? बात यह है कि विज्ञान ने मनुष्य को साधन तो दिये, लेकिन विज्ञान मनुष्य के जीवन का अग नहीं बन सका। विज्ञान का प्रत्यक्ष जीवन म प्रवेश शिक्षण के माध्यम से हो सकता था। लेकिन शिक्षण वह माध्यम नही बन सका। क्यो ? जिस समाज मे हम रह रहे हैं उसका नेतृत्व राजनीति और व्यवसाय (पालिटिक्स और बिजिनेस) के हाथ म है। राजनीति सत्ता को सर्वोपरि मानती है और व्यवसाय सम्पत्ति को। मनुष्य सर्वोपरि है यह बात न राजनीति को मान्य है, और न व्यवसाय को। राजनीति के लिए मनुष्य मात्र 'वोटर है, और व्यवसाय के लिए 'कस्टमर'। मनुष्य मनुष्य के नाते भी कुछ है यह मान्यता नही है। मनुष्य की सत्ता-लिप्सा पर राजनीति जीवित है और सम्पत्ति लिप्सा पर व्यवसाय। ये दोनों हमारे चित्त के अन्दर छिपे हुए पशु-तत्त्व हैं जिन्हे जगाने, बढ़ाने और सगठित करने की कोशिश होती है प्रचलित शिक्षण द्वारा। परिणाम यह होता है कि हमारी पशुता व हमारी सभ्यता का अग बनकर पलती है, बढ़ती है, और जीवन का मूल्य बन जाती है।

राजनीति और व्यवसाय ने शिक्षण को अपना दास बना रक्खा है। शिक्षण को भावी नागरिक के दिमाग मे वे ही विचार, वे ही धारणाएँ, वे ही सस्कार और वे ही मान्यताएँ घुसानी पडती हैं जिनका प्रचलित राजनीति समर्थन करती है तथा व्यवसाय जिनके लिए पैसा देता है। जिसकी सरकार होती है, उसका शिक्षण होता है। शिक्षक नेता और सेठ का सेवक बन गया है। तभी तो किसी देश मे शिक्षण पूँजीवादी है किसीमे साम्यवादी और किसीमे कुछ नहीं है, यो ही चल रहा है। जो शिक्षण इस तरह सत्ता और सपत्ति द्वारा सचालित होगा, उसमे नये सम्बन्धो का स्वतत्र समाज बनाने की शक्ति कहाँ से आयेगी ?

जाहिर है कि शिक्षण का इस्तेमाल अबतक राजनीति और व्यवसाय ने अपने अनुरूप नागरिक तैयार करके अपना प्रभुत्व कायम रखने में किया है। इस प्रक्रिया से भेड़ें तैयार हो सकती हैं, जागरूक, स्वतंत्र नागरिक नहीं। शिक्षण को रोटी का साधन या जीवन का श्रृंगार माना जाता रहा है, शिक्षण स्वतंत्र शक्ति बन सकता है, यह मान्यता शिक्षण को अभी तक मिली नहीं है। लेकिन अगर शिक्षण को 'मनुष्यता की अन्तिम आशा' बनना है तो उसे सामाजिक शक्ति बनना चाहिए, राजनीति और व्यवसाय का दास रहकर शिक्षण मनुष्य को कितना ऊपर उठा सकेगा?

इसलिए नये शिक्षण का अर्थ है समाज का नया नेतृत्व। राजनीति और व्यवसाय का नेतृत्व समाप्त होना चाहिए। राजनीति के नेतृत्व का अर्थ है, साम्यवाद, और व्यवसाय के नेतृत्व का अर्थ है पूँजीवाद। दोनों के सम्मिलित नेतृत्व का अर्थ है कल्याणवाद। इन 'वादों' के 'विवाद' से मनुष्य की मुक्ति का प्रश्न इस वक्त सभ्यता के विकास का मुख्य प्रश्न है। शिक्षण को यह प्रश्न हल करना है।

भले ही आज शिक्षक की स्थिति प्रतिकूल हो, किन्तु जो शिक्षक चेतन हैं उन्हें महसूस होना चाहिए कि नागरिक के साथ वे भी मुक्ति के अभियान में शरीक हैं। उनका स्थान नागरिक के साथ है शासक, सेठ या सिपाही के साथ नहीं। उसके सामने दो काम हैं, उसके दो पहलू हैं—एक, शिक्षण को राजनीति और व्यवसाय से मुक्त करना, दो, शिक्षण की ऐसी योजना बनाना कि मनुष्य के चित्त के भीतर वह जो पशु तत्व है जो मनुष्य को परमेश्वर से हटाकर पड़ोसी के साथ जुड़ने नहीं दे रहा है, उसका निराकरण हो, और मनुष्य को मनुष्य के नाते प्रतिष्ठा मिले।

यह काम कौन करेगा? शिक्षक के सिवाय दूसरा कौन? शिक्षक नागरिक भी है, और निर्माता भी। वह परिवार भावना का निर्माण करता है, इसलिए उसकी नागरिकता में परिवार न्याय है।

जिन शिक्षक मित्रों में इस 'मिशन' की प्रतीति हो उनके विचार के लिए विनोबा के 'आचार्यकुल' की योजना प्रस्तुत है। शिक्षण में मुक्ति की शक्ति है। उसे प्रकट करना है। उसका नेतृत्व युग की माँग है। उस माँग की पूर्ति का वाहन शिक्षक को बनना है। विज्ञान के इस युग में यह संभव भी है, और आवश्यक भी। इसलिए मुक्ति की क्रान्ति को शिक्षक से यह अपेक्षा रखने का अधिकार है।

—राममूर्ति

आचार्य कुल की भूमिका

बुनियादी शिक्षा के कर्णधार राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जब पिछले साल आचार्य विनोबा से मिले तब और समस्याओ के अतिरिक्त शिक्षा एव शिक्षको की समस्याओ पर भी चर्चा की। अध्यापको की वर्तमान दुरावस्था से दु खी होकर राष्ट्रपति ने आचार्य विनोबा से इस दिशा मे मार्गदर्शन की अपेक्षा की। विनोबाजी ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। विहार क तत्कालीन शिक्षा-मत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने इसको सुअवसर मान ७-८ दिसम्बर '६७ को पूसा रोड मे विनोबाजी के सान्निध्य में विहार के सभी विश्वविद्यालयो के उपकुलपतियो, प्राचार्यों एव प्रमुख शिक्षा विशारदो की एक विद्वत् परिषद् का आयोजन किया। केन्द्रीय शिक्षा-मत्री श्री त्रिगुण सेन ने परिषद् का उद्घाटन किया। परिषद् को श्री जयप्रकाश नारायण एवं श्री धीरेन्द्र मजूमदार का भी मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

शिक्षा में अहिंसक क्रांति

इस परिषद् को सम्बोधन करते हुए विनोबाजी ने शिक्षको को उनके कर्तव्य के प्रति उद्बोधन किया और उनकी स्वतत्र शक्ति खडी करने के लिए कृतसकल्प होने की प्रेरणा दी।

उन्होने कहा, "शिक्षको के हाथ मे सारे देश का मार्गदर्शन होना चाहिए। लेकिन आज वे 'गाइडेन्स' खोये हुए हैं, और एक सामान्य नौकर की हैसियत में आ गये हैं। यह शिक्षा-जगत् का दुर्भाग्य है कि जो स्वतत्रता न्याय विभाग को है, उतनी भी स्वतत्रता शिक्षा विभाग को नही है। न्याय विभाग की सरकार से ऊपर एक स्वतत्र हस्ती है। वह सरकार के खिलाफ भी फैसला दे सकता है और उस फैसले का सरकार को अमल करना पडता है। यद्यपि उसको तनख्वाह सरकार की ओर से मिलती है, लेकिन वह सरकार के मातहत नही है। वैसे ही शिक्षक को भी सरकार की ओर से तनख्वाह भले ही मिले, क्योकि सरकार लोगो से ही लेकर देती है, लेकिन उसकी स्वतत्र हस्ती होनी चाहिए। और शिक्षक देश के मार्ग-दर्शक हैं, ऐसा होना चाहिए।"

"परन्तु शिक्षा विभाग की स्वायत्तता को सच्चे अर्थ मे उपलब्ध एव कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक सत्ता के पीछे न भागकर स्वय अपनी स्वतत्र शक्ति का विकास करें। इसलिए

शिक्षकों को पक्ष एव भेदभाव, सत्ता एवं सघर्ष की कलुषित राजनीति से मुक्त होकर, सकीर्ण मतवादो से ऊपर उठकर, विश्व-व्यापक मानवीय राजनीति तथा जनशक्ति पर आधारित लोकनीति को अपनाना चाहिए। राजनीति से अलग हुए बिना राजनीति पर असर नही पडेगा। पहले राजनीति से अलग होना पडेगा। लेकिन राजनीति से अलग रहकर भी शिक्षको को जनता से सम्पर्क रखना चाहिए। अगर शिक्षक ऐसा मानने हैं कि हमने स्कूल-कालेजो मे पढा दिया अब हमारा कोई कर्तव्य नही है तो चलेगा नहीं। शिक्षको का जनता से सपर्क होना चाहिए। जनता के साथ सपर्क न हो तो राजनीति पर असर नहीं पडेगा।' अन्त मे शिक्षको का ध्यान भारतवर्ष म व्याप्त दु ख दारिद्र्य, कलह और फूट तथा नित्यप्रति बढती हुई हिंसा की ओर खीचते हुए उन्हे इसके लिए अपना पुरुषार्थ और पराक्रम प्रकट करने को प्रेरित किया।

इसीको विनोबाजी ने 'शिक्षा मे अहिंसक क्राति की सज्ञा दी।

अशाति शमन

पूसा रोड से विनोबाजी मुजफ्फरपुर आये। वहाँ बिहार विश्व विद्यालय के उप-कुलपति एव प्रमुख प्राध्यापको के बीच विश्वविद्यालयो के अहातो मे पुलिस के प्रवेश और हस्तक्षेप पर चर्चा करते हुए विनोबाजी ने कहा, इसकी मुझे व्यथा है, परन्तु यूनिवर्सिटी के लोगो ने अपना कैम्पस इतना छोटा क्यो माना, इसका मुझे आश्चर्य है। सारा भारत ही यूनिवर्सिटी-कैम्पस है और उसमे पुलिस काम करती है तो वह आचार्यों एव शिक्षको के लिए लाछन है। आचार्य लोगो को विचार समझाते हैं, विचार-परिवर्तन करते हैं, हृदय-परिवर्तन करते हैं और जोवन-परिवर्तन की दिशा दिखाते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन करनेवाली शिक्षको की जमात पुलिस विभाग की आवश्यकता भारत मे रहने दे, यही लाछन है। भारत का नागरिक शाति से चलता है, परन्तु यदि समाज मे कही अशाति हुई तो शिक्षक अपने विचार एव नैतिक शक्ति द्वारा अशाति-शमन करे, ताकि सरकार की दण्ड-शक्ति को अशाति-दमन के लिए मौका ही न मिले। इस प्रकार भारत भर में दमन का अवसर ही न आये, सिर्फ शमन से काम हो। उसके लिए शिक्षको को अशाति-शमन के लिए कृत सकल्प होना चाहिए।'

अध्यापकों का संकल्प-पत्र

इन्हीं उदार भावनाओं से प्रेरित होकर मुजफ्फरपुर के अध्यापकों ने एक संकल्प-पत्र[1] बनाया एवं लगभग १५० अध्यापकों ने निष्ठापत्र पर हस्ताक्षर किये। पटना मे भी विश्वविद्यालय के शिक्षाविदों ने इस निष्ठा-पत्र का स्वागत एवं समर्थन किया। फिर विनोबाजी मुंगेर कालेज में दस दिनों तक शिक्षकों के बीच रहे, तो वहाँ के अध्यापकों ने अपने लिए एक विस्तृत कार्यक्रम तथा संगठन की रूपरेखा भी बनायी।[2] वहाँ यह भी तय हुआ कि हर जिला इस संगठन की इकाई होगा, जिसमे प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय-स्तर तक के सभी शिक्षक शामिल रहेंगे। हाँ, विश्वविद्यालय की विशेष समस्याओं पर विचार करने के लिए विश्वविद्यालय-स्तर पर भी इसकी एक कड़ी रहेगी।

आचार्यकुल की स्थापना

६-७ मार्च को जब विनोबाजी भागलपुर पधारे तो विद्वानों के साथ संगठन एवं कार्यक्रमों के विषय में विस्तृत चर्चाएँ हुईं। वहीं अखिल बिहार आचार्यकुल नाम प्रकट हुआ। ८ मार्च को प्राचीन विक्रमशिला के समीप कहोल मुनि के नाम से प्रसिद्ध कहल गाँव में "आचार्यकुल" की स्थापना की घोषणा विनोबाजी ने की। इस प्रकार शिक्षकों के जीवन-निर्माण की दिशा में एक नया आरोहण आरम्भ हुआ।

निवेदन

शिक्षकों की नैतिक प्रतिष्ठा बने और बढ़े एवं उनकी सामाजिक हैसियत का उन्नयन हो, न्याय-विभाग की भाँति शिक्षा-विभाग की स्वायत्तता सर्वमान्य हो, हिंसा-शक्ति की विरोधी और दण्ड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति का निर्माण हो, विश्व-शांति के लिए आवश्यक वृत्ति एवं दृष्टिकोण बने तथा शिक्षा मे अहिंसक क्रांति का श्रीगणेश हो, ऐसे कुछ उद्देश्यों से आचार्यकुल का प्रारम्भ हुआ है। शिक्षकों से निवेदन है कि वे इन मुद्दों पर गहराई से विचार करें, युग की आवश्यकता और अपनी महत्ता महसूस कर अग्रणी बनें, अध्यापकों का संकल्प-पत्र भरें और साथ बैठकर अपने कार्यक्रम तथा संयोजन के बारे में सोचकर निर्णय करें।

—कृष्णराज मेहता

१. परिशिष्ट—१, २. परिशिष्ट—२

आपके सामने कुछ विचार, जो मुझे सूझते हैं, पेश करने हैं। लेकिन मैं बहुत नम्रतापूर्वक निवेदन करूँगा। आप लोग शिक्षा के जानकार हैं। वर्षों से काम करते आये हैं। अभी श्री त्रिगुण सेन बोले। वे शिक्षा के बहुत बडे ज्ञानी हैं। उन्होने आपके सामने कुछ विचार रखे हैं। ऐसे विशारदो के सामने जो कुछ विचार सूझते हैं रखूँगा, लेकिन नम्रतापूर्वक।

आरंभिक तौर पर थोडा कहना जरूरी है कि इन दिनो मैंने सूक्ष्म मे प्रवेश किया है। यह बात जाहिर हो गयी है। फिर भी आप सब लोग नही जानते होगे। स्थूल का प्रयोग पचास साल किया। फिर मन मे विचार आया कि सूक्ष्म सशोधन होना चाहिए। साइन्स मे भी जब से न्यूक्लीयर एनर्जी (आणविक शक्ति) आयी है, तब से ध्यान में आया है कि स्थूल शस्त्रो के बनिस्वत सूक्ष्म शस्त्र ज्यादा परिणामकारी होते हैं। जैसे उन्होने साइन्स के क्षेत्र मे सूक्ष्म शस्त्र निकाले, वैसे अध्यात्म के क्षेत्र में भी सूक्ष्म शोधन हो सकता है। उस दृष्टि से मैंने सूक्ष्म कर्मयोग म प्रवेश किया। और जाहिर किया कि सार्वजनिक सभाओ में अब नही बोलूँगा। वैसे बहुत बोल चुका हूँ। साढे तेरह साल पदयात्रा हुई, हर रोज औसत तीन तकरीरें तो हुईं। साल भर की हजार तकरीरें, यानी १३ साल मे तेरह-चौदह हजार भाषण हो चुके। मेरे खयाल मे यह एक रेकार्ड हो गया भाषणो का। इसलिए शब्दो से जितना हो सकता था, हो चुका है। तो सार्वजनिक सभाओ मे बोलता नही। पत्रो का जवाब नही देता हूँ। नजदीक के भाई कुछ पत्रो की पहुँच वगैरह भेजते हैं। कोई मिलने आते हैं, और बात पूछ लेते हैं, तो उनको जैसा सूझता है, समझाता हूँ।

एक दिन कर्पूरीजी आये और कहने लगे कि यहाँ बिहार मे कई समस्याएँ हैं। उन सब पर सोचने के लिए अगर विशारद लोग आयेंगे तो क्या आप समय देंगे? तब ऐसा पूछने पर यह कहना कि मेरे पास लोग आयेंगे फिर भी मैं समय नही दूँगा, तो यह सूक्ष्म प्रवेश

नही होगा, शून्य प्रवेश होगा। इसलिए मैंने कह दिया, ठीक है भाई। इस वास्ते आज आपके सामने पेश हूँ।

मैं तो ज्ञापक हूँ

मेरे विचार वर्षों से सोचे हुए और प्रयोग के बाद निश्चित हुए हैं। लेकिन फिर भी मैं यह अपेक्षा नही करता कि वे सब विचार सरकार को मान्य होगे या विशारदो को मान्य होगे या जनता को भी पसंद (एप्रिशियेट) होगे। इसकी अपेक्षा भी मैं रखता नही। बल्कि मेरे बारे मे आप सब लोगो को अभयदान है। अभयदान दिया है, क्योंकि अपने विचारो का मुझे आग्रह नही है, मेरी कोई न्यूसेन्स वेल्यू (पीडा मूल्य) नही है। ऐसा नही है कि मेरे विचार न माने गये तो जुलूस निकालूँगा, घेराव करूँगा या जगह-जगह जाकर व्याख्यान दूँगा, ऐसा नही है। अगर विचार लोगो को जँचे, मान्य हो और लोगो ने उस पर अमल किया तो अच्छी बात है, नही जँचे और अमल नही किया तो भी कोई खास दु ख की बात नही है। बाबा यह नही चाहता कि 'बाबा-वाक्यम् प्रमाणम्' चले। वह यही चाहता है कि लोग सोचें, समझे और सोच-समझकर जैसा उचित हो, वैसा करे। यह मैंने इसलिए कहा कि एक पुराना वाक्य है जो मेरी प्रवृत्ति के लिए अनुकूल है। 'ज्ञापकं शास्त्रं न तु कारकं।' जो शास्त्रकार होते हैं, वे हाथ पकडकर करवाते नही। जैसे साईन बोर्ड रास्ता दिखाता भर है, कि यह रास्ता यहाँ से दरभंगा जा रहा है, आपका हाथ पकडकर वह आपको दरभंगा ले नही जायगा। आपने देखा कि दरभंगा का रास्ता बताया गया है। आपको उस रास्ते जाना है तो उससे जा सकते हैं, नही जाना है तो नही जा सकते हैं, लेकिन साईन बोर्ड ने अपना काम कर दिया। जो शास्त्रीय वृत्ति रखता है वह हमेशा ज्ञापक होता है, कारक नही होता, यानी करानेवाला नही होता। ज्ञापक यानी जतानेवाला, समझानेवाला, सुझानेवाला होता है। तो यह मेरी वृत्ति है। इस वास्ते आपको निर्भयतापूर्वक मेरे विचार सुनना है।

भारत का शिक्षा शास्त्र

आप जानते हैं कि इन दिनो यूरोप और अमेरिका मे अनेक नये शास्त्रो की खोज हुई है और वहाँ से हमको बहुत सीखना है, इसमें

कोई शक नही। खास करके अनेकविध विज्ञान का विकास, इन पाँच-पचास सालो म वहाँ बहुत ज्यादा हुआ है। वह तो हमको सीखना ही चाहिए, बल्कि समझना चाहिए कि साइन्स के बारे म छ महीना पहले की किताब आज चलेगी नही। आज की किताब चाहिए, क्योंकि साइन्स बहुत जोरो से आगे जा रहा है। पुराना साइन्स जल्दी-जल्दी ज्यादा पुराना होता जा रहा है। इस वास्ते हमको कई चीजें नयी-नयी सीखनी पड़ेगी, इसमे कोई शक नही। लेकिन फिर भी भारत की अपनी भी कुछ विद्याएँ हैं और कुछ शास्त्र यहाँ पर पुराने काल से विकसित हैं। उन शास्त्रो मे शिक्षा-शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है, जिसका भारत म काफी विकास हुआ था, और काफी चर्चा हुई थी। यह नही है कि उस सिलसिले म हमको कुछ सीखना नही है, सीखना तो है ही। बल्कि वेद भगवान् ने आज्ञा दी—' आनो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वत "—दुनिया भर से मगल विचार हमारे पास आये। हम सब विचारा का स्वागत करते हैं। और यह नही समझते कि यह विचार स्वदेशी है या परदेशी है, पुराना है या नया है। हम इतना ही सोचते हैं कि वह ठीक है या बेठीक है। जो विचार ठीक है वह पुराना हो, तो भी लिया जाय। इसमे कोई शक नही कि हमको बहुत लेना है। लेकिन जो अपने पास है, उसे भी पहचानना चाहिए। और यह इसलिए जरूरी है कि जो यहाँ का होता है, वह यहाँ की परिस्थिति और चारित्र्य के लिए अनुकूल होता है। यहाँ के जो विकसित शास्त्र हैं उन सब पर यह लागू होता है। आयुर्वेद को लीजिए—वैद्यक शास्त्र। अगर यही के वनस्पतिया का उपयोग लोग करेंगे, तो वे ज्यादा कारगर होगे यह जाहिर बात है। यह नही कि नया जो वैद्यक शास्त्र है, उसमे सीखने की कोई बात नही है। फिर भी यहाँ का आयुर्वेद यहीं की वनस्पति की चर्चा करता है। इस वास्ते गाँव-गाव में उसका अधिक उपयोग हो सकता है। उसी तरह यहाँ का बना हुआ जो शिक्षा-शास्त्र है वह हमारे स्वभाव के अनुकूल होने के कारण हमे काफी मदद दे सकता है। तो शिक्षा-शास्त्र के ऐसे जो ग्रन्थ सस्कृत भाषा में हैं, उन सबमें शिरोमणि ग्रन्थ है पतजलि का 'योगशास्त्र'। मुझसे कोई पूछे कि शिक्षा शास्त्र पर सर्वोत्तम ग्रन्थ भारत में कौनसा है, तो मैं यही कहूँगा कि पातंजल योग-शास्त्रम्।' उसमें शिक्षा के विषय म मानस और अतिमानस दोनो दृष्टियो से विचार किया गया है। साईको

लाजिकली सोचना शिक्षा के लिए बहुत जरूरी होता है। उसके बिना शिक्षा-शास्त्र शुरू नही होता। लेकिन शुरू के लिए यद्यपि मानसशास्त्र की जरूरत होती है, तो भी उसकी आखिरी चीज क्या है, कहाँ तक ले जाना है, यह समझने के लिए अतिमानस-भूमिका का भी ज्ञान होना जरूरी होता है। पतंजलि ने योगशास्त्र मे वृत्तियों का परीक्षण करके वृत्तियो के अनुकूल कैसे बरता जाय और वृत्तियो से परे कैसे हुआ जाय, ये दोनो बातें बतायी हैं। वृत्तियो के अनुकूल अगर हम नही बरतते, तो संसार में कोई कार्य नही कर सकते। इसलिए वृत्तियों के अनुकूल सोचना पड़ता है। वृत्तियो से परे होकर अगर नही सोचते तो तटस्थ दर्शन होता नही और इसलिए नजदीक के ही छोटे-से चिन्तन में हम गिरफ्तार रहते हैं, तो दूरदृष्टि का अभाव हो जाता है। इस वास्ते अतिमानस दृष्टि की भी जरूरत रहती है और मानस दृष्टि की भी जरूरत होती है। दोनों दृष्टियों को ध्यान मे रखकर पतंजलि ने बहुत थोडे मे योगशास्त्र मे बात रखी है। इस पर अनेक भाष्य हुए हैं और यह योगशास्त्र आज तक विकसित होता आया है। भारत मे आज भी इसका विकास हो रहा है। मैं इसके विषय मे अधिक नही कहूँगा। मुझे इतना ही कहना है कि अपने यहाँ शिक्षा-शास्त्र बना हुआ है।

राजनीति : शिक्षा के लिए खतरा

पतंजलि परमात्मा को गुरुरूप में देखते हैं। "स एप पूर्वेपामपि गुरु"—यह परमात्मा कौन है ? अपने जो प्राचीन ज्ञानी हो गये हैं, उनका वह गुरु है। मुझे बहुत-सी भाषाएँ पढ़ने का मौका मिला है। लेकिन किसी धर्मग्रन्थ मे या किसी मानसशास्त्रीय ग्रन्थ में परमात्मा को गुरुरूप में देखा गया हो, ऐसा मैंने नहीं देखा है। परमात्मा को अक्सर पिता के रूप मे तो देखा ही जाता है। "पितासि लोकस्य" इत्यादि कहा जाता है। परमात्मा के लिए "फादर"—यह तो क्रिश्चियानिटी मे हमेशा आता ही है। माता के रूप में भी आता ही है। लेकिन योगशास्त्र मे गुरु के रूप मे देखा है। तो आप सारे लोग गुरु की हैसियत रखते हैं, यह बहुत बड़ी बात है। परमात्मा गुरुरूप तो है ही, वह परमगुरु है। वह हम सबको शिक्षा देता है। वैसा ही हमको उसका अनुकरण करके सीखना-सिखाना है। गुरु

अत्यन्त तटस्थ होकर सिखाता है। उसके सिखाने की जो दृष्टि है वह तटस्थता की है। वह कोई चीज लादता नही। परन्तु इन दिनो हमारे यहाँ या दूसरे देशो मे सरकारी तौर पर जो कुछ भी प्रयत्न हो रहे हैं, वे ये हो रहे हैं कि जिन-जिन विचारो की सरकारें बनी हुई होती हैं, वे अपने विचारो का विद्यार्थियो पर असर डालना चाहती हैं और उसकी पकड मे विद्यार्थियो को रखना चाहती हैं। व अपने साँचे मे विद्यार्थियो को ढालना चाहती है। मान लीजिए कि अगर कम्युनिज्म हुआ, तो कम्युनिज्म की आइडियालोजी सिखायी जायगी। इतिहास-शास्त्र भी नये ढंग से सिखाया जायगा। एक इतिहास शास्त्र था जो स्टालिन के जमाने मे रूस में चलता था। जब स्टालिन पदच्युत हो गया तब वहाँ गुरुओ ने वह इतिहास सिखाना चार-छ महीना बन्द कर दिया। फिर से नया इतिहास लिखा गया जिसमें स्तालिन देवता नही रहा, दूसरे देवता का अधिष्ठान हुआ। चार छ महीनो मे नया इतिहास बना और स्कूल मे पढाया गया। अब आपको आश्चर्य होगा कि इतिहास भी क्या नया-नया बनता है? जो हुआ सो इतिहास। लेकिन अब, जो हुआ सो इतिहास नही, इतना हुआ कि हम जो ध्यान मे रखना चाहते हैं सो इतिहास। इसलिए हमारे अनुकूल जो चीजें हैं उनको रखना और जो प्रतिकूल चीजें हैं उनको छोडना और वह इतिहास वहाँ सिखाना। अगर फासिज्म हुआ तो सारे विद्यार्थियो को फासिज्म सिखाया जायगा। और इसी प्रकार से भिन्न-भिन्न राज्य-व्यवस्थाएँ आती हैं, तो अपने बने-बनाये विचारो में विद्यार्थियो के दिमागो को ढालने की कोशिश होती है। यह सचमुच मे डेमोक्रेसी पर बहुत बडा संकट उपस्थित है। डेमोक्रेसी कहती है कि हर एक को एक मत का अधिकार है। अरे भाई, मत का अधिकार देते हो, तो मनन-स्वातंत्र्य भी तो होना चाहिए। अगर मनन-स्वातंत्र्य नहीं है तो एक हाथ से आपने वोट का अधिकार दिया और दूसरे हाथ से उसे निकाल लिया, इतना ही होता है। यह बहुत बडा खतरा सब देशो मे मौजूद है और अपने देश मे भी है। इस वास्ते आप गुरुओ को सावधान होना चाहिए।

शिक्षक के तीन गुण

दिक्षको मे कम-से-कम तीन गुणो की आवश्यकता रहती है। (यह

सुनकर श्री त्रिगुण सेन[1] को बडी खुशी होगी।) एक गुण शिक्षक में चाहिए, जिसका उल्लेख श्री त्रिगुण सेन ने किया। और वह यह कि विद्यार्थियो पर प्रेम होना चाहिए, वात्सल्य चाहिए, अनुराग चाहिए। यह शिक्षको का बहुत बडा गुण है, जिसके बिना शिक्षक बन ही नहीं सकता। शिक्षक का दूसरा बडा गुण है, उसको नित्य निरन्तर अध्ययनशील होना चाहिए। रोज नया-नया अध्ययन जारी रहे और ज्ञान की वृद्धि सतत होती चली जाय। इस प्रकार से उसे ज्ञान का समुद्र बनना है। उसको ज्ञान की उपासना करनी है।

ये दो गुण शिक्षक मे प्रथम चाहिए। अगर आपमे वात्सल्य है और ज्ञान नही है तो आप उत्तम माता बन सकते हैं। माताएँ वे होती हैं जिनमें वात्सल्य भरा होता है, पर ज्ञान होता ही है ऐसा नही। परन्तु कुछ माताएँ होती हैं, जिनको ज्ञान होता है। कपिल महामुनि की माता ऐसी ही हो गयी हैं, जिनको कपिल महामुनि ने उपदेश दिया। बहुत बडी माता! ऐसी माताएँ भारत मे होगी और दुनिया के दूसरे देशो मे भी होगी, लेकिन सामान्यतया माताओ से ज्ञान की अपेक्षा हम नही करते, प्रेम और वात्सल्य की करते हैं। आपमें अगर वात्सल्य है और ज्ञान नही है तो आप प्रवृत्तिपरायण बन सकते हैं। माता के नाते उत्तम प्रवृत्ति आप कर सकते हैं। अगर आपमे प्रेम नही है, वात्सल्य नही है, तटस्थता है और ज्ञान की साधना आप करते हैं, तो आप तत्त्वज्ञानी बन सकते हैं, विचारक बन सकते हैं, निवृत्तिनिष्ठ बन सकते हैं। देश को आपका बहुत बडा लाभ मिल सकता है। लेकिन आप गुरु नही बन सकते। इसीलिए गुरु के लिए जरूरी है निरन्तर चिन्तनशीलता—ज्ञान की वृद्धि प्रतिदिन होती रहे। यह दृष्टि, और शिष्यो के लिए अत्यन्त वात्सल्य और प्रेम, ये दो गुण तो होने ही चाहिए।

एक तीसरा गुण और होना चाहिए, जिसका थोडा-सा उल्लेख मैं कर चुका हूँ, इशारे से, परन्तु स्पष्ट कर देना अच्छा है। मैंने कहा कि इन दिनो विद्यार्थियो के दिमाग पर पालिटिक्स का बडा आक्रमण है; और वे विद्यार्थी हैं शिक्षको के हाथ मे। यदि शिक्षक ही पालिटिक्स

१. भारत के शिक्षा-मंत्री, जिन्होंने ७-१२-६७ को पूसा रोड, दरभंगा (बिहार) में उपकुलपतियों के सम्मेलन का उद्घाटन किया।

मे रंगे हो और पालिटिक्स का वरदहस्त उनके सिर पर पड़ा हो तो समझना चाहिए कि गंगामैया समुद्र की शरण गयी, लेकिन समुद्र ने उसको स्वीकार किया नही। तो जो हालत गंगा की होगी वही हालत विद्या की होगी। विद्या शरण गयी प्रोफेसरो के, आचार्यों के, और शिक्षको के, और उन्होने उसको स्वीकार नही किया। राजनीति के खयाल से ही सोचा। समझना चाहिए शिक्षको का बहुत बडा अधिकार है, इसलिए वे सब राजनीति से मुक्त रहे। मान लीजिए कि कोई अस्पताल का सेवक है, जो काग्रेस या किसी राजनैतिक नेता का दोस्त है। यदि वह पार्टी-पालिटिक्स का खयाल करके रोगी की पक्षपातपूर्ण सेवा करता रहेगा, किसीको ज्यादा और किसीकी कम, तो वह अस्पताल की सेवा के लिए नालायक है। अस्पताल की सेवा करनेवाला जो आदमी है उसे पक्षमुक्त होना चाहिए। यदि वह पक्षयुक्त है तो समझना चाहिए कि उस काम के लिए वह लायक नही है। इसी प्रकार न्यायाधीश को लीजिए। क्या कोई न्यायाधीश किसी पक्ष का हो सकता है? न्याय में क्या पक्षपात कर सकता है? नही कर सकता। असेम्बली के स्पीकर क्या किसी पक्ष का पक्षपात कर सकते हैं? नही कर सकते। अगर उन्होने किया तो गलत माना जायगा। यही हैसियत शिक्षको की है। अगर शिक्षक राजनीति मे पडे हुए हैं, तो समझना चाहिए कि वे कर्ता नही हैं, कर्म हैं। उनको करनेवाले दूसरे हैं कर्ता, और वे उनके कर्म हैं। उनके हाथ मे कर्तृत्व नही है। वह कर्मणि प्रयोग है, कर्तरि प्रयोग नही। उस हालत मे शिक्षक का व्यवसाय बेकार हो जायगा। उसका अपना जो स्थान है, वह नही रहेगा।

सबके लिए एक से विद्यालय

प्राचीन काल मे शिक्षा की यह स्थिति नही थी। भगवान कृष्ण की कहानी है। कृष्ण ने देश को कंस से मुक्ति दिलायी। भारत में इतना बडा पराक्रम बचपन मे ही किया। फिर उनके पिताजी को याद आया कि इसको तालीम नही मिली है और इसके पास कोई डिग्री भी नही है। इस वास्ते इसे किसी गुरु के पास भेजना चाहिए। तब गुरु के पास तालीम के लिए भेज दिया। गुरु ने सोचा कि 'यह एक महान् अवतार है। इसके हाथ से कस-मुक्ति हो गयी। उसको तालीम

के लिए मेरे पास भेजा है। अच्छी बात है। उसको देंगे तालीम।' ऐसा सोचकर उसको एक गरीब ब्राह्मण विद्यार्थी के क्लास में रखा और दोनों को काम दिया और कहा कि तुम दोनों जंगल से लकड़ी चीरकर लाना। यह ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र था—सुदामा, और कृष्ण एक महान राजपुत्र। दोनों को एक ही क्लास में रखा। यह नहीं कि नेतरहाट (बिहार का एक पब्लिक स्कूल) का स्कूल अमीर के लिए और गरीब के लिए दूसरा स्कूल। इन दिनों ऐसा होता है कि कुछ लोगों के लिए 'पब्लिक स्कूल होता है। पब्लिक स्कूल वह, जहाँ पब्लिक नहीं जा सकती। वैसा भेद तो उस गुरु ने किया नहीं और दोनों को शरीरश्रम (फिजिकल लेबर) का बराबर का काम दे दिया। दोनों ने यह काम अच्छी तरह किया और दोनों को गुरु ने छः महीने में सर्टिफिकेट दे दिया। कृष्ण से कहा—'तुम्हारा काम बहुत अच्छा रहा, ज्ञानी तो तुम हो ही, केवल मेरा आदर बढ़ाने के लिए तुम आये थे। लेकिन तुमने बहुत अच्छा सेवा का काम किया और जो सेवा का काम करता है उसे जरूर ज्ञान मिलता है। इसलिए सारा ज्ञान तुम्हारे पास पहुँच चुका। अब मैं तुमको विदा करता हूँ।' फिर कृष्ण भगवान् गुरु को नमस्कार करने गये। गुरु ने कहा—'मुझसे कुछ माँग लो।' कृष्ण ने सोचा 'क्या माँगें?' उन्होंने माँगा—'मातृहस्तेन भोजनम्'—मुझे मरने तक माता के हाथ से भोजन मिले। भले ही कृष्ण ने यह सोचा नहीं कि इसका अर्थ है कि उनकी माता को उनके मरने के बाद भी जीना पड़ेगा और उनको कितना क्लेश होगा। इतना ही सोचा कि उत्तम भोजन मिले। देश को उत्तम भोजन मिले। यह बहुत जरूरी बात है। इसलिए भगवान कृष्ण ने गुरु से माँग लिया—'मातृहस्तेन भोजनम्।'

न्यायालय की भाँति शिक्षा विभाग भी शासन से ऊपर

यह सारी कहानी आपके सामने मैंने इसलिए रखी कि अपने यहाँ जो कुछ विचार था, उसमें राज्य-सत्ता की सत्ता गुरु पर थी नहीं। गुरु उससे परे था। तो होना तो यहाँ यह चाहिए कि जैसे न्यायालय शासन से बिलकुल ऊपर है और जहाँ ठीक लगे, वहाँ शासन के खिलाफ भी निर्णय ले सकता है, उसी तरह शिक्षा विभाग को भी शासन से ऊपर होना चाहिए। न्याय विभाग को शासन की तरफ से

तनख्वाह मिलती है, लेकिन फिर भी उस पर शासन का अकुश नही है। यह बात ज्युडिशियरी (न्याय विभाग) के बारे मे जिस तरह मान्य हो गयी है, उसी तरह शिक्षा के बारे मे भी मान्य होनी चाहिए। तब शिक्षा पनपेगी। (श्रोताओ ने ताली बजायी) आपने ताली बजायी। बडा आनन्द आया। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि आपने बहुत बडा आनन्द खोया—आपका तो नही वह सकता, लेकिन बहुत लोगो का बहुत बडा आनन्द खोया। राजनीति मे भाग लेने मे कितना आनन्द आता है! लेकिन आपने ताली बजाकर यह आनन्द खोया। अगर यह बात ध्यान में आये कि आजकल हम पालिटिशियन्स की पकड मे हैं, तो उस पकड से छूटे बिना शिक्षा का कोई मसला हल नही होगा।

स्वतत्र देश में तालीम का पुराना ढाँचा अशोभनीय

पुरानी बात है, १९४७, १५ अगस्त, स्वातत्र्य दिन की। मैं उन दिनो पवनार मे रहता था, वर्धा के नजदीक। लोगो ने मुझको व्याख्यान देने के लिए वर्धा बुलाया। मैंने उनसे पूछा कि देखो भाई, स्वराज्य मिल गया। तो क्या पुराना झण्डा एक दिन के लिए भी चलेगा?' तो बोले, 'नही चलेगा। अगर पुराना झण्डा चले तो उसका अर्थ होगा कि पुराना राज्य ही चल रहा है। जैसे नये राज्य में नया झण्डा होता है, वैसे ही नये राज्य मे नयी तालीम चाहिए। अगर पुरानी ही तालीम चली तो समझना चाहिए कि पुराने राज्य का ही एक्स्टेशन चल रहा है, नया राज्य आया नही। गाधीजी ने दूर दृष्टि से नयी तालीम नाम की एक पद्धति सुझायी—और वह गाधीजी ने सुझायी इस वास्ते मान्य करनी चाहिए, ऐसी बात नही, इसकी जिम्मेदारी हम पर नही कि वह बात हमे वैसी-की-वैसी माननी चाहिए, न गाधीजी स्वय वैसा मानते थे कि उनकी चीज वैसी की-वैसी माने—अगर मेरे हाथ म राज्य होता–जिसके होने का सम्भव था नही, और अब तो है ही नही, लेकिन अगर मेरे हाथ मे राज्य होता तो सारे विद्यार्थियो को मैं तीन महीने की छुट्टी देता और कहता कि खेल-कूद लीजिए, जरा मजबूत बनिए, जरा खेती-उद्योग या काम कीजिए, स्वराज्य का आनन्द भोगिए। और तबतक शिक्षा शास्त्रियो का सम्मेलन कराया जायगा और तीन महीने के अन्दर उनको

हिन्दुस्तान की तालीम का ढाचा तैयार करना होगा । वह तैयार हो जायगा तो तालीम शुरू हो जायगी । अगर मेरी चलती तो मैं ऐसा करता । इसके बदले एक पंचवार्षिक, दो पंचवार्षिक, तीन पंचवार्षिक, चार पंचवार्षिक योजनाएँ चली, और तालीम का ढाँचा पुराना-का-पुराना ही रहा । कोई बदल नही । और आजकल की सरकार कहती है कि शिक्षा के बारे मे बडे-बडे प्रश्न हैं । एजुकेशन का एक्सप्लोजन हुआ है । भारत मे शिक्षा का बहुत ज्यादा विस्तार हुआ है । इस वास्ते नयी-नयी समस्याएँ हमारे सामने आ खडी हैं । तो मैं पूछता हूँ कि (मैं इंगलिश तो बहुत अच्छा नही जानता, थोडा-बहुत जानता हूँ) क्या अच्छी वस्तु का कही एक्सप्लोजन होता है ? अगर शिक्षा का एक्सप्लोजन हुआ है, तो मतलब है कि शिक्षा कोई बुरी चीज है। आज दरअसल ऐसा है । आज भारत की हालत ऐसी है कि अगर आप तालीम बढाते नही तो लोग बेवकूफ रहेगे, और अगर तालीम बढाते हैं, तो बेकार बनेगे । अब या तो बेवकूफ रहो, या बेकार बनो । दो मे से एक तो बनना ही पडेगा । दोनो मे से आप क्या मंजूर करेंगे ? आप देख लीजिए। यह बात मैंने जाकिर साहब के सामने रखी जब वे अभी हमसे मिलने आये थे । बोले—'विनोबाजी, आपने कहा, जिनको यह तालीम मिलती है, वे बेकार बनते हैं । वे सिर्फ बेकार नही बनते, बेकार भी बनते हैं, बेवकूफ भी बनते हैं ।' यह उन्होने सुधार कर दिया । उन्होने सुधार कर दिया कि अशिक्षित लोग बेवकूफ, और शिक्षित लोग बेकार, ऐसा है नही । अशिक्षित लोग बेवकूफ, और शिक्षित लोग बेवकूफ + बेकार । इस वास्ते शिक्षा का ढांचा तुरत बदलना चाहिए था । जो हुआ सो हुआ, अब तो बदलना चाहिए ।

(१) गुरु कैसा होना चाहिए, यह मैंने कहा । (२) शिक्षा के आधार पर ही सारा समाज बनेगा, इसलिए शिक्षा का ढाँचा बदलना है, यह सब लोगो को निश्चय करना चाहिए। इसका अत्यन्त महत्व है। इस तरफ भी ध्यान खीचा ।

कहा जाता है कि भारत में शिक्षा की बडी समस्या है। मैंने कहा कि शिक्षा वह चीज है, जिससे समस्याओ का हल होता है, तो वह शिक्षा भी समस्या हो गयी। जिससे तमाम समस्याओ का परिहार होता है वही समस्या हो गयी। ऐसा क्यो होता है ? अब क्या कहा जाय ? राज्य के हाथ मे शिक्षा गयी। जो अधिकार आपने

शंकराचार्य को दिया नही, जो अधिकार आपने तुलसीदास को दिया नही, वह अधिकार आपने एजुकेशन डायरेक्टर को दिया। वह एक किताब बनायगा और वह प्रिस्क्राइब्ड किताब सारे प्रान्त मे चलेगी। हर लडके को वह किताब पढनी पडेगी। बिलकुल जमशेदपुर से जयनगर तक और दुमका से दुर्गावती तक, सारे बिहार मे एक ही किताब चलेगी। अगर बच्चे ठीक अध्ययन नही करेंगे, तो फेल करेंगे। एजुकेशनवाले आदमियो ने जो किताब तय कर दी, जो पास कर दी, उसे पढ़ना पडेगा। यह अधिकार आपने न शंकराचार्य को दिया, न तुलसीदास को। तुलसीदासजी यह नही कर सके कि जबर-दस्ती हर एक को रामायण पढनी पडेगी। यह अधिकार तुलसीदासजी ने लिया नही और आपने दिया नही। काफी लोग रामायण पढ़ते हैं, पर अपनी स्वेच्छा से पढ़ते हैं। परन्तु यह कम्पल्सरी किताब सबको पढ़नी ही पडेगी। शिक्षा-अधिकारी की आपने इतनी योग्यता मानी!

सार इसका यह है कि हर एक का अपना-अपना स्थान होता है। शिक्षा का सारा-का-सारा क्षेत्र शासनमुक्त होना चाहिए। यह मुक्त रहना आपके अधिकार में है। उनके पंजे से आप स्वयं मुक्त हो जायँ, तो शिक्षा-मुक्त हो जाय।

शिक्षा : ज्ञान और कर्म का योग

गाधीजी ने, कृष्ण ने, पतंजलि ने, सबने हमे सिखाया कि ज्ञान और कर्म इकट्ठा होना चाहिए। ज्ञान और कर्म के दो टुकडे नही होने चाहिए। ज्ञान कर्म से अलग नही होना चाहिए। अगर ऐसा हुआ कि कुछ लोगो के पास ज्ञान और कुछ लोगो के पास कर्म हो, तो राहु-केतु का समाज बनेगा। राहु यानी सिर-ही-सिर, उसको रुण्ड नही, सिर्फ मुण्ड। और केतु यानी रुण्ड-ही-रुण्ड, नीचे का हिस्सा, उसके मुण्ड नही। क्या होगा? देहात के सारे लोग केतु बनेंगे और शहर के लोग राहु बनेंगे। ऐसा राहु-केतु-समाज बना तो बडा मुश्किल होगा। देश मे पहले से ही जातिभेद है, प्रातभेद है, भाषा-भेद है। एक नया पक्ष-भेद और दाखिल हो गया है। इसमे अगर यह भी एक भेद हो जाय कि कुछ लोग तो काम ही काम करें, कुछ लोग ज्ञान ही ज्ञान हासिल करें, ज्ञानवाले को काम नही, काम-वाले को ज्ञान नही, काम करने की शक्ति किसान के हाथ में और

ज्ञान की शक्ति शहरवाले के हाथ में, तो क्या वह इसको देगा, और यह उसको देगा ? इस वास्ते अगर उत्पादन बढ़ाना है, पराक्रम का काम करना है, विकास करना है, तो ज्ञान और कर्म को इकट्ठा होना चाहिए। यह गांधीजी के कहने का तात्पर्य था।

आश्चर्य की बात है कि यह जो गाधीजी की बात है, उसका स्वीकार भारत मे अभी तक हुआ नही, लेकिन उसका पूरा स्वीकार चीन ने कर लिया। गाधी ने कहा और चीन ने सुना। गांधी और माओ इस मामले मे एकमत हो गये। उन लोगों ने सारे देश के तमाम लोगों को एक ही स्कूल मे रखा है। बडे-बड़े स्कूल बनाये नही। उस स्कूल का नाम दिया हाफ-हाफ स्कूल। उसमें तीन घण्टे काम करना पडेगा और तीन घण्टे पढ़ना पड़ेगा। वहाँ तो कम्युनिज्म है। जो बात करते हैं, फौरन अमल करते है। यह कम्युनिज्म का एक बहुत बडा गुण है। और हम लोग हमेशा डांवाडोल रहते हैं, सोचते रहते हैं, चिन्तन करते रहते है। कानून बनाते रहते हैं। नाटक कम्पनी आयगी, खेल दिखायगी ऐसा चलता है। तो चीन मे सब-के-सब एक ही स्कूल मे पढ़ते हैं। कन्धे-से-कन्धा लगाकर काम करते हैं। बराबरी के नाते से बर्ताव करते हैं। ऊँच और नीच का भेद खतम है। कर्म और ज्ञान दोनों को मिलता है। सबको एक ज्ञान और सबको एक काम। यह और बात है कि उनका कम्युनिज्मवाला और सोशलिज्मवाला ज्ञान रंगीन होता है। उनको रंग दिया जाता है, यह अलग बात। परन्तु सबको ज्ञान, सबको काम, दोनों आधा-आधा, यह चीज चीनवालों ने की। यहाँ पर भी हमको इस बात का आयोजन करना होगा कि हमारे सब बच्चों को काम और ज्ञान समान रूप से मिले। जैसे कृष्ण भगवान् सारथी होने के लिए तैयार हैं, लड़ने के लिए भी तैयार हैं, भगवद्गीता कहने के लिए भी तैयार हैं, गुरु बनने को तैयार, शिष्य बनने को भी तैयार, शोफर (सारथी) बनने के लिए भी तैयार। अर्जुन से कृष्ण भगवान् १६ साल बड़े थे। अर्जुन कृष्ण से पूछता है—"क्यों भैया, मेरा शोफर बनेगा ? तब तो मैं लड़ सकता हूँ।" भगवान् कृष्ण को सारथी होने के लिए कहना कितनी विलक्षण बात है। लेकिन कृष्ण भगवान् इतने नम्र थे कि उनको लेशमात्र भी अहंकार नहीं था। हर कोई उनको काम बता सकता था। तो वे सारथी बन गये। अर्जुन क्षत्रिय था। युद्ध समाप्त हुआ तो शाम को संध्यावन्दन करता था।

और कृष्ण भगवान् का काम था अर्जुन के घोडे की मालिश करना। उनकी सध्योपासना यही थी। यह सारा दृश्य आपको महाभारत मे मिलता है। जैसे भगवान् कृष्ण हो गये दोनो शक्तियो से सम्पन्न, जैसे व्यास भगवान् हो गये दोनो शक्तियो से सम्पन्न, वैसे ही हमारे सारे शिक्षा शास्त्री और विद्यार्थी दोनो शक्तियो मे समान होने चाहिए, तब अपना काम होगा।

मजहब और राजनीति के स्थान पर अध्यात्म और विज्ञान

यह तो मैंने शिक्षा के सम्बन्ध मे एक बात आपके सामने रखी। एक और बात मैंने जाहिर की है और अपनी यात्रा के दरम्यान बीसो बार दोहरायी है। मुझे उत्तम प्रचारक मिले थे—पं० जवाहरलाल नेहरू। जहाँ-जहाँ गये, रूस में, अमरीका मे, जहाँ भी गये, कहा कि बाबा का कहना है कि साइन्स और स्पिरिच्युआलिटी दोनो को इकट्ठा होना चाहिए पालिटिक्स एण्ड रिलीजन आर आउटडेटेड (राजनीति और धर्म पुराने पड गये।) उनके दिन लद गये। धर्म-पन्थो के दिन लद गये। भिन्न भिन्न धर्मो की जगह स्पिरिच्युआलिज्म आना चाहिए, अध्यात्म आना चाहिए, और पालिटिक्स की जगह विज्ञान आना चाहिए, तब काम होगा। तो पडितजी ने इस विचार का प्रचार किया। और मेरा खयाल है कि पटना मे उनका व्याख्यान हुआ था, जिसे मैंने अखबार मे पढा था कि "मैं यद्यपि राजनीति मे मुब्तिला हूँ, तो भी (जवाहरलाल बोल रहे हैं) आइ एम इनक्लाइण्ड टु एक्सेप्ट बाबाज व्यू।" (बाबा के विचारो को स्वीकार करने की मेरी इच्छा होती है।) पालिटिक्स छोडना होगा, रीलीजन छोडना होगा। व्यापक साइन्स और व्यापक अध्यात्म स्वीकार करना होगा, तभी बुनियादी मसले हल होगे। अन्यथा क्या होगा? पालिटिशियन्स एकता के लिए जो काम करेंगे, वे फूट डालनेवाले होगे। उनको सूझता नही कि उन्होने क्या किया। उन्होने बगला भाषा के दो टुकडे कर दिये। उर्दू के दो टुकडे कर दिये। पजाबी के दो टुकडे कर दिये, जोर्डन, कोरिया, बर्लिन के दो टुकडे कर दिये। वे टुकडे करना जानते हैं, यह मानते हुए कि इससे एकता फैलेगी। इस प्रकार कभी दुनिया के मसले हल नही होगे। दुनिया मे सभी को मिलकर सामूहिक रूप से सोचना होगा, तभी मसले हल होगे। और ये जो छोटी छोटी

राजनीति है, और ये जो छोटे-छोटे धर्मग्रन्थ हैं, उनसे मुक्ति पानी होगी। अब जहाँ धर्मग्रन्थ से मुक्ति की बात आयी तो यहाँ के लोग घबडा जाते हैं। मैं उनको समझाता हूँ कि घबडाने की बात नही है। उदाहरण के लिए यज्ञ को लीजिए। यज्ञ करना और घी जलाना प्राचीन काल मे होता था। तो हम भी घी जलायें, क्या यह धर्म माना जायगा ? यज्ञ माना जायगा ? इस जमाने मे घी जलेगा तो हालत क्या होगी ? उस जमाने मे तो अग्नि जलाने के लिए घी था। जगलो के जगल पडे थे। हजारो की तादाद मे गायें थी। इस वास्ते घी उनका साधन था। कोल्हू-वोल्हू था नही, इसलिए तेल उस जमाने मे था नही। घी ही एक साधन था। एक दफे एक शादी हमारे नियन्त्रण में होनेवाली थी। दीक्षित ब्राह्मण ने कहा कि आहुति भी देनी पडेगी। मैंने उन्हे शास्त्र समझाया। ऐसा करो, एक सुन्दर पात्र बनाओ—ताम्रपात्र। उस पर लिखो "अग्नि"। वहाँ एक दीया रखो और लिखो, "साक्षी"। "अग्नये स्वाहा इद न मम इन्द्राय स्वाहा इद न मम, वरुणाय स्वाहा इद न मम", ऐसी आहुतियाँ उस अग्निपात्र मे डालो। और जो घी इकट्ठा होगा उसे सबको प्रसाद के तौर पर दे दो। यज्ञ भी सागोपाग होगा और वेद भगवान् की भी तृप्ति होगी। उन्होने पूछा कि क्या ऐसा वेद में आधार है ? मैंने कहा, "जी हाँ"। मीमासा शास्त्र मे चर्चा है कि देवता कैसे होते हैं। अग्नि का स्वरूप क्या है ? 'अ ग् नि", यह उसका स्वरूप है। अक्षरात्मक देवता।" इन्द्र का स्वरूप है "इ न् द् र"। वरुण का स्वरूप है 'व रु ण। देवता सारे अक्षरात्मक हैं। अग्निपात्र मे घी डालकर काम हो सकता है। लोगो ने कहा कि यह युक्ति अच्छी है। पुराने लोगो के प्रति जो आदर रखना चाहिए वह आदर भी इसमे कायम है और नये समाज के लिए जो जरूरी बाते हैं वे भी इसमे आ जाती हैं। पुरानी चीजें जो हो चुकी हैं, वे धर्म के नाम पर वैसी ही करना उचित काम नही माना जायगा, यह समझना चाहिए।

दूसरा उदाहरण, कौरव-पाण्डवो का वाद विवाद। द्यूत चल रहा है। और द्रौपदी पण मे लगायी गयी। आखिर पाण्डव हारे और द्रौपदी दुर्योधन की दासी बन गयी। महान्-महान् पडित वहा थे। भीष्म भी थे। द्रौपदी ने खडे होकर पूछा कि 'आप लोगो की राय मे

स्त्री क्या पुरुषो की प्रापर्टी है और द्यूत मे पण मे, उसे लगा सकते हैं ?' तो "भीष्म द्रोण विदुर भये विस्मित"। विदुर यानी कौन ? उस जमाने का अत्यन्त ज्ञानी। जो महान् ज्ञानी है, उसका नाम है विदुर। विदुर इतना बडा ज्ञानी था कि पाणिनि को उसके लिए स्वतत्र सूत्र बनाना पडा "यथा विदुरभिदुरौ"। विदुर और भिदुर, दो खास शब्द हैं। विद् धातु को उर प्रत्यय लगाकर विदुर शब्द बनता है। जो अत्यत ज्ञानी, महाज्ञानी उसका नाम विदुर। फिर भिदुर यानी अत्यन्त भेदन करनेवाला, प्रखर भेदन करनेवाला। एक है विदुर, एक है भिदुर। दो शब्द हैं सस्कृत म। ऐसे दोनो को इकट्ठा करके पाणिनि ने सूत्र बनाया—"यथा विदुरभिदुरौ"। इतना महान् ज्ञानी भी विस्मित हो गया, निर्णय नही ले सका। आज का बच्चा भी निर्णय देगा—'स्त्री क्या कोई सम्पत्ति है, जो द्यूत मे लगा सकते हैं ? बिलकुल गलत काम।'

तो सार यह है कि पुराने जो विचारक हो गये हैं, उनके विचारो को जैसा का तैसा सनातन धर्म के नाम पर स्वीकार कर लेने मे सार नही है। इसम अध्यात्म का आधार लेना चाहिए।

अब अपने यहाँ क्या होता है ? अध्यात्म विद्या का तो अपने यहाँ स्कूलो मे कोई सवाल ही नही। एक चीज है सेक्यूलर के नाम से। सेक्यूलरिज्म है, इसलिए रामायण सिखा नही सकते, बाइबिल सिखा नही सकते, कुरान सिखा नही सकते। फिर क्या सिखा सकते हैं ? इसके लिए अग्रेजी मे एक सुन्दर शब्द है—लिटरेचर के तौर पर रामायण का 'पीस' हो सकता है। ऐसा पीस-पीस लेकर कोई अध्यात्म बनेगा ? तो हमारे यहाँ जो सर्वोत्तम साहित्य है, वह सबका सब त्याज्य हो जाता है, क्योकि यह सब सेक्युलरिज्म मे नही आता है। यह सेक्युलरिज्म का गलत खयाल है। सर्वोत्तम अध्यात्म विद्या जो भारत मे थी, उसका अध्ययन-अध्यापन स्कूलो मे होना चाहिए और उसके साथ-साथ माडर्न साइन्स का भी अध्ययन होना चाहिए।

छात्रों की अनुशासनहीनता

विद्यार्थियो के बारे में मैं ज्यादा कहूँगा नही। क्योकि अपने यहाँ एक शास्त्र है, एक सूत्र में सारा उत्तर दे दिया है—"शिष्यापराधे गुरोर्दण्ड."। यदि शिष्य से कोई अपराध हुआ है तो गुरु को डण्डा।

इस वास्ते विद्यार्थियो के कितने भी अपराध हो, उनके गुनाहगार शिक्षक लोग हैं। यह अपने यहाँ का न्याय है। अगर तालीम ठीक रही और विद्यार्थियो को शिक्षा मे कोई 'पर्पज' (लक्ष्य) मालूम हुआ, तो निश्चय है कि वे अध्ययन अच्छा करेंगे, इसमें कोई शक नही। लेकिन आज की हालत तो यह है कि उनकी सारी शिक्षा 'पर्पजलेस' (लक्ष्यहीन) है। सीखकर क्या करना है, इनको मालूम नही। इसलिए उनके बारे मे मैं अभी कुछ कहूँगा नही।

भाषा का प्रश्न

एक बात और कहकर मैं समाप्त करूँगा, और वह विषय है भाषा का। मुझे भाषाओ के लिए अत्यन्त प्रेम है। कोशिश करके मैंने अनेक भाषाओ का अध्ययन किया। हिन्दुस्तान के शेड्यूल में १५ भाषाओ के नाम हैं। उन सब भाषाओ का अध्ययन बाबा को हुआ है। उसके बाद परशियन और अरबी। इन दोनो भाषाओ का अच्छा अध्ययन बाबा को है और अरबी भाषा का तो बाबा पण्डित ही कहा जायगा। उसने कुरान का एक सार भी निकाला है। फिर हमने चीनी और जापानी भाषाओं के अध्ययन की थोडी कोशिश की। जापान के एक भाई मेरी यात्रा मे आये थे और महीनो उन्होने मुझे जापानी सिखायी। मेरे ध्यान मे आया कि यदि नागरी लिपि भारत मे चलेगी तो जापान के लोग भी नागरी लिपि स्वीकार कर सकते हैं, क्योकि वे लिपि की तलाश मे हैं। एक बडी बात मैंने पायी कि उनकी भाषा की रचना भारतीय भाषा की जैसी है, न कि यूरोपियन भाषा की जैसी। शब्द तो उनके अलग हैं, लेकिन क्या रचना है ? "इन दि रूम", यह इंग्लिश रचना है। "कोठरी मे", यह अपनी रचना है। यानी अपने यहाँ 'पोस्ट-पोजिशन' होते हैं, 'प्री-पोजिशन' नहीं होते। 'प्री-पोजिशन' यानी नाम के प्रथम रखना, और बाद मे रखना 'पोस्ट-पोजिशन'। यही रचना जापानी मे भी है। "म कोठरी" नहीं बोलेगे, "कोठरी मे" बोलेंगे। उस वक्त थोडा-सा ध्यान हमे आया। लेकिन यह हमारा ज्ञान बडा खतरनाक है, "लिटिल नालेज इज डेंजरस थिंग" (थोडा ज्ञान खतरनाक होता है।) यह प्रेम के लिए पर्याप्त है, ज्ञान के लिए पर्याप्त नही। फिर हमने चीनी भाषा के अध्ययन की कोशिश की। उसके लिए एक चीनी भाई भी मेरे पास आये थे। डिक्शनरी भी बहुत बडी-बडी मेरे पास आयी थीं। बहुत विकट भाषा है। चुंग चांग चुग करके एक वाक्य

हो जाता है। छोटे-छोटे शब्दो में पूरा वाक्य बन जाता है। ऐसी बडी सुन्दर भाषा है। इसकी एक खूबी यह है कि यह चित्र-लिपि की भाषा है। और चित्रलिपि के नाते उसमे हजार-बारह सौ 'सिम्बल' (चिह्न) हैं। ये सारे 'सिम्बल' सीखने के बाद भाषा आती है। यह लिपि ऐसी है कि उससे आप अपनी भाषा भी पढ़ सकते हैं। मान लीजिए कि बाघ का चित्र आपने सामने खडा कर लिया तो इंग्लिश मे कहेगे 'टाइगर, टाइगर', और हम कहेंगे 'बाघ, बाघ'। जहाँ चित्र आपने देखा, 'बाघ' भी पढ़ सकते हैं, 'टाइगर' भी पढ़ सकते हैं। चीनी भाषा मे यह खूबी है। चीन मे अनेक भाषाएँ हैं। लेकिन उनकी एक लिपि-चित्र-लिपि होने के नाते उस लिपि पर से चीनी लोग अपनी-अपनी भाषाएँ पढ़ लेते हैं। मैंने उसमे से मराठी पढ़ना शुरू कर दिया।

तात्पर्य यह है कि मैंने भाषाओ के लिए परिश्रम किया है और मुझे भाषाओ के विषय मे बडा आदर है। इंग्लिश तो मैंने थोडी सीखी ही है, थोडी फ्रेन्च भी सीखी है। उसके बाद मेरी पदयात्रा मे एक जर्मन लडकी आयी, तो उससे जर्मन सीख ली। इंग्लिश और फ्रेन्च दोनो आती हैं, इसलिए जर्मन सीखने से ज्यादा परिश्रम पडा नही। महीने भर के अन्दर जर्मन आयी। दोनो-तीनो भाषाओ की रचना समान है। उसके बाद लेटिन का भी थोडा अभ्यास किया। पुराना संस्कृत लेटिन के नजदीक पडता है। मैंने समझा कि काफी अध्ययन कर लिया, बस है। लेकिन एक दिन एक भाई आये और बोले—'अध्ययन तो आपने काफी किया, लेकिन एक नयी भाषा का अध्ययन नहीं किया। इस वास्ते आपका ज्ञान बहुत ही कमजोर है। आपको 'एस्पिरेण्टो' सीखनी चाहिए।' मैंने कहा कि शिक्षक मिल जाय तो मैं 'एस्पिरेण्टो' सीख सकता हूँ। यूगोस्लाविया ने एक शिक्षक भेजा। मैं उन दिनो पंजाब मे पदयात्रा मे था। वह आदमी मेरे साथ पदयात्रा मे रहे और मैंने २० दिन मे 'एस्पिरेण्टो' सीख ली। यह कहानी मैंने इसलिए सुनायी कि मुझे सभी भाषाओ के प्रति अत्यन्त आदर है। आज भी यदि कोई भाषा सिखानेवाला मिल जाय और जरूरत पडे तो नयी भाषा सीख सकता हूँ। इस वास्ते भाषा के बारे मे मैं जो कहूँगा उसमे किसी भाषा के बारे मे कोई 'प्रीजुडिस' (पूर्वाग्रह)—अनुकूल या प्रतिकूल—मेरे दिल में होगा, ऐसा नहीं मानना चाहिए। ऐसा है नहीं।

अंग्रेजी के बारे मे मैं एक बात कहना चाहता हूँ। बहुत लोगो को लगता है कि अंग्रेजी के बिना शिक्षा बहुत अधूरी रहेगी, क्योकि दुनिया के लिए वह एक 'विण्डो' (खिडकी) है। मैं यह बात मानता हूँ। लेकिन मैंने ऐसे घर देखे हैं कि उन घरवालो ने एक ही दिशा मे एक ही खिडकी रखी थी, तो उनको विश्वदर्शन होता नही था, एक तरफ का ही दर्शन होता था। वैसे अगर आप एक ही 'विण्डो' रखेंगे तो सर्वांग दर्शन होगा नही, एक ही अंग का दर्शन होगा। तो कम-से-कम आपको ७ 'विण्डो' रखनी होगी। इंग्लिश, फ्रेन्च, जर्मन, रशियन, ये चार यूरोप की, चायनीज और जापानीज, ये दो फार ईस्ट की, और एक अरबी ईरान से लेकर सीरिया तक का जो एरिया है, उसके लिए। तो इस तरह ७ 'विण्डो' आप रखेंगे तो ठीक होगा। अन्यथा एक 'विण्डो' आपने रखी तो बहुत ही एकांगी दर्शन होगा और दुनिया का सही (सम्यक्) दर्शन होगा नही, गलत दर्शन होगा। हम उस भाषा के अधीन हो जायँगे और स्वतन्त्र बुद्धि से सोचने का हमे मौका मिलेगा नही।

यह मैं मान्य करता हूँ कि हमारे यहाँ इंग्लिश सिखाने की सहूलियत काफी अच्छी है। इस वास्ते इंग्लिश सीखनेवाले लोग ज्यादा निकलेंगे, दूसरी भाषा के कम निकलेंगे। लेकिन इन सात भाषाओ के उत्तम जानकार अपने यहाँ होने चाहिए, तभी भारत ठीक चलेगा। नही तो भारत के लिए खतरा है। जाने-अनजाने वह इंग्लैंड के पक्ष मे, अमरीका के पक्ष मे रहेगा। मुझे इसका कोई विरोध नही है। अगर इंग्लैंड और अमरीका का पक्ष हमारे लिए अच्छा है तो अच्छा ही है। परन्तु हम निरन्तर अंग्रेजी भाषा ही पढते रहेंगे तो उन्हीकी सारी खबरें हम पर आक्रमण करती रहेंगी, और उधर रूस मे, जर्मनी में, जापान में, क्या चल रहा है हमको पता चलेगा नही। अगर चलेगा तो अंग्रेजी भाषा के द्वारा चलेगा, यानी 'प्रीजुडिस्ड' होगा। इस वास्ते हम इसको बहुत बडा खतरा मानते हैं कि इतने बडे विशाल भारत के लिए हम एक ही दरवाजा रखें। यह गलत है। एक 'विण्डो' से काम नही चलेगा।

दूसरी बात यह है कि शिक्षा मे अगर आठ साल की शिक्षा हम बच्चो को देनी है और उस आठ साल की शिक्षा के अन्दर अगर हमने अंग्रेजी, फ्रेंच या जर्मन, ऐसी कोई 'विण्डो' रखी, तो वह बेकार है।

उसकी जरूरत है नहीं। क्योंकि वे लोग जो इंग्लिश सीखेंगे या फ्रेंच सीखेंगे, ज्यादा सीखेंगे नहीं। और ऐसे थोडे-से ज्ञान का कोई उपयोग नही, क्योंकि वे तो आठ साल की परीक्षा देकर चले जायेंगे। कोई खेती मे जायगा, कोई वही जायगा, अपना-अपना काम करेगा। उन सब लोगो पर वह लादना ठीक नहीं। वे कहेंगे कि आपका 'विण्डो' हमारे लिए किस काम का ? हम तो खेती मे रहते हैं। 'विण्डो' तो उसको चाहिए, जिसके घर मे दीवालें होंगी और हमारे घर मे तो दीवालें होती नहीं। ऊपर से भी फटा रहता है। इसलिए उनको 'विण्डो' के फेर में नही डालना चाहिए और इन भाषाओ से मुक्त करना चाहिए। परिणाम यह होगा कि अपनी भाषा का वे उत्तम अध्ययन करेंगे। अभी तो अपनी भाषा का भी ठीक से ज्ञान होता नही। और अंग्रेजी भाषा का भी ज्ञान कच्चा रहता है। अगर वे मातृभाषा का अध्ययन करें तो उनके जीवन मे उसका कुछ उपयोग होगा। आश्चर्य की बात है कि आज का जो शिक्षक है—आप लोग मुझे जरा क्षमा करेंगे, वह हमाल (कुली) है। ऊपर से लिखकर आता है कि आपका टाइम-टेबुल ऐसा रहेगा। यह हमाल तदनुसार सिखायेगा। क्या सिखाना है यह तो लिखकर आता ही है। कौनसा विषय कितना 'पिरिएड' सिखाना यह भी लिखकर आता है। उस हालत में यह होता है कि मातृभाषा का ज्ञान कच्चा रहता है। इंग्लिश का भी पक्का होता नहीं। बजाय इसके अगर मातृभाषा का अच्छा अध्ययन करे तो इसका उसके जीवन मे कुछ उपयोग होगा।

और मैं एक सुझाव देना चाहता हूँ कि जो हिन्दी सीखेगा, उसे संस्कृत सिखनी चाहिए। संस्कृत यानी 'गच्छामि, गच्छति' नही। संस्कृत मे जिसे हम शब्द-साधनिका कहते हैं, वह शब्द-साधनिका हमारी भाषा का आधार है। यह सारी शब्द-साधनिका उनको सिखानी चाहिए। जैसे मिसाल के तौर पर एक योग शब्द से योग, उद्योग, संयोग, वियोग, प्रतियोग आदि शब्द बने। योग्य, अयोग्य ये विशेषण बने। युक्त, अयुक्त, आयुक्त, प्रयुक्त, नियुक्त, उद्युक्त—ये भूत कृदन्त काल के रूप बने। योगी, वियोगी, संयोगी इत्यादि रूप बने। योज्य, योजनीय, प्रयोजनीय—ये शब्द बने। एक युज् धातु पर से कम-से-कम ४०० शब्द हिन्दी मे चलते हैं। ये संस्कृत माने जायेंगे। यह बाप

की 'स्टेट' है जो वेटे की ही है। उसके बिना हिन्दी का ज्ञान अत्यन्त अधूरा रहेगा और हिन्दी भाषा सर्व-विचार-प्रकाशन मे समर्थ नहीं होगी। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि शब्द-साधनिका सिखायी जाय। प्रहार, आहार, संहार, विहार, परिहार मे एक ही धातु है। 'प्र' जोड़ने से ठोकने का अर्थ होता है। मारना, 'संहार' हुआ; नाश्ता, जलपान करना, 'उपाहार' हुआ; शंका-निरसन, 'परिहार' हो गया। इस प्रकार एक ही 'हृ' धातु से इतने शब्द बनते हैं। और ये सारे शब्द आपकी सम्पत्ति हैं। संस्कृत की यह शब्द-साधनिका हिन्दी भाषा के अध्ययन का एक भाग होना चाहिए। इसके बिना हिन्दी भाषा का अध्ययन हुआ, ऐसा मानना नही चाहिए।

"मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू"

अब मैं इसको संस्कृत मे कहता हूँ—

"मुद मंगलमय. सत्समाज., यो जगति जंगमः तीर्थराज."।

यानी उन्होने संस्कृत ही लिखा है। उन्होने इतना ही किया कि लोगो को संस्कृत का उच्चारण आता नही था, उन्हें उच्चारण नही सिखाना था, रामायण सिखानी थी, रामचरित सिखाना था, तो लोगों का उच्चारण ले लिया। संस्कृत बोलने पर जनता सीखेगी भी नही, और उन्हे नाहक उच्चारण क्यो सिखायें? "जागबलक मुनि कथा सुहाई"—'याज्ञवल्क्य' कौन कहेगा? इसलिए 'जागबलक' कह दिया। "धरम न अरथ न काम रुचि"—'धर्म' नही, 'अर्थ' नही, "धरम न अरथ न"। "गति न चहौं निरबान"—'निर्वाण' नही, निरबान। निर्वाण नाम है मृत्यु का। जनता की भाषा मे बोलने से जनता सीखेगी। लेकिन उन्हे उच्चारण नही सीखना पड़ेगा। जैसे बंगाली लोग कहते हैं कि हमारी भाषा मे तीन स हैं—श, ष, स। एक 'श' शिवशंकर वाला, दूसरा 'ष' है षण्मुख वाला, और तीसरा 'स' है सत्पुरुष वगैरह वाला। लेकिन उच्चारण मे कोई फरक नही। उत्तम-से-उत्तम कवि जो हो गये हैं उन्हे भाषा सिखानी थी नही, धर्म-विचार सिखाना था। इसलिए उन्होने लोकभाषा मे प्रयुक्त उच्चारण को ही मानकर तदनुसार लिखा है। लेकिन जो लिखा है वह ज्यादातर संस्कृत मिला हुआ ही है। रवि ठाकुर की भाषा के लिए क्या कहा जाय? "जनगणमंगलदायक"—कितना बड़ा समास हो गया! इसी तरह आप

रवि ठाकुर की भाषा मे बहुत संस्कृत पायेंगे। हमारी बहुत सारी भाषाओ मे इस प्रकार के शब्द पायेंगे। तो वह जो संस्कृत शब्द-साधनिका है वह हिन्दी का अंग बनाना चाहिए। यदि हिन्दी को समृद्ध बनाना हो तो एक खास सूचना मैंने आपको दी।

फिर एक प्रश्न आता है कि मातृभाषा के द्वारा शिक्षा देनी है या नही। यह बडा विलक्षण प्रश्न है। इसमे तो दो राय होनी नही चाहिए। दो राय कैसे बनती होगी, हमारी समझ मे नही आता। गधे के बच्चे से अगर पूछा जाय, 'तुझे गधे की भाषा मे ज्ञान देना चाहिए कि सिंह की भाषा में ?' तो वह कहेगा कि 'सिंह की भाषा चाहे जितनी भी अच्छी हो, मुझे तो गधे की भाषा समझ मे आयगी, सिंह की नही।' तो यह जाहिर बात है कि मनुष्य के हृदय को ग्रहण होनेवाली जो भाषा है वह मातृभाषा है। तो उसीके द्वारा शिक्षा होनी चाहिए, इसमे कोई शक नही होना चाहिए।

अब सवाल उठता है कि कितना समय इसके लिए लिया जाय। ४ साल, ५ साल ? कमीशन की रिपोर्ट है, १० साल से ज्यादा न हो, ऐसा लिखा है। उन्होने जो निर्णय दिया है वह काफी अच्छा है। मेरी अपनी राय है कि अगर पूरा प्रयत्न किया जाय तो पांच साल मे भी हो सकता है। ऐसा आग्रह नही है कि पांच ही साल हो। लेकिन प्रयत्न करना चाहिए। मातृभाषा के द्वारा ही पहली से आखिरी तक सारी तालीम दी जानी चाहिए, इसमे कोई शक नही होना चाहिए।

मैं असम गया था। वहाँ असमिया भाषा का अध्ययन किया और वहाँ के धर्मग्रन्थो को पढ़ा। वहाँ के एक ग्रन्थ का सार-रूपेण सकलन करके प्रकाशित किया। उसका नाम है—"नामघोषा सार"। वहाँ मैंने पाया कि ४०० साल पहले भट्टदेव नाम के एक लेखक हो गये। उन्होने 'प्रोज' (गद्य) लिखा है। अक्सर यह माना जाता है कि 'प्रोज' (गद्य) भारत मे 'अंग्रेजो के साथ अंग्रेजी भाषा के पीछे आया। परन्तु असमिया मे मैंने देखा कि गीता पर 'कामेण्टरी' (व्याख्या) लिखी है। भट्टदेव ने भागवत पर भी 'कामेण्टरी' लिखी है। एक का नाम है—"कथा गीता" और एक का नाम है—"कथा भागवत"। कथा मानी 'प्रोज' गद्य। वह सारा-का-सारा ग्रन्थ मुझे बहुत सुन्दर लगा। गीता की 'कामेण्टरी' भक्तदेव ने लिखी है ४०० साल पहले। उसी समय इग्लैण्ड के केक्स्टन

का प्रिंटिग प्रेस निकला था और बाइबल छप रहा था। तो बाइबल जिस जमाने मे इगलैण्ड मे छप रहा था, उसी वक्त असमिया भाषा म प्रोज म भगवत्गीता लिखी जा रही थी। यह मिसाल मैंने इसलिए दी कि असमिया भाषा उत्तम समर्थ है। उसम साइन्स के शब्दो की जरूरत होगी तो धीरे धीरे साइन्स के शब्द बनाते जायेंगे। और जब तक नही बने तब तक इग्लिश शब्द इस्तेमाल करेंगे। इसमे आपको दिक्कत क्या है? अगर हमे यह कहना पडे कि आक्सीजन दो भाग और हाइड्रोजन एक भाग मिलकर पानी बनता है तो हाइड्रोजन, आक्सीजन के लिए नये शब्द बनने तक रुकने की जरूरत नही है। इस प्रकार आरम्भ कर देगे तो आसानी से आरम्भ हो जायगा। हमारी भाषाएँ आज तक काफी विकसित हुई हैं और आगे हो सकती हैं।

एक और मिसाल दूँगा। कैण्टरबरी टेल्स' इग्लिश में १२वी शताब्दी का ग्रन्थ है। यह मैंने पढा है। पढा है और उसी समय की लिखी हुई ज्ञानेश्वर महाराज की ज्ञानेश्वरी मराठी मे है। ज्ञानेश्वर के पास जितने शब्द हैं, उसका चौथाई हिस्सा भी कैण्टरबरी टेल्स मे नही है। और 'ज्ञानेश्वरी मराठी भाषा का पहला ग्रन्थ नही है। उसके पहले भी ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। लेकिन बहुत ही प्रतिष्ठित ग्रन्थ है 'ज्ञानेश्वरी। उसकी सगठन-शक्ति और कैण्टरबरी टेल्स की सगठन शक्ति मे बडा अन्तर है।

मेरे प्यारे भाइयो! बहुत-सी बातो का मैंने विवेचन किया। अब समाप्तम्।

पूसा रोड (दरभगा)
७-१२ १९६७

मुझको यह परिषद् बहुत गंभीर मालूम हो रही है। इसमे मुझे कुछ ईश्वरी योजना दीखती है। मैंने याद किया कि मेरी पदयात्रा के दरम्यान, १२-१३-१४ साल मे अथवा उसके पहले, या गाधीजी के जमाने में इस प्रकार की कोई परिषद् हुई थी क्या। तो, ऐसा कोई स्मरण, मुझे हुआ नही। जब मैं मैसूर स्टेट मे यात्रा कर रहा था, तब शिक्षा के बारे में एक परिषद् हुई थी। लेकिन वह अखिल भारत के शिक्षण के अधिकारियो की परिषद् थी। सन् १९५७ की बात है। १० साल हो गये। सारे भारत की विभूतियाँ इकट्ठा हुई थीं और शिक्षा के विषय मे मेरे साथ कुछ चर्चा हुई थी। वह प्रसंग याद है। लेकिन वह कोई विद्वत्परिषद् नही थी, वह कार्यभार चलाने-वालो की परिषद् थी। यह विद्वत्परिषद् है। और जब मैं पूरे इतिहास को देखने लगा तो मेरे ध्यान मे आया कि इस प्रकार की परिषदे, जिनको प्राचीन काल में 'संगीति' कहते थे, गौतम बुद्ध के बाद बिहार मे, और भारत के दो-तीन और जगहो मे हुई थी। और भी कई हुई होगी, लेकिन इतिहास मे उनका रेकार्ड नही है। जिनका रेकार्ड है, मैंने उनकी याद की। तो मुझको लगा कि यह एक विशेष प्रसंग है। और आज की इस परिषद् के आयोजन के लिए बाबा को जरा भी तकलीफ नही हुई और बाबा ने इस बारे में कुछ सोचा भी नही था। सारा आयोजन श्री कर्पूरी ठाकुर ने किया, और मैंने उसको मान लिया। और वे सुना रहे हैं कि उसमे सरकार का एक पैसा भी खर्च नही हुआ। इसलिए यह एक विशेष परिषद् ही मानी जायगी, इसमे कोई शक नही।

ईश्वरीय आदेश

इसलिए मुझको लगा कि इसमे एक ईश्वरी आदेश है। अगर इस काम को हम उठा लेते हैं तो शिक्षा मे अहिंसक क्राति हम ला सकते हैं। यहाँ बिहार के सब यूनिवर्सिटियो के मुख्य-मुख्य लोग उपस्थित हुए और उन्होने शिक्षा के बारे मे और शिक्षको की समस्याओ और विद्यार्थियो की समस्याओ इत्यादि के बारे मे सोचा, तो इसमें

मैंने अपने लिए एक ईश्वरीय संकेत, एक ईश्वरीय आदेश माना। मेरी इच्छा हुई—इच्छा क्या हुई, प्रेरणा हुई—कि इस कार्य में जितनी मदद हो सकती है, मुझको देनी चाहिए। मैंने जैसे ईश्वरीय संकेत से भूदान-ग्रामदान कार्य को उठाया है, वैसे मुझे शिक्षा में अहिंसक क्रांति का कार्य भी उठाना चाहिए, ऐसा अन्दर से आभास हुआ। इसलिए मैंने कहा कि यह बहुत गम्भीर मौका है, ऐसा मैं समझता हूँ।

स्वाध्याय प्रवचन

मैं जब सोचता हूँ, तो मेरे ध्यान मे आता है कि आज जो काम मैं कर रहा हूँ, इसको मैं अत्यन्त महत्व का और बुनियादी कार्य मानता हूँ। फिर भी उसके लिए मैं जितना लायक हूँ, उससे ज्यादा आपके इस काम के लिए लायक हूँ, क्योंकि मैं निरन्तर अध्ययनशील रहा हूँ। और आज भी जब आपके सामने यहाँ उपस्थित हुआ हूँ और यद्यपि कई मुलाकातें हुई हैं और समय भी काफी देना पड़ा है, लेकिन अध्ययन करके ही यहाँ आया हूँ। आज तक मेरा एक भी दिन बिना अध्ययन के गया नही। मेरे सारे जो संस्कार हैं और जो आदेश, निर्देश, उपदेश, संदेश मुझे मिले हैं, अन्दर से और हमारे शास्त्रकारों से, इन पर जब मैं सोचने लगा तब मुझे उपनिषद् याद आया, जिसमे मनुष्य के क्या-क्या कर्तव्य हैं इसकी फेहरिस्त दी हुई है (१) सत्य च स्वाध्याय प्रवचने च–सत्य का पालन करना चाहिए, और अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए, (२) शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च–शांति रखनी चाहिए, मन पर काबू रखना चाहिए और अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए, (३) दमश्च स्वाध्याय-प्रवचने च–इन्द्रियों का दमन करना चाहिए, (४) अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च–अतिथि की सेवा करनी चाहिए और अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए। तो जितने कर्तव्य बताये, उन सबके साथ अध्ययन-अध्यापन का सम्पुट किया। उसको शास्त्र मे सम्पुट कहते हैं। ऊपर एक, नीचे एक पुट है, अन्दर कोई चीज है। यह सम्पुट है। तो, स्वाध्याय और प्रवचन के सम्पुट मे सारे कर्तव्य बताये। यानी हर एक कर्तव्य के साथ स्वाध्याय प्रवचन होना चाहिए। तब मैंने अपने लिए समझ लिया कि भूदानं च स्वाध्याय प्रवचने च–भूदानके

काम मे योग देना चाहिए और स्वाध्याय प्रवचन करना चाहिए, अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए। ग्रामदानं च स्वाध्याय प्रवचने च, शाति-सेना च स्वाध्याय प्रवचने च, और ग्रामाभिमुखं खादी-कार्यं च स्वाध्याय प्रवचने च। और ऐसा ही मैंने व्यवहार किया। जितने काम किये उन सब काम के साथ अध्ययन-अध्यापन का कर्तव्य कभी दूर हुआ नही। सुप्त पुरुष का अपार सस्कार हुआ। बहुत बडा उपकार है, उन महात्माओ का, जिन्होने मुझे यह आदेश दिया।

फिर, स्वराज्य प्राप्ति से पहले स्वराज्य-आन्दोलन मे जो आधुनिक राजनैतिक नेता लगे हुए थे और जिनसे मुझको स्फूर्ति मिली, उनकी याद की। तब मैंने पाया कि मुख्य-मुख्य राजनैतिक नेता स्वाध्यायशील थे। इन दिनो के जो राजनैतिक नेता हैं उनको अध्ययन करने के लिए समय ही नही मिलता। उनका नाम है 'मत्री'। मत्री यानी मनन करनेवाला। लेकिन उनको मनन के लिए ही फुरसत नही मिलती। ऐसी आज हालत है। लेकिन पुराने-जमाने के जो नेता थे, वे ऐसे नही थे। जैसे—श्री अरविन्द महान् राजनैतिक नेता, क्रातिकारी विचार के पुरस्कर्ता, अत्यन्त अध्ययन-सम्पन्न थे। अब २५ ३० किताबें उनकी हमको मिलती हैं। वे निरन्तर ज्ञान चर्चा करते थे। लोकमान्य तिलक, दिन भर राजनीति की चर्चा, रात को सोने की तैयारी, १२ बजे वेदाध्ययन शुरू, एक घण्टा वेदाध्ययन करने के बाद ही निद्रा! जेल मे गये तो वेद के सशोधन पर ग्रन्थ लिखा। एक जेल निवास मे 'गीता रहस्य' लिखा। वे राजनैतिक नेता थे, लेकिन उनका हृदय स्वाध्याय प्रवचन मे था। काग्रेस का जिन्होने आरम्भ किया, वे श्री रानडे, आधुनिक विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, प्राचीन सन्तो की वाणी इत्यादि का वे निरन्तर अध्ययन करते थे। डा० एनी बेसेण्ट ने होमरूल का इतना जोरदार आन्दोलन चलाया कि अग्रेजी सल्तनत डिगने लगी। परन्तु वे अत्यन्त अध्ययन-सम्पन्न थीं। उनके बीसो ग्रन्थ आपको अध्यात्म विद्या पर मिलेंगे। अबुल कलाम आजाद अनेक विद्याओ के वेत्ता थे। जितने राजनैतिक क्षेत्र मे मजे हुए थे उससे कुछ ज्यादा ही विद्या के क्षेत्र मे मजे हुए थे। मैंने ये चार-पाँच मिसालें आपके सामने रखी। उस समय के जो राजनैतिक नेता थे, वे ठोस थे, पोल नही थे। ढोल

होती है पोल, और आवाज होती है जोरदार। ठोस चीज की आवाज कम होती है, पर परिणाम ज्यादा होना है। ऐसे नेता उस समय थे। यह तो राजनैतिक नेताओं की बात की। जो राजनैतिक नेता नही थे, जिनका जीवन विद्याप्रधान था, जैसे डा० भगवानदास, भाण्डारकर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की तो बात ही नही करता। केवल राजनैतिक नेताओ की तरफ देखता हूँ तो वे भी अध्ययनशील थे। और उन सबके सस्कार मेरे चित्त पर हुए हैं। तो मुझे लगा कि आप लोगों को इस काम में मदद दूँ, ताकि बिहार मे शिक्षा में अहिंसक क्राति हो। इसके माने क्या होते हैं, क्या करना होगा? इस पर सोचना होगा, चर्चा करनी होगी। लेकिन मैंने आपके सामने, अपने हृदय मे जो स्फूर्ति हुई वह रखी। इसके आगे आप मुझसे व्यक्तिगत तौर पर मिल सकते हैं, समूहरूपेण मिल सकते हैं। एक सुन्दर योग आया है कि सब इकट्ठा हुए हैं। यह विद्वत्परिषद है, शिक्षा-मत्री भी शिक्षा में अहिंसक क्राति की अपेक्षा रखनेवाले हैं और बाबा आपकी सेवा में उपस्थित है। तो इसका पूरा लाभ उठाना चाहिए।

शिक्षा का काम पहले क्यों नहीं उठाया?

मैंने अभी कहा कि मैं इस काम के लिए ज्यादा लायक हूँ। तो फिर आप पूछेंगे कि अगर आप अपने को इस काम के लिए ज्यादा लायक समझते हैं, तो आपने यह काम अभी तक क्यों नही उठाया? और यह भूदान-ग्रामदान का काम क्यों उठाया? तो अभी तक यह क्यो नही उठाया, इसका मैं उत्तर देना चाहता हूँ। एक उत्तर यह है कि इस काम में विद्वानों का सहयोग मुझे मिलेगा, ऐसा मुझे भरोसा नही था। दो विद्वान् एक जगह आ जायें और उनमे मतैक्य हो जाय तो समझना चाहिए कि बहुत बडी घटना हो गयी। 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्।' जिसका वचन प्रमाण माना जाय, सो एक मुनि नही, मुनि अनेक हैं।

'बहु मत मुनि, बहु पथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।'

तुलसीदासजी कहते हैं कि हमने खूब देखे, अनेक मुनि देखे, बहुत पथ देखे, अनेक पुराण देखे, जहाँ तहाँ हमने झगडा देखा। विद्वानो के विचारो मे मेल नहीं होता। तुलसीदास को गुरु ने आदेश दिया कि भगवान् की भक्ति करो यह मुझे राजमार्ग मालूम होता है—'मोहि लगत राज डगरो सो'। समाप्तम्। पण्डितो के पीछे मत चलो, क्योंकि 'जहाँ-तहाँ झगरो सो'। 'गुरु कह्यो राम भजन नीको'—गुरु ने मुझसे कहा कि तू इस झझट में मत पड, इसमे तेरी कोई दाल गलेगी नही, तेरा अपना 'राम भजन नीको' कर। तो तुलसीदास ने कहा कि में तो राजमार्ग पर चलता हूँ। इस कृति पर पडित लोग हंसेगे। यह जो मे रामायण लिख रहा हूँ इसे देखकर पडित हँसगे। तुलसीदासजी तो बडे विनयशील हैं। तो कहते ह कि में मान लूंगा कि मैंने उन्हें हास्यरस की सामग्री प्रदान की। 'तिन्ह कहँ सुखद हास रस एहू।' साहित्य में नवरस होना है—वीर रस, शृ गार रस, हास्य रस आदि। तो अगर मैंने पडितो को हास्य रस प्रदान किया तो भी मैं समझूंगा कि मैं कारगर हो गया, मेरा साहित्य सफल हुआ, ऐसा में मान सकता हूँ। यह कहकर तुलसीदासजी ने विनोद किया है। त जहाँ तुलसीदास को यह डर लगा कि मेरी चलेगी नही, तो बाबा की क्या हैसियत ? सो बाबा ने सोचा कि इसमे अपनी दाल गलेगी नहीं। इस वास्ते यद्यपि में इस काम के लिए ज्यादा लायक हूँ, फिर भी मैंने आज तक इसको लिया नहीं। शिक्षा का यह काम क्यों नही उठाया, इसका एक कारण हुआ।

करुणा कार्य

दूसरा कारण यह है कि बाबा के हृदय मे करुणा काम कर रही है। शकराचार्य इतने बडे गुरु हो गये, उनसे बढकर शायद ही कोई तत्वज्ञानी हुआ हो। परन्तु उन्होने भगवान् से प्रार्थना की—'भूतदया विस्तारय।' 'अविनय मपनय विष्णो'—हे विष्णु, अविनय दूर कर

और भूतदया का विस्तार कर। शकराचार्य इतने ज्ञाननिष्ठ थे। वे कहते हैं कि भूतदया मनुष्य का प्रधान कर्तव्य है और उसका विस्तार करना चाहिए। और उन्होने एक जगह यह कहा कि अनेक विद्वान और पडित ऐसे होते हैं, जिनके मुख से शब्द झरते हैं झर झर झर झर, 'वाग्वैखरी शब्दझरी' 'शास्त्रव्याख्यान कौशलम्'—शास्त्रों पर व्याख्यान देने मे अत्यन्त कुशल, महाविद्वान् होते हैं। ऐसे विद्वानों का वैदुष्य, उनकी विद्वत्ता क्या काम आती है? आचार्य लिखते हैं—'भुक्तये, न तु मुक्तये'। उनकी विद्या भुक्ति के काम मे आती है, मुक्ति के काम मे नही। वह तनख्वाह पाने की विद्या है, जो मुक्ति के काम में नही आती। यह आचार्य का कथन है। इस वास्ते करुणा की अत्यन्त जरूरत है। गुरु मूर्ति शकराचार्य कठोर माने गये, परन्तु उनके शिष्य उनका वर्णन कर रहे हैं—'श्रुति स्मृति पुराणानामालयं'—आचार्य शंकर श्रुति, स्मृति, पुराणो के घर हैं, विद्या के आलय हैं। साथ ही 'करुणालयम्'—करुणा के आलय हैं। अगर वह करुणा शकराचार्य मे न होती, तो १६ साल भारत भर मे जो लगातार उन्होंने यात्रा की, जगह-जगह जाकर लोकप्रचार किया, वह करने का कोई प्रयोजन नही था, और वह हो ही नही सकता था। गौतम बुद्ध कौन थे? अनेक विद्या पारगत राजपुत्र थे। राजा ने उन्हे तरह-तरह की विद्याएं सिखा रखी थी। लेकिन वे घर से किस विद्या का नाम लेकर निकल पडे? वे करुणा का नाम लेकर ही निकले। 'कारुण्यावतारः'। इस वास्ते भारत पर उनका असर पडा, विचार मे क्रांति हुई, उस जमाने से आज तक, सारे भारत पर उनका असर है। आज तो उनके विचारो की अत्यन्त आवश्यकता मालूम पडती है। वे करुणालय थे। यह मैंने आपके सामने रखा कि वे जो विद्या के आलय थे, महाविद्वान् और ज्ञानी थे, उन्होंने केवल विद्या को महत्त्व दिया नही, करुणा के साथ ही विद्या को महत्त्व दिया।

पंचवर्षीय योजनाओं की विफलता

बाबा के पास कोई खास विद्या नही है। विद्या उसके पास जरूर

है, इस माने में कि दूसरे लोगों के पास खास विद्या नहीं है, इस तुलना में 'एरण्डोपि द्रुमायते' होता ही है। इस माने मे तो बाबा विद्वान् है हो। चूंकि लोगों के पास अविद्या है, इसलिए बाबा विद्वान् माना जाता है। इस हालत में बाबा करुणा का कार्य छोडकर विद्वानों के पीछे जायेगा तो विद्वान् ध्यान देगे नहीं। बाबा भारत भर पैदल घूमा, कितनी होन-दीन दशा भारत की है वह अपनी आँखों से देखा, बहुत दुःख देखा। खाने को अन्न नहीं, ओढने को वस्त्र नहीं, घर पर छप्पर नहीं, बच्चों को दूध नहीं, जिस जमीन पर झोपडी बनी है वह जमीन भी उसकी नहो, दवा का प्रबन्ध नही, तालीम का सवाल ही नहीं। ऐसी दशा है भारत की। तो उसमें सुधार करने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी। परन्तु सुधार हुआ नहीं।

पंचवर्षीय योजना के सिलसिले में योजनावालों से बात करने का मुझे मौका मिला है। बाबा की यात्रा में अनेक पार्टियों के लोगो के साथ बात करने का मौका मिलता है। काग्रेस, जन-काग्रेस, स्वतत्र, एस० एस० पी०, पी० एस० पी०, राइट-लेफ्ट कम्युनिस्ट और भी अनेक पार्टियां हैं; एक जे० पी० भी हैं, हर पार्टी में बाबा के मित्र हैं। मैंने योजनावालों से पूछा कि जो सबसे गरीब हैं, योजना में उनके लिए खास क्या प्रबन्ध है ? योजना से सारे देश का जीवनमान कुछ बढ़ेगा, यह ठीक है, लेकिन गरीब के जीवनमान में क्या फर्क होगा ? उन्होंने समझाया कि सबका स्तर बढ़ेगा तो नीचेवालों का भी स्तर कुछ बढेगा। मैंने इसको थियरी आफ पर्कोलेशन नाम दिया। ऊपर बहुत बारिश होगी तो जमीन के अन्दर भी कुछ पानी जायेगा। लेकिन कुछ जमीन के अन्दर चट्टान होती है तो वहाँ नीचे एक बूंद भी पानी नहीं जाता। भारत में जातिभेद, आर्थिक विषमता आदि अनेक चट्टानें हैं। और भारत की औसत आय बढने पर भी गरीब को कुछ नहीं मिलेगा। क्योंकि उसका जो लाभ है वह ऊपरवालो को मिल जायगा और नीचेवाले उससे वचित रह जायँगे। कई दफे उनके सामने मैंने यह बात रखी। लेकिन उनको यह हविस थी कि अपने

देश को जल्द-से-जल्द दुनिया के प्रगतिशील देशो की कतार मे लाकर रखना चाहिए। इसलिए नासिक के प्रिंटिंग प्रेस मे नोट छापकर योजनाएँ बनायी, बडी बडी योजनाएँ बनी। दीर्घकालीन लाभ मिले, ऐसी योजनाएँ बनी। तुरत के लिए कुछ खास नही हुआ। हमने उनसे पूछा कि आप मिनिमम कब देंगे? तो वे कहते हैं कि सन् १९८५ मे नीचे के तबके के लोगो को मिनिमम (न्यूनतम) मिलेगा। मैं आप्टिमम (अधिकतम) की बात नही, मिनिमम की बात कहता हूँ। शरीर, और प्राण के पोषण के लिए कम से कम इतना तो देना ही चाहिए। वह आप कब देंगे? वादे करते चले गये और कहते हैं कि १९८५ मे देंगे। तो मैंने उन्हें तुकाराम का एक वचन सुना दिया। महाराष्ट्र में तुकाराम महाराज एक बडे सन्त पुरुष हो गये हैं। उनका एक वचन है। एक मनुष्य नदी मे डूब रहा है और दूसरा कहता है कि हाँ तेरे उद्धार की योजना परसों तक हो जायगी। तुकाराम पूछते हैं कि 'उद्धारासी काय उधारीचे काम'—अरे, उद्धार मे उधार कैसे चलेगा? आपको और कोई मदद देनी है, या जीवन की कोई सहूलियत प्राप्त करानी है, तो आज नही होगी, कल होगी, परसो होगी कहे तो कुछ समझ मे आता है। लेकिन जो डूब रहा है, उससे कहें कि परसो तेरा उद्धार होनेवाला है, तो वह कहेगा कि 'खूब है'। उद्धार म उधार नही चल सकता। सन् १९८५ मे क्या होगा, मेरी समझ में कुछ नही आता। देश की हालत क्या से क्या होगी! इसलिए बाबा के दिल मे बडा दर्द है।

भारत की जनता ने बहुत सहन किया। इस काम (गाँव के काम) की योग्यता बाबा मे कम है, न शरीर में शक्ति है, न किसानो के साथ कुदाल लेकर काम ही कर सकता है—कुछ कोशिश की भी है, लेकिन कर नहीं सकना—तो इस हालत मे किसानो मे जाकर उनको प्रेरणा देना और उनके द्वारा काम कराना, इस काम मे बाबा की योग्यता कम है। योग्यता कम होते हुए भी आवश्यकता ज्यादा है यों समझकर बाबा ने अपना समय उस काम में दिया।

और आज भी उस काम की प्रायमिकता बाबा छोड नही सकता। लेकिन यह ईश्वरी दृश्य बाबा के सामने दीख रहा है, उससे बाबा को प्ररणा मिल रही है कि कम से-कम बिहार में शिक्षा मे अहिंसक क्राति का काम हम सब मिल कर कर। इसमे जितनी मदद में दे सकता हूँ, देने को प्रस्तुत हूँ।

मेरी शर्तें

अब मेरी कुछ शर्तें हैं। एक शर्त तो यह है कि में ५० साल काम कर चुका हूँ। वैसे तो आदमी मरने तक काम कर ही सकता है। कोई खास बात नही। लेकिन बाबा का विचार उसके लिए अनुकूल नही। बाबा का विचार है कि अन्तिम काल मे आत्मचिंतन में ही समय जाना चाहिए और सूक्ष्म में प्रवेश करना चाहिए। इसलिए बाबा ने सूक्ष्म में प्रवेश किया है। फिर भी बाबा कह रहा है कि आपको मदद देने के लिए प्रस्तुत है, तो उसका अर्थ यह होता है कि बाबा की तरफ से आक्रमण होगा नही, आपकी तरफ से होना चाहिए, बाबा उसको आक्रमण मानेगा नही। आक्रमण नही मानेगा यानी बाबा एक 'रेफरेन्स बुक (सदर्भ पुस्तक) जैसा रहेगा। आपको जब जरूरत होगी तब खोल लीजिए। जो रेफरेन्स आप चाहते हैं वह आपको उस पुस्तक में मिलेगा। परन्तु आप अगर खुद-ब-खुद पुस्तक का उपयोग न करेंगे तो पुस्तक स्वय आकर आपको कुछ कहनेवाली नही है। तो एक रेफरेन्स बुक के तौर पर बाबा का उपयोग आप कर सकते हैं और अगर सरकार को सद्बुद्धि हुई तो आपकी सरकार भी कर सकती है।

इस सरकार के बत्तीस दात हैं और बत्तीस वचन हैं। ऐसे तो वचन तैंतीस हैं, लेकिन उसमे एक वचन जरा ढीला हुआ है। उसको छोड दें तो भी बत्तीस वचन इनको पालन करने हैं। स्थिति बड़ी कठिन है। बाबा के शरीर के जैसी इन बेचारो की स्थिति है। अनेक विरोधी तत्त्व इकट्ठे हैं। बाबा के शरीर की स्थिति क्या

है ? बाबा अगर खायेगा तो गले को मंजूर नही, खाँसी शुरू हो जायगी। बाबा दूध पीयेगा तो गले को कबूल है, पेट को नाकबूल है, गैस होता है। बाबा भाजी खायेगा तो पेट शिकायत करेगा, मलद्वार के लिए अच्छा रहेगा। बाबा स्टाची फूड लेगा तो पेट खुश रहेगा, लेकिन मलद्वार नाराज होगा। अब क्या किया जाय ? गला विरुद्ध पेट, पेट विरुद्ध मलद्वार; और ये सारे परस्पर-विरोधी हैं, ऐसी स्थिति इनकी भी है। आपने देखा कि इन सब अंगों की अलग अलग स्थिति होते हुए भी बाबा कुशलता से इनसे काम ले लेता है। ऐसे ही अब मैं उम्मीद करूँ कि ये (मंत्री लोग) भी जरा आपस मे प्रेम बनाये। "रामहि केवल प्रेम पियारा, जानि लेहु जो जाननिहारा" थोड़ा प्रेम करो जनता पर। इसमे कोई एक मिनिस्टर दूसरे मिनिस्टर को गले लगाये, इसकी आवश्यक्ता नही है। सब मिलकर जनता पर प्रेम करे। मेरी समझ मे नही आता कि आज भारत पर और कौनसी मुसीबत की जरूरत है और विहार के लिए और कौनसी मुसीबत चाहिए ? जो आज मोजूद दीखती है उससे अधिक आपत्तियो की जरूरत है क्या ? ऐसी हालत मे जरा मिलजुलकर काम करे। कम-से-कम शिक्षा के क्षेत्र में आप सब लोगो का सहयोग होगा तो हो सकता है कि बाबा अपने सूक्ष्म प्रवेश के बावजूद एक 'रेफरेन्स बुक' के तौर पर आपकी सेवा में उपस्थित रहे। आक्रमण आपको करना होगा, यह शर्त है।

और दूसरी मेरी शर्त यह है कि आप अगर केवल विद्या की बात करेंगे तो बाबा आपसे कहेगा कि करुणा के विना विद्या का उपयोग नही। इसलिए बाबा जो करुणा-कार्य कर रहा है, उसमें आपका पूरा सहयोग मिलना चाहिए। जगह-जगह शिक्षक हैं। मेरा खयाल है गाँव-गाँव मे शिक्षक हैं। सारे विहार में दो गाँव के बीच एक स्कूल होगा ही, तो शिक्षक सब जगह हैं। अगर वे ग्रामसभा बनाने में, ग्रामवासियो को मार्गदर्शन करने मे, उनको विचार समझाने मे, प्रेम की बात ठीक वैसे अमल मे लाना, इसका मार्ग दिखाने

में नेतृत्व करेंगे, तो शिक्षकों द्वारा बहुत बड़ा काम होगा। अगर देखा जाय कि भारत को किसने बनाया है, तो मालूम होगा कि आचार्यों ने बनाया है। हमसे कहा गया कि माडर्न जर्मनी शिक्षकों ने बनाया। वहाँ अनेक तत्त्वज्ञानी निकले, अनेक शिक्षक निकले, और शिक्षको ने जर्मनी बनाया। माडर्न जर्मनी को शिक्षका ने बनाया, यह बात जितनी सत्य है, उससे कम सत्य यह नहीं है कि भारत को आचार्यों ने बनाया। भारत का जितना धर्म विचार है, अर्थ विचार है, समाज विचार है, वह सब-का सब अनेक आचार्यों के विचारो के कारण बना हुआ है। ऐसा सारा भारत का इतिहास है। इस वास्ते आप अगर ग्रामदान के आन्दोलन को अपना आन्दोलन समझकर, अपने विद्यार्थियों के साथ, थोड़ा-सा समय अपनी छुट्टी में से दें, तो बहुत ही ऊँचा काम बिहार मे हो सकगा और आपके हृदय मे सन्तोष भी होगा। दुनिया मे प्राप्त करने की सबसे बढ़कर कोई चीज है तो वह है आत्म-सन्तोष। अन्तरात्मा मे सन्तोष होना चाहिए। जब मरने का दिन होगा और में परमात्मा के पास जाऊँगा, उस दिन मुझे आनन्द महसूस होना चाहिए कि मने कुछ किया है। अगर भगवान् ने शरीर दिया है तो दुखियो की सेवा के लिए दिया है। और अब में भगवान् के दरबार मे प्रस्तुत हो रहा हूँ, तो उसकी गोद मे मुझे उत्तम स्थान मिलेगा, ऐसा अन्तरात्मा म विश्वास होना चाहिए। यह जो आत्म-सन्तोष है वह है जीवन मे प्राप्त करने की चीज, ऐसा बाबा मानता है। इस वास्ते बाबा के इस काम में आपका पूरा सहयोग चाहिए। अब बात हो रही है बिहारदान की। उसमें शिक्षको की जमात कूद पडे। यह कार्य पक्षमुक्त है। इस वास्ते उसमे आप योग दे सकते हैं। आपको छुट्टियाँ भी ज्यादा मिलती हैं। ३६५ दिन बनाये भगवान् ने। मेरा खयाल है यूनिवर्सिटीवालो ने १८० दिन बनाये। और भगवान् ने दिन के २४ घण्टे बनाये, इन्होंने उसके ३ घण्टे बनाये। इस वास्ते समय तो आपके पास है, ऐसा में मानता हूँ। उसमे से कुछ

समय अध्ययन मे जाना चाहिए, यह भी मानता हूँ। लेकिन बाबा ने तो पदयात्रा मे भी अध्ययन किया। बहुत सारा अध्ययन तो पदयात्रा मे ही हुआ। बाबा ने पदयात्रा में अनेक ग्रन्थ भी लिखे और यह काम बाबा के कारखाने का 'बाइ प्राडक्ट' माना जाता है। कुछ कारखाने ऐसे होते हैं कि उनके 'बाइ प्राडक्ट कम महत्व के नही होते, बल्कि उसके कारण कारखाना नुकसान मे नही आता। 'बाइ प्राडक्ट' न बने तो कारखाने मे नुकसान भी हो सकता है। ऐसे वे 'बाइ प्राडक्ट' होते हैं। बाबा ने इस १२–१३ साल के अन्दर जो कई ग्रन्थ प्रकाशित किये, वे आगे की पीढ़ी के काम मे आयँगे। और में मानता हूँ कि वे पीढ़ियाँ कहेगी कि बाबा के कारखाने के ये 'बाइ-प्राडक्ट' बहुत काम के हैं। मैं कहना यह चाहता था कि आपको अध्ययन में कुछ समय देना ही चाहिए। परन्तु ग्रामदान का काम भी आपको उठाना चाहिए।

पिछली बार भी ग्रामदान में शिक्षकों के काम करने की बात आयी तो ऐसे विचित्र निकले ये सरकारपरायण कि अपने अधिकारियों से पूछा कि क्या हम शिक्षक लोग ग्रामदान के काम मे अपना समय दे सकते हैं? ऐसा उन्होने अपने परमेश्वर का आदेश माँगा। शिक्षामत्री की तरफ से लिखित उत्तर आया कि आपको फुरसत का जो समय है, उसमें आप जरूर ग्रामदान के काम में भाग ले सकते हैं, इसमे सरकार को कोई उज्र नही। मेरा खयाल है कि यहाँ कोई लिखित आर्डर की जरूरत नही। अगर आप ग्रामदान मे अपनी फुरसत का समय देगे तो आप उसके अधिकारी हैं। वह आपको देना चाहिए। यह दूसरी बात मैंने आपके सामने रखी। एक तो मेरी तटस्थता का उपयोग करना और दो, करुणा-कार्य में अपने विद्यार्थियो के साथ अपना कुछ समय जरूर देना। इससे बिजली का सचार होगा।

तीसरी बात जो मैंने कल कही थी, उसको फिर से दोहराऊँगा कि आपको अपने को पालिटिक्स से ऊँचा रखना चाहिए। मैंने यह नहीं कहा कि आपको इसका अध्ययन नही करना चाहिए। पालिटिक्स का आपका अध्ययन होना चाहिए, वह भी अध्ययन का एक विषय है।

लेकिन आपकी मुख्य चिन्ता होनी चाहिए "जय जगत्" । सारी दुनिया का भला करने का एक पालिटिक्स है, उसमे आपको पडना चाहिए, उसका चिन्तन, मनन करना चाहिए। परन्तु यह जो पावर पालिटिक्स (सत्ता की राजनीति) है, अथवा पार्टी-पालिटिक्स (दलगत राजनीति) है, उससे आपको अपने को मुक्त रखना चाहिए। उससे ऊपर अपने को रखना चाहिए, तब आपका गौरव है। इस छोटे पालिटिक्स में पडने से आपका गौरव है नही, बल्कि हानि है। यदि वैसा आप करेंगे तो चन्द दिनो मे ही आप देखेंगे कि आपकी एक ताकत बन रही है। नही तो आज शिक्षक की हैसियत एक नौकर की हैसियत है।

गुरु की हैसियत

प्राचीन काल का एक वचन है कि अत्यन्त आप्ततम कौन है, जिसकी सलाह मौके पर लेनी चाहिए, तो उत्तर मिला कि गुरु की सलाह लेनी चाहिए। ससार-कार्य में कभी मुश्किल प्रश्न आया, कोई समस्या आयी, तो सलाह किससे मांगनी चाहिए? तो शास्त्रकारो ने कहा कि तटस्थ गुरुओ से सलाह मांगनी चाहिए। आज आप लोगों की स्थिति क्या है? हर साल आप के हाथ से कम-से-कम २५–३० विद्यार्थी जाते होंगे तो २५–३० साल मे हजारों विद्यार्थी आपके हाथ से निकले होंगे। इसमे कोई शक नही कि आपने उनको तालीम दी, शिक्षा दी। उन हजार विद्यार्थियो मे से कितने विद्यार्थी आपके पास अपने जीवन की मुसीबत लेकर आये और आपकी सलाह ली? वे माता की सलाह ले सकते हैं, पिता की सलाह ले सकते हैं, भाई की सलाह ले सकते हैं, पत्नी और पति की ले सकते हैं, मित्रो की ले सकते हैं, लेकिन शिक्षकों की कभी नही लेंगे। यह क्या चीज है? यानी जिसकी सलाह सबसे श्रेष्ठ सलाह मानी जानी चाहिए, उनकी सलाह तो कोई लेता नही, क्योंकि उनकी हैसियत शिक्षक की नहीं, एक नौकर की है। अगर आप पालिटिक्स से ऊपर आयेंगे और वर्ल्ड-पालिटिक्स की ओर ध्यान देंगे, तो आपकी हैसियत

ऊंची होगी। इसका परिणाम यह होगा कि लोग मौके पर आपकी सलाह लेने के लिए दौड़े आयेंगे। मीराबाई की कहानी है। यह ऐतिहासिक दृष्टि से कहां तक सही है, मैं नही कह सकता—जो कहानी है सो कहता हूं। मीराबाई के जीवन में एक कठिन सवाल आया तो उन्हें सोचना पड़ा कि सलाह किसकी ली जाय। तो वह तुलसीदास के पास गयी। और लिखा कि मेरे सामने बड़ी दुविधा है। मेरे पिताजी मुझे यों कहते हैं, फलाने यों कहते हैं, पतिजी यों कहते हैं, तो मुझे क्या करना चाहिए? तुलसीदासजी उनसे कहते हैं: "तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बन्धु भरत महतारी।" भरत ने अपनी मां का त्याग किया, प्रह्लाद ने पिता का त्याग किया, विभीषण ने भाई का त्याग किया। "जा के प्रिय न राम वैदेही, सो छांडिये कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही।" जो रामजी के खिलाफ जाता होगा वह अत्यन्त मित्र होगा, आप्त होगा, तो भी कोटि वैरी समझकर उसका त्याग करना—जा के प्रिय न राम वैदेही। और आखिर मे नम्रता से लिखते हैं कि—'एतो मतो हमारो।' यह तो हमारा मत है, फिर जैसा आपको सूझेगा, कीजियेगा। तो मीराबाई को इच्छा हुई तुलसीदास की सलाह लेने की। गुरु की वह हैसियत होनी चाहिए। गुरु की यह हैसियत है कि जहां जीवन में कोई समस्या खड़ी हो, उनके हजार-हजार शिष्य होंगे, वे अपने गुरु के पास जायंगे और अपनी समस्या के बारे में सलाह मांगेंगे। यह जो हैसियत है, वह आप खो चुके हैं, भारत में आपकी वह हैसियत खत्म है। लेकिन यदि आप इस पालिटिक्स से ऊपर अपने को रखते हैं तो फिर वह आपको प्राप्त हो सकती है।

पूसा रोड (दरभंगा)
८-१२-१९६७

शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति की योजना : ३ :

मुझे कहने को कम ही है। जो कुछ है, योजना करने को है। कहने को जो था, वह बहुत सारा में पूसा रोड मे कह ही चुका हूँ। सारे बिहार के विश्वविद्यालयो के आचार्य वहाँ इकट्ठा हुए थे। उस सभा में सागोपाग विचार हुआ था।

गाधीजी के जाने के बाद से, यानी २० साल से बाबा सतत घूम रहा है। १३–१४ साल पदयात्रा म बीते। रोज के तीन व्याख्यान हुए—सुबह, शाम और बीच मे। १३ हजार व्याख्यान बाबा ने दिये। मेरा खयाल है कि यह एक रेकार्ड ही हुआ। इससे ज्यादा व्याख्यानों की अपेक्षा बाबा से नही कर सकते। लोगो का काम है कि वे विचारों को सब जगह पहुँचाय। लेकिन विचार पहुँचाने के बारे में हम लोग अत्यन्त आलसी हैं, ऐसा मैंने भारतवर्ष मे देखा और खास कर बिहार में देखा। इसकी व्यवस्थित योजना होनी चाहिए।

यहाँ आप जो सुनेंगे, उसकी अपने अपने स्थानों मे जाकर चर्चा करें और काम का कुछ अमली रूप बने, ऐसा होना चाहिए। वैसे तो शिक्षक भी व्याख्यान देते ही हैं। मैंने कहा कि मैंने १३ हजार व्याख्यान दिये हैं, तो शिक्षक भी कह सकते हैं कि हमने भी १३ हजार व्याख्यान दिये हैं। मेरा खयाल है कि व्याख्यान की सख्या में वे बाबा की बराबरी कर सकते हैं। वे व्याख्यान देने के तो आदी हैं ही। लेकिन उतने से काम बनता नही है। एक बात शिक्षको के समझने की है कि उनका काम क्या है।

सरकार दो परस्पर विरोधी विभाग रखती है। एक है पुलिस विभाग, और दूसरा है शिक्षा विभाग। ये दोनो एक-दूसरे के विरुद्ध

हैं। देश में अनेक परस्पर विरोधी ताकतें काम करती हैं, तो परस्पर-विरोधी विभाग भी सरकार को रखना पडता है।

अशान्ति का शमन

पिछले दिनों कई जगह पुलिस यूनिवर्सिटी-कैम्पस मे घुस गयी थी। अशान्ति हुई थी। उसके दमन के लिए पुलिस गयी। वह भी एक शिकायत (ग्रिवान्स) हो गयी कि यूनिवर्सिटी-कैम्पस मे पुलिस का प्रवेश क्यों होना चाहिए। अवसर नही होना चाहिए। लेकिन मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि यूनिवर्सिटी के लोगो ने अपना कैम्पस इतना छोटा क्यो माना। यह सारा भारत यूनिवर्सिटी-कैम्पस है, और इसके अन्दर पुलिस काम करती है, यह बिलकुल लाछन है, शिक्षको और आचार्यों के लिए लाछन है। आचार्य सब विचार समझते हैं। लोगो का विचार-परिवर्तन करते हैं, हृदय-परिवर्तन करते हैं और जीवन-परिवर्तन की दिशा दिखाते हैं। इस प्रकार परिवर्तन करनेवाली यह जमात पुलिस की आवश्यकता भारत मे रहने दे, यह लाछन है। भारत का नागरिक शाति से चले, अपने हक और अपने कर्तव्यो के प्रति वह जागरूक रहे, जो कुछ भी करे ठीक ढग से, समझ-बूझकर करे तो पुलिस की जरूरत रहेगी नही। ऐसा हो तो, हम पुलिस डिपार्टमेण्ट को हटा देगे। अगर आप सफल होगे तो हमको बहुत खुशी होगी, ऐसा सरकार कहेगी। लेकिन जहाँ सफल नही हैं वहाँ हमे कुछ काम करना पडता है और शान्ति रखनी पडती है। अगर अशान्ति का शमन आप नही कर पाते तो अशान्ति के दमन का प्रबन्ध हमको रखना पडता है। एक है अशान्ति-शमन-विभाग, दूसरा है अशान्ति-दमन-विभाग। शिक्षा विभाग—जिसको हम कहते हैं, शिक्षको, प्रोफेसरो, आचार्यों का विभाग—वह है अशान्ति-शमन विभाग, और पुलिस विभाग जो सरकार रखती है, वह है अशान्ति-दमन-विभाग। अगर शमन होता है तो दमन की जरूरत नही रहती है।

कुछ लोगो को दु ख हुआ कि पुलिस का प्रवेश यूनिवर्सिटी-कैम्पस मे हुआ। मुझे भी दु ख हुआ। दु:ख के लायक ही बात थी। लेकिन हमको तो सारा देश ही अपना कैम्पस बनाना है। (१) आचार्यों का असर सारे भारत मे पडना चाहिए। (२) पालिटिशियन वगैरह जो भी होंगे, उन पर आचार्यों का असर होना चाहिए। और पुलिस को कतई आवश्यकता नही रहे, यह हमारा आगे का कार्यक्रम होना चाहिए। उस सिलसिले में हमको सोचना चाहिए, बजाय इसके कि यूनिवर्सिटी-कैम्पस के अन्दर-अन्दर घटनेवाली छोटी-छोटी घटनाओं के बारे मे सोचा करें। वह भी सोचे, व्यक्तिगत तौर पर, जहाँ-जहाँ जो-जो घटनाएं होनी हैं, उन पर सोचना पडता है। परन्तु हम सब मिलकर, इकट्ठा होकर व्यापक योजना करे।

बाबा ने यूनिवर्सिटी को मदद देना मान्य किया है कि आप मेरे पास आइए, बातचीत कीजिए, योजना बनाइए। आपको एक कार्यक्रम बनाना चाहिए कि भारत में दमन की जरूरत न पडे, सिर्फ शमन से काम हो। अगर शिक्षक अपनी प्रतिष्ठा महसूस करे, अपनी महिमा महसूस करें, तो प्राचीन काल के आचार्यों का आशीर्वाद मिलेगा। भारत मे जो प्राचीन काल से महान् आचार्य आज तक हो गये हैं उनकी बहुत बडी परम्परा यहाँ चली है, जितनी बडी परम्परा ग्रीस मे भी नही चली होगी, वह यहाँ चली।

आचार्य की महिमा : आचार्य की स्वतन्त्र हस्ती

रवीन्द्रनाथ ने बडे अभिमान से कहा, वैसे रवीन्द्रनाथ अभिमानी नही थे, एक छोटे अर्थ मे नेशनलिज्म को माननेवाले नही थे, विश्व-व्यापक दृष्टि के थे। फिर भी उन्होंने अभिमान से कहा—तेरे तपोवन में, भारत के तपोवन में, प्रथम सामरव हुआ। "प्रथम प्रभात उदिन तव गगने"। ज्ञान-कर्म की कहानी तो वनो में प्रथम हुई। उन्होने कई बार समझाया है कि हमारी भारतीय सस्कृति न नागरिक संस्कृति है, न ग्रामीण सस्कृति है, यह आरण्यक सस्कृति

है। रोम की संस्कृति नागरिक संस्कृति थी और एशिया मे जगह-जगह ग्रादिवासियो की ग्रामीण संस्कृति चलती है, और भारत मे जो संस्कृति चली, पली, वह ग्रारण्यक संस्कृति थी। यहाँ के ज्ञानी ग्ररण्य में रहकर यानी ससार से ग्रलिप्त रहकर विरक्त भावना से चिंतन करते थे ग्रौर जो निर्णय होता था, उन निर्णयो को लोगों मे जाकर घर-घर प्रचार करते थे। 'ग्राचार्य' शब्द के ग्रन्दर 'चर' धातु है। ग्राचरण करना, विचरण करना, विचार करना, संचार करना, प्रचार करना। ग्रागे-पीछे, ऊपर-नीचे, चारों ग्रोर 'चर' धातु भरा हुग्रा है।

खेतों में हमको बोना है, तो गेहूँ बोना है या चना बोना है, इसकी चर्चा बैल से नही की जाती। किसान तय करेगा कि इस खेत मे चना बोना है। फिर बैल से कहेगा कि बैल भैया, ग्रब तुम काम के लिए चलो। उससे यह पूछेगा नही कि बैल भैया, क्या बोना ठीक रहेगा इस खेत मे? इस मौसम मे ग्राज इस प्रकार की हवा दीख रही है। उस हवा में जमीन का खयाल करते हुए क्या बोना ठीक होगा? ऐसा बैल से कोई पूछेगा नही। हम खुद तय करेंगे ग्रौर बल से कहेंगे कि चलो, ग्रब तुम काम पर चलो। ऐसे ही हमारे प्रोफेसर ग्रौर ग्राचार्य बैल हो गये हैं। ऊपर से ग्रादेश ग्राता है कि फलानी किताब पढानी है। ये कहते हैं—जी हां! इन्हे तयशुदा किताबें पढानी पडती हैं।

जिन लोगों के हाथों में सारे देश के गाइडेन्स का भार होना चाहिए, वे ही गाइडेन्स खोये हुए हैं ग्रौर एक सामान्य नौकर की हैसियत में ग्रा गये हैं। यह ठीक है कि सरकार के द्वारा काम का ग्रायोजन होता है, तो सरकार की तरफ से तनख्वाह मिले। कोई हर्ज नही। जैसी जुडिसियरी (न्याय-विभाग) है, जजों को तनख्वाह सरकार की तरफ से मिलती है, लेकिन न्याय-विभाग सरकार से ऊपर है, सरकार से ग्रलग है। वह एक स्वतंत्र हस्ती है ग्रौर वह सरकार के खिलाफ भी फैसला दे सकती है। ग्रौर उस

फैसले पर अमल करना पडता है। यह आप देखते हैं। न्याय-विभाग की अपनी प्रतिष्ठा है। यद्यपि उनको तनख्वाह सरकार की ओर से मिलती है, लेकिन वह सरकार के मातहत नही है। वैसे आप लोगो को भले ही सरकार की ओर से तनख्वाह मिले, क्योंकि सरकार लोगों से लेकर ही देती है, लेकिन आपकी स्वतत्र हस्ती होनी चाहिए और आप देश के मार्गदर्शक हैं, ऐसा होना चाहिए। इसकी योजना आपको करनी है। इसके लिए आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी। मुजफ्फरपुर मे आरम्भ कर दीजिए—"हम पोलिटिकल पार्टीज के हाथ की कठपुतली नही बनेंगे, हम उनके ऊपर हैं। इस तरह की प्रतिज्ञा कीजिए।

हम लोगो की सस्कृत शब्दों को गिराने की आदत पडी है। हम खुद गिरे हैं, इस वास्ते ऊँचे से-ऊँचे शब्दो को हम गिराते हैं। किसी शब्द को ऊँचे चढाना, यह तो हमसे होता नही है, लेकिन ऊँचे शब्दो को नीचे जरूर गिराते हैं। जैसे, 'उदासीन' एक शब्द है, उसका अर्थ है उत्+आसीन=उदासीन। अर्थात् ऊपर बैठा हुआ। सारी दुनिया नीचे है और वह ऊपर बैठा हुआ है। वे पर्वत के ऊपर बैठे हुए हैं और पहाड के नीचे जो काम करते हैं, उनको प्रेरणा देते हैं। वे लोगो के मोहजाल से अलग हैं और उन्हे गाइडेन्स कर रहे हैं जो उसी मोहजाल मे फंसे होंगे। जिस चक्र में पालिटिशियन फंसे हुए हैं, अगर उसी चक्र में ये भी फंसेंगे, तो ये भी उनके दास ही हो जायंगे—पालिटिशियन्स के दास। मुझे देखने को मिला कि यूनिवर्सिटी-कैम्पस और कालेज वगैरह पालिटिक्स के अखाडे बन गये और एक एक पार्टी ने एक एक कालेज अपने हाथ में रखा। यह स्थिति अत्यन्त दारुण है। इससे तुरत मुक्ति मिलनी चाहिए। ऐसा प्रोग्राम बनना चाहिए।

शिक्षक प्रतिज्ञा करें

प्रतिज्ञा पत्रक बनना चाहिए। "हम शिक्षकों की हैसियत बहुत ऊँची समझते हैं। सारे देश को, सारी जनता को उनसे मार्गदर्शन

मिलना चाहिए। और इस वास्ते हम प्रतिज्ञा करते हैं कि पार्टी-पालिटिक्स, पावर-पालिटिक्स, पेरोकिअल-पालिटिक्स से हम अलग रहेंगे।" और उस पर हर एक का हस्ताक्षर होना चाहिए। 'हम अपने को भारत का शान्ति-सैनिक समझते हैं और शांति स्थापित करने का सर्वोत्तम शस्त्र हमारे पास है--"शिक्षा", "ज्ञान-शिक्षा"। इससे बढ़कर शांति-स्थापना का शस्त्र क्या हो सकता है! यह शस्त्र हमारे हाथ में ही है और विद्यार्थियों के साथ हम अपना कर्त्तव्य-पालन करेंगे। इसके अलावा सारे देश में शांति-स्थापना का काम करेंगे और पालिटिक्स से हम बिलकुल अलग रहेंगे।'

ऐसी प्रतिज्ञा अगर आप करें तो एकदम आपकी हस्ती ऊपर उठेगी। लोग आपकी तरफ दूसरी दृष्टि से देखने लगेंगे। जब आप भारत के शान्ति-सैनिक, मार्गदर्शक आचार्य के नाते देश के सामने पेश होंगे तो आप देखेंगे कि कम-से-कम बिहार में--बिहार का कितना गौरव रहा है, जहाँ याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि हो गये हैं। क्या उनसे बढ़कर कोई ज्ञानी हो गया है भारतवर्ष में? जनक, बुद्ध, महावीर की परम्परा यहाँ रही है। तो ऐसी जहाँ परम्परा रही है वहाँ--सारे बिहार की जनता के मन में आपके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी। इसलिए कार्यक्रम आज मैंने आपके सामने रखा।

अगर हस्ताक्षर का सिलसिला शुरू हो जाय तो क्रांति का झण्डा यहाँ शुरू हो जायगा। यह काम गाँव-गाँव में करना कठिन है। ७० हजार गाँव हैं। प्रत्येक गाँव में जाकर अलग-अलग करना पड़ता है लेकिन आचार्य इस काम को शुरू करेंगे तो उससे एक हवा फैलेगी और बिहार में एक स्वतंत्र शक्ति खड़ी होगी।

यही सारी बातें मुझे आज आपके सामने रखनी थीं। मैंने सोचा कि विद्या का महत्त्व, परीक्षा की पवित्रता इत्यादि बातों में पड़कर मैं क्या करूँगा। ये बहुत सारी बातें आप सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, तो हमने एक बुनियादी काम के लिए आपको आवाहन दे दिया है।

मुजफ्फरपुर, ६-१-१९६८

आपने देखा होगा कि इन दिनों बाबा हंसता ही रहता है। इसलिए हंसता है कि रोना वाजिब नहीं है, अगरचे हालत रोने लायक है। और इसलिए भी हंसता है कि बाबा को उसका उपाय सूझा हुआ है। यह उपाय अगर लोगों को सूझेगा तो सारे भारत में आनन्द होगा। इस आनन्दमय निश्चित भविष्य को ध्यान में रखकर बाबा हंसता है। बाबा इसलिए भी हंसता रहता है कि वह इस दुनिया को मिथ्या समझता है। बहुत ज्यादा वास्तविक अस्तित्व इसको है, ऐसा बाबा को प्रतीत नहीं होता। खैर, मैंने कहा कि भारत की परिस्थिति बहुत शोचनीय है। क्या-क्या भयानक घटनाएं हिन्दुस्तान मे हो रही हैं, ऐसा प्रश्न पूछने के बजाय यही पूछना बेहतर होगा कि कौनसी नहीं हो रही हैं। सार्वजनिक जीवन के विषय में जितनी खराब घटनाएं लाजिकली हो सकती हैं, उतनी सब हो रही हैं। इसलिए अन्दर से बहुत वेदना का अनुभव होता है।

बुनियादी काम नहीं किये

तीन प्रकार के हमारे दुःख हैं, जिनका निवारण हमको करना है, जिसके लिए हमको अपनी सारी ताकत लगानी पड़ेगी। स्वराज्य के बाद बीस साल के सारे प्रयत्नों के बावजूद वे तीनों दुःख अपनी जगह कायम हैं। बहुत ज्यादा घटे हैं, ऐसा नहीं कह सकते। उनमें से एक है दारिद्र्य। मुझे लगता है कि दारिद्र्य तो कुछ बढ़ा ही है। कारण उसके कई कहे जा सकते हैं। बिना कारण के तो कार्य होता नहीं। कारण जो भी हो, हमारी असावधानता बहुत बड़ा कारण है। अन्य कारणों के रहने से इसका बचाव नहीं हो सकता। हमने अपना कर्तव्य नहीं किया है। देश के लिए जो जरूरी बुनियादी चीजें हैं, प्राथमिक आवश्यक चीजें हैं, जिनके बिना दुय्यम आवश्यकताएं खास माने रखती नहीं, उनकी पूर्ति में हम खास कुछ कर नहीं सके।

हमारे पूर्वजों ने हमको एक व्रत दे दिया—"अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम् ।" व्रत लीजिए कि अन्न बढ़ाया जाय । ये उपनिषद् के शब्द हैं । उपनिषद् कोई पंचवर्षीय योजना की पुस्तक नहीं है, ब्रह्म-विद्या की पुस्तक है । लेकिन ब्रह्म-विद्या की पुस्तक में भी उन्होंने यह आदेश दिया कि अन्न खूब बढ़ाइए । और सिर्फ आदेश नहीं दिया, बल्कि कहा कि उसका व्रत लीजिए । लेकिन इतनी मूलभूत काम को हम भूले और कई दूसरी-तीसरी बातें कीं, लेकिन मुख्य काम नहीं किया । इस ब्रह्म-विद्या ने अन्न बढ़ाने का आदेश दिया, क्योंकि ब्रह्म-विद्या को उसकी जरूरत है । इसलिए कि बिना करुणा के, विना प्रेम के, ब्रह्म-विद्या को आधार नहीं; और अनाज ही पूरा नहीं पड़ता, तब परस्पर प्रेम और करुणा रखना मृग-जलवत् हो जाता है । इसलिए ऐसी हालत में अन्न बहुत आवश्यक है । वह कम हो, तो भक्ति और प्रेम हो ही नहीं सकता । हो सकता है, लेकिन वह अपवादस्वरूप होगा । जो विपत्ति में भी करुणा बहा सकेंगे, वे करुणा रख सकेंगे; लेकिन आम तौर पर अन्न पूरा न पड़ता हो तो करुणा का झरना खतम होगा, भक्ति खतम होगी । अगर ब्रह्म-विद्या के आचार्य को यह पता चले कि भारत में लाउड-स्पीकर नहीं है, रेकार्डिंग मशीन नहीं है, घड़ियाँ नहीं हैं, तो उनको कतई दुःख नहीं होगा । वे कहेंगे कि इससे ब्रह्म-विद्या को कोई खतरा नहीं । लेकिन अनाज कम पड़ता हो, तो उनको भय उत्पन्न होगा । इतनी महत्त्व की बुनियादी बात हम नहीं कर सके । सब लोगों की शक्ति उसमें लगनी चाहिए थी, सरकार की तो लगनी ही चाहिए थी, न लग सकी । यह नहीं कि उन्होंने आलस में दिन काटे । काम किया, लेकिन इधर ध्यान गया नहीं । और जनता का भी नहीं गया ।

महात्मा गांधी ने स्वराज्यप्राप्त होने के बाद कहा था कि अनाज कम पड़ेगा, तो स्वराज्य फीका पड़ेगा, इसलिए हर घर में अन्न उत्पादन होना चाहिए । महात्मा गांधी में सूझ थी । उन्होंने कहा कि जहाँ-

जहाँ जमीन का थोडा भी प्लाट खाली पडा हो, वहाँ सब्जी, तरकारियाँ लगायी जायँ। शहर के लोगों से कहा कि घर में खाली जमीन न हो, तो गमलों में तरकारियाँ लगायें। अब गमलों में कितनी तरकारियाँ लगेंगी? मान लीजिए कि दो-तीन गमले हैं, उनमें साल भर मे सेर भर तरकारी पैदा हो सकती है। लेकिन बिलकुल न होने से कुछ होना बेहतर है। फिर करोड़ों लोग जिसको करते हैं, वह चीज छोटी नही रहती, उसका गुणाकार बहुत बडा होता है। पानी बूँद-बूँद गिरता है, लेकिन हर जगह टपकता है। इसलिए सारी जमीन तर हो जाती है। इसलिए हर कोई थोडी उपज करे और हर घर मे थोड़ी उपज हो जाये, तो बहुत बडा काम होगा। इससे सबको शिक्षा मिलेगी कि देश के उत्पादन के लिए हर एक को कुछ करना है। उसके बिना हमको खाने का हक नही। सेन्ट पाल ने भी यह कह दिया है कि अगर तुम लोग हाथ से काम नही करते हो, तो "नीदर शुड यू ईट" (तुमको खाना नही चाहिए।) फिर उसने कहा कि मैंने बचपन से आज तक—वह बोल रहा है, तब तक—कभी भी दूसरे की कमाई खायी नही। अपने हाथ से कमाकर खाया और उसने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि तुम उत्पादन मे हाथ बटाओगे तब तुम्हें खाने का अधिकार प्राप्त होगा। आपके पास भरपेट खाने को हो, तो भी कुछ उत्पादन कीजिए, ताकि जिनको खाने की कमी है, उनकी पूर्ति होगी। यह न्याय समझा दिया कि जिसने काम ही नही किया, उसको खाने का अधिकार नही। ठीक यही बात महात्मा गाधी ने कही कि थोड़ा-थोड़ा क्यों न हो, कुछ उत्पादन करो। इस वास्ते शहर के लोगों को गमले की बात बतायी। और मत्रियों से कहा कि वे अपने कम्पाउंड में अनाज पैदा करें।

जापान में गाधीजी की कही हुई बात पर अमल हो रहा है। वहाँ एक फुट भी जमीन खाली नहीं दिखेगी। कागावा ने उस पर एक बहुत बड़ा उपन्यास लिखा है। कागावा जापान के एक बहुत बडे महान् ज्ञानी मिशनरी हो गये। उन्होंने एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा है "*मान दि स्टेप्स*"—पहाड़ों की ढाल पर कैसी खेती की जाय?

अपने उपन्यास मे उन्होने बताया कि किस तरह जवान लोग निकले और उन्होने किस तरह पहाडो पर खेती की और बडे-बडे वृक्ष लगाये, ताकि मिट्टी नीचे बह न जाय। किस तरह जरा भी जमीन बेकार न जाने दी, किस प्रकार उन्होने अपने देश को बचाया है। और हम यहाँ देखते हैं कि जमीन बेकार पडी हुई है। तो इस बात का हमें बडा दुख है।

स्वदेशी का लोप

दूसरी बात देश मे 'स्वदेशी-धर्म' बिलकुल खतम हो गया है। जहाँ अन्न ही बाहर से आता है, बच्चों के लिए दूध का पाउडर भी बाहर से आता है, उस हालत म क्या नाम लें स्वदेशी का और कैसे कहें कि भारत अपने पाँव पर खडा है? अनाज अमेरीका से मंगवाया जाता है। दूसरी भी कई चीजे बाहर से मंगवायी जाती हैं। चीजें खरीदते समय हम सोचते ही नही कि यह चीज कहाँ से आयी है। लेकिन इसके लिए भारत को परदेश से कितना खरीदना पडता है, दुनिया में उसको कितना घृणित होना पडता है, बाहर से पोलिटिकली कितना प्रेशर (राजनैतिक दबाव) आता है, यह सारा सोचते ही नही। लेकिन हमने यहाँ तक देखा है कि तैयार माल भी बाहर से आता है, और यहाँ के लोग खरीदते हैं। कुछ तो ऐसा होता है कि बाहर इस्तेमाल किया हुआ माल यहाँ सस्ते दाम में बेचा जाता है, और हमारे लोग उसे खरीदते हैं। इसका वर्णन करके मैं आपका अधिक समय नही लूंगा। लेकिन सार यह है कि अपने देश मे 'स्वदेशी धर्म खतम हुआ है।

शिक्षा में गलतियाँ ही गलतियाँ

जहाँ तक तालीम का ताल्लुक है, जितनी गलतियाँ हम उसमें कर सकते थे, उतनी हमने की। एक भी गलती करना बाकी नही रखा। आज हमारी तालीम में आध्यात्मिक तालीम नही है। जो भारत का विचार था, जिसके आधार पर भारत खडा था और खडा है,

और मजबूत बना है, वह बुनियाद आज हमारी तालीम में है ही नही। तो यह हमारा तीसरा दु ख है। हमारी तालीम में उत्पादन-क्रिया है नही। एक भी भाषा का उत्तम ज्ञान हमारी तालीम में दिया जाता नही। लोगों को इग्लिश सिखाने का हम नाटक करते हैं। वास्तव में अंग्रेजी तो उत्तम आती ही नही, लेकिन अंग्रजी सिखायी जाती है, उसका परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियो की अपनी भाषा कच्ची रहती है। साइन्स का गभीर अध्ययन होता नही। साइन्स का ही नही, बल्कि कहना होगा कि भारत मे अध्ययन ही होता नही। मैंने आज आपके आचार्यजी से सहज पूछा कि साधारणतया दगा करनेवालो में कौनसे विद्यार्थी अधिक होते हैं, शायद साइन्स के विद्यार्थी दगा नही करते होंगे। तो आचार्यजी ने मुझे बताया कि यह बात ठीक है। मैंने तो सहज ही पूछा था, क्योंकि साइन्स मे थोडा तो अध्ययन करना पडता है, तो दगा करने के लिए समय कहाँ से मिलेगा? आर्ट्स मे अध्ययन करना पडता नही, बेकार समय जाता है। इञ्जीनियरिंग के लडके भी शायद कम दगा करते होंगे। और जिनको गणित का ज्ञान होगा, वे तो अत्यन्त समत्वयुक्त बुद्धि रखेंगे।

न्यूटन की कहानी है। वह बहुत बडा गणितज्ञ था। गणित मे उसने बहुत-सी खोजें की। लगातार महीनों तक उसने अपने को कोठरी में बन्द कर रखा था। और जब पांच छह महीने के बाद खोज पूरी हुई तब एक दिन घूमने के लिए बाहर गया। अपनी खोज का सारा सिद्धान्त उसने छोटे छोटे कागजों पर लिख रखा था, जो उसके कमरे में पडे हुए थे। न्यूटन बाहर गया था, तब उसके नौकर ने सोचा कि आज मालिक इतने दिनों के बाद बाहर निकले हैं, तो जरा उनका कमरा साफ करके रखेंगे। और सारा कमरा उसने साफ करके रखा। जब न्यूटन वापस आया तब उसने देखा कि उसके कागज कमरे में नही हैं। जब उसने नौकर से पूछा, तब नौकर ने बताया कि मैंने तो सारा कचरा साफ कर डाला; कागजों के सब

टुकड़े जला दिये। सारे उत्तमोत्तम खोजवाले कागज जला दिये। अब आप सोचिए, इस पर न्यूटन के दिमाग मे क्या चला होगा? परन्तु उसने नौकर को केवल इतना ही कहा कि 'देखो भैया, वे कागज बहुत महत्त्व के थे। ठीक है, लेकिन अब मुझसे पूछे बगैर ऐसा कभी मत करना।' समाप्तम्। यह शान्ति गणित के अध्ययन से उसको प्राप्त हुई थी। मुझे भी थोड़ा अनुभव है। बचपन में मेरा आधा सिर दुखा करता था। जब सिर दुखने लगता था, तब गणित का अध्ययन शुरू कर देता था, तो दुखना बन्द हो जाता था। तो मैं कहता यह था कि आज की तालीम में अध्ययन है नही।

हमने आज की तालीम में ज्ञान और कर्म को अलग-अलग कर दिया है जितने लोग शिक्षित होकर कालेज से निकलते हैं, उतनी नौकरियाँ हैं नही। इससे आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि लोगो को शिक्षा देते हैं, तो बेकारी बढ़ती है और नही देगे तो अज्ञान बढ़ता है। दोनो में खतरा है।

इसके खिलाफ सारी भगवद्गीता खड़ी है :

"कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय.।
लोकसग्रहमेवापि सपश्यन्कर्तुमर्हसि।"

जनकादिकों ने कर्म से ही सिद्धि प्राप्त की, इसलिए कर्म को कभी मत छोड़। ज्ञानी को भी कर्म करना चाहिए, महाज्ञानी को भी कर्म करना चाहिए। जैसे माता बच्चे के लिए खेलती है, वैसे ज्ञानी को लोक-सग्रह के लिए कर्म करना चाहिए। ऐसा आदेश भगवान् ने गीता मे दिया है, जो भारत का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। उसके रहते हुए भी हमने कर्म का सारा विचार खो दिया। ज्ञान तो बढ़ा नहीं, कर्म भी खो दिया।

एक गम्भीर खतरा

इसके बाद जिस तरह हमने सामाजिक व्यवहार किया, वह भी अत्यन्त दोषास्पद था। भाषा के कारण दगे हुए, मद्रास मे हुए, यहाँ हुए, भारत में जगह-जगह हुए। भारत के लिए यह बहुत

बड़ा खतरा खड़ा है। क्या भाषा के नाम पर भारत के दो टुकड़े हो जायेंगे ? सम्प्रदाय के कारण दंगे हुए, धर्म के कारण भी हुए। अभी असम में क्या हुआ ? असमियों ने कहा कि हम भारत मे रहना नहीं चाहते, तो अन्य भारतीयों से कह दिया—'गो आउट इंडियन्स'—भारतीयो, असम के बाहर चले जाओ। मानी इंडियन वर्सेज आसामीज (भारतीय विरुद्ध असमी)। करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति जलायी गयी। आग तो इन दिनों बहुत लगायी गयी, लेकिन गौहाटी में आग लगाने में रेकार्ड है। और यह सब जो हुआ, यह नाहक गलतफमी से हुआ।

शिक्षकों के सामने चुनौती

अब मेरे सामने सवाल है कि ऐसी हालत में हमारे शिक्षक क्या जनानखाने की बहनो के समान अपने विद्या-स्थान मे पड़े रहेंगे या बाहर कोई पराक्रम करने के लिए आयेंगे ? 'हम यहाँ अपना काम कर रहे हैं। बाहर हमारी कोई जिम्मेवारी नहीं'– ऐसा कहकर अपना हाथ धो डालेंगे कि बाहर ऐसा कुछ करना अपनी जिम्मेवारी मानेंगे ? मैं अपने को शिक्षक मानता हूँ और अगर मैं अध्ययन-अध्यापन करता रहता तो मुझे उससे अधिक खुशी और किसी काम में नहीं होती। और वैसा करता तो मेरा खयाल है कि मैं सौ साल जीता। वह जीवन ही ऐसा शान्ति और समत्व रखनेवाला है। लेकिन मैं सेवा के लिए बाहर निकल पड़ा, क्योंकि भारत खतरे में है। इसलिए मैं आपसे अपेक्षा करता हूँ कि आपको एक प्रोजेक्ट (कार्य-योजना) के तौर पर कम-से-कम एकाध जिला हाथ मे लेना चाहिए। मान लीजिए, मुंगेर लिया। मुंगेर शहर मुख्य; और जिले के दूसरे मुख्य-मुख्य नगर और ग्राम। हरएक गांव मे जाने की जरूरत नहीं। चुनकर एक ग्रामीण क्षेत्र लिया जाय। और गाँवों का पूरा सर्वे किया जाय, ताकि गाँवों की जानकारी पूरी हासिल हो। फिर उसको सुधारने के लिए क्या कर सकते हैं, इस पर सोचा जाय। योजना बनायी जाय। गाँव का सर्वे और सुधार के

लिए योजना और शहरो का सर्वे और जिम्मा उठाना कि यहाँ दगे होगे नही। होगे तो उसके लिए अपने को जिम्मेवार मानेंगे और उसको रोकने के लिए पूरी चेष्टा करेंगे। और यह चेष्टा दगे होने के बाद नही, पहले ही करना चाहिए, ताकि परिस्थिति पर काबू आये।

शिक्षक यानी गुरु, आचार्य। आप गुरु हैं, आचार्य हैं। लेकिन आज शिक्षकों की यह हालत है कि उनकी सलाह तक पूछी नही जाती, कि बच्चो को क्या सिखाना चाहिए, कितना सिखाना चाहिए। ऊपर से टाइम-टेबुल आता है। और उसके अनुसार इनको सिखाना पडता है। यानी ये नौकर की हैसियत में आ गये। विद्यार्थी शिक्षक को अपने जीवन के अग मानेगे नही। शिक्षक फलाना फलाना विषय सिखाने का काम करता है, इतना ही मानेगे। इसलिए विद्यार्थियो और शिक्षको का हार्दिक सम्बन्ध बनता नही। जितना सिखाना था, उतना सिखा दिया, खतम हुआ। पहले तो विद्यार्थियो के जीवन मे समस्या आती थी, तब वे सलाह के लिए गुरु के पास जाते थे। माता पिता के पास नही जाते थे। गुरु से कहते थे कि आपमें माता-पिता का वात्सल्य तो है ही, और माता पिता में जो ज्ञान नहीं है, वह भी आपमे है। इसलिए आप सलाह दीजिए। आज मैं शिक्षकों से पूछूंगा कि सैकडो विद्यार्थी आपके हाथ से निकले होगे। उनमें से कोई विद्यार्थी अपने जीवन की समस्या लेकर सलाह ले लिए आपके पास आया? नही आया। आज विद्यार्थी इतना ही कहेंगे कि फलाना शिक्षक गणित बहुत अच्छा सिखाता था। इससे ज्यादा कोई हिस्सा विद्यार्थी के जीवन मे शिक्षक का नही है। कितना दुर्दैव है। जिसकी योग्यता सबसे श्रेष्ठ मानी गयी थी, बल्कि राजाओं का राजा गुरु माना जाता था उसका कितना दुर्दैव।

आज सब उल्टा है। आज तो यहाँ तक होता है कि विश्वविद्यालय के कौनसे अधिकार प्रान्त को, कौनसे दिल्ली को होना चाहिए, इस पर चर्चा चलती है।

अधिकार तो होने चाहिए शिक्षक के हाथ में—गाँव-गाँव के

शिक्षक के हाथ मे। वे तय करें कि कौन सा विषय सिखाना है और गाँव-गाँव मे एक-एक फैकल्टी (विषय) हो—एक गाँव मे एक और दूसरे गाँव मे दूसरी। और इस प्रकार विविध विषय सिखाये जायँ। लेकिन आज शिक्षक के हाथ मे यह है नही। शिक्षक की हैसियत एक मामूली नौकर की है और इसलिए उसकी शिकायतें भी मामूली होती हैं कि तनख्वाह कम पड रही है वगैरह।

शिक्षक मार्गदर्शक बनें

मेरे प्यारे भाइयो, मुझे इसकी बडी खुशी है कि मुझे महाविद्यालय मे रखा गया। इसमे भूदान-ग्रामदान का तो कोई नुक्सान नही हुआ, लेकिन मुझे और आपको इकट्ठा बैठने का मौका मिला। शिक्षा के बारे मे हम आजाद हो जायँ। हमने एक आन्दोलन यह चलाया कि जमीन के मामले मे हम आजाद हो जायँ। वह तो हाथ में आ गया है, लोग काम कर रहे हैं। वैसे ही शिक्षा का आन्दोलन भी चले। शिक्षा पर आज जो तरह-तरह के अकुश हैं, वे हट जायँ और उस पर अपना आत्मिक, आध्यात्मिक अकुश हो। बीच-बीच मे शिक्षकों के शिविर हो। वहाँ भिन्न-भिन्न मसलो पर चर्चा हो अभिप्राय बनाये जायँ और शिक्षकों की ओर से वे अभिप्राय जाहिर हो। इस प्रकार लोगो के मार्गदर्शन के लिए आप तैयार रहे। लोगों को विश्वास हो कि भिन्न-भिन्न प्रश्नों पर आप सोचते हैं तटस्थ रहकर सिम्पथैटिकली (सहानुभूतिपूर्वक), और अपना निर्णय जाहिर करते हैं। इससे सरकार को भी मदद होगी और इस तरह आपका अकुश स्टेट पर आयेगा। यह कभी नही हो सकता कि राजनीति में पडकर आपकी ताकत बनेगी, तब आपकी चोटी सरकार के हाथ मे ही रहेगी। इसलिए शिक्षकों को आगे आना चाहिए; राजनीति से उपर रहना चाहिए; कुछ प्रोजेक्ट हाथ मे लेना चाहिए और जनता को ऐसी आशा और ऐसा विश्वास होना चाहिए कि मौके पर उसे आपसे मार्गदर्शन मिल सकता है।

मुंगेर, १६-२-६८

पालिटिशियन्स का तरीका है कि वे टुकडे करना जानते हैं। इस शक्ति को तोडना हो तो दूसरी शक्ति खडी होनी चाहिए—गाँव की शक्ति। एक शक्ति किसानो की खडी हो और दूसरी शक्ति विद्वानो की, शिक्षको की खडी हो। दोनो की आवश्यकता है। एक है—'अन्न ब्रह्म ति व्यजानात् अन्न बहु कुर्वीत।' खेती की उपेक्षा की, तो लडाई भी जीती नही जा सकती। दूसरी शक्ति है ज्ञान की। चैतन्य को आकार देने का काम आपको सौपा गया है। यह जो शिक्षको की हैसियत थी, उसके बजाय शिक्षक आज सामान्य हैसियत मे आये हैं। शिक्षको म विभाग हुए हैं विद्यार्थियो मे विभाग हुए है। फिर विद्यार्थी विरुद्ध शिक्षक, ऐसे विभाग हुए हैं। दोनो मिलकर होती है विद्या शक्ति। पर उनके आज अलग-अलग विभाग हो गये हैं। जिनका इटरेस्ट वास्तव म एक होना चाहिए, वे अगर अपने-अपने अलग-अलग सघ बनाये, तो शक्ति कैसे खडी होगी ? इन सारे प्रश्नो का उत्तर हो तो वह शिक्षक ही हो सकता है। और वह होगा राजनीति से अलग होने से और लोकनीति के साथ जुड जाने से। राजनीति से अलग हुए बिना राजनीति पर असर पडेगा नही। राजनीति मुक्त और लोकनीति युक्त होने मे लाभ है। पहले राजनीति से अलग होना पडेगा।

फिर हमने ग्रामशक्ति की बात कही है। आज स्थिति ऐसी है कि इसकी किसीने कल्पना ही नही की कि पार्टी-पालिटिक्स के बिना राजनीति हो सकती है, यह किसीने सोचा तक नही। आज डेलीगेटेड डेमोक्रेसी है, पार्टीसिपेटिंग डेमोक्रेसी नही है। अगर शिक्षक ऐसा माने कि हमने स्कूल कालेजो म पढा दिया अब हमारा कोई कर्तव्य नही है, तो चलेगा नही। आपका मासेज के साथ कण्टैक्ट होना चाहिए। मासेज के साथ कण्टैक्ट न हो, तो राजनीति पर असर नही पडेगा।

प्रश्न—फिर लोकनीतिवालो का भी एक दल बनेगा ?

विनोबा—सत्य का भी एक दल बनेगा, ऐसा आपका कहना है ?

प्रश्न—राजनीतिमुक्त और लोकनीतियुक्त किस तरह के आचरण द्वारा बन सकते हैं ?

विनोबा—इसका निर्णय विद्वान् खुद करे कि क्या कोई उनको डिक्टेट करे ? आपकी कान्फरेन्सेस होगी, सेमिनार होंगे, उनमे आप सर्वसम्मति से अपनी राय प्रकट करेंगे। विद्वानो की सर्वसम्मति से राय प्रकट होती है, तो वह भी असर डालती है। ये चीजे कैसी करना यह ब्यौरे का विषय है। प्रथम यह ध्यान मे आ जाय कि हमारी एक स्वतंत्र ताकत है, जो हमने खोयी है, उसको जागृत करना है। मैं शिक्षको को आदेश दूँगा नही, बल्कि वे देश को आदेश दे, ऐसा मैं मानूँगा।

प्रश्न—अशान्ति शमन की जिम्मेवारी उठाने का मतलब तो 'लॉ एण्ड आर्डर' की जिम्मेवारी उठाने जैसा है ?

विनोबा—लॉ एण्ड आर्डर की जिम्मेवारी आप पर नही है, आप पर नैतिक प्रभाव की जिम्मेवारी है। कम्युनिस्टो का मानना है 'स्टेट विल विदर अवे।' यानी हर कोई अपनी-अपनी जिम्मेवारी समझेंगे और ठीक व्यवहार करेंगे, तो स्टेट की आवश्यकता ही रहेगी नही। इसके लिए नैतिक प्रभाव की आवश्यकता होती है। आपको सोचना होगा कि नैतिक प्रभाव शिक्षको का नही पडेगा, तो किसका पडेगा ? अगर उनका नैतिक प्रभाव न पडता हो, तो शिक्षको को मानना होगा कि उनकी कमी है। कही दगा हुआ, और पुलिस आया, तो आपको नौकरी से सस्पेण्ड किया, ऐसा नही होगा। लेकिन आप मानेंगे कि वह आपकी गैरजिम्मेवारी है, नाकामयाबी है। अगर आपके विद्यार्थियो मे से बहुत ज्यादा प्रतिशत विद्यार्थी परीक्षा मे फेल हुए तो आप उसे अपनी जिम्मेवारी मानेंगे या नही ? यह भी वैसा ही है।

प्रश्न—मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी है, वह इसकी ओर कैसे झुकेगा ?

विनोबा—आपका यह सवाल जमाने के खिलाफ है। स्वार्थ छोडने को बाबा कभी नही कहता। सच्चा स्वार्थ जाने, इतना ही कहता है। स्वार्थ छोडना नही, बल्कि सोचे कि अपना स्वार्थ ठीक तरह मे कैसे सधेगा ? आपका पूछने का मतलब यह है कि बाबा 'सुपर ह्युमन क्वालिटीज' चाहता है। आप मानते हैं कि जो 'ह्युमन बीइंग' हैं, वे अपना-अपना स्वार्थ ही साधेगे। लेकिन मैं उल्टा मानता हूँ। मानव स्वभाव कैसा है, इसका निदर्शन उत्तम-से उत्तम कानून मे दीखता है।

मान लीजिए सत्य पर चलते हैं, तो कानून म बाधा नही है। सत्य पर मनुष्य चला तो उसका टलीग्राम नही जायगा। चोरी का टेलीग्राम जायगा और कानूनन सजा होगी। कतल हुई तो टेलीग्राम जायगा पेपरो को क्योकि वह मानव-स्वभाव के खिलाफ है। माता ने लडके पर प्रेम किया ऐसी खबर पेपरो मे नही जाती, क्योकि प्रेम करना मानव के लिए स्वाभाविक है। दूसरी बात, कोर्ट म जो आक्षेप लगाता है उसको साबित करना पडता है और सन्देह का लाभ मुजरिम को मिलता है। अपने सुख से सुखी होना पशु का स्वभाव है। दूसरो के सुख से सुखी होना और दूसरो के दु ख से दु खी होना यह मनुष्य स्वभाव है।

प्रश्न—राजनीति से मुक्त रहने का मतलब क्या वोट न देना है ? यह तो मनुष्य के फण्डामटल राइट्स (मूलभूत अधिकार) पर बधन है।

विनोबा—आपका हक है इसमे कोई शक नही। आपकी ड्यूटी क्या है यह आप तय कर रहे हैं। मुझे भी हक है चुनाव मे भाग लेने का। सविधान ने अधिकार दिया है। मैं उसका उपयोग करना ठीक नही मानता। उससे ऊपर उठना चाहता हूँ। हक है लेकिन यह छोटी चीज है। हक तो बेवकूफ को भी है और अकलवाले को भी है। अक्ल वाला तय कर रहा है कि मैं नही करूँगा। मैं और कहूँ ? आपको कोई मारने के लिए आया तो सेल्फ डिफेन्स के अधिकार से आप उसको मारेंगे तो आप गलत नही करेंगे लेकिन मैं कहूँगा कि कुलपति के नाते आपने ठीक नही किया। आपको तो येशू क्रिस्त को ध्यान मे रखना चाहिए। प्रेम से समझाना चाहिए और आवश्यकता हो तो मर मिटना चाहिए। सेल्फ डिफेन्स (आत्म रक्षा) के अधिकार का उपयोग करना आपका हक है लेकिन वह इस्तेमाल नही करना चाहिए। आपको इलक्शन मे खडे होकर मुख्यमत्री बनने का भी हक है। लेकिन सोचना यह है कि मुख्यमत्री बनने से आपकी हैसियत ऊँची होती होगी या आप हैं उसी हैसियत मे ऊँचे होते हैं।

प्रश्न—हमारा असर न पडा तो ?

विनोबा—असर न पडा, तो तपस्या बढाये। शब्द शक्ति का यह सवाल है। शब्द शक्ति कम पडने के तीन कारण हैं १ तपस्या की

कमी, २. प्रिसाईज शब्द बोलना आता नहीं और ३. समझाने का स्वर बना नहीं। अगर ये हो, तो हम कहेंगे 'ट्राई अगेन'। ईसामसीह से पूछा, 'एक बार क्षमा करने से सामनेवाला न माने, तो क्या करें'; तब उन्होंने कहा कि 'मैं फिर से क्षमा करूँगा। फिर नहीं माना, तो फिर से क्षमा करूँगा।' 'कितनी बार', तो कहा 'सेवंटी टाइम्स सेवन' और कहा कि क्षमा-शस्त्र ऐसा है कि आखिर उसमें आप कामयाब होंगे ही। यह श्रद्धा ईसामसीह ने दी। शंकराचार्य से पूछा—'आप समझायेंगे और कोई न समझा तो ?' तब उन्होंने कहा कि 'एक बार समझाने से न समझा तो दुबारा समझाऊँगा, दूसरी बार न समझा, तो तीसरी बार समझाऊँगा, चौथी बार समझाऊँगा—और समझाता ही रहूँगा। यही मेरा शस्त्र है। और किसी शस्त्र पर मेरी श्रद्धा नहीं। और, कोई न समझे, तो सोचूँगा कि समझाने की कुशलता बढ़ानी है।'

भागलपुर
६-३-'६८

मुझे विद्वानो के सामने अभी तक आने का मौका कम ही मिला था लेकिन पूसा रोड की कान्फरेन्स के सिलसिले मे वह मौका मिला। इससे मुझे बडी खुशी हुई है और अनुभव आया कि जितने लोगो से मुझे मिलने का मौका मिला, वे सारे विद्वान्, आचार्य, प्राचार्य आत्मदर्शन यानी अपने स्वरूप के दर्शन के लिए बहुत उत्सुक हैं। तुलसीदास ने जागृति का एक पद लिखा है—

"जाग जाग जीव जड"— अरे जडजीव तू जाग ले।
"कहे वेद बुध, तू तो बूझि मन माहिं रे।
दोष दुख सपने के, जागे ही पै जाहिं रे।"

वेद और बुध सब एक ही बात कहते हैं कि स्वप्न के जो दोष हैं और स्वप्न के जो दुःख हैं, उनके लिए सर्वोत्तम औषधि जागृति है। जाग जागकर गुजारना ही उसका सर्वोत्तम उपाय है। न जागकर स्वप्न के अन्दर जितने उपाय किये जायँगे, उतनी ही स्वप्नवृत्ति दीर्घ बनती जायँगी और वह हालत और लम्बी होती जायेगी। इस वास्ते स्वप्न के रोगों के लिए जागृति ही सर्वोत्तम उपाय है। मुझे यह कहने मे खुशी हो रही है कि इस किस्म की जागृति जो पहले नहीं थी, अब आ रही है।

मनुष्य के मन म संशय होते हैं, उसके लिए किसीको दोष देना ठीक नहीं। धीरे धीरे संशय खत्म होते हैं। तब कोई उपक्रम किया जाता है तो शुरू मे मन मे कुछ शंका उत्पन्न होती ही है। वह शंका धीरे धीरे, अनुभव से मिटती जाती है। प्रयत्न तो यह हो रहा है कि एक "अखिल बिहार आचार्यकुल" की स्थापना की जाय।

प्रश्न था कि प्राध्यापकों, आचार्यों और प्राचार्यों द्वारा यह जो बडा कार्य होने जा रहा है, उसका नाम क्या रखा जाय। मैं "अखिल विहार आचार्यकुल से बेहतर नाम की कल्पना नहीं कर सका। 'कुल' शब्द परिवार वाचक है और हम सभी आचार्यों का एक ही परिवार है। ज्ञान की उपासना करना, चित्त शुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के लिए वात्सल्य-भावना रखकर, उसके विकास के लिए, सतत प्रयत्न करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएं आती हैं, उन पर तटस्थ भाव से चिन्तन करके सर्वसम्मति का निर्णय समाज के सामने रखना और समाज को उस प्रकार से गाइडेन्स (मार्गदर्शन) देते रहना इत्यादि कार्य जो हम सब करने जा रहे हैं, वह एक परिवार की स्थापना का ही काम है। इस वास्ते मैंने इसका नाम "आचार्यकुल रखा। इसके लिए यह एक सुन्दर शब्द है। इसके अलावा अरबी के साथ भी इसका मेल मिलता है संस्कृत के साथ तो है ही। ऐसे कई शब्द हैं, जो संस्कृत होते हुए अरबी भी हैं और लैटिन भी हैं। "आचार्यकुल' यानी कुल के कुल आचार्यों का बोध होता है। आचार्यों के परिवार का मतलब होता है कि इस परिवार मे ऊंचा नीचा छोटा-बडा का सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए जितने आचार्य है सभी समान रूप से आदरणीय हैं। और सबका सम्मिलित प्रयत्न होगा, तभी यह काम चल सकेगा। भारत मे जो अनेक समस्याएं है जो संकट हैं, उनसे अलग रहकर कुछ नहीं किया जा सकता। महात्मा गौतम बुद्ध ने कहा—'पब्बतटठो व भुम्मटठे धीरो बाले अवेक्खति'। पर्वत शिखर पर चढा हुआ आदमी भूमि-स्थल पर क्या किया जा रहा है उसको देखता रहता है और वहाँ से गाइडेन्स देता रहता है। बिलकुल ठीक ऐसी ही भाषा मे वेद मे आया है—"गिरवनस्य मूर्द्धनि सदतेप।" पर्वतों के शिखर पर वे चढ गये। 'जराय दाशुषे वहन्ता।" 'पर्वतो के शिखर पर चढकर दुनिया में काम करनेवाले सेवक लोगों की इच्छा शक्ति बढाते रहते हैं।' दुनिया की इच्छा शक्ति, संकल्प शक्ति क्षीण हो गयी है, प्रेरणा क्षीण

हो गयी है। उसको वे पर्वत के ऊपर चढ़कर बढ़ाते रहते हैं। यानी आचरण की दृष्टि से स्वयं ऊपर बढ़ने की कोशिश करते ही हैं, परन्तु लोगों के लेवल (धरातल) में आकर भी सोचते हैं और लोगों की इच्छा-शक्ति बढाने की कोशिश करते हैं। ऐसी बात वेद मे आयी है और इसके ही लगभग प्रतिस्वरूप शब्दों मे गौतम बुद्ध ने भी कहा।

अभी जिस 'आचार्यकुल' की स्थापना होने जा रही है, वह अपना हक यानी अधिकार प्राप्त करने के लिए नही होने जा रही है। अपना अधिकार प्राप्त करने के लिए दूसरी संस्थाएं हैं। यह तो अपने कर्तव्य के प्रति जागृति और प्रयत्न करने के लिए है। इससे सारे शिक्षक समाज में अपनी वास्तविक हैसियत पायेंगे, जिसे आज वे खोये हुए हैं। महाभारत में वर्णन आया है कि एक दिन धर्मराज के मुख से द्रोणाचार्य के पुत्र की मृत्यु के विषय में संदिग्ध शब्द निकला। परिणाम यह हुआ कि उनका रथ जो भूमि से हमेशा ४ अंगुल ऊपर हवा में चलता था, वह धर्मरथ एकदम नीचे गिर पड़ा और जमीन पर आ गया। इसी तरह शिक्षकों का जो धर्मरथ है, वह भी भूमि के ऊपर होना चाहिए, लेकिन वह आज नीचे गिर गया है। आज शिक्षक सामान्य लेवल पर आ गये हैं। लेकिन जिस क्षण मनुष्य को यह भान होगा, उसी क्षण वह मुक्त हो जायगा। मुक्ति का बिलकुल सीधा-सादा और सरल उपाय है—'अपने को पहचानो'। जिसने अपने को पहचान लिया वह तत्क्षण एक नया मानव बन गया। पुराना मानव गिर गया और नया मानव बन गया। दृष्टि आ गयी, तो सृष्टि बदल गयी। जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही सृष्टि होती है। दृष्टि के अनुसार ही सृष्टि बनती है। इसलिए यह जो महान् प्रयत्न हो रहा है, इस सिलसिले मे मैं आशा करता हूं कि अनेक प्रकार की जो शंकाएं होंगी, काम करते-करते उनका हल निकलता जायगा। बीच-बीच में शंकाओं का उत्तर मिलता रहेगा। यदि हम दृढ निश्चय से लग जायंगे कि यह काम करना ही है, तो सब शंकाएं होते-होते

समाप्त हो जायंगी। गीता ने कहा कि जिनका निश्चय नहीं होता उनकी बुद्धि अनंत होती है। "बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।" मतलब यह कि उनकी बुद्धि की अनेक शाखाएँ निकलती रहती हैं। और जो किसी एक निश्चय पर एकाग्र होते हैं, वे कर्मयोगी होते हैं और अन्त मे सफल होते हैं। इसलिए मनुष्य को निश्चयात्मक बुद्धिवाला होना चाहिए। गीता मे निश्चयात्मक बुद्धि पर जोर दिया गया है।

मुझसे लोगो ने पूछा कि आजकल चारो ओर जो हाहाकार फैला हुआ है, ऐसी हालत में आप इस प्रकार का प्रयत्न कर रहे हैं, वह कहां तक सफल हो सकता है, उसका क्या परिणाम होगा? हर जगह अंधकार फैला हुआ है, उसका निराकरण कैसे होगा? मैंने कहा कि जरा देखना चाहिए कि अन्धेरा कहां है। एक आदमी रात को सूर्य पर से गिरा और पृथ्वी पर आया। उसके साथ दो तीन साथी थे। पृथ्वी पर उन्होने रात में देखा कि तमाम कचरा ही कचरा है। अन्धेरा वे जानते नहीं थे, क्योंकि वे सूर्य के रहनेवाले थे। उन्हे पता नही था कि अन्धेरा क्या चीज होती है। उन्होने देखा कि यहाँ खूब कचरा भरा हुआ है। वे लोग खोदने लगे। खोद खोदकर सारा कचरा टोकरी से भर कर फेंकने लगे। खोदने की आवाज जोर से होने लगी। उस आवाज से आसपास के लोग जाग गये। रात के समय ये कौन आये हैं और क्या कर रहे हैं, यह देखने के लिए लोग लालटेन लेकर आये। जब लालटेन की रोशनी में वे लोग आये तो एकदम से सारा कचरा गायब हो गया। अब सूर्यवाले लोग यह देखकर हैरत मे आ गये कि हम लोगों ने खोद खोदकर इतना कचरा निकाला था, वह एकदम से क्या हुआ। हुआ यह था कि लालटेन आ गयी, यानी प्रकाश आ गया। प्रकाश के सामने अन्धेरा तो गायब हो ही जाता है। प्रकाश के सामने अन्धेरा मुख नही दिखाता। अन्धेरा जितना पुराना होता है, उतना अधिक कमजोर होता है। घनघोर गुहा मे जो अन्धेरा भरा रहता है, वह हजारो वर्षों

से है लेकिन उसमे एक टार्च लेकर चले जाइए, अन्धेरा एकदम खत्म हो जायगा। इसलिए दूर-दूर तक हम लोगो को जो अन्धेरा दिखाई पड रहा है वह इसलिए है कि हमारे पास प्रकाश नही है। अगर हमारे पास प्रकाश होता तो अन्धेरा होता ही नही, अन्धेरा खत्म हो गया होता। प्रकाश के अलावा और किसी प्रकार से प्रहार करके अन्धेरे को खत्म नही किया जा सकता, बल्कि अन्धेरे को, जिसका कोई अस्तित्व ही नही है ऐसे प्रयत्नो से अस्तित्व प्राप्त होता है। अन्धेरे का सामना करने के लिए कुदाल लेकर खोदने लगेंगे तो उसका अर्थ यही होता है कि जिस अन्धेरे का कोई अस्तित्व ही नही है, उसको आप अस्तित्व दे रहे हैं। वास्तव मे अन्धेरा इसीलिए है कि प्रकाश है नही। जब प्रकाश आता है तो अन्धेरा खत्म हो जाता है। आज हमारी और आपकी जो अल्प शक्ति है, वह कौनसा शक्ति है? वह ज्योति है, वह प्रकाश है वह ज्ञान है, वह विचार है और चिंतन मनन है। यह जो शक्ति है उसके सामने कौनसी शक्ति है दुनिया में?

आप ध्यान मे रखे कि दुनिया एक होने जा रही है, मानव-मानव नजदीक आ रहे है। आकाश-अवकाश कम पड गये हैं। अब कुत्ते भी अन्तरिक्षयान मे बैठकर ८०० मील की ऊँचाई पर जा रहे हैं। अब तो मनुष्य की कोशिश है कि मगल पर चला जाय और चद्रमा पर घर बसाया जाय। अगर साइन्स इतना आगे बढ गया है यानी जब दिमाग इतना बडा हो गया है, तब दिल छोटा रहेगा तो मनुष्य के जीवन मे विसवाद बना रहेगा। आजकल जितनी समस्याएँ दुनिया मे भरी हुई हैं वे इसी विसवाद के कारण ही हैं। कही कहते हैं मजदूर मालिक का झगडा है, कही कहते है हिन्दू-मुसलमान का झगडा है कही कहते हैं हिन्दुस्तान पाकिस्तान का झगडा है और कही वियतनाम का झगडा है। ऐसा क्यो होता है? इसलिए कि बुद्धि बडी बन गयी है और दिल छोटा रह गया है। आजकल बडी बुद्धि और छोटे दिल की लडाई हो रही है। दिल तो छोटा है ही अगर दिमाग भी छोटा होता, तो विशेष झझट भी नही होती। शेर का दिल भी छोटा है उसका दिमाग भी बडा नही है। उसे आज खाने को मिल गया और पानी मिल गया तो वह सतुष्ट है। कल की बात कल देखी जायगी। भारत के शेरो को यह मालूम नही कि

योरप म कितने शेर हैं, सारी दुनिया म कितने शेर हैं, उनकी सख्या कितनी है। उनको इन सब चीजो से कोई मतलब नही। उनको इतना ही मालूम है कि हम ही हम हैं और आज खाकर सन्तुष्ट हैं, कल देखा जायगा। उसका दिल भी छोटा है और उसका दिमाग भी छोटा है।

लेकिन आज दुनिया की हालत क्या है ? मनुष्य का दिमाग इतना व्यापक बन गया कि न्यूटन जैसे महामुनि और व्यास जैसे भगवान् भी छोटे पड गये। उनको जितना ज्ञान था, उससे बहुत ज्यादा ज्ञान हमारे पास हो गया है। न्यूटन को गणित का जितना ज्ञान था, उससे अधिक ज्ञान आजकल के जमाने मे कालेज के मामूली लडके का होना है। न्यूटन को डिफ्रेन्शियल केलकुलस का कोई पता नही था, परन्तु न्यूटन अपने जमाने का महान् ज्ञानी था, महान् गणितज्ञ था। लेकिन उसका गणित-ज्ञान आजकल के जमाने के गणित-ज्ञान से छोटा पड गया है। पुराने जमाने म भूगोल का ज्ञान भी ऐसा ही था। अकबर बादशाह के दरबार म एक अग्रेज वकील आ पहुँचा। उसने कहा कि मैं विक्टोरिया रानी की तरफ से आया हूँ। तब अकबर को पता चला कि दुनिया म इग्लैंड नाम का कोई देश भी है और वहाँ कोई रानी है। लेकिन आजकल के तीन-चार साल की उम्र के लडको को भूगोल का ज्ञान अकबर बादशाह से अधिक होता है। आज हमारा दिमाग इतना विस्तृत हो गया है, यानी दिमाग इतना बडा बन गया है और दिल छोटा ही रह गया है। हम कौन हैं ? हम हरिजन हैं। हम कौन हैं ? हम भूमिहार हैं। हम कौन हैं ? हम सिक्ख हैं। हम कौन हैं ? हम ब्राह्मण हैं। हम इस पार्टी के हैं, वह उस पार्टी का है। प्रत्येक के साथ ग्रुप लग गया है, पार्टी लग गयी है। मैंने इस पर एक कविता लिखी है जिसका मतलब है "जाति, धर्म पथ, भाषा, पक्ष, प्रान्त, इन सबका अन्त होगा तभी सर्वोदय।" सर्वोदय तभी होगा जब इन सबका अन्त होगा। ये सारी छोटी छोटी चीजें लोगो के दिमाग म पडी हैं, मामूली मामूली प्रश्नो म हमारा चित्त उलझा रहता है, तो इसका मतलब यह है कि हम लोग इस जमाने के लायक नही हैं। जमाना बहुत आगे बढ गया है और हमारा दिल छोटा ही रह गया है।

हम या तो दिमाग छोटा करें, यानी साइन्स को पीछे हटायें।

लेकिन यह हो नही सकता। साइन्स प्राप्त ही न हो यह हो सकता है, लेकिन साइन्स प्राप्त होने के बाद भूल जाये, यह बात हो नही सकती। ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य भूल जायगा, यह हो नही सकता। इस वास्ते साइन्स को आप पीछे हटा नही सकते है क्योंकि यह सभव नही है। इसका मतलब यह हुआ कि दिमाग उत्तरोत्तर व्यापक और विशाल बनता जायगा। अब सिवा इसके और कोई चारा नही है कि हम अपने दिल को बडा बनाये। इस वास्ते हमको यह नही समझना चाहिए कि 'वह आदमी छोटा है या वह आदमी बडा है,' *'हम भारत के हैं और वह पाकिस्तान का है।'* अब ऐसी बात नही चलेगी। हमारे लिए 'जय जगत्' ठीक है। हमारे लिए सारा विश्व है। ऋग्वेद मे है 'विश्वमानुष"। हम विश्व के नागरिक हैं। हम विश्व-मानव हैं।

यह हैसियत अगर अध्यापकों की न हो, तो और किसकी होगी? यह हैसियत आम जनता की हो नही सकती। वे तो अपने छोटे-से परिवार या अपने छोटे से गाँव के बारे मे ही सोच सकते हैं। शिक्षकों का दिमाग ऊँचा होना चाहिए और उनका दिल व्यापक होना चाहिए। इस वास्ते हम आशा करते हैं कि आपकी जमात जब खडी हो जायगी और 'आचार्यकुल की स्थापना हो जायगी, तब एक नयी शक्ति बिहार मे उत्पन्न होगी और उसके परिणामस्वरूप बिहार का स्वरूप बदल जायगा। गौतम बुद्ध और महावीर साक्षी होगे। वे देखेंगे कि यहाँ क्या क्या हो रहा है। राजा जनक देख रहे हैं, उधर कृष्ण देख रहे हैं उधर अशोक सम्राट् देख रहे हैं कि हमारे बच्चे क्या करने जा रहे हैं और मैं महसूस करता हूँ कि इन सबो का आशीर्वाद हमे इस काम के लिए प्राप्त हो रहा है। इसमे मुझे कुछ भी सन्देह नही।

एक बात और कह देना चाहता हूँ। वह यह कि 'आचार्यकुल' की स्थापना के लिए आप लोगो को थोडा धन इकट्ठा करना होगा। आफिस बनाना होगा। कुछ कार्यकर्ता उसम रखने होगे। सारे बिहार मे लोगो से सम्पर्क रखने के लिए जगह जगह मीटिंग बुलानी होगी। यह सब करने के लिए थोडे पैसे की जरूरत होगी। इसलिए मैंने सुझाव रखा है कि सकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले जितने सदस्य इसके होगे, वे अपनी तनख्वाह का एक प्रतिशत चन्दा के रूप म देगे। मान

लीजिए कि किसीकी तनख्वाह ५०० रुपये है तो ५ रुपये वे चन्दा मे देंगे। यह एक छोटी-सी रकम है, कोई ज्यादा बडी रकम की बात नही है। इसमे ज्यादा की जरूरत ही नही है। मान लीजिए कि इसम अगर ४००० लोग शामिल हो गये, तो इस तरह से दस-बारह हजार रुपये प्रतिमास मिल जायेंगे। इतने रुपये से आप लोग अच्छी तरह से योजना खडी कर सकते हैं और 'आचार्यकुल की स्थापना हो सकती है। मैंने एक सुझाव आपको दे दिया है। आप लोग अगर चाहे तो इस सुझाव पर अमल कर सकते हैं।

प्रश्न—यह संकल्प-पत्र केवल कालेजो के प्राध्यापको और शिक्षको के लिए ही है या हाईस्कूल और प्राइमरी स्कूल के शिक्षको के लिए भी ?

विनोबा—इसका आरंभ पहले कालेजो के आचार्यों से किया जाय। उसके बाद नीचे, स्कूल तक पहुँचा जायगा। हमे प्राइमरी स्कूलो तक इसको पहुँचाना ही है, लेकिन अभी सारा गोल माल करके काम बनेगा नही। इस वास्ते प्रथम आचार्यों को ले और बाद मे उन लोगो को। लेकिन अगर लोग यह चाहते हो कि जिला स्तर पर इस काम को किया जाय, तो वे जिले के सारे स्कूलो के शिक्षको, हाईस्कूल के शिक्षको और प्राइमरी स्कूल के शिक्षको को एकसाथ ले सकते हैं। मान लीजिए की सारे बिहार के आर्गनाइजेशन (सगठन) की बात हो रही हो, तो प्रथम आचार्य, उसके बाद सामान्य अध्यापक, उसके बाद शिक्षक ले। परन्तु एक जिले का आर्गनाइजेशन करना हो तो सबको एकसाथ इसम ले सकते हैं।

प्रश्न (जिला शिक्षा पदाधिकारी, भागलपुर)—मैं भागलपुर जिले मे इसी प्रकार का सगठित काम करना चाहता हूँ। मैं सबको एक-साथ लेकर काम करना चाहूँगा।

विनोबा—खुशी की बात है कि आप भागलपुर मे इस प्रकार के सगठन की बात करते हैं। लेकिन एक बात का ध्यान रखना होगा कि इस काम म जो लोग दाखिल होना चाहे उनको इस काम की पूरी जानकारी दी जाय। बहुत-से लोग बिना जानकारी के किसी काम मे लग जाते हैं और बाद मे उसे छोड देते हैं। ऐसा नही होना चाहिए। उन्हे पहले पूरी जानकारी हो, इसमे उनकी पूरी दिलचस्पी हो, तभी वे इसमे आयें।

प्रश्न—आजकल शिक्षकों के भिन्न-भिन्न संगठन हैं। अपनी भिन्न-भिन्न माँगो की पूर्ति के लिए वे संगठन कायम करते हैं। जब सारे शिक्षक इस 'आचार्यकुल' के सदस्य बन जायँगे तो क्या उनकी पहले के संगठन की सदस्यता समाप्त हो जायगी ? शिक्षक लोग अपनी मांगों की पूर्ति के लिए हड़ताल इत्यादि किया करते हैं, क्या वे ऐसा कर सकेंगे ?

विनोबा—वे कत्ल भी कर सकते हैं, बशर्ते कि वह मुफीद हो। (हँसी)। देखना चाहिए कि कोई काम ऐसा नही किया जाय जो बेकार हो। कोई प्रयोजन हो तो वैसा काम सुव्यवस्थित ढंग से करना चाहिए। अगर किसीको ऐसा करने की इच्छा हो तो अपने आचार्यकुल मे प्रश्न पूछा जाय कि हम ऐसा करने जा रहे हैं, आपकी सलाह क्या है ? अगर आचार्यकुल अपनी सिफारिश करे, अनुमति दे कि आप ऐसा कर सकते है तो किया जाय, और अगर आचार्यकुल के लोगो की ऐसा करने की इच्छा न हो, तो आप नही करे।

प्रश्न—सर्व-सम्मति स या बहुमत से ?

विनोबा—अगर बहुमत का कानून लागू किया जाय तो बाबा स्वयं 'होपलेस मैन' सिद्ध होगा। (हँसी)

लेकिन बाबा आपके साथ बात करते है और आपको उनकी बात जँचती है और आप उसे स्वीकार करते हैं। इस वास्ते जहाँ बुद्धि का सवाल है, जहाँ चिन्तन का सवाल है, वहाँ मेजोरिटी का काम नही है। दस मनुष्यो से ज्यादा बेहतर सलाह एक मनुष्य दे सकता है। ऐसा हो सकता है कि एक मनुष्य ही सबसे उत्तम सलाह किसी विषय पर आपको दे। इस वास्ते सर्व-सम्मति का ही नियम रखा जाय। जितना सर्व-सम्मति का विचार होगा, वह अपना विचार समझा जायगा।

प्रश्न—आचार्यकुल में हर बार सर्व-सम्मति से निर्णय नही हो सकता है। कई बार ऐसे प्रश्न आयेंगे, जिनमे भिन्न भिन्न रायें होंगी और आपस मे मतभेद होगा। वैसी हालत म सर्व सम्मति का सवाल कैसे हो सकता है ?

विनोबा—देखिए, दुनिया मे एक बहुत बडा एसोसियेशन है, जिसका नाम है 'क्वेकर्स सोसाइटी'। क्वेकर्स सोसाइटी मे कम-से-कम दुनिया मे २० लाख कार्यकर्ता होंगे और दुनिया के बहुत-से देशो मे वे लोग

काम करते हैं। वे तरह-तरह के काम करते हैं—विद्यालय चलाते हैं, हास्पिटल भी चलाते हैं और दूसरी तरह के काम भी करते हैं। उनका नियम है चर्चा के लिए बैठना और निर्णय करना। चर्चा में जहाँ सर्व-सम्मति हुई, वहाँ वह पास हो गया और जहाँ बहुमत हुआ, वहाँ उसको पडा रहने देते हैं, और भगवान् से प्रार्थना करते हैं। बाद मे फिर उस पर चर्चा होती है और सर्व-सम्मति से वह पास होता है। इस प्रकार से सारी दुनिया म वे काम कर रहे हैं। मेरे खयाल से सर्व सम्मति का यह उसूल उतना अव्यावहारिक नही है जितना हमको लगता है।

प्रश्न—किसी विचार पर कोई कुछ न बोला और निष्पक्ष रहा तो क्या समझा जायगा ?

विनोबा—कोई विचार आया और किसीने उस पर विरोध नही किया, तो उसे सम्मति ही समझी जायगी। प्रत्यक्ष रूप से कोई विरोध करेगा तो विरोध माना जायगा।

प्रश्न—आज विश्वविद्यालयो का अस्तित्व सरकार के कानून पर निर्भर करता है। ऐसी हालत मे आचार्यकुल का कार्य किस प्रकार से चलेगा ? आज हम जिस प्रकार से आचार्यकुल का कार्य शुरू कर रहे हैं, उसका सम्बन्ध सरकार के कानून से किस तरह रहेगा ?

विनोबा—पेड को काटकर डंडा बनाना है तो पेड पर कुल्हाडी मारते हैं, तभी डंडा बनता है। कुल्हाडी से प्रहार करते हैं। कुल्हाडी को मदद देनेवाला जो डडा है वह उसी पेड का है। वैसे ही सरकार की मदद लेकर सरकार को काटना है। उसको किस प्रकार से किया जायगा, इसकी कुशलता आप लोगो मे होनी चाहिए। मैं आपको एक मिसाल देता हूँ कि जैसे जज हैं, उनको तनख्वाह सरकार से मिलती है, यानी प्रजा से, क्योकि प्रजा का पैसा सरकार द्वारा मिलता है। परन्तु सुप्रीम कोर्ट के जज सरकार के खिलाफ भी निर्णय दे सकते हैं और उन निर्णयो को सरकार को मानना पडता है। जिस तरह से यह चीज मानी हुई है, उसी तरह से आचार्य का स्तर भारत में इस वक्त माना हुआ नही है, लेकिन प्राचीन काल से भारत मे यह मान्यता है कि आचार्य सबके गुरु हैं। इस वास्ते राजा की सत्ता आचार्यों पर नही है। यह मानी हुई बात थी, परन्तु आज वह मानी हुई बात नही है। जहाँ-जहाँ सरकार से सम्बन्ध की बात होगी, वहाँ

सर्व-सम्मति से आपको निर्णय लेकर सरकार के सामने पेश करना होगा और उसका असर सरकार पर पडेगा।

प्रश्न—सकल्प पत्र मे एक धारा यह भी है कि राजनीतिक पक्षो का हम समर्थन नही करेंगे और सदस्य नही बनेंगे। हम अपने विश्व विद्यालयो म अर्थशास्त्र समाजशास्त्र म भिन्न भिन्न पक्षो के जो विचार हैं उसको समझाते हैं कि कौन अच्छा है या कौन बुरा है। इसके द्वारा समाज का निर्धारण होता है। तो अगर हम यह कहे कि इस प्रकार की बात न करें, तो समाज म अराजकता जैसी हो जायगी।

विनोबा—अभी मैंने आपके सामने रखा है कि आपको विश्वराज बनाना है। आपको जय जगत् बनाना है। इसलिए हमे छोटी राज नीति की बात नही सोचनी चाहिए। हमे बडी और व्यापक राजनीति की बात सोचनी चाहिए। राजनीति शास्त्र का अध्ययन पूरा-पूरा होना चाहिए। बाबा अपने को पालिटिक्स से मुक्त नही समझता। बाबा मानता है कि उत्तम-से-उत्तम पालिटिशियन बाबा है, क्योकि वह एक ऐसी दुनिया बना रहा है कि अगर वह बनेगी तो क्रान्ति हो जायगी। इस वास्ते हम पालिटिक्स से अलग नही हैं। लेकिन पार्टी पालिटिक्स और सत्ता की पालिटिक्स को हम अलग रखना चाहिए। ऐसी बात नही कि राजनीति के चिन्तन से हम मुक्त रहेगे। राजनीति तो हमारे चिन्तन का एक बहुत बडा भाग होगा, क्योकि जीवन के टुकडे नही हो सकते और जीवन मे राजनीति है ही।

भागलपुर
७-३ ६८

आचार्यकुल की स्थापना : ७ :

कहलगांव का यह स्थान प्राचीन है। कहोल नामक एक मुनि हो गये हैं। उपनिषद् मे याज्ञवल्क्य की सभा मे चर्चा के लिए जो विद्वान् आये थे, उनमे एक थे कहोल मुनि। बृहदारण्य उपनिषद् में ब्रह्मचर्चा में वे भाग लेते हैं।

यहाँ हम दो अपेक्षाएँ लेकर इस बार आये हैं। पहली बिहारदान की अपेक्षा और दूसरी यह कि शिक्षको की एक स्वतंत्र सत्ता खडी की जाय। सभी शिक्षको का एक संगठन हो। कल 'आचार्यकुल' का उच्चारण हुआ, आज कहलगांव मे उसकी स्थापना होती है।

इससे प्राथमिक शिक्षकों से लेकर विश्वविद्यालय तक के सभी शिक्षको का एक संगठन होगा। इसमे एक निर्णायक समिति होगी, जिसमे चुनाव एवं निर्णय सर्व-सम्मति से होगे। कालेज के शिक्षक अपने वेतन का १ प्रतिशत इस संगठन के लिए देंगे। नीचे के शिक्षको को यदि अधिक मालूम हो तो १०० रुपये मे ५० पैसे दें।

कहलगांव (भागलपुर)
८-३-'६८

अध्यापकों का संकल्प-पत्र

प्राक्कथन

आज जब कि हमारे देश का वातावरण भिन्न-भिन्न प्रकार की हिंसात्मक घटनाओं से विपाक्त और आतंकित हो रहा है तथा जिनका दमन करने के लिए पुलिस द्वारा विश्वविद्यालय के अहातों तक का अतिक्रमण होने लगा है, हम शिक्षकों का यह प्राथमिक कर्तव्य हो गया है कि हम स्वयं अपनी शक्ति से उन सारे उपद्रवों का शमन करें और अपने परिवेश मे शांति को स्थायी रूप मे सुप्रतिष्ठित करें।

इससे भी अधिक हम अपने विश्वविद्यालय के अहातों मे ही अपनी समग्र शक्ति को निःशेष नही समझेंगे, बल्कि सारे देश को ही विश्व-विद्यालय का प्रशस्त और विराट् प्रागण समझेंगे और उसमे किसी भी प्रकार का हिंसात्मक विस्फोट हो और पुलिस उसका दमन करने आये, इसका कभी अवसर ही न आने देंगे। हमारी शमन-शक्ति सर्वोपरि हो।

यों तो न्याय-विभाग की भांति शिक्षा-विभाग की स्वायत्तता भी सर्वमान्य है, किन्तु उसे सच्चे अर्थ मे उपलब्ध एवं कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा सत्ता के पीछे न भागकर स्वयं अपनी स्वतंत्र शक्ति का विकास करे।

उपरिनिर्दिष्ट कथन से मैं सहमत हूँ और संकल्प करता हूँ कि :

[क] मैं किसी भी राजनीतिक पक्ष का सदस्य न बनूँगा और न चुनावों मे किसी पक्ष-विशेष का प्रचार ही करूँगा।

[ख] सारे राज्य को शिक्षा का कार्यक्षेत्र मानकर विचार द्वारा अशान्ति के शमन का प्रयास करूँगा, जिससे अशान्ति के दमन के लिए दंड-शक्ति का उपयोग न करना पड़े।

पूरा नाम.......................... हस्ताक्षर..................

घर का पता........................ तिथि..................

अध्यापकों के लिए संगठन का एक सुझाव

श्री विनोबाजी ने १६-२-'६८ को आर० डी० एड डी० जे० कालेज, मुगेर के प्राध्यापकों के बीच प्रवचन करते हुए अध्यापकों के लिए एक सगठन की नीव सुझायी, जो अध्यापकों की नैतिक प्रतिष्ठा का तथा उनकी सामाजिक हैसियत का उन्नयन करेगी। उन्हे इसका आतरिक दु ख है कि न केवल सरकार या समाज की दृष्टि मे, बल्कि अध्यापक स्वयं अपनी दृष्टि मे भी आखिरी हद तक गिर चुके हैं। इसलिए उन्हें तत्काल जगना चाहिए सक्रिय होना चाहिए, कृत-सकल्प होना चाहिए, जिससे उनके आत्मबोध की प्रकाश किरणो का प्रसारण हो सके और वे खुद आत्मशोध कर सके। सगठन की रूपरेखा निम्न प्रकार है।

उद्देश्य

१ अध्ययन की प्रवृत्ति जगाना।

२ अशाति-शमन का दायित्व लेना।

३ समाज और देश की समस्याओं पर चिन्तन कर सर्व-सम्मत राय प्रकट करना।

४ छात्रो के साथ चेतन सपर्क का ध्यान रखते हुए आत्मीयता का सम्बन्ध बनाना तथा उनके समुचित विकास की चिन्ता करना।

५ शिक्षण-सस्थाओ की स्वायत्तता का सरक्षण और विकास करना।

६ राजनीति के तमस् से परे रहने का अभ्यास करना।

७ शिक्षण-पद्धति के सर्वतोमुखी विकास का ध्यान रखते हुए छात्रो के लिए तदनुरूप पाठ्यक्रम प्रस्तुत करना, जिससे समाज को सुपठित शील और विनययुक्त सुभद्र नागरिक मिल सके और उसका कल्याण हो सके।

८ आर्थिक कठिनाइयो के बीच नैतिक ह्रास से अपने-आपको बचाना।

९ जिले के ग्रामो एव नगरो का सर्वेक्षण करना।

ऐसे ही या इनके सदृश उद्देश्यों की पूर्ति से ही लोक-शिक्षा का समाज में प्रवेश हो सकेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निम्नलिखित सुझाव विचारणीय हैं :

१. बिहार का प्रत्येक जिला इस संगठन की एक इकाई होगा।

२. प्रत्येक इकाई का, पूरा समय देनेवाला एक संयोजक कोई प्राध्यापक ही होगा, जिसके साथ कम-से-कम ११ प्राध्यापकों की एक टोली होगी, जो समय-समय पर अवकाशों में क्षेत्र के शिक्षकों से सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

३. इस इकाई के प्रत्येक सदस्य को अपने निर्धारित वेतन का एक प्रतिशत उसके संचालन के लिए अनिवार्य दान देना होगा, जिससे पूरा समय देनेवाले का वेतन दिया जा सके तथा अन्य दूसरी व्यवस्थाओं पर व्यय हो सके।

४. सभी इकाइयों का केन्द्रीय कार्यालय राज्य की राजधानी में रहेगा, जहाँ की व्यवस्था के लिए एक प्रभारी होगा, तथा दो-तीन सहयोगी। इस कार्यालय के खर्च के लिए प्रत्येक मण्डल को एक निर्धारित अंश देना होगा।

●

आचार्यकुल : परम्परा, विकास, इतिहास

जिस भारतीय सस्कृति में गुरु को साक्षात् ब्रह्म मान लिया गया था, उस सस्कृति में गुरु की सत्ता सर्वोपरि हो यह स्वाभाविक ही है। भारत के सामाजिक ढांचे में गुरु और आचार्य का स्थान सबसे ऊपर था—शासक और सैनिक से भी।

जन-कोलाहल से दूर किसी नदी के किनारे वन में, आश्रम बनाकर आचार्य रहता था और समाज की सारी राजनीति से अलग वह लोक-कल्याण के लिए, मानव की मुक्ति के लिए, सतत चिन्तन करता था। अपने शिष्यो को वह उस विद्या का रहस्य समझाता था, जिसके जान लेने पर भय से मुक्ति मिल सके। उसके आश्रम में 'परा और अपरा', दोनो ही प्रकार की विद्याओं का अध्ययन अध्यापन होता था। यज्ञ के पवित्र धूम्र से पावन इन आश्रमों के कुलपतियो, गुरुओ और आचार्यों के चरणो मे बैठकर जिन 'उपनिषदों' का ज्ञान शिष्यो ने प्राप्त किया वह मानव की इतनी प्रगति के बाद भी दर्शन और अध्यात्म विद्या के सबसे बडे ग्रन्थ हैं।

और इन आश्रमो में ज्ञान और कर्म का बडा सुन्दर मणिकाचन सयोग था। आश्रमो का सारा जीवन स्वावलम्बन का जीवन था और तभी विद्यार्थी, निर्भय, मुक्त, स्वच्छन्द होकर आचार्य के चरणो में बैठकर परा और अपरा विद्याएं सीखकर अपना लोक और परलोक दोनो सुधार सके, स्वर्ग और मोक्ष सिद्ध कर सके।

उपनयन सस्कार से इन आश्रमों का जीवन प्रारभ होता था और व्रतोद्यापन सस्कार से समाप्त होता था। सारा-का सारा जीवन तप का जीवन था। और तभी दीक्षान्त भाषण के समय आचार्य विश्वास के साथ शिष्य से कहता था—'सत्य वद, धर्म चर स्वाध्यायान्माप्रमद'। सत्य, धर्म और स्वाध्याय—अध्ययन-अध्यापन का आचरण करता हुआ तू सुन्दर गृहस्थ बन। मुझमें जो सद्चारित्र्य हैं उन्हें तू ग्रहण कर।

बौद्ध युग के विश्वविद्यालय

यह बौद्ध युग के आश्रमो के पहले की बात है। बौद्ध युग मे इन आश्रमो ने वैभवशाली विश्वविद्यालयो का रूप ले लिया—नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालयो का। इन्हीमे से एक विश्वविद्यालय मे प्रसिद्ध चीनी भिक्षु ह्वेनसाग पढा था और पढने के बाद घोडो पर ग्रन्थ लादकर चीन ले गया था।

आश्रमो की भांति इन विश्वविद्यालयो पर भी शासन की कोई सत्ता नही थी। शासन-सत्ता से ये मुक्त थे। निश्चिन्त होकर अध्ययन-अध्यापन का कार्य चले इसके लिए राजा की ओर से भूमि मिलती थी, गाँव के गाँव मिलते थे। परन्तु भूमि और गाँव देने के बाद राजा नही देखता था कि इन विद्यालयो में क्या पढाया जाता है और कैसे पढाया जाता है। क्या पढाया जाय, कैसे पढाया जाय इसका निश्चय आचार्य करता था।

सक्षेप मे, प्राचीन आश्रमो की स्वायत्तता बौद्ध युग मे भी सुरक्षित रही। परन्तु ऐसा लगता है कि इस युग मे विश्वविद्यालयो द्वारा भिक्षाटन की प्रवृत्ति, कृषि गोपालन की प्रवृत्ति छोड दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि विद्या के आलय जन-जीवन से अलग हट गये और स्वावलम्बन की प्रवृत्ति के छूट जाने से व्यक्तित्व का एकागी विकास होने लगा जो समाज और सस्कृति के लिए अहितकर सिद्ध हुआ। फिर भी ये विद्यालय ज्ञान के बहुत बडे केन्द्र थे और यहां से ज्ञान विज्ञान का आलोक सारे विश्व मे फैला। प्राचीन विश्व को सभ्य और सुसस्कृत बनाने मे इन विश्वविद्यालयो के आचार्यों और भिक्षुओ का बडा हाथ रहा है।

राजपूत और मुसलिम काल

मुसलमानों के आक्रमण के बाद ज्ञान-विज्ञान के ये आलय बन्द हो गये। युद्ध और हिंसा की एक भीषण अग्नि प्रज्वलित हुई, जिसमे ये विद्यालय सदा के लिए स्वाहा हो गये। नालन्दा, विक्रमशिला, तक्षशिला, अवन्तीपुर के विश्वविद्यालय खडहर हो गये। उनके पुस्तकालयो की पाण्डुलिपियां अनास्था की अग्नि मे भस्म हो गयी और इस विषम

परिस्थिति में अध्ययन अध्यापन का कार्य व्यक्तिगत पडितो के उद्यानो मे सिमट गया। काशी, नवद्वीप, काजीवरम् के इन पडितों और उनके व्यक्तिगत उद्यानो और मठों आदि की चर्चा पश्चिमी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से की है। इन उद्यानो और इनसे सलग्न मन्दिरो, मठो मे य आचार्य निष्ठापूर्वक नि शुल्क विद्यार्थियो को पढ़ते थे। इसी प्रकार के काशी के एक पडित के पास शाहजहाँ के पुत्र दारा शिकोह ने सस्कृत पढ़ी थी। इस प्रकार की पाठशालाएं इन विद्वानो की छत्रछाया में बराबर चलती रही। प्राच्य विद्या इन्हीके पास सुरक्षित रही।

ब्रिटिश युग

कालक्रम से इस देश मे अग्रेजो का साम्राज्य स्थापित हुआ और उन्होंने इस देश में पाश्चात्य ढग की शिक्षा प्रारभ की। लार्ड मैकाले ने कहा, 'पाश्चात्य विद्या के किसी भी पुस्तकालय की एक आलमारी समस्त प्राच्य विद्या से अधिक मूल्यवान है। उसकी नीति का अनुसरण हुआ। अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम बनी और धीरे धीरे देश मे पश्चिमी ढंग के विश्वविद्यालय खुले, जिनका वातावरण पूर्णत विदेशी है। 'राधाकृष्णन् यूनिवर्सिटी कमीशन के एक विदेशी सदस्य आर्थर मार्गन ने इन विश्वविद्यालयो को देखकर कहा, "इन विश्वविद्यालयो मे ही घूमकर अगर मैं चला जाता तो मुझे ऐसा ही भान होता कि भारत मे एक भी गाँव नही हैं।" इस विदेशी वातावरण के अलावा इन विश्वविद्यालयों मे स्वायत्तता भी नाम के लिए ही है, यद्यपि उसका दावा किया जाता है। और धीरे धीरे इनमें शासन की सत्ता बढती जा रही है। ये विश्वविद्यालय राजनीति के केन्द्र हो रहे हैं। अध्यापक अपना गौरव खो चुके हैं। ऐसी दशा मे आचार्य विनोबा ने एक बार फिर आचार्यकुल के गोरवमय जीवन की पुनरावृत्ति का प्रयास किया है। उनका यह प्रयास अगर सफल हुआ तो आचार्यों का गौरव बढ़ेगा और देश का कल्याण होगा इसम सन्देह नही। भारत और उसकी सस्कृति आचार्यों की बनायी हुई है। उन्हीसे उसकी रक्षा होगी।

—वशीधर श्रीवास्तव

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : १६
अंक : १०-११
इस अक का मूल्य १-००

अनुक्रम

मई-जून '६८

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये हैं और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक [illegible] है।

नयी तालीम : मई-जून '६८
पहले से डाक व्यय दिये बिना भजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

मैं 'आचार्यकुल' से बेहतर नाम की कल्पना नहीं कर सका। 'कुल' शब्द परिवारवाचक है और हम सभी आचार्यों का एक ही परिवार है। ज्ञान की उपासना करना, चित्तशुद्धि के लिए प्रयत्न करना, विद्यार्थियों के प्रति वात्सल्य भाव रखकर उनके विकास के लिए सतत प्रयत्न करते रहना, सारे समाज के सामने जो समस्याएँ आती हैं, उनपर तटस्थ भाव से चिन्तन करके सर्वसम्मति का निर्णय समाज के सामने रखना और समाज को उसी प्रकार के 'गाईडेन्स' (मार्ग-दर्शन) देते रहना—इत्यादि कार्य जो हम सब करने जा रहे हैं, वह एक परिवार की स्थापना का ही काम है।

—विनोबा

जुलाई १९६८
वर्ष : १६ • अंक : १२
नयी तालीम
• शिक्षक : नये समाज का नायक
• प्राथमिक शिक्षा मे विकेन्द्रीकरण
• कुमारमन्दिर के दो घटे
• सृजनशील शिक्षा

सत्रहवाँ सर्वोदय-सम्मेलन

सत्रहवाँ सर्वोदय सम्मेलन ८ जून से १० जून, १९६८ तक आबू रोड में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता की श्री शंकरराव देव ने, जिनका परिचय देते हुए आचार्य दादा धर्माधिकारी ने कहा : "श्री शंकरराव देव ने अपने सार्वजनिक जीवन में अखण्ड पुरुषार्थ किया है, प्रतिकूलताओं ने और बाधाओं ने उनके व्यक्तित्व को क्षीण करने के बजाय हमेशा सान पर चढाया है।"

सम्मेलन में भारत के कोने-कोने से लगभग एक हजार सर्वोदयी कार्यकर्ता और लगभग चार हजार ऐसे लोग एकत्र थे, जिन्हें सर्वोदय-कार्यक्रमों पर श्रद्धा थी।

वर्ष : १६
अंक : १२

स्वागताध्यक्ष श्री गोकुलभाई भट्ट ने इस बार के सर्वोदय-सम्मेलन के जनाधारित स्वरूप का जिक्र करते हुए स्वागत-भाषण दिया। श्री शंकररावजी ने अपनी ओजस्वी वाणी में प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए गांधीजी की जीवन-निष्ठा और उनकी सर्वोदय-भावना का जोरदार शब्दों में जिक्र किया और कहा कि आज नया मानस बनाने की जरूरत है। बिना नये मानस के नये युग की चुनौती स्वीकार नहीं की जा सकती, जो सर्वोदय का लक्ष्य है।

आज ग्रामदान-आन्दोलन सर्वोदय-आन्दोलन का प्रतीक बन गया है। अतः जाहिर था कि वही इस सम्मेलन की चर्चा का सबसे प्रमुख केन्द्र रहता। और, सम्मेलन की सारी चर्चा ग्रामदान-आन्दोलन की उपलब्धियों और शक्यताओं को लेकर ही हुई। तमिलनाड के सुप्रसिद्ध सर्वोदय कार्यकर्ता श्री जगन्नाथन् ने पूरे आन्दोलन को जन-आन्दोलन बनाने पर जोर देते हुए कहा कि अगर हम समय रहते नही चेते तो नक्सालवाड़ी की पुनरावृत्ति अनेक स्थानो पर हो सकती है। ज्वालामुखी धधक रहा है। नक्सालवाड़ी जैसी घटनाएं उसका पूर्वाभास मात्र हैं। इसका विकल्प ग्रामदान ही है, यह जनता को बताना है। श्री चारुचन्द्र भण्डारी ने, जिनके प्रयास से नक्सालवाड़ी में ग्रामदान हुए हैं, वहां का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हुए कहा कि जिस जगह ६० प्रतिशत से अधिक आदमी जन्म-जन्म से बंटाईदार हैं वहां नक्सालवाड़ी नही होगी तो क्या होगा? पहले नही हुई यही अचरज है। हिंसा के इस मार्ग को रोकने का ग्रामदान के अलावा दूसरा मार्ग नही है।

आचार्य राममूर्ति ने कहा कि अभी तक पांच जिलादान हुए हैं, पर ये इस नयी अहिंसक क्रान्ति के नये आयाम हैं। साम्यवाद ने समता लाने के लिए वर्ग-संघर्ष का मार्ग अपनाया। बहुतों का हित उसका ध्येय हुआ और वर्ग-संघर्षजनित हिंसा उसका मार्ग। परन्तु सर्वोदय विचारधारा मे विश्वास रखनेवालों का कहना है कि सर्व का हित सर्व के द्वारा और सर्व के लिए होना चाहिए। मालिक और मजदूर के हितों मे विरोध नही है। जमीदार अगर अपनी जमीन का मालिक है, पूंजीपति अपनी पूंजी का मालिक है तो मजदूर भी अपने श्रम का मालिक है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर समस्या का निराकरण होगा। सब उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया मे साझेदार की हैसियत से समता के एक धरातल पर मिल सकते हैं और उन्हें मिलना चाहिए। आज तो मजदूर अगर 'कासस' होता है, तो मालिक उलटा 'ऐक्सस' होने लगता है। यह स्थिति खतम होनी चाहिए।

अखिल भारत शान्ति सेना मण्डल के मत्री श्री नारायण देसाई ने देश में बढ़ती हुई हिंसा का हवाला देते हुए शान्तिमय क्रान्ति के ऊपर बल दिया और कहा कि जबतक हमारे आन्दोलन मे 'ऐक्शन' नही होगा, तब तक आकर्षण नही होगा। इसके लिए तरुण सेना और आचार्यकुल के कार्यक्रम पर जोर देना चाहिए।

श्री ढेबर भाई ने देश की आज की स्थिति की चर्चा करते हुए कहा कि गाधीजी अगर जिंदा होते तो क्या वे चैन से बैठते या बैठने देते। आज जिस तरह से सरकारें चल रही हैं, क्या उस तरह की सरकारें गाधीजी के होते हुए इस देश में टिक सकती थी? आज हिन्दुस्तान के रग-रग में हिंसा भरी हुई है। कुरुक्षेत्र जैसा हाल है कि अर्जुन एक ओर विश्व-रूप देख रहा है और दूसरी ओर कॉप रहा है। मैं नही जानता, कहाँ है हिंदुस्तान? आश्चर्य की बात तो यह है कि हम शान्ति के साथ बहुत कुछ बरदाश्त करते जा रहे हैं। परन्तु उसका श्रेय भारतीय जनता को है, उसकी त्याग वृत्ति को है, उसकी सहिष्णुता को है और नहीं कहा जा सकता कि यह जनता कबतक बर्दाश्त करती रहेगी।

श्री जयप्रकाश नारायण ने अपने भाषण मे कहा कि ग्रामदान-आन्दोलन एक प्रकार से नयी समाज रचना का श्रीगणेश है। इसके बिना ग्रामराज या ग्राम-स्वराज्य की स्थापना नही हो सकती है। लोग पूछते हैं कि पाँच पांच जिलादान हुए, साठ हजार ग्रामदान भी हुए, इससे ग्रामो का चित्र क्या बदला और कितना बदला? उस बदले हुए चित्र का नमूना कहाँ है? इस प्रकार की मनोवृत्ति को मैं 'नमूना-वाद' कहता हू लेकिन याद रखिये, नमूना बना देने से वह चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, समाज मे परिवर्तन नही होता, सामाजिक क्रान्ति नही होती। गुजरात में तथा अन्य भी कई जगहों में गाधीजी के रचनात्मक कार्यों के बहुत अच्छे नमूने हैं। उनको सराहना भी हुई है लेकिन इस २० वर्ष के स्वराज्य के बाद भी क्या उन्होंने समाज को दिशा बदली है? इसी प्रकार विदेशों मे भी कुछ जगहों पर कुछ विशेष म दर्शों में विश्वास रखनेवालों ने बहुत अच्छे नमूने के समाज

बना रखे हैं; परन्तु उसका कोई प्रभाव समाज पर नहीं, जो अपनी गति से चल रहा है। कुछ आलोचकों का कहना है कि ग्रामदान हस्ताक्षर अभियान मात्र है। बस तूफान ही तूफान है तो मैं स्वीकार करता हू, पर आपको यह मानना होगा कि तूफान में हवा के साथ-साथ मिट्टी भी रहती है। बाढ में कूडा भी रहता है, लेकिन उस सबका भी एक महत्व है। नेशन स्टेट से आगे बढ करके हमें पूरी दुनिया के सन्दर्भ में सोचना होगा। हमारे दिल-दिमाग में 'सावरेंटी' का भूत भरा हुआ है। अगर यह भूत नही निकला तो जिस तरह से राज्यो का विघटन हो रहा है, वह सारी दुनिया पर अपना असर लायगा। १६ वी सदी के राष्ट्रवाद का भयकर परिणाम हम अपनी आँखों देख रहे हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने पावर, प्रापर्टी और परसनालिटी का जिक्र करते हुए स्वत्व से विसर्जन की बात कही कि इस स्वत्व का सर्वत्व म लीन होना ही सर्वोदय है। गुजरात के राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायण ने कहा कि ग्रामदान की जड तो अध्यात्म में है। हमें रचनात्मक कार्यक्रमों को उत्साह के साथ चलाना चाहिए, यह वैज्ञानिक और व्यावहारिक के साथ-साथ आध्यात्मिक कार्यक्रम है।

श्री दादा धर्माधिकारी ने मालिक और मजदूर के सम्बन्धों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि मजदूर मेहनत का मालिक है, यह चाहे भले ही सच हो, पर उस मेहनत के मालिक को अपनी मजदूरी बेचनी पडती है। आज तो कुदाली, कुल्हाडी, चरखा और करधा के रूप म भगवान का नया युगावतार हुआ है।

आगामी सर्वोदय सम्मेलन नवम्बर १६६६ में विहार के बौद्धतीर्थ राजगीर में होने की घोषणा की गयी।

—वशीधर श्रीवास्तव

सृजनशील शिक्षा

रोहित मेहता

जितने भी प्रकार के अनुशासन हैं वे सब मनुष्य के जीवन में किसी-न-किसी प्रकार का बन्धन निर्माण करनेवाले ही हैं क्योंकि अनुशासन का अर्थ ही यह है कि वह जो आदर्श प्रस्तुत करेगा उसका अनुकरण करना, तद्वत् बनने का प्रयत्न करना। इसीलिए अनुशासनमात्र के मूल में प्रामाण्य (अथारिटी) होता है —या तो किसी व्यक्ति का या कभी-कभी आदर्श-विशेष का जहाँ प्रामाण्य हमारे सामने आदर्श प्रस्तुत करता है, वहाँ तदनुकूल वातावरण बनाने का काम अनुशासन करता है। इसलिए अनुशासन अनुकरणात्मक क्रिया के सिवाय कुछ नहीं है। अनुशासन से क्षमता बढ़ सकती है, लेकिन वह क्षमता कोरी यान्त्रिक क्षमता होगी। उसमें सृजनशीलता का अभाव होगा। और जिस जीवन में सृजनशीलता मारी गयी हो, उसे सुख का अनुभव कभी नहीं हो सकता। इसलिए शिक्षा को यदि सृजनशील बनाना है तो उसे उन सब बातों से दूर रखना होगा, जो जाने अनजाने, अनुकरण करानेवाली होंगी, या अनुकरण की वृत्ति पैदा करनेवाली होंगी। श्री कृष्णमूर्ति कहते हैं—

"हम जब कुछ बनने के खयाल से किसीका अनुकरण करते हैं तो उसमें से भय का निर्माण होता है, और भय से सृजनशील विचारशक्ति मर जाती है। भय से बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, हृदय जड़ हो जाता है, पूर्ण जीवन के महत्त्व को ग्रहण करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। अपने दुखों के प्रति तथा दूसरों के हर्ष विषादों के प्रति, पशु-पक्षियों की चहचहाहट के प्रति हम एकदम संवेदनहीन हो जाते हैं।"

प्रामाण्य बनाम प्रेमसम्बन्ध

यहाँ ध्यान में रखने की बात यह है कि प्रामाण्य को मानने में, उसका आग्रह करने में, और किसी प्रकार का अनुशासन बनाने में, उसका पालन करने में निश्चित ही भयवृत्ति काम करती है। भय के कारण ही हम प्रामाण्य को जन्म देते हैं और उससे चिपके रहते हैं और उसी प्रामाण्य के द्वारा अभिव्यक्ति को मिट्टी में मिला देते हैं। प्रामाण्य के ही कारण हममें विचार और आचार-विशेष का अनुकरण करने की वृत्ति पैदा होती है। लेकिन गुरु-शिष्य के बीच वास्तविक प्रेमसम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब उन दोनों के मन में किसी भी प्रकार का भय शेष न हो। जहाँ प्रेम सम्बन्ध होगा, वहाँ न अव्यवस्था रहेगी, न अनुशासनहीनता रहेगी और न ही लापरवाही रहेगी। *उस अवस्था में ज्ञानार्जन करना और उसकी उत्तम तकनीक हस्तगत करना*

वार्ये हाथ का खेल हो जायगा, क्योकि प्रेममय वातावरण मे जीवन की राई-रत्ती को एक नया ही महत्व प्राप्त हो जायगा, उसकी अनुपम माधुरी चमकेगी।

प्रश्न यह है कि शिक्षा-पद्धति म से भय को कैसे दूर किया जाय ? यह सत्य है कि भय का निर्माण करनेवाले स्वय शिक्षक और माता पिता ही हैं। उनके भय से ही बालक प्रामाण्यपूजक बनते है और प्रामाण्य जो आदर्श प्रस्तुत करेगा उसका अनुकरण करने मे अपनी सार्थकता मानते हैं। इसलिए भय को दूर करने का वास्तविक उपकरण भी शिक्षक और माता-पिता ही हैं। इसका अर्थ यह है कि उनको शिक्षा मे सुधार करने से पहले अपने विचार और आचार के हेतुओ का परीक्षण करना चाहिए। यानी माता पिता तथा शिक्षको को बालको मे प्रज्ञा जागृत करने से पहले खुद अपने अन्दर उसे जागृत करना चाहिए। श्री कृष्णमूर्ति कहते हैं—

"शिक्षक को पहले स्वय अपना परीक्षण करना चाहिए। अपने विचारो, भावनाओ और आचारों के प्रति सतत जागरूक और अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। अपनी प्रवृत्तियो और अपने प्रतिसादो (रेस्पान्सेस) के प्रति सजग रहना चाहिए, क्योकि प्रज्ञा इसी सावधानता से उत्पन्न होती है और उसीके साथ-साथ दूसरों के प्रति उस व्यक्ति के सम्बन्धो मे आमूल परिवर्तन हो जाता है।"

इस प्रकार शिक्षा समस्या का मूल तत्त्व है—शिक्षको मे परिवर्तन। कुशल और प्राज्ञ शिक्षक वह है जो बालक के अन्दर पनपनेवाले उन सभी आश्वासन-केन्द्रों को मिटा दे जो भय के कारण उत्पन्न होते हैं और जिनके कारण बालक प्रामाण्य का अनुगामी बन जाता है।

शैक्षिक परिवर्तन का माध्यम : शिक्षक

श्री कृष्णमूर्ति शिक्षा में परिवर्तन की अपेक्षा रखते है, उसका माध्यम बदला हुआ शिक्षक ही है। आज तक मनुष्य ने पद्धतियो और प्रक्रियाओ मे परिवर्तन करके, पाठ्यपुस्तकें बदलकर, विषयो मे परिवर्तन करके, धार्मिक शिक्षा द्वारा विचार और आचारो मे एकरूपता (रेजिमेण्टेशन) लाकर और इसी प्रकार के नाना उपायों से शिक्षा समस्या का हल खोजने का प्रयत्न किया, परन्तु कभी इस शिक्षक के सुधार के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नही दिया। यह सही है कि हमने शिक्षा में शिक्षक को केन्द्र माना और इसके लिए उससे ऊँचे आदर्शों की अपेक्षा रखी। लेकिन श्री कृष्णमूर्ति जिस बदले हुए शिक्षक की बात करते हैं, उसका अर्थ आदर्शपूजक शिक्षक हरगिज नही है। बदले हुए शिक्षक के सम्बन्ध में कृष्णमूर्ति कहते हैं—

"जो शिक्षक जाने अनजाने छात्रों को दूसरों पर अवलम्बित रहना सिखाता है वह छात्रों का भला नहीं करता। हो सकता है कि वह छात्रों पर अपने ज्ञान का भार लाद दे, अपने गरिमामय व्यक्तित्व से उन पर खूब प्रभाव जमाये, लेकिन वह सही शिक्षक नहीं है, क्योंकि उसके पास जो ज्ञान और अनुभव का भण्डार है वही उसका बन्धन है, उसका सहारा है और वही उसकी कैद है। और जब तक वह उस कैद से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक छात्रों को वह 'पूर्ण मानव' बनाने में सर्वथा असमर्थ ही रहेगा।"

बदले हुए शिक्षक का मन असाधारण मृदुता से सम्पन्न होगा ही। वह मन जो काम करेगा वह पूर्वसंचित अनुभवों और ज्ञानों के बल पर नहीं, तत्काल वस्तु स्थिति के अवलोकन मात्र में जो बोध होगा उसीके अनुसार करेगा। श्री कृष्णमूर्ति बड़े सुन्दर ढंग से कहते हैं कि "सही शिक्षक के लिए शिक्षा तकनीक का विषय नहीं है, वह उसकी जीवन पद्धति है।" यह नये ढंग की शिक्षा जीवन का ही एक अंग है। शिक्षक उसे समय समय पर सहज ही खोज लेता है। कृष्णमूर्ति जिस जीवन पद्धति का उल्लेख कर रहे हैं वह विचारों और भावनाओं की संवेदनशीलता से समृद्ध और हर प्रकार के बन्धनों से मुक्त मन का जीवन है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं—"सही शिक्षक बनने के लिए शिक्षक को पुस्तकों और लेबोरेटरियों से सर्वथा मुक्त होना चाहिए। उसको इस बात का सतत ध्यान रखना चाहिए कि वह छात्रों का कहीं स्वयं आदर्श न बन बैठे, छात्र उसे अपना प्रमाण और नमूना न मानने लगें। शिक्षक जब अपनी कामनाओं की पूर्ति छात्रों में करने की तमन्ना रखने लगता है, छात्रों की विजय को अपनी विजय मानता है, तब उसके द्वारा दी जानेवाली शिक्षा उसकी अपनी परम्परा को बढ़ाने और बनाये रखने के प्रयत्न के सिवाय कुछ नहीं है। इसके कारण छात्रों का आत्मज्ञान और स्वातन्त्र्य दोनों अवरुद्ध हो जाते हैं। सही शिक्षक को इन सब विघ्न-बाधाओं के प्रति सतत जागरूक रहना होगा, ताकि छात्रों को स्वतंत्र रहने के लिए न केवल अन्य प्रमाणों से, बल्कि उनके अपने संस्कार-बन्धनों से भी मुक्त रख सके।"

इस प्रकार सही शिक्षक छात्रों को शिक्षा देने के साथ-साथ स्वयं भी शिक्षा ग्रहण करता रहता है। शिक्षा दुतरफा प्रक्रिया है, उभयान्वयी है। इसलिए शिक्षा में शिक्षक और छात्र दोनों के बीच पूरी समानता की भूमिका आवश्यक है। जब तक शिक्षक यह नहीं भूल जाता कि वह श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है, तब तक शिक्षण संस्थाओं में वास्तविक स्वातन्त्र्य नहीं रह सकता।

कृष्णमूर्ति ने शिक्षा का जो तरीका दिया है उसे ठीक से समझकर उस पर अमल किया जाय तो शिक्षा बड़ी ही क्रान्तिकारी सिद्ध होगी। कृष्णमूर्ति के शिक्षण-विचार का सार यह है कि शिक्षा की पद्धति-विशेष से, विशिष्ट शिक्षा-नीति से या शिक्षा की अमुक एक तकनीक से शिक्षा कभी सृजनशील होनेवाली नहीं है। शिक्षा को सृजनशील बनाने का एक ही साधन है और वह है अन्तस्समृद्धि चित्त की सम्पन्नता। कृष्णमूर्ति कहते हैं :

"मन की गतिविधियों और उनसे उत्पन्न होनेवाली बाधाओं के प्रति निरन्तर सावधान रहने पर ही सृजनशीलता उत्पन्न हो सकती है।"

मन की गतिविधियों के प्रति सतत सावधान रहना निश्चित ही प्रज्ञा-सम्पन्नता का लक्षण है। इसलिए प्रज्ञायुक्त स्थिति में ही सृजनशीलता संभव है। जो शिक्षक संवेदनशील है और मन की गतिविधियों के प्रति पूर्णतया सावधान है, और इसीलिए उसे बन्धन में डालनेवाले संस्कारों के प्रति भी सजग है, वही छात्रों में प्रज्ञा का विकास करने में समर्थ होता है और यही शिक्षा का सत्व है।

वास्तविक अभिक्रम का उपाय

छात्र को 'कैसे' प्रज्ञावान् बनाया जाय, यह प्रश्न ही नहीं उठता। स्वयप्रज्ञ शिक्षक आवश्यकतानुसार इस 'कैसे' का यथोचित मार्ग स्वयं खोज लेगा। इस 'कैसे' का कोई अटल और पूर्वनिर्धारित समाधान नहीं हो सकता। क्योंकि कोई भी पूर्वनिर्धारित समाधान खोजने का अर्थ है वही मानसिक बन्धन निर्माण करना, संस्कारविशेष से मन को जकड़ना। दूसरे शब्दों में, ऐसी कोई सुनिश्चित और पूर्वनिर्धारित शिक्षा-नीति और शिक्षा-पद्धति हो ही नहीं सकती, क्योंकि प्रत्येक परिस्थिति का अपना-अपना समाधान हुआ करता है, हर प्रसंग के उपाय की पद्धति अपनी निराली होती है। यदि पहले से ही कोई पद्धति तय कर रखते हैं तो निश्चित ही हम परिस्थिति का महत्त्व और गाम्भीर्य समझ नहीं पायेंगे। इसलिए प्रत्येक परिस्थिति के प्रति संवेदनशील रहना ही वास्तविक अभिक्रम का एकमात्र उपाय है। इस संवेदनशीलता में ही सही प्रेम होता है। शिक्षक यदि सही माने में प्रेमल होगा, तो हर परिस्थिति में और हर क्षण में तदनुरूप नयी-नयी पद्धति वह खुद खोज लेगा। पद्धति-विशेष पर, अमुक नीति या तकनीक पर निर्भर रहनेवाले शिक्षक में प्रेम नहीं होता। सृजनशील शिक्षा तो प्रेम से ही उत्स्फूर्त होनेवाली है।

हम आशा करें कि अनुशासन, प्रमाण और भय से प्रेरित होनेवाली शिक्षा के स्थान पर प्रेम से निष्पन्न और प्रेम से ही स्फूर्त शिक्षा शीघ्र ही हर जगह प्रतिष्ठित होगी। •

अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षक-छात्र संगोष्ठी

[भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी० बी० गजेन्द्रगडकर ने (जो अब बम्बई विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं) विनोबाजी से मिलने के बाद मई, '६८ के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में अखिल भारतीय स्तर पर विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और छात्रों का एक महत्त्वपूर्ण शिविर आयोजित किया। इस शिविर में आचार्यकुल के दर्शन का विकास हुआ। शिविर में भाग लेनेवालों ने सकल्प किया कि वे दलगत राजनीति से मुक्त रहकर भारत की एकता और अखण्डता से कटिबद्ध रहगे।–स०]

प्रस्ताव

अखिल भारतीय विश्वविद्यालयो के शिक्षक एव छात्रो का यह शिविर इस बम्बई शिविर मे प्राप्त अमूल्य अनुभवों के प्रति अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करता है और विश्वविद्यालयीन शिविरों की योजना का समर्थन करता है तथा विश्वविद्यालयो से अनुरोध करता है कि वे निम्नलिखित उद्देश्यो की सिद्धि को ध्यान मे रखते हुए विश्वविद्यालयो और कालेजो के स्तर पर इस आन्दोलन को आगे चलायें और बढायें

१ बुनियादी मूल्या के रूप में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो का प्रसार, २ भारत की एकता, ३ लोकतन्त्र, ४ धर्मनिरपेक्षता, ५ कानून का शासन (Rule of Law)

यह शिविर अपने अध्यक्ष से, जो कि इस गोष्ठी के भी अध्यक्ष हैं, निवेदन करता है कि इस गोष्ठी के उपाध्यक्ष के तथा इस शिविर के अध्यक्ष श्री पी० बी० गजेन्द्रगडकर के परामर्श से— (अ) इस शिविर में उपस्थित निम्न उपकुलपतियो को गोष्ठियों की नियामक समितियो मे लें वाराणसी, बर्दवान, अलीगढ, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, एस एन डी टी विश्वविद्यालय तथा वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय , और

(आ) गोष्ठियो से सम्बन्धित एक विश्वविद्यालयीन शिविर समिति का गठन करें, जिसके निम्न सदस्य हों—

१. डा० क० मा० मुन्शी, अध्यक्ष (प्रेसिडेण्ट)

२. डा० प्र० बा० गजेन्द्रगडकर, प्रधान (चेयरमैन)

३. निम्न उपस्थित उपकुलपति इलाहाबाद, आणन्द, वाराणसी, बगलोर, बडौदा, गुजरात, ग्वालियर, इन्दौर, जम्मू कश्मीर, कानपुर, मदरास, मदुराई, उस्मानिया, पूना, सौराष्ट्र, एस० एन० डी० टी०, दक्षिण गुजरात और उदयपुर।

यह शिविर योजना के उद्देश्यो की पूर्ति की दृष्टि से आवश्यकतानुसार अन्य सदस्यो की नियुक्त कर लेने का अधिकार अध्यक्ष को देता है ।

गोष्ठी : १ :

१. भारत की एकता और अखण्डता

इस गोष्ठी मे राष्ट्रीय एकता, कानूनी प्रशासन, लोकतंत्र, और धर्मनिरपेक्षता पर मुख्य चर्चा हुई । गोष्ठी की कार्यवाही मे शिक्षक तथा छात्रो ने समान रूप से पूरी दिलचस्पी ली । इसकी अलग अलग बैठको की अध्यक्षता अलीगढ़ विश्वविद्यालय के सहायक (प्रा०) उपकुलपति श्री रहमान, और सम्बलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री कपूर ने की ।

देश के खण्डित होने की समस्या पर ऐतिहासिक तथा सामाजिक आर्थिक दोनो पहलुओ से चर्चा हुई ।

कुछ लोगो की राय म स्वातंत्र्य पूर्व काल मे भारत मे एकता की भावना थी, जब कि स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद वह तेजी से खण्डित होती जा रही है । सबने माना कि देश के सामने विघटन का गम्भीर खतरा विद्यमान है और विघटनकारी प्रबल शक्तियाँ भारत की एकता के लिए घातक बनती जा रही हैं । यह स्वीकार किया गया कि विघटन के वर्तमान प्रवाह को पलटने के लिए त्वरित कदम उठाये जाने चाहिए ।

देश के विघटन के कारणो का विस्तार से विश्लेषण किया गया और समाधान के अनेक उपाय सुझाये गये । विघटन के कुछ प्रमुख कारण ये हैं—राष्ट्रीय दृष्टिकोण का अभाव, प्रान्तीयता की वृद्धि, भाषावार प्रान्तरचना, कई भारतीय जातियो की भाग्यवादी वृत्ति, जातिवाद और साम्प्रदायिकता, दुर्बल राजनीतिक नेतृत्व, जिसके साथ सत्ता के लिए हो रही आपाधापी का प्रभाव, औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप आर्थिक वर्गों का निर्माण, आर्थिक प्रगति की मन्द गति, शिक्षित बेकारो की सख्यावृद्धि और आर्थिक वृद्धि मे क्षेत्रीय विषमता ।

एकता और अखण्डता बनाये रखने और परिपुष्ट करने की दृष्टि से निम्न उपाय सुझाये गये—भारत के विभिन्न भागों से सम्बन्धित जानकारियों का प्रसार, शिक्षको और छात्रो का आदान-प्रदान, पर प्रान्तीय भाषाओ के वर्गों का आयोजन तथा छात्रो को अपनी भाषा से भिन्न भाषाओं का अध्ययन करने को प्रोत्साहित करना, क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय भाषाओं का उपयोग—विशेषत ऐसे क्षेत्रो मे, जहाँ विभिन्न भाषा-भाषी लोग रहते हो वहाँ आपसी व्यवहार के माध्यम के रूप में, प्रान्तीय भाषाओ की उन्नति का इस ढग

से प्रयास करना, जिससे राष्ट्रीय भावना पुष्ट हो, विविध सेनाओं की, जो कि क्षत्रवाद को बढ़ावा दे रही हैं, अभिवृद्धि को रोकना, आदि। यह भी सुझाया गया कि नौकरी के लिए क्षत्रीय भाषा के ज्ञान को अनिवार्य न माना जाय। विश्वविद्यालय अखिल भारतीय शिविरों का आयोजन करके प्रबल जनमत निर्माण के द्वारा देश को इस विघटन से बचाने में सहायता कर सकते हैं।

२ कानून का शासन

सर्वसम्मति से यह स्वीकार किया गया कि कानून का शासन किसी भी सभ्य समाज का विशेषत लोकतन्त्रीय जीवन पद्धति का स्वीकार करनेवाले समाज का अनिवार्य लक्षण है।

समाज मे आये दिन कानूनी प्रशासन का उल्लंघन करने की, विशेषत छात्र समुदाय मे जो वृत्ति प्रबल होती जा रही है—यद्यपि, यह भी अनुभव किया गया कि छात्र असन्तोष आज का जागतिक प्रश्न बना हुआ है, फिर भी उसका निषेध किया गया।

गोष्ठी के सदस्यों की राय मे छात्र-असन्तोष के निम्न कारण हैं— (१) समय के प्रतिकूल शिक्षा पद्धति (२) अयोग्य शिक्षक (३) पुराने और नये ससार का सघर्ष, (४) शिक्षितो की नौकरी की सुविधा का अभाव, और (५) सत्तालोलुप चालाक राजनीतिज्ञो द्वारा अपने हित साधने के लिए छात्र समुदाय का दुरुपयोग किया जाना।

इस बात का खेद प्रकट किया गया कि स्वातन्त्र्यपूर्व दिनो मे महात्मा गाधी ने सत्याग्रह के लिए नैतिक अस्त्र को लोकप्रिय बनाया था, छात्र तथा राजनीतिज्ञो ने दुरुपयोग करके उसका रूप विकृत कर दिया है।

विशेषत छात्र समुदाय मे कानून के उल्लघन की बुराई को रोकने के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाये गये —

१ उत्तम पुस्तकालय और अनुसधानशालाएँ,

२ सुयोग्य शिक्षक,

३ शिक्षा को सोद्देश्य और लक्ष्योन्मुख बनाना,

४ परीक्षा-पद्धति मे समुचित सुधार,

५ छात्रो को स्वशासन की कला का आवश्यक प्रशिक्षण,

६ माता पिता को बच्चो के कल्याण के लिए अधिक सक्रिय बनाना,

७ विश्वविद्यालय के कामों मे राजनीतिक पक्षों या सरकार को हस्तक्षेप करने न देना; अर्थात् विश्वविद्यालय की स्वायत्तता की सुरक्षा,

८ छात्रो के न्यायोचित दु खो को शीघ्र से शीघ्र दूर करने की व्यवस्था करना,

९. इस बात का ध्यान रखने का प्रबन्ध करना कि विश्वविद्यालय के उच्चत पदो पर होनेवाली नियुक्ति के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य न रहे,

१० अवांछित-प्रवृत्तियों म लगनेवाले छात्रों के प्रति विश्वविद्यालय के अधिकारियो को सहानुभूतिपूर्ण और मानवीय दृष्टि अपनानी चाहिए, और अन्त मे, [लेकिन इसका महत्त्व कम नही है]—

११. यदि छात्र विध्वसक और हिंसक तरीको पर ही जमे रहने का निश्चय करते हैं, तो उन्हे कानून के उल्लघन से सम्भावित परिणामो के लिए भी तैयार रहना होगा।

३. लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता

प्रारम्भ मे ही अध्यक्ष ने बताया कि इतिहास मे कभी और किसी राष्ट्र मे पूर्ण लोकतन्त्र का दृष्टान्त दिखाई नही देता है। इसलिए अपने राष्ट्र में लोकतंत्र यदि ठीक नही चल रहा है, तो इससे अत्यधिक घबडाने की आवश्यकता नही है। इसका यह अर्थ नही कि लोकतन्त्र के भविष्य के प्रति हम उदासीन हो जायें। कुलपति श्री मुन्शी ने सकेत किया, समूचे पूर्वी राष्ट्रों मे केवल भारत और जापान ही दो राष्ट्र हैं जहाँ सुदृढ लोकतन्त्र है। बाकी सब राष्ट्रो में सैनिक शासन लागू होते हम देख रहे हैं। उन्होने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया कि भारत के इतिहास मे जब भी केन्द्र दुर्बल हुआ है, तब राष्ट्र के अन्य भागो का पतन हुआ है। छोटी-छोटी राजनीतिक पार्टी का बढना लोकतन्त्र के लिए बडा खतरा है। इसका उदाहरण फ्रान्स प्रस्तुत कर रहा है।

राजनीतिक दलो के सम्बन्ध में कुछ सदस्यों की राय थी कि देश मे तीन-चार ही पक्ष हो जिनकी विचारधारा स्पष्ट हो, दूसरे कुछ सदस्य मानते थे कि भारत जैसे इतने बडे देश मे जहाँ कि सामाजिक और आर्थिक रचना बहुविध है, अनेक पक्षो का होना अनिवार्य है।

सबने यह माना कि लोकतन्त्र के सफल सचालन के लिए धर्मनिरपेक्ष दृष्टि को स्वीकार करना और अल्पसख्यको मे विश्वास जागृत करना अत्यावश्यक है। लोकतन्त्र और धर्मनिरपेक्षता को सुदृढ बनाने के लिए निम्न उपाय सुझाये गये—

(१) चुनाव के नियमो मे आवश्यक सशोधन होना चाहिए, ताकि चुनाव के समय होनेवाले भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो।

(२) अकर्मण्यता को दूर करने और सार्वजनिक जीवन के उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर व्यक्तियो को काम से जी चुराने न देने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाय।

(३) साम्प्रदायिक पक्षों और अखबारों पर प्रतिबध लागाया जाय।

(४) छात्रों को जाति या साम्प्रदायिकता के आधार पर प्रवेश देने के बारे में विश्वविद्यालयों को विमुख करना

(५) शिक्षा के सभी स्तरों में विश्व के सभी प्रमुख धर्मों के दार्शनिक तत्वों के अध्ययन को प्रोत्साहित करना,

इन सर्वसम्मत सुझावों के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी सुझायी गयी—

(१) विश्व के विभिन्न धर्मों में सर्वानुकूल और सर्वसामान्य तत्वों का शोधन करने की दृष्टि से धार्मिक नेताओं की परिषदों का आयोजन हो

(२) विश्वविद्यालयों में धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का विभाग खोला जाय

(३) विश्वविद्यालयों मे छात्रों के धर्मनिरपेक्ष संगठन खड़े किये जायें,

(४) सभी समुदायों की एक सर्वसामान्य आचार-संहिता हो,

(५) शिक्षा-संस्थाओं में नैतिक शिक्षण के पाठ्यक्रम चालू किये जायें।

(६) विभिन्न समुदायों में अन्तर्जातीय विवाह हों।

गोष्ठी : २ :

छात्र समस्या

इस गोष्ठी में छात्रों की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा हुई। सबने एक राय से इस परिस्थिति को मान्य किया कि आज भारत में छात्र समुदाय के अन्दर भारी असन्तोष की मनोवृत्ति बनी हुई है। परन्तु यह उन दुःस्थितियों का परिणाम है जो विद्यालयों में बहुत पहले से सामान्य रहती आयी है। इस असन्तोष को विशेष कारणों से समय समय पर उभड़ने-वाले अनुशासनहीनता आदि तात्कालिक प्रसंगों से पृथक मानना चाहिए। यह जो असन्तोष की भावना है यह एक प्रकार से शुभ चिह्न ही है, क्योंकि इससे प्रवृत्तियों को सार्थक और फलदायी बनाने की माँग व्यक्त होती है और माँग की पूर्ति के लिए विधायक दिशा अपनाने की आवश्यकता होती है। छात्र समुदाय अभी तक देश की विद्या-संस्थाओं के यथोचित गाम्भीर्य के प्रति आस्थावान है और वह सबसे अधिक आकांक्षा इस बात की रखता है कि शैक्षिक प्रवृत्तियों और प्रयत्नों में उन्हें अधिकाधिक सहयोग और सहभाग के अवसर मिलें। साथ ही अब छात्र अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये हैं और उन्हें प्राप्त करने के लिए सभी वैध उपाय अपनाने का संकल्प कर चुके हैं। मूलभूत अधिकार जिसकी वे आज माँग कर रहे हैं वह है जीने का अधिकार और ऐसी परिस्थिति में काम करने का अधिकार जिसके अन्तर्गत वे अपनी शैक्षिक योग्यता के अनुरूप

वरिष्ठो के निरीक्षण और मार्गदर्शन मे कार्य कर सकें।

एक बात सर्वसामान्य रूप से मान्य थी कि वर्तमान शिक्षा-पद्धति समयानुकूल नही है और समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं और चुनौतियो के (परिस्थितियो के) अनुरूप उसे यथोचित मोड देना चाहिए। उसकी प्रमुख न्यूनताएँ ये हैं—वह नाहक परीक्षा प्रधान हो गयी है, केवल बौद्धिक क्षमता बढाने पर अत्यधिक जोर देती है, छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को रूप देने का किंचित् भी प्रयास उसमे नही है, और पर्याप्त मात्रा मे विविध पाठ्यक्रम वह प्रस्तुत नही कर पाती, जिससे एक ओर छात्रो की विविध रुचियों और क्षमताओं की वृद्धि हो सके और दूसरी ओर समाजोपयोगी कार्य-कुशलताएँ उन्हें प्राप्त हो सकें। फिर आग यह समस्या वहाँ जाकर और घनीभूत हो जाती है, जब शिक्षा की समाप्ति के बाद उनको उनकी क्षमता और विद्या के विनियोग का समुचित क्षेत्र मिलने का ठीक निश्चय नही होता।

१ शिक्षाक्रम को इस प्रकार परिवर्तित और प्राणवन्त करना चाहिए कि वह वर्तमान युग की सास्कृतिक धाराओ और बौद्धिक वातावरण के अनुरूप हो।

२ भारत भर के पाठ्यक्रम और पाठ्य विषय समान होना चाहिए— भले ही स्थानीय आवश्यकतानुसार थोडा बहुत परिवर्तन कर लेने की छूट रहे, और समाज के सभी तबके के लोगो की शिक्षा सस्थाओ का भी समान रूप होना चाहिए।

३ शिक्षक और छात्रो के बीच निरन्तर घनिष्ठ सवाद चलना चाहिए, जिसके लिए छात्रों और शिक्षको के अमुक अनुपात का ख्याल रखना होगा।

४. शिक्षको को अपने सामने उन्नत क्षमता का लक्ष्य रखना चाहिए।

५ पाठ्य क्रम की योजना मे विविधता रहनी चाहिए और उद्योगप्रधान पाठ्य क्रम भी होने चाहिए।

६ मनोवैज्ञानिक और कुशल परीक्षण का और छात्रो के परामर्श का प्रबन्ध होना चाहिए।

७ परीक्षापद्धति मे सुधार होना चाहिए।

८ पुस्तकालय, पाठ्यपुस्तकें, खेलकूद आदि सभी आवश्यक सुविधाओं की पर्याप्त उदार व्यवस्था रहनी चाहिए।

९ शिक्षा पद्धति में स्कालरशिप और फ्रीशिप की सुविधा देने की ऐसी समुचित पद्धति होनी चाहिए कि वह ऐसे ही छात्रो को मिले जो

योग्यता और औचित्य के आधार पर उसे पाने के हकदार हैं। विश्वविद्यालय के कार्यकलापों में छात्रों का अधिकाधिक योगदान प्राप्त किया जा सके यह सबसे ज्यादा वाञ्छनीय है।

इस प्रकार की व्यवस्था नियोजित करने में अधिक धनराशि व्यय करना पड़ेगा, परन्तु वह राष्ट्र के भविष्य निर्माण की दृष्टि से उस धन का पूँजीगत विनियोग होगा।

शिक्षापद्धति का यह भी ध्येय होना चाहिए कि छात्रों को सार्वभौम नैतिक मूल्यों का सस्कार दिया जाय और उनमें ऐसी वृत्ति निर्माण की जाय कि वे भारत में लोकतात्रिक, समत्वयुक्त और सहयोगी समाज की स्थापना करने में विधायक और प्रभावशाली योग देने में तत्पर हो।

गोष्ठी : ३ :

दलगत राजनीति और विश्वविद्यालय

१. यह सब स्वीकार करते हैं कि हमारे अधिकाश विश्वविद्यालय और सामान्य शैक्षिक सस्थाएँ दलगत राजनीति के दुष्प्रभाव से बुरी तरह ग्रसित हैं। *नियुक्तियाँ, तरक्कियाँ, प्रतिनिधि-मण्डल आदि का निर्णय* लेते समय दलगत राजनीति का प्रभाव काम करता है। छात्र और शिक्षक भी राजनीतिक गुटों में शामिल होते हैं और राजनीतिक व्यक्तियों के हाथ का औजार बन जाते हैं। इस अस्वस्थ परम्परा के प्रति सबने चिन्ता व्यक्त की।

२. दलगत राजनीति विश्वविद्यालय-समाज की उदासीनता और पर्याप्त राजनीतिक चेतना के अभाव पर जीवित रहती है। सबकी यह राय रही कि परिस्थिति विश्वविद्यालय-समाज को त्वरित और सुदृढ सक्रियता के लिए प्रेरित कर रही है। इसकी पूर्ति तभी हो सकेगी जब विश्वविद्यालय समुदाय में राजनीतिक चेतना जागृत की जायगी, जो राष्ट्र की और व्यापक समाज की प्रमुख समस्याओं से अछूत और उदासीन न हो। छात्र-समुदाय को सदा सजग, तत्पर और उत्साही रहना चाहिए, जिससे कि वह विभिन्न राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर अपना अभिमत मुक्त भाव से खुलकर प्रस्तुत कर सके और उसके द्वारा वर्तमान लोकमत पर अपना प्रभाव डाल सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के निम्न उपाय हो सकते हैं—

(अ) भारतीय सविधान, विभिन्न राजनीतिक-दर्शनों और आधुनिक भारत के इतिहास के साथ वर्तमान सामाजिक विषयों का पाठ्यक्रम दाखिल किया जाय।

(आ) छात्रों और शिक्षकों के छोटे छोटे समूहों का गठन किया जाय जो राजनीतिक चेतना निर्माण करने और बढ़ाने की दृष्टि से एक घटक बन सकें।

(इ) विभिन्न राजनीतिक विचारों के नेताओं को निश्चित विषयों पर अपना अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया जाय।

३ विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों से लेकर नीचे तक सब अधिकारियों की नियुक्ति में आज सर्वत्र राजनीति दिखाई देती है। यह बड़े खेद की बात है और इसका कारण यह है कि आज विश्वविद्यालयों की नियुक्तियों और चुनावों में राजनीतिक व्यक्तियों और गैर शिक्षाजगत् के लोगों के हस्तक्षेप को वैधानिक गुंजाइश रखी गयी है। इसलिए सुझाया गया है कि—

(अ) विश्वविद्यालयों के कानून और नियम ऐसे बनाये जायें जिनमें उप कुलपतियों और अन्य अधिकारियों की नियुक्ति या चयन शिक्षा जगत् की सुयोग्य समितियाँ ही कर सकें।

(आ) आग्रह सिफारिश की गयी कि विश्वविद्यालयीन शिक्षा को केन्द्रीय विषय बनाया जाय और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से निवेदन किया जाय कि केन्द्रीय विश्वविद्यालय के नमूने पर प्रादेशिक विश्वविद्यालयों के विकास और निर्वाह का अधिकाधिक दायित्व वह अपने हाथ में ले।

४ हमारी शिक्षा संस्थाओं को दलगत राजनीति से प्रभावमुक्त रहना चाहिए और शिक्षक तथा विद्यार्थियों को पक्षों का मतलब सिद्ध करनेवाला औजार नहीं बनना चाहिए। इसके लिए यह सुझाया गया कि राजनीतिक पक्षों से निवेदन किया जाय कि वे राजनीतिक हेतुओं में विश्वविद्यालय-समाज का उपयोग न करें। यदि मनाने का तरीका कारगर न सिद्ध हो तो इस सम्बन्ध में समुचित वैधानिक कदम उठाने के लिए लोकमत तैयार किया जाय।

गोष्ठी : ४ :

भाषा

भाषा समस्या पर पाँच बैठकों में चर्चा हुई और इन चर्चाओं में अधिक लोगों ने भाग लिया। चर्चा प्राणवान रही और कभी कभी गरम भी रही। सभी पहलुओं पर ज़ोरदार चर्चा हुई। इस बात पर ज़ोर दिया गया कि शिक्षक और छात्र समुदाय के नाते इस समस्या पर चर्चा करने का हमारा

[शेष पृष्ठ ५४७ पर]

प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण

डा० देवेन्द्रदत्त तिवारी

[विकेन्द्रीकरण बुनियादी शिक्षा की नीति है। विनोबा विकेन्द्रीकरण की इस नीति के सबसे बड़े समर्थक हैं। 'आचार्यकुल' में उनकी इस नीति की पूर्ण व्याख्या हुई है। विद्वान लेखक ने अपने इस लेख में उस नीति का प्रभावपूर्ण ढंग से समर्थन किया है और शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ती हुई केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति की निन्दा की है।—सम्पादक]

प्रस्तुत विषय का विवेचन करने से पहले विकेन्द्रीकरण शब्द का अर्थ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। विकेन्द्रीकरण का अर्थ है अधिकार और दायित्व दोनों के केन्द्र के एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों के हाथ में रहने देने के बजाय बुनियादी इकाइयों या व्यक्तियों के हाथ में सौंपना। विकेन्द्रीकरण का विचार करते समय अधिकार और दायित्व दोनों का विचार करना चाहिए। इन दोनों में भेद करना आवश्यक है, क्योंकि प्रायः नीचे की इकाइयों को दायित्व तो सौंप दिया जाता है, किन्तु उस दायित्व को निभाने के लिए आवश्यक अधिकार नहीं दिया जाता। दायित्व और अधिकार के बीच की इस खाई के कारण ही हमारे देश के विकास के प्रयास विफल रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गाँव-पंचायत और क्षेत्र-समितियों को कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि कई क्षेत्रों के विकास कार्य का विशेष दायित्व दिया गया, लेकिन उन्हें यह अधिकार नहीं दिया गया कि वे अपने साधन-स्रोतों को बढ़ा सकें या वे लचीले न हों तो उन्हें लचीला बना सकें अथवा उन साधनों को केन्द्रीय या राज्य सरकार के साथ बाँट लें। सरकार अपने राजस्व का कुछ भी अंश देने को इच्छुक नहीं थी। सब योजनाओं को कार्यान्वित करने का सारा उपक्रम सरकारी कर्मचारियों के हाथ में ही है, और अंतिम निर्णय लेने का अधिकार भी उन्हें ही है, जब कि प्रत्यक्ष काम करनेवाले स्थानीय लोग हैं। इस देश में विकेन्द्रीकरण का इतिहास अधिकारविहीन विकेन्द्रीकरण का इतिहास है। लेकिन स्वायत्तशासन की इकाइयों के रूप में ग्राम-पंचायतों को प्रतिष्ठित करने की बात लिखनेवाले

संविधान रचयिताओं का यह आशय नहीं रहा है। (भारत का संविधान, निदेशक सिद्धान्त धारा ४०)

विकेन्द्रीकरण : सिर्फ नाम के लिए

दुर्भाग्य की ही बात है कि जहाँ दायित्व को ऊपर से नीचे की ओर सौंपने का प्रयत्न चला, वहाँ उस पर अमल करने का और नियंत्रित करने का अधिकार नीचे से ऊपर की ओर ही रखने की प्रवृत्ति बनी ही नहीं रही, बढ़ी भी। न केवल आर्थिक और राजनैतिक नियंत्रण, बल्कि वैचारिक नियंत्रण भी दिन-प्रतिदिन केन्द्र के हाथ में अधिकाधिक जा रहा है। संविधान में (शेड्यूल ७, सूची २, अंश २) घोषित किया गया है कि शिक्षा राज्य का विषय है। परन्तु केन्द्र सरकार अपने योजना-आयोग, युनिवर्सिटी ग्राण्ट कमीशन, नेशनल इन्स्टिट्यूट आफ एजुकेशन आदि संस्थाओं द्वारा विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के विपरीत ही काम कर रही है, यहाँ तक कि पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें भी केन्द्र-सरकार की संस्थाएँ देश भर के लिए तैयार करती हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता भी नहीं है कि वे पुस्तकें और वे पाठ्यक्रम स्थानीय परिस्थिति के और आवश्यकता के अनुकूल हैं भी या नहीं। राज्य सरकारों की भी यही स्थिति है। अपरिवर्तनीय पाठ्यक्रम और बाह्य परीक्षाओं के कारण लोकतंत्र की कदम-कदम पर हत्या हो रही है। केन्द्रीकरण की यह प्रवृत्ति न केवल इस देश में, बल्कि ऐसे देशों में भी कि जहाँ लोकतांत्रिक परम्पराएँ विख्यात हैं, प्रबल होती जा रही है।

केन्द्रीकरण का तर्क

पहली बात यह कही जाती है कि कई ऐसे प्रश्न हैं, जिनका समाधान केन्द्र के स्तर पर ही हो सकता है। जैसे—सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय विकास आदि। एकता और विकास के क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें मानव-जीवन के लगभग सभी पहलुओं का समावेश हो जाता है, इसलिए सभी स्तरों पर व्यक्ति तथा स्थानीय इकाइयों के मामले में केन्द्र का हस्तक्षेप अपरिहार्य हो जाता है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और विकास का एक प्रमुखतम साधन माना गया है, इसलिए शिक्षा का नियमन और नियंत्रण केन्द्र के स्तर पर ही होना चाहिए। इसीलिए राज्यों ने अधिकांश विकास-कार्यक्रम केन्द्र के निर्देशन में चलाये हैं। यही नहीं, विद्याभ्यास का भी नियमन केन्द्र करने लगा, जो स्थानीय अभिक्रम के लिए घातक है। इसका एक उदाहरण है नेशनल इंस्टिट्यूट आफ एजुकेशन, जिसके दर्जनों निरर्थक विभाग हैं। उस संस्था की ओर से भिन्न-भिन्न विषयों की पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने के और भिन्न-भिन्न आदर्श पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने के प्रयत्न किये गये।

एक बुनियादी प्रश्न

यहाँ इस बात का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि हमारा देश ऐसा देश है जिसमे बड़ी विविधता है, सबकी अपनी अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है, लेकिन ऐसे देश की शिक्षा मे एकरूपता लाने के प्रयत्न का अर्थ है शिक्षा के प्राथमिक, बल्कि सर्वाधिक महत्व के सिद्धान्त—कि शिक्षा परिचित परिस्थिति के द्वारा ही दी जानी चाहिए—को ही आघात पहुँचाता है। शिक्षा की एकरूपता से राष्ट्रीय एकता सिद्ध होती है, ऐसा सोचनेवाले लोग भी हैं। समझने की बात है कि जिन देशों मे पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकें भिन्न भिन्न और अनेक प्रकार की हैं, वहाँ राष्ट्रीय एकता टूट नहीं गयी है। केन्द्रीकरण के समर्थक कह सकते हैं कि अमरीका और इंग्लैण्ड का उदाहरण नहीं मानना चाहिए क्योंकि उन राष्ट्रों की और हमारे देश की परिस्थिति भिन्न है। इसके उत्तर मे हम कह सकते हैं कि अमरीका और इंग्लैण्ड भी शुरू-शुरू में इन्हीं सब परिस्थितियों और अनुभवों से गुजरे हैं, और उनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। बुनियादी प्रश्न यह है कि हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में लोकतन्त्र स्वीकार करते हैं या नहीं। यदि लोकतन्त्र हमारा लक्ष्य है, तो फिर विकेन्द्रीकरण से भाग नहीं सकते।

केन्द्रीकरण के समर्थन मे एक और दलील यह है कि पाठ्यक्रमो और पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण विशेषज्ञों का काम है, इसलिए निम्न स्तरों मे वह समाधानकारक ढंग से नहीं किया जा सकता। वास्तव में विशेषज्ञता ही है जो सारे अधिकारों को चन्द हाथों में केन्द्रित करने को विवश करती है, वह न केवल व्यक्ति की अवहेलना करती है, बल्कि सामाजिक संगठनों को भी मानवताहीन बना देती है। स्वचालित यन्त्रों की तीव्र वृद्धि के प्रभाव इस कथन के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। विशेषज्ञता के कुछ लाभ तो हैं, परन्तु गम्भीर हानियाँ भी हैं। विशेषज्ञ को जिनकी सेवा करनी चाहिए, उनकी आवश्यकता की पूर्ति करनी चाहिए, उनके कन्धे पर चढ़ नहीं बैठना चाहिए।

विकेन्द्रीकरण की इस भूमिका के साथ अब प्राथमिक शिक्षा का विचार करना उचित होगा।

विकेन्द्रीकरण की पृष्ठभूमि

गहराई मे देखने पर हम पायेंग कि प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण के प्रयत्न गत शताब्दी से ही हो रहे हैं, सन् १८८२ मे लार्ड रिपन के समय मे एक इण्डियन एजुकेशन कमीशन की रिपोर्ट से पता चलता है कि तभी से स्थानीय संस्थाओं को अधिकाधिक अधिकार देने की बात चली है। उसके

बाद विकेन्द्रीकरण के प्रश्न का विचार करनेवाली कई समितियाँ बनी, जिनमे सबसे महत्वपूर्ण थी हाटग कमिटी जिसने इस शताब्दी के प्रथम पाद मे स्थानीय सस्थाओ के शिक्षा-कार्य का मूल्याकन किया है। उसकी राय मे वकेन्द्रीकरण से वाछित परिणाम नही आये।

हम अनुभव करते हैं कि प्राथमिक शिक्षा की स्वस्थ प्रगति के लिए परिवतन आवश्यक है। यह बिलकुल सही है कि स्थानीय मामलो के स्थानीय सस्थाओं को ही सारा प्रयत्न करना चाहिए और यह भी अस्वाभाविक नही है कि शुरू शुरू म अनुभवहीनता के कारण दोष भी होंगे। परन्तु हमारी राय मे शिक्षा एक राष्ट्रीय सेवा है और इस विषय मे राज्य अपने दायित्व से अलग नही हो सकता। [१]

सन १९४४ की सार्जेण्ट कमेटी की भी ऐसी ही राय थी।

सिद्धान्त यह अच्छा है कि शिक्षा के विषय मे स्थानीय रुचि का निर्माण हो और इस तक के पक्ष मे बहुत कुछ कहा जा सकता है कि स्थानीय सस्थाओ के हाथ मे उसे नियन्त्रित करने का कुछ अधिकार भी देना चाहिए बशर्ते कि उस पर अमल करने की क्षमता उनमे आयी हो। लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार के वतमान पीढी की शिक्षा का दायित्व ऐसे सगठनो के हाथ मे जिनके सदस्य अशिक्षित हो और शिक्षा मे कोई रुचि न रखते हो सौंप देने का परिणाम इतना हानिकर हुआ है जिसका कोई इलाज नही है। इस लिए शिक्षा के पुनरसगठन की योजना बनाने से पहले राज्य सरकारो को स्थानीय सस्थाओ के हाथ से शिक्षा सम्बन्धी सारे अधिकारो को अपने हाथ म ले लेना चाहिए ऐसी कोई सस्था हो जिसकी क्षमता के बारे मे विश्वास हो गया है कि व्यापक उत्तरदायित्व उठा सकेगी उनके अधिकार उन्हीके हाथ मे रहने दिये जाय।[२]

यह थी स्वराज्य के पहले की स्थिति। यद्यपि यह निम्नगामी छननी का सिद्धान्त (डाउनवड फिल्ट्रेशन थियरी) केन्द्रीय नीति निर्धारण के निवेदनो मे आलोचना और निन्दा का विषय बना हुआ था, फिर भी सत्तारूढ लोगो के दिमाग पर बराबर हावी रहा और प्राथमिक शिक्षा का विषय उपेक्षित ही रहा।

---

१ कलकत्ता स्थित इण्डियन स्टेच्युटरी कमीशन की मध्यकालीन रिपोट भारत सरकार का प्रकाशन शाखा सन् १९२९ पृ० ३३४।

२ युद्धोत्तरकालीन भारतीय विकास पर शिक्षा की केन्द्रीय सलाहकार समिति की रिपोट का तीसरा सस्करण। जनवरी ४४ पृ० ७३।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद चूंकि सविधान मे ६ से १४ वर्ष तक के बालक बालिकाओ को अनिवार्य नि शुल्क शिक्षा देने का प्राविधान किया गया है, इसलिए प्राथमिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाने लगा। सन १९५१ मे भारत सरकार ने राज्य सरकारो और स्थानीय सस्थाओ के बीच प्रशासनिक सम्बन्धो के बारे मे उचित परामर्श देने के लिए एक समिति नियुक्त की।[१] उसकी रिपोर्ट अत्यत मूल्यवान है। उसने स्थानीय सस्थाओ को अधिकाधिक नियत्रण करने का तथा कुछ सीमित दायरे मे अपने साधन स्रोतो की वृद्धि कर लेने का अधिकार देने की सिफारिश की है।

वास्तव मे स्वतत्रता से पहले, काग्रेस शासनकाल मे कई राज्यो ने स्वायत्तशासन की इकाई के रूप मे पचायतो की स्थापना के द्वारा विकेन्द्रीकरण के कदम उठाये थे। स्वतत्रता के बाद देश मे विकेन्द्रीकरण की स्पष्ट रूपरेखा बनाने की आवश्यकता थी। इसलिए भारत सरकार ने एक कमेटी नियुक्त की जो 'बलवन्तराय मेहता कमेटी' के नाम से प्रसिद्ध है। (सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय प्रसार खण्डों के अध्ययन के लिए सन १९५७ मे बनी कमेटी की रिपोर्ट)। यह सुविस्तृत समग्र आलेख है, जो कई खण्डो मे प्रकाशित है। उसने त्रि स्तरीय पद्धति का सुझाव दिया—ग्रामीण स्तर पर स्थानीय पचायत, प्रखण्ड स्तर पर पचायत-समिति या क्षेत्र समिति, और जिला-स्तर पर जिला परिषद्। इसमे प्रमुख फरक यह था कि इससे पहले विकेन्द्रीकरण की आधारभूत इकाई जिला थी, परन्तु अब जिले की आबादी की वृद्धि तथा विकास कार्यों की समस्याओं की अधिकता के कारण, और इसलिए भी कि स्थानीय प्रशासन मे जनता का प्रत्यक्ष सहकार मिल सके, ग्राम पचायतो और क्षेत्र समितियों को विशेष प्राधान्य दिया जाने लगा।

इकाई का आकार

वास्तव मे यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि प्रशासन की स्थानीय इकाई का आकार क्या हो। इग्लैण्ड, अमेरिका तथा अन्य राष्ट्रो मे इन इकाइयो का निश्चय आबादी, सचारसाधन, जनता की इच्छा और ऐसी ही अन्य बातो के

---

१ कमेटी आन दि रिलेशनशिप बिट्वीन स्टेट गवर्नमेण्टस एण्ड लोकल बाडीज इन दि एडमिनिस्ट्रेशन, ऑफ प्राइमरी एजुकेशन, मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, गवर्नमेंट आफ इण्डिया १९५४ की रिपोर्ट।

आधार पर किया जाता है। वहाँ गाँवो का आकार भिन्न-भिन्न है—इग्लैण्ड मे एक देहात २६००० का है, तो लकाशायर के रटलैण्ड मे २०-२२ लाख का है।[1] अमेरिका के स्कूल-जिले की जनसख्या भी समान नही है। नेब्रास्का में ४५५ तो न्यूयार्क मे १४,००० (सन् १९६० की जनगणना के अनुसार)।[2] हमारे यहाँ शिक्षा-प्रशासन की बुनियादी इकाई के रूप मे जिला बहुत बडा पडता है। इसलिए जिले की अपेक्षा प्रखण्ड ठीक रहेगा, क्योंकि एक प्रखण्ड में लगभग १०० गाँव होते हैं।

भारतीय शिक्षा आयोग ने भी इस प्रश्न की चर्चा की है और सुझाया है कि नियोजित विकास कार्य की अनुकूलतम इकाई का आधार जिला होना चाहिए। महत्त्व की बात ध्यान मे यह रखनी है कि शिक्षा के प्रश्नो पर स्थानीय लोक-समुदाय का सक्रिय और प्रत्यक्ष सहयोग मिलना चाहिए। इस दृष्टि से प्रखण्ड अधिक सुविधाजनक इकाई प्रतीत होता है।

कुछ राज्यों मे प्रखण्ड-स्तर पर विकेन्द्रीकरण किया गया है। हाल के कुछ वर्षों का अनुभव यह रहा कि वहाँ कई कारणो से विकेन्द्रीकरण सफल नही हुआ। पहला कारण यह है कि जिला परिषदें उसकी जिम्मेदारी और अधिकार को अपने हाथ मे लेने की इच्छुक नही थी। दूसरा कारण यह था कि उनके हाथो में कोई साधन नही दिया गया। तीसरा यह कि क्षेत्र समितियो को ब्लाक डेवलपमेण्ट आफिसर के मार्फत सरकारी नियत्रण के अधीन रखा गया। अतत, अधिकाश अधिकारीगण शहरी जीवन तथा शहरी सुख सुविधाओ के आदी होने के कारण प्रखण्डो मे जाकर बसने को तैयार नही हुए, क्योकि वहाँ उनको शहर की सारी सुविधाएँ नही मिल सकती थी।

शैक्षिक प्रशासन के प्रकार

हमारे देश मे प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन के कई प्रकार हैं। (१) त्रिपुरा, मणिपुर आदि केन्द्र-प्रशासित राज्यो मे तथा अन्यत्र भी प्राथमिक शालाएँ पूर्णतया केन्द्रीय शासन के सीधे नियत्रण मे चलती हैं। हरियाना और पजाब

---

१ लन्दन के शिक्षा विज्ञान विभाग द्वारा प्रसारित २०-१०-६६ की शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्ट के अनुसार।

२. दि टीचर एण्ड स्कूल आर्गनाइजेशन—जे० लियो एम० चम्बरलीन और डब्ल्यू० किण्डर्ड लिसली (चतुर्थ सस्करण १९६६), पृ० ६५।

जैसे कुछ राज्यों में भी यही पद्धति अपनायी गयी है। कश्मीर में सभी श्रेणियों की शालाएँ सरकार की ही ओर से चलायी जाती हैं। (२) दूसरा प्रकार यह है कि प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी सारे अधिकार पंचायत समिति या क्षेत्र समिति को सिपुर्द किये गये हैं, जैसे—राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, मदरास और उत्तर प्रदेश (३) तीसरा प्रकार यह है कि प्राथमिक शिक्षा का नियंत्रण जिला-स्तर की स्थानीय संस्थाएँ करती हैं, जैसे—महाराष्ट्र में है। इग्लैण्ड और अमरीका में शालेय स्तर की पूरी शिक्षा और कहीं-कहीं सामुदायिक कालेज (कम्युनिटी कालेज) अथवा जूनियर कालेजों में दो वर्ष की उच्च शिक्षा सम्बन्धी प्रशासन भी स्कूल-बोर्ड या स्थानीय समुदायों के हाथ में है। अधिनायकवादी राष्ट्रों में सारी शिक्षा का नियंत्रण सरकार करती है।

प्रशासन सम्बन्धी विभिन्न मत

प्रश्न यह है कि प्राथमिक शिक्षा के बारे में प्रशासन का प्रकार क्या होना चाहिए। कुछ लोगों का मत यह है कि लोकतंत्र की सफलता के लिए प्राथमिक शिक्षा का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है, और संविधान में भी अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा के लिए प्रावधान है, इसलिए यह केन्द्र की जिम्मेदारी है कि संविधान के प्रावधान को कार्यान्वित करे। इससे अप्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक शिक्षा के केन्द्रीकरण को बल मिलता है। राज्य के स्तर पर कुछ लोग मानते हैं कि शिक्षा में केन्द्र का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, प्राथमिक शिक्षा का सारा नियमन और नियंत्रण निश्चित ही राज्य-सरकार के हाथ में होना चाहिए। अधिकांश लोग, जिनमें शिक्षक भी हैं, इसी मत के हैं, क्योंकि स्थानीय संस्थाओं का प्रबन्ध ठीक नहीं रहता है और स्थानीय राजनैतिक पक्ष स्कूल और शिक्षकों का उपयोग अपने मतलब के लिए करने लगते हैं। शिक्षकों को समय पर वेतन नहीं मिलता, यह भी एक प्रमुख कारण है कि वे प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन को राज्य-सरकार के हाथ में सौंपने का समर्थन करते हैं। जिस देश ने लोकतंत्र को स्वीकार किया हो, जिसमें सारा दायित्व और सारा अधिकार स्थानीय समुदायों के ही हाथ में रहना चाहिए, ऐसे देश के लिए उपर्युक्त स्थिति निश्चित ही शोचनीय है।

केन्द्रीकरण के समर्थन में दलील देने का अर्थ है लोकतंत्र के विरुद्ध दलील देना। जिला, प्रखण्ड या स्थानीय संस्थाएँ अपना दायित्व निभाने में असफल रहीं, इसका सारा दोष केन्द्रीय और राज्य-सरकारों पर है, क्योंकि इन्होंने विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के प्रति कभी पूरी आस्था नहीं दिखायी

और न कभी उसे आजमाने का कष्ट किया। खेर कमेटी (१९५१)[1] की रिपोर्ट के दूसरे अध्याय में अत्यन्त महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये गये हैं

(१) विकेन्द्रीकरण का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए कि उससे स्थानीय नेतृत्व स्थानीय अभिक्रम (इनिशियेटिव) और उत्तरदायित्व की भावना का निर्माण हो। परन्तु इस उद्देश्य पर कभी पर्याप्त बल नहीं दिया गया। इसके विपरीत विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य केवल चन्दा इकट्ठा करना मान लिया गया।

(२) दूसरा एक सामान्य निष्कर्ष स्पष्ट होता है कि प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन के साथ स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के प्रयोग की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया और जो भी दिया गया वह पूरे मन से नहीं दिया गया और वही स्थिति अब भी दीखती है।

(३) इतिहास बताता है कि सन् १८८२ में लार्ड रिपन ने इस प्रयोग को सफल बनाने के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किये थे, उन पर उस समय के प्रशासकों ने अमल नहीं किया। उसने स्पष्ट कहा था कि यह नया प्रयोग तभी सफल हो सकेगा, जब (१) स्थानीय सस्थाओं को पर्याप्त साधन सामग्री दी जाय, (२) यदि अधिक व्यय साध्य अतिरिक्त कार्य सौंपते हैं तो उसके साथ अतिरिक्त आय के साधन भी दिये जायें, (३) यदि सरकारी अधिकारी स्वतत्र राजनैतिक जीवन के प्रारम्भिक छोटे-छोटे प्रयत्नों में पूरी निष्ठा और तत्परता के साथ जुटते हैं और यह अनुभव करते हैं कि इससे प्रशासन और सचालन के अधिकारों के विनियोग का अधिक उत्तम क्षेत्र प्राप्त हुआ है। परन्तु दुर्भाग्य से इन सुझावों को जल्दी भुला दिया गया।

(४) लोगों की आम धारणा यही थी कि प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय सस्थाओं के हाथ में सौंपना ही सारी दिक्कतों का कारण है, यदि प्राथमिक शिक्षा को सफल बनाना है तो उसे राज्य सरकार के शिक्षा विभाग के प्रत्यक्ष नियत्रण में रखना चाहिए। लेकिन इस धारणा को इतिहास ने निराधार सिद्ध कर दिया है।

विकेन्द्रीकरण के कुछ पहलू

विकेन्द्रीकरण के प्रश्न पर राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा के पहलुओं से विचार करने की आवश्यकता है। राजनैतिक दृष्टि से हमारा लक्ष्य लोक

१ प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में राज्य सरकारों और स्थानीय सस्थाओं के सम्बन्धों पर शिक्षा मत्रालय से प्रकाशित रिपोर्ट (१९५४)।

तंत्र है, जिसमें प्रत्येक नागरिक, को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय का, विचार, वाणी, विश्वास, श्रद्धा और उपासना की स्वतन्त्रता का, अवसर और प्रतिष्ठा की समानता का आश्वासन प्राप्त है। हमारे संविधान की प्रस्तावना में व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर बल दिया गया है। यह लक्ष्य स्थानीय इकाइयों को पर्याप्त अधिकार और दायित्व दिये बिना सिद्ध नहीं हो सकता। लेकिन हमारे देश में रुख दूसरी ही ओर है, और राज्य तथा केन्द्र-सरकारें अधिकाधिक अधिकार अपने हाथ में लेती जा रही हैं। आर्थिक क्षेत्र में भी वित्तीय अधिकार राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों के हाथ में अधिक केन्द्रित होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षा का किसी भी श्रेणी का विकेन्द्रीकरण करने की बात सोचना भी कठिन है। जब भी विकेन्द्रीकरण पर थोड़ा-बहुत विचार होता है, उसका एक ही मुख्य उद्देश्य आर्थिक सहायता प्राप्त करना ही होता है, राजनैतिक और आर्थिक अधिकार बाँटना नहीं।

सामान्यतः शिक्षा के विकेन्द्रीकरण का विशेषतः प्राथमिक शिक्षा के विकेन्द्रीकरण का विचार करने के लिए प्राथमिक शिक्षा के विभिन्न पहलुओं का परीक्षण करना आवश्यक है। माध्यमिक अथवा उच्च शिक्षा से प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य विशेष प्रकार का है। और वह है व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई प्रतिभा और क्षमताओं को उद्घाटित करना और उसमें भावी जीवन की हर परिस्थिति का सामना करने की बुनियादी योग्यता उत्पन्न करना। दूसरे शब्दों में, उत्तम नागरिक निर्माण उसका लक्ष्य है। लेकिन लोगों को यह लक्ष्य ठीक से समझाने का हमने कोई प्रयत्न नहीं किया, इसलिए उत्तम शिक्षा के हेतु से प्रयत्न करने का कोई उद्देश्य ग्राम जनता के सामने नहीं है।

स्वतन्त्रता के २० वर्ष बाद भी हमारे यहाँ प्राथमिक शिक्षा की जो स्थिति है, वह प्रगति की राह पर चलनेवाले किसी भी राष्ट्र के लिए लज्जाजनक है। लोगों के सामने वास्तविक और ठोस लक्ष्य नहीं है, इसलिए अधिकांश जनता प्राथमिक शिक्षा के प्रति सर्वथा उदासीन है। लोग अपने बच्चों को स्कूलों में जरूर भेज तो देते हैं, लेकिन उन्हें इन बातों की कोई चिन्ता नहीं है कि बच्चे वहाँ जाकर क्या करते हैं, उन्हें वहाँ कैसे रखा जाता है और उन्हें शिक्षण कैसे दिया जाता है आदि।

इस उदासीनता का कारण यह है कि प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य और नीतियाँ ऊपर से लादी हुई हैं, स्थानीय समुदायों का उसमें कोई हाथ नहीं है,

वे कुछ भी पहल नहीं कर पाते हैं और इसलिए छोटी सी छोटी बात के लिए भी लोग सरकार का मुंह ताकते रहते हैं।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी एक भ्रामक धारणा

शिक्षा का दूसरा पहलू पाठ्यक्रम है। आज पाठ्यक्रम केन्द्रीय या राज्य की अधिकृत संस्थाएँ निश्चित करती हैं। वे स्थानीय आवश्यकताओं और स्थानीय आधारों का कुछ भी खयाल किये बिना पाठ्यक्रम की रूपरेखा बना देती हैं। पाठ्यक्रम निर्धारित करनेवाले लोग इस तथ्य का शायद ही विचार करते हैं कि हमारा देश भूगोल, वायुमण्डल, भाषा, इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से कई विविधताओं से भरा देश है।

यह बड़ी उपहासास्पद बात है कि नेशनल इन्स्टिट्यूट आफ एजुकेशन जैसी केन्द्रीय संस्था समूचे देश के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार कर दे। इसके समर्थन में प्रमुख तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि पाठ्यक्रम तैयार करना बिलकुल तकनीकी विषय है और हमारे सामान्य स्कूलों और स्थानीय लोगों में इसकी क्षमता नहीं है। लेकिन यह निरे भ्रम से बनी धारणा है। अमरीका में ऐसी ही केन्द्रस्तरीय विशेषज्ञों की एक समिति द्वारा पाठ्यक्रम बनाने का कुछ प्रयत्न हुआ, तो उस पाठ्यक्रम पर स्कूलों ने बिलकुल ही अमल नहीं किया और उसके खिलाफ चारों ओर विरोध-प्रदर्शन हुआ। वस्तुस्थिति यह थी कि विशेषज्ञों द्वारा निर्मित वे अभ्यासक्रम औसत बालकों की दृष्टि से बहुत ही जटिल और कठिन सिद्ध हुए। इसलिए औसत बालकों को दृष्टि में रखकर अलग पाठ्यक्रम तैयार करने का प्रयत्न चला। इन सब बातों का हमारे देश ने जरा भी ख्याल नहीं किया है। दरअसल हमारे दिल दिमाग पर विदेशी चिन्तन और विदेशी विचारों का प्रभाव इतना अधिक हो गया है और हम इतने अभिक्रमहीन और प्रभावहीन हो गये हैं कि स्थानीय स्तर पर हम अपना पाठ्यक्रम तैयार नहीं कर पा रहे हैं।

केन्द्रीकरण के पक्ष में दूसरी दलील यह है कि राष्ट्रीय एकता के लिए देश भर में एक पाठ्यक्रम की एकरूपता आवश्यक है। यह दलील तो खासकर प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से बिलकुल ही अर्थहीन है। राष्ट्रीय एकता न सधने का कारण दूसरे क्षेत्रों में खोजना चाहिए, और शिक्षा के लिए इस मूल नियम का कि शिक्षण बालकों के अपने वातावरण और अपनी परिस्थिति के अनुकूल ही दिया जाना चाहिए, पूर्णतया आदर करना चाहिए।

पाठ्य-पुस्तकों का प्रश्न

पाठ्य पुस्तकों का प्रश्न भी पाठ्यक्रम से ही जुड़ा हुआ है। पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण हमारी केन्द्रीय और राज्य सरकारों की स्थायी नीति बन गया है। सारे देश के लिए अथवा राज्यभर के लिए समान पाठ्य-पुस्तकें तैयार करने की दिशा में प्रयत्न हो रहे हैं। शिक्षा की दृष्टि से यह भी अनुचित है। जब कि पाठ्यक्रम की एकरूपता गलत है, तब पाठ्य पुस्तकों के एक और समान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। भारतीय शिक्षा आयोग (१९६४-६६) ने यद्यपि पाठ्यक्रमों के विषय में कुछ लचीलेपन या अनाग्रह की सिफारिश की है, फिर भी दुर्भाग्य से उसने ऐसे सुझाव भी दिये हैं जो पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें और परीक्षा-पद्धतियों के विषय में केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन देनेवाले हैं, और उनका कार्यान्वय हुआ तो स्थानीय अभिक्रम को स्थान नहीं रहेगा। (पैरा ९-१८ से ९-२२, और पैरा १०-५४ से १०-६३) नेशनल इन्स्टिट्यूट आफ एजुकेशन के द्वारा पाठ्य-पुस्तकें तैयार कराने का अनुभव अच्छा नहीं आया है। स्थानाभाव के कारण मैं उस विषय की विस्तृत चर्चा यहाँ नहीं करूँगा।

शैक्षिक प्रक्रिया

जहाँ तक शाला के अन्दर की पढ़ाई और शैक्षिक प्रक्रिया का सम्बन्ध है, यही कहना होगा कि वह निरकुश तानाशाही और नौकरशाही की ही प्रक्रिया है। ध्यान में रखने की बात है कि देश की सारी राजनैतिक और आर्थिक पद्धति जब नौकरशाही और अफसरी नियंत्रण के अधीन है, तब शाला के अन्दर स्वतंत्रता और लोकतंत्र आ नहीं सकते। यही कारण है कि स्कूल-कालेज हमारे समाज-परिवर्तन के काम में कोई प्रभावकारी योगदान नहीं दे सके हैं।

परीक्षा-पद्धति

सबसे अधिक दुखद पहलू परीक्षा-पद्धति का है। प्राथमिक स्तरों में यद्यपि आन्तरिक परीक्षाएँ होती हैं, फिर भी उच्च स्तरों में तो बाह्य परीक्षा-पद्धति का जोर है। यह भी शिक्षक के अभिक्रम और उत्साह का बहुत हद तक मारक ही है। यह लोकतंत्र के भी सिद्धान्तों के विरुद्ध है, जिसका श्री व्हाइटहेड ने जोरदार शब्दों में समर्थन किया है कि छात्रों का मूल्यांकन करने की अर्हता उसे शिक्षा देनेवाले शिक्षक के अलावा और किसी में नहीं है। जहाँ तक स्तर की एकरूपता का प्रश्न है, यही कहा जा सकता है कि

शिक्षास्तर मे एकरूपता की बात निरा भ्रम है और बाह्य परीक्षाओं से जो स्तर सूचित होता है वह सर्वथा काल्पनिक है, वास्तविक नही और वह सारी शैक्षिक प्रक्रिया को गलत दिशा मे मोडनेवाला है।

इमारत और साधन सामग्रियो के बारे मे केन्द्रीय नियत्रण के हिमायती भी कहते है कि इसका दायित्व स्थानीय जनता पर ही होना चाहिए। लेकिन जब तक अधिकारो मे स्थानीय जनता को शामिल नही किया जाता है तब तक इस तरह के विकेन्द्रीकरण के कोई मानी नही होते।

शिक्षक किसके नियत्रण में रहें ?

प्राय एक सुझाव दिया जाता है और कुछ स्थानो मे उस पर अमल भी होने लगा है कि शिक्षक को सीधे केन्द्र या राज्य सरकार के ही नियत्रण मे रहना चाहिए जिससे शिक्षक स्थानीय राजनीति से बचकर रह सकें और बाकी अधिकार स्थानीय जनता के हाथ मे रहे। यह तो अधूरा उपाय है इससे कुछ भी परिणाम आनेवाला नही है।

शिक्षक को स्थानीय जनता के प्रति गहरा सम्बन्ध और हार्दिक रुचि होनी चाहिए। स्थानीय समुदाय के प्रति उसे जिम्मेवार होना चाहिए। तभी लोग अनुभव करेंगे कि उनके बच्चो को समुचित शिक्षा न मिलने का दोष स्वय उन पर है और तब वे स्कूल को उत्तम ढग से चलाने का प्रयत्न करेंगे। इसका यह अभिप्राय नही है कि सर्वत्र आदर्श स्थानीय समुदाय ही है। ऐसा तो कही देखने मे नही आया। लेकिन इससे अनेक स्थानीय समुदायों को आगे बढने का अवसर मिलेगा जो अपनी जिम्मेवारी के लिए कमर कस लेंगे और अपने बच्चो को उत्तम शिक्षण दिलाने मे पूरे उत्साह और अभिक्रम के साथ जुट जायगे।

अन्त मे शाला निरीक्षण और नियत्रण का प्रश्न रह जाता है। यद्यपि अग्रेज हमारा देश छोडकर चले गये फिर भी उनकी नौकरशाही आज भी हम पर हुकूमत कर रही है। शिक्षा विभागो मे वही पद्धति जारी है। नौकरशाही प्रशासन बहुत महँगा तो है ही इसके अलावा उसमे दक्षता और कार्यक्षमता की जो कल्पना की जाती है वह भी क्षणिक है दिखावटी है स्थायी और गहरी हरगिज नही। श्री चस्टर कहते है विस्तृत नियत्रण मानव-शक्ति की दृष्टि से महँगा है उससे कार्यान्वयन धीमा होता है, नाडियाँ शिथिल होती हैं जो जिम्मेवारी से भागनेवाले होते हैं उनको प्रश्रय मिलता और अन्तत नियत्रतो को पगु और निस्तेज बना देता है।

नौकरशाही का महात्म्य

रूडकी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण मे हमारे प्रधानमत्री ने नौकरशाही के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए कहा कि आज भी देश के प्रशासन मे नौकरशाही छायी हुई है। देश की प्रगति और समृद्धि मे नौकरशाही बड़ी बाधक है। य लोग तो मानो सगमरमर की मीनार पर बैठे हैं, जहाँ इनको नजर चारो ओर से ढँकी है।

आज निरीक्षण की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—एक मे निरीक्षक अधिकारी सरकारी नौकर हैं परन्तु उनकी सेवाएँ स्थानीय संस्थाओ के अधीन होती हैं, दूसरी पद्धति में निरीक्षक अधिकारी सरकारी नौकर हैं और शिक्षा विभाग के निर्देशानुसार काम करते हैं। विकेन्द्रीकरण का तर्कसगत निष्कर्ष यही है कि निरीक्षक अधिकारी पूर्णतया स्थानीय संस्थाओं के ही नियत्रण मे और निर्देश के अधीन होने चाहिए।

वस्तुत विकेन्द्रीकरण अथवा लोकतत्र आज बडे कठिन संघर्ष से गुजर रहा है। पाश्चात्य लोकतत्रो मे भी यत्रो की स्वचालन पद्धति से उत्पन्न जटिलताएँ चन्द लोगो के हाथ मे सत्ता के केन्द्रीकरण को ही प्रोत्साहन देने लगी हैं। व्यक्ति की प्रतिष्ठा की अवहेलना होने लगी है। व्यक्ति के मुकाबिले समाज अथवा राज्य का हाथ ऊँचा हो रहा है। व्यक्ति का स्थान समाज का एक पुर्जा जैसा ही रह गया है। स्थल सेना, वायु सेना, या जल सेना के ही समान शिक्षा भी सरकार के एक हथियार के रूप मे परिवर्तित हो रही है।

मूलभूत प्रश्न

विकेन्द्रीकरण का प्रश्न लोगो के इस महान निर्णय से सम्बद्ध है कि वे लोकतत्र और गुलामी म किसे चुनते हैं, स्वयचालित यत्र संस्कृति और मानवीय श्रम संस्कृति मे किसे पसन्द करते हैं, बृहद् उद्योगों के अर्थशास्त्र और लघु उद्योगों की अर्थनीति म से किसे चाहते हैं। डा० राममनोहर लोहिया ने योजना के सम्बन्ध मे यह जो कहा कि वह केवल दृष्टिकोणो और आँकडों की कसरत नही है, वह जनता का एक आन्दोलन है, वही बात विकेन्द्रीकरण के लिए भी सच है। यदि हम विकेन्द्रीकरण के पक्ष में हैं तो हमे जनता के आन्दोलन मे श्रद्धा रखनी चाहिए।

•

शालेय शिक्षा में कार्यानुभव : विस्तार, प्रभाव और कार्यान्वयन

[कार्यानुभव को लेकर शिक्षा के क्षेत्र में दो ही क्रान्तिकारी विचार पद्धतियाँ आयी हैं—डिवी की योजना पद्धति और गांधीजी की बुनियादी पद्धति। कोठारी आयोग के इस नये शब्द की ज्यों ज्यों व्याख्या हो रही है, यह स्पष्ट होता जा रहा है कि शिक्षा की दृष्टि से वही कार्यानुभव लाभप्रद होगा जिसमें इन दोनों पद्धतियों के लक्षण हों। राष्ट्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् का पाठ्यक्रम और मूल्यांकन विभाग भी अपने सेमिनार में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा और इंडियन काउन्सिल आफ बेसिक एजुकेशन भी इसी मत का है। दोनों ने कोठारी आयोग की इस धारणा की पुष्टि की है। कार्यान्वयन का दर्शन बेसिक शिक्षा के दर्शन के समान ही है। हम इस लेख के द्वारा केवल इतना कहना चाहते हैं कि बेसिक क्राफ्ट से भिन्न कार्यान्वयन की संकल्पना शिक्षा के हित में नहीं होगी।—स०]

इण्डियन काउन्सिल आफ बेसिक एजुकेशन बम्बई का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन ता० २३ से २५ फरवरी ६८ को वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) के सरदार पटेल विश्वविद्यालय में आयोजित हुआ था। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (N C E R T) प्रादेशिक शिक्षा संस्थान प० बंगाल दिल्ली मध्य प्रदेश राजस्थान महाराष्ट्र और गुजरात के स्कूल कालेजों के अट्ठाईस प्रतिनिधि अधिवेशन में आये थे।

अधिवेशन का उद्घाटन सरदार पटेल विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री ईश्वर भाई पटेल ने किया और अध्यक्षता भावनगर के सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री हरभाई त्रिवेदी ने की।

अधिवेशन का मन्तव्य निम्न प्रकार रहा

यह अधिवेशन कोठारी शिक्षा आयोग के प्रति आभारी है कि उसने बुनियादी शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों को दुहराया है, उनका समर्थन किया है और शिक्षा के सभी स्तरों में उन्हें कार्यान्वित करने की सिफारिश की है।

इस काउन्सिल का विश्वास है कि जीवन के द्वारा जन्म से मृत्यु तक जीवन की शिक्षा ही शिक्षा है। प्रसन्नता की बात है कि शिक्षा आयोग ने बुनियादी शिक्षा के इस दृष्टिकोण से विशेष सहमति व्यक्त की है और इसे अपनाने की संस्तुति की है।

१. काउंसिल मानती है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व का—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों अंगों का सुसंगत और समंजस विकास होना चाहिए ताकि वह न्याय, सहकार और शोषणहीनता पर आधारित समतामूलक समाज की स्थापना तथा संचालन में सहायक और सहभागी हो सके।

२. शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए काउंसिल की राय में एक अत्यन्त प्रमुख साधन कार्यानुभव है।

कार्यानुभव का अर्थ प्रचलित पाठ्यक्रम में एक नया विषय जोड़ देना नहीं है, वरन्तु शिक्षार्थी के पूरे शिक्षण का वह एक अभिन्न अंग बनना चाहिए।

३. कार्यानुभव से काउन्सिल का आशय एक ऐसी शारीरिक प्रवृत्ति से है, जो समाज के लिए उपयोगी हो, उत्पादक हो और जिसमें निम्न बातें निहित हों—

(अ) कार्य द्वारा प्रस्तुत समस्या का स्पष्ट भान,
(आ) काम करने की योजना बनाना और अनुरूप साधनों का चुनाव,
(इ) प्रत्यक्ष और विवेकपूर्ण कार्यान्वियन,
(ई) आत्मनिरीक्षण और मूल्यांकन, तथा
(उ) उस मूल्यांकन के आधार पर काम का अधिक उत्तम आयोजन।

४ कार्यानुभव के कारण शिक्षार्थी में उन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित क्षेत्रों में विशेष अभ्यास और कुशलता का विकास होना चाहिए और काम के प्रति अमुक कुछ साधारण प्रवृत्तियों का निर्माण होना चाहिए। ये निम्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं—

(अ) समाजोपयोगी सभी कामों को समान प्रतिष्ठा देना, किसीको उच्च और किसीको नीच न मानना,

(आ) विश्लेषण और प्रयोग के द्वारा साधनो और तकनीकों में सुधार करने को तत्पर रहना

(इ) उत्पन्न वस्तु को बाहर भेजने से पहले यथाशक्ति परिपूर्ण, उपयोगी और सुन्दर बनाने की तत्परता,

(ई) कोई भी काम आरम्भ करने से पहले ठीक से योजना बना लेना,

(उ) नियोजित काम करते समय दूसरो के साथ, टोलियो मे काम करने की इच्छा, अर्थात् सहकार की प्रवृत्ति का निर्माण।

(ऊ) उत्पादक कार्य मे छीजन न होने देना या भरसक कम करना।

५ कार्यानुभव का चुनाव करते समय निम्न बातें दिशादर्शक हो सकती हैं,

(अ) वह जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं—जैसे, अन्न, वस्त्र, आवास, आरोग्य और संस्कृति से सम्बन्ध रखनेवाला होना चाहिए।

(आ) जो भी कार्य चुना जाय, वह ऐसा होना चाहिए जो व्यवस्थित हो, निरन्तर चलनेवाला हो और प्रमाण तथा गुण दोनो पहलुओ से उत्तरोत्तर प्रगति करानेवाला हो। जैसे—बागवानी, भोजन परोसना, बर्त्तन मॉजना, तथा ऐसी ही रसोई से सम्बद्ध अन्यान्य क्रियाएँ तबतक एकांगी ही रहेगी जबतक वे गृहशिल्प से सम्बद्ध नही हो जाती। इसी प्रकार सूत कताई भी जबतक 'पूर्ण कार्यानुभव से यानी वस्त्रविद्या से नही जुड़ती, तबतक एकांगी ही है, और उससे शैक्षिक हेतु सिद्ध नही होता।

६ प्रवृत्तियाँ स्थानीय होनी चाहिए और शाला समुदाय की तात्कालिक आवश्यकता से सम्बन्धित होनी चाहिए।

७ प्रवृत्ति चुनते समय शिक्षार्थी की क्षमता और वृत्ति का ध्यान रखना चाहिए। साथ ही, समाज की उन्नति के लिए किये जानेवाले वे काम कुछ कठिन भी हो, तो भी इस ढंग से चलाने चाहिए कि काम मे रस और आनन्द आये।

८ उत्पन्न वस्तुओं का मूल्य बाजारभाव पर नही, शाला की आवश्यकता की पूर्ति की दृष्टि से निर्धारित करना चाहिए।

९ देश की भयंकर गरीबी, बेकारी, अर्द्धबेकारी और अत्यल्प राष्ट्रीय आय की समस्याओं को देखते हुए काउन्सिल मानती है कि विज्ञान और टेक्नालाजी के आधार पर कार्यानुभव की बढिया प्रणाली मे सुखी जीवन की समस्या हल करने की क्षमता निहित है।

काउन्सिल की दृढ धारणा है कि किसी भी उत्तम शिक्षाप्रणाली को विद्यार्थी मे वैज्ञानिक दृष्टि का निर्माण करनेवाली होनी चाहिए अर्थात् उसे

छात्र में अनवरत मनःशोधन की वृत्ति पैदा करनी चाहिए। साथ ही काउन्सिल की राय है कि कार्यानुभव की योजना लागू करने के लिए जिस टेक्नालाजी की ताईद की जाय, वह निम्न प्रकार होनी चाहिए—

(अ) उत्पादन की प्रक्रिया में काम आनेवाले साधनों और क्रिया उपक्रियाओं को बारीकी से, सूक्ष्म बुद्धि से देखने और समझने की शक्ति शिक्षार्थी में पैदा होनी चाहिए।

(आ) उससे समृद्धि और सुरक्षा देनेवाली अर्थनीति—मुट्ठीभर लोगों के लिए नहीं सबके लिए—फलित होनी चाहिए।

(ई) सृजनशीलता, उत्तरदायित्व तथा व्यक्तिगत और सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा के मूल्यों की स्थापना होनी चाहिए।

१० काउन्सिल को इस बात का भान है कि आज अधिकांश शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षण विषयप्रधान ही है, मगर कहीं कोई प्रवृत्ति जोड़ी गयी है तो भी वह एकांगी विषयों से सम्बद्ध है और उसका मूल्यांकन उन विषयों में प्राप्त योग्यता को जाँचना ही है।

परन्तु काउन्सिल ने प्रथम अनुच्छेद में उल्लिखित उद्देश्यों के अनुरूप यह सुझाव दिया है कि शिक्षा-पद्धति अनुभवप्रधान (एक्सपीरियन्स-ओरिएण्टेड) होनी चाहिए, जिसके अनुसार तृतीय अनुच्छेद में निर्दिष्ट जीवन के पाँच क्षेत्रों के कार्यानुभव का वैज्ञानिक आयोजन और कार्यान्वियन होना चाहिए, जिसके फलस्वरूप तत्सम्बन्धी कुशलता, अभ्यास, दक्षता, जानकारी, वृत्ति और मूल्यांकन की क्षमता विकसित होनी चाहिए। इसलिए शाला का कार्यक्रम कार्यानुभव के अनुबन्ध में आयोजित होना चाहिए और मूल्यांकन शिक्षाकाल में निरन्तर होते रहना चाहिए, जिसमें शिक्षा की सभी उपलब्धियों का समावेश हो।

११ कार्यानुभव की जो रूपरेखा ऊपर प्रस्तुत की गयी है उसके आधार पर, काउन्सिल मानती है कि इसको लागू करने से पाठ्यक्रम में और शाला-संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाना चाहिए। इसके लिए काउन्सिल एक समिति गठित करने की सिफारिश करती है, जो उक्त पाँचों क्षेत्रों के कार्यानुभव की रूपरेखा और समस्याओं का अध्ययन करे, जो आगे पाठ्यक्रम के शोधन सम्बन्धी प्रयोगों का आधार बन सके।

चूँकि उपर्युक्त सभी कार्यक्रम तुरत लागू करना सम्भव नहीं है, बल्कि जहाँ शिक्षक, उनका प्रशिक्षण, अन्य साधन सामग्री आदि उपलब्ध हों ऐसी शालाओं में ही उसकी सम्भावना है अतः काउन्सिल का यह सुझाव है कि

सभी स्कूलो मे, सभी स्तरो मे कार्यानुभव के क्षेत्रो मे निम्नलिखित न्यूनतम प्रवृत्तियाँ लागू की जायें। काउन्सिल की राय है कि जिस किसी संस्था मे कार्यानुभव के लिए सुझाये गये कार्यक्रम अपनाये जायें, वहाँ इस बात का ध्यान रखा जाय कि उसमे उपर्युक्त पाँच क्षेत्रो मे से प्रत्येक के अश समाविष्ट किये जायें। कार्यानुभव के न्यूनतम कार्यक्रम को लागू करते समय शिक्षा संस्थाओ को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उस अनुभव की कुशलता, अभ्यास, जानकारी, मूल्यांकन और वृत्तियों का निकट सम्बन्ध शिक्षा संस्था के सम्पूर्ण शिक्षा-क्रम के साथ होना चाहिए।

यहाँ प्रवृत्तियो की सूची दी जा रही है। इसमे उपलब्ध प्रशिक्षित शिक्षकों और साधन-सामग्रियो के अनुसार वृद्धि की जा सकती है।

अन्न : १ कृषि, २ बागवानी, ३ साग सब्जी पैदा करना; ४ (Piciculture) ५ पशुपालन, ६ शालेय भोजन।

वस्त्र : १ कताई बुनाई, २ सिलाई, ३ रफू आदि करना (कढाई) ४ पोशाक तैयार करना, ५ कसीदाकारी, ६ रगाई छपाई।

आवास : १ गृह निर्माण के काम, २ लकडी का काम, ३ घरेलू वस्तुओ की मरम्मत, ४ औजार बनाना, ५ सफेदी करना, वस्तुओ को रगना या पालिश करना आदि।

स्वास्थ्य : १ सफाई और सजावट, २ शाला मे शुद्ध पेय-जल का प्रबन्ध करना, ३ वर्ग मे स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतो का सामान्य परीक्षण, ४ स्वास्थ्य और सफाई की प्रदर्शिनी लगाना।

संस्कृति : १ शाला मे समारोहो के लिए रगमच, तोरण द्वार वगैरह बनाना, २ शाला को सजाना, सुन्दर बाग लगाना, फूल बाग लगाना, दीवारो की सजावट आदि, ३ खेल कूद का मैदान बनाना, ४ सास्कृतिक प्रदर्शिनियो का आयोजन करना।

(इण्डियन काउन्सिल आफ बेसिक एजुकेशन के चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट)

[पृष्ठ ५२८ से आगे]

प्रमुख हम यह होना चाहिए कि स्वस्थ ज्ञानार्जन तथा औद्योगिक कुशलता प्राप्त करने की दृष्टि से जो भी भाषा अनुकूल हो उसे अपनाने को हम तैयार रहे। सुझाया गया कि राजनीतिक विसवादो से हमे दूर रहना चाहिए।

चर्चा के अन्त में अध्ययन मण्डल के सामने निम्न तीन सुझाव प्रस्तुत किये गये। प्राथमिक दो सुझाव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए और तीसरे के विषय में मतभेद रहा।

१ पूरे समाज के सामान्य ज्ञानार्जन तथा उसकी वृद्धि के लिए शिक्षाक्रम में मातृभाषा की प्रधानता मान्य होनी चाहिए।

२ उच्च स्तरीय औद्योगिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान के लिए हमे ऐसी कोई विदेशी भाषा सीखने को तैयार रहना चाहिए जिसमे पर्याप्त शब्द-भण्डार हो, आधुनिक भाषा प्रवाह से युक्त हो। आज भारत मे वैसी भाषा अंग्रेजी है।

३ अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए तथा अपनी विद्या के विनियोग क्षेत्र के विस्तार के लिए और राष्ट्र की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सर्वसामान्य भारतीय भाषा को अपनाने की आवश्यकता है। तत्वत एक सामान्य भाषा का स्वीकार बहुत उपयोगी होगा। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसी किसी एक भाषा के बारे मे एक राय नहीं बन पायी है। कुछ लोग हिन्दी को सामान्य भाषा के रूप में पसन्द करते हैं दूसरे कुछ लोग केवल अंग्रेजी चाहते हैं। समझौते की दृष्टि से मध्यम मार्ग के रूप मे यह स्वीकार किया गया कि राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार और प्रवृत्तियो के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनो भाषाओं को स्वीकार किया जाय। सुझाव के इस अन्तिम भाग पर मतभेद रहा।

गोष्ठी का संकल्प

बम्बई मे आयोजित प्रथम अखिल भारत विश्वविद्यालय शिक्षक छात्र शिविर में एकत्रित हम भारत के ५८ विश्वविद्यालयो के शिक्षक और छात्र प्रतिनिधि, गभीरतापूर्वक यह घोषणा करते हैं कि

(क) हमारा विश्वास भारत की एकता और अखडता में, भारतीय सविधान मे प्रतिष्ठित लोकतान्त्रिक जीवन-पद्धति एव कानून के शासन तथा धर्मनिरपेक्षता एव साम्प्रदायिक सद्भावना में है, और उनकी रक्षा तथा स्थिरता के लिए हम कटिबद्ध हैं,

तथा, हमारा विश्वास सामाजिक समता एवं आर्थिक न्याय मे है, और कानून के अन्तर्गत, इस दोहर लक्ष्य की प्राप्ति मे अपने राष्ट्र की सहायता करने के लिए हम कटिबद्ध हैं।

(ख) हमारा विश्वास अपने विश्वविद्यालयी जीवन की सभी शैक्षिक या दूसरी समस्याओं को आपस की निष्पक्ष, स्वतन्त्र एवं पूर्ण चर्चाओं द्वारा हल करने और विश्वविद्यालयी शिक्षा के आदर्श लक्ष्य की सर्वतोमुखी प्रगति के लिए समुचित मशीनरी का विकास करने मे है।

(ग) हमारा विश्वास दलगत राजनीति को विश्वविद्यालय के प्रागणो से बाहर रखने तथा राजनीतिक उद्देश्यो के लिए विश्वविद्यालय समाज का उपयोग नही करने के लिए राजनीतिक दलो को समझाने-बुझाने मे है।

(घ) हमारा विश्वास इस बात मे है कि भाषा-समस्या का—यद्यपि इस समस्या म अनेक आयाम जुड गये हैं जिस कारण यह उलझ गयी है और उस पर राजनीतिक रग हावी हो गया है—कोई ऐसा विवेकपूर्ण हल निकालना शिक्षित समाज की सामर्थ्य के बाहर नहीं है, जो (१) भारत की एकता एव अखडता तथा (२) शिक्षा के आदर्श लक्ष्यो के अनुकूल हो, और जो सम्पूर्ण शिक्षित समाज को तथा सम्पूर्ण देश को मान्य हो। साथ ही हम यह भी घोषणा करते हैं कि हम इस दिशा में ईमानदारी से प्रयास करेंगे।

(ङ) इसके अलावा हम यह भी सकल्प करते हैं कि भाषा से सम्बन्धित या विश्वविद्यालयी समाज से सम्बन्धित किसी विचार के समर्थन मे कोई जबर्दस्ती या हिंसा का तरीका न तो अपनायेंगे और न उसका इस्तेमाल करेंगे।

(च) अन्त मे शिक्षित समाज के सदस्य होने के नाते हम घोषणा करते हैं कि हम सबसे पहले भारतीय हैं उसके बाद भी भारतीय हैं और अन्त तक भारतीय हैं, और हम सकल्प करते हैं कि हम अपने व्यक्तिगत एव सामूहिक जीवन मे इस ढग से आचरण करेंगे, जो हमारे अन्य देशवासियों के लिए उदाहरण-स्वरूप होगा।

•

योजना-पाठ-संकेत

वशीधर श्रीवास्तव

[गत अप्रैल के अक में होली की योजना का पाठ सकेत दिया जा चुका है। प्रस्तुत पाठ सकेत उसी क्रम में है।]

दिनाक	कक्षा	समय
१५-:-६२	६	१ घटा २० मिनट

योजना —होली का उत्सव मनाना

उपयोजना —पिचकारी बनाना

सम्बन्धित विषय —साधारण विज्ञान

प्रसग —पिचकारी की कार्य प्रणाली

मुख्य उद्देश्य :१ बच्चो से बांस की पिचकारी बनवाना। २ बच्चो को पिचकारी की कार्यप्रणाली से अवगत कराना।

सहायक सामग्री **क्रिया-सम्बन्धी** १. बांस, पतली लकडी, कपडा, डोरा, कैंची तथा कील। **ज्ञान सम्बन्धी** २. बांस, शीशे तथा पीतल की पिचकारी, गैसजार, पानी, दफ्ती, पिपेट, ड्रापर, रंगीन पानी, पिचकारी की कार्य-प्रणाली दिखानेवाला चार्ट।

पूर्वज्ञान : बच्चे होली-योजना की रूपरेखा तैयार कर चुके हैं। वे जानते हैं कि उन्हें पिचकारी बनाने का कार्य दिया गया है। बच्चे यह भी जानते हैं कि उनकी चारो ओर हवा है, जिसमें वे सांस लेते हैं। प्रत्येक वस्तु म जिसे खाली समझा जाता है, हवा भरी रहती है।

प्रेरणात्मक प्रश्न : १ होली मनाने के लिए तुम्ह कौन-कौनसी तैयारियां करती हैं ? २ पिचकारियां किन चीजो की बनती है ? (आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक बच्चों को पीतल, बांस तथा शीशे की पिचकारियां दिखा-येगा)। ३. कौनसी पिचकारी सस्ती होगी ? ४ बांस की पिचकारी कैसे बनाओगे ? (समस्या)

उद्देश्य-कथन आज हम लोग बाँस की पिचकारी बनाना सीखेंगे। (अध्यापक बाँस की पिचकारी दिखाकर प्रश्न करेगा)

प्रस्तुतीकरण : १ पिचकारी मे पानी कहाँ भरता है ? (बाँस के खोखले मे) २ इस भाग को क्या कहते हैं ? (बेलन) ३ पानी भरने के लिए क्या करते हैं ? (बलन के बीच की लकडी को ऊपर उठाते है) ४ इस लकडी को क्या कहते हैं ? (पिस्टन) ५ पिस्टन के निचले भाग मे क्या लगा है ? (कपडा) ६ इसको क्या कहते हैं ? (वाशर) ७. पिचकारी मे बेलन किस चीज का बनाओगे ? (बाँस का) ८ वाशर किस चीज का बनाओग ? (कपडा लपेटकर) ९ छेद कैसे करोग ? (कील से)

आदर्श-प्रदर्शन अध्यापक बच्चों को अर्द्धचन्द्राकार मे खडा करके एक बाँस की पिचकारी बनाकर दिखायेगा। बीच-बीच मे बच्चों से निम्नांकित प्रश्न भी करेगा। १ पिस्टन बनाने के लिए कितनी लम्बी लकडी लोगे ? २. किस भाग मे कपडा लपेटोगे ? ३ कितना कपडा लपेटोगे ? ४ कम कपडा लपेटने से क्या हानि होग

सामग्री वितरण अध्यापक बच्चो द्वारा प्रत्येक बच्चे को बाँस का टुकडा, पतली लकडी, डोरा, कपडा, कील तथा कैंची दिलवायगा।

क्रियाशीलन : बच्चे बतायी गयी विधि द्वारा पिचकारी बनायेंग। अध्यापक इनके कार्य का निरीक्षण करेगा तथा आवश्यकतानुसार उन्हे व्यक्तिगत सहायता भी देगा।

श्यामपट्ट कार्य १ पिचकारी के भाग (अ) बेलन (ब) पिस्टन (स) वाशर २ बेलन बाँस के टुकडे का बनाया जायगा। ३ पिस्टन पतली लकडी का बनाया जायगा। ४ वाशर कपडा लपेटकर बनाया जायगा। ५ बेलन के निचले भाग मे कील द्वारा छेद किया जायगा।

मूल्यांकन तथा नवीन पाठ की समस्या : १. पिचकारी के कितने भाग होत हैं ? २ पिचकारी में वाशर किस चीज का बनाया ? ३ कपडा कितना लपेटा ? ४ पिस्टन को ऊपर उठाने पर क्या होता है ? ५ पानी पिचकारी में क्या चढ़ता है ?

प्रस्तुतीकरण · प्रयोग न० १

अध्यापक बच्चों को निम्नलिखित प्रयोग करके दिखायगा। (अध्यापक पानी से भरे गैसजार को दफ्ती पर इस प्रकार उलट दगा कि गैसजार मे पानी का कोई बुलबुला न घुसन पाये)

१ दफ्ती नीचे क्यो नही गिरती ?

२ गसजार के अन्दर क्या है ? (पानी)

३ गमजार के मुह पर क्या लगा है ? (दफ्ती)

४ भीतर से दफ्ती पर किसका दवाव पड रहा है ? (पानी का)

५ बाहर से दफ्ती पर किसका दवाव पड रहा है ? (बाहरी हवा का)

६ कौनसा दवाव अधिक है ? (बाहरी हवा का)

७ इसमे दफ्ती पर क्या प्रभाव पडता है ? (बाहरी हवा का दवाव अधिक दफ्ती को ऊपर उठाये रखता है। इस कारण दफ्ती नीचे नही गिरती ।)

प्रयोग न० २

अध्यापक पिपेट को रगीन पानी मे डाल कर प्रश्न करेगा ।

१ इस नली का क्या नाम है ? (पिपेट)

२ बीकर मे क्या है ? (रगीन पानी)

३ पानी पिपट में क्यो नही चढता ?

४ पिपेट के भीतर क्या है ? (हवा)

५ नली के भीतर से पानी पर किस चीज का दवाव पड रहा है ? (बाहरी हवा का)

६ पिपेट के बाहर से पानी पर किस चीज का दवाव पड रहा है ? (बाहरी हवा का)

७ दोनो प्रकार के दवावा मे क्या सम्बन्ध है ? (दोनो बराबर हैं)

८ पानी ऊपर क्यो नही चढता ? (दबाव बराबर होने के कारण)

(अध्यापक पिपेट मे पानी खीचकर दिखायेगा)

१ ऊपर साँस खीचने पर क्या हुआ ? (पानी चढ गया)

२ पानी ऊपर क्यों चढ गया ?

३ पिपेट की नोक कहाँ है ? (पानी मे)

४ हवा ऊपर खींचने पर पिपेट की हवा पर क्या प्रभाव पडता है ? (हवा मुह मे चली जाती है)

५ अब पिपेट के अन्दर हवा का दबाव कसा हो गया ? (कम)

६. बाहरी दबाव कैसा है ? (अधिक)

७ पानी ऊपर क्यो चढ गया ? (बाहरी हवा के अधिक दबाव ने पानी को ऊपर उठा दिया)

८ छेद को अँगूठे से दबाने पर क्या होता है ? (पानी रुक जाता है)

९ पानी क्यो रुक जाता है ? (छेद से बाहरी हवा भीतर नही आने देती)

१० अँगूठा हटाने पर क्या होता है ? (छेद से बाहरी हवा प्रवेश करती है, जो नली के पानी को नीचे दबाती है, अत पानी नीचे गिरता है।)

प्रयोग न० ३

अध्यापक बच्चो को ड्रापर मे पानी चढाकर दिखायेगा।

१ रबर की टोपी को दबाने से टोपी के अन्दर की हवा पर क्या प्रभाव पडता है ? (बाहर निकलती है)

२ यह कैसे ज्ञात होता है ? (पानी मे हवा के बुलबुले उठते हैं)

३. ड्रापर के अन्दर हवा का दवाव कैसा हो गया ? (कम)

४. बाहर हवा का दबाव कैसा है ? (अधिक)

५. टोपी को छोडने पर क्या हुआ ? (ड्रापर का आयतन बढ गया)

६ इससे ड्रापर की हवा पर क्या प्रभाव पडता है ? (ड्रापर के खाली स्थान को भरने के लिए पानी ऊपर चढ गया)

७ पानी ऊपर क्यो चढ गया ? (बाहरी हवा के अधिक दवाव ने पानी को ऊपर उठा दिया)

(अध्यापक पिचकारी की कार्यप्रणाली दिखानेवाला चार्ट बच्चो को दिखायेगा तथा प्रश्न करेगा)

१. पिचकारी की टोटी और पिस्टन के बीच क्या है ? (हवा)

२ पिस्टन ऊपर उठाने पर भीतर के स्थान पर क्या परिवर्तन होता है ? (स्थान बढ जाता है)

३ पिस्टन के भीतर हवा का दबाव कैसा हो गया ? (कम)

४. पिचकारी के बाहर किस चीज का दबाव पड रहा है ? (बाहरी हवा का)

५ यह दबाव कैसा है ? (अधिक)

६ खाली स्थान को भरने के लिए कौनसी वस्तु चढ़ेगी ? (पानी)

७. पानी ऊपर क्यो चढ गया ? (बाहरी हवा के अधिक दबाव ने पानी को ऊपर उठा दिया।)

८. पानी पिस्टन के बाहर क्यो नही निकल जाता ? (पिस्टन के चारो ओर वाशर लगा होता है, जो बेलन से सटा हुआ चलता है।)

९ पिस्टन के नीचे दबाने पर क्या होता है ? (पानी टोटी से बाहर निकलता है।)

१० पानी क्यो गिरता है ?

(पिचकारी मे भरे पानी पर पिस्टन से दबाव पडता है इस कारण पानी बाहर निकलता है)

पुनरावृत्ति :

१ पिचकारी के कौन-कौनसे भाग होते हैं ?

२. पिचकारी मे पानी चढाने के लिए क्या करते हैं ?

३ पिस्टन को ऊपर उठाने पर क्या होता है ?

४ पानी पिचकारी मे कैसे चढता है ?

५ पिचकारी मे वाशर क्यो लगाते हैं ?

श्यामपट्ट कार्य

१ पिचकारी के तीन भाग होते हैं (अ) वेलन (ब) पिस्टन (स) वाशर।

२ पिस्टन को ऊपर उठाने पर टोटी तथा पिस्टन के बीच की हवा फल जाती है। अन्दर का दबाव कम हो जाता है। खाली स्थान को भरने के लिए पानी पिचकारी मे बढ जाता है।

३ वाशर पानी को बाहर नही जाने दता।

कुमारमन्दिर के दो घंटे

काली प्रसाद 'आलोक'

[ग्रामभारती आश्रम ठवलाई द्वारा संचालित कुमारमन्दिर—जहाँ आठवीं तक का शिक्षण दिया जाता है – जो एक प्रयोग की भूमिका लेकर पैदा हुआ और नयी तालीम के प्रकाश में आगे बढ़ा है—जिसे श्री काशिनाथ त्रिवेदी जैसे निष्णात शिक्षाशास्त्री का दिशादर्शन मिला है– वह सन् १९५६ में अस्तित्व में आया था। उसे अभी कुल नौ ही वर्ष हुए हैं – उसीके दो घण्टों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। यह पहला घण्टा एक नूतन सज्जा लिये हुए है। दूसरा घण्टा वस्त्रस्वावलम्बन से सम्बन्ध रखता है। शैक्षणिक प्रयोग और प्राप्ति की दृष्टि से यह लेख 'नयी तालीम' के पाठकों लिए प्रेरणाप्रद होगा। —सम्पादक]

प्रयोग और प्राप्ति

शाला प्रारम्भ होने के पूर्व शाला की प्रार्थना होती है। प्रार्थना के बोल हर दूसरे तीसरे दिन बदलते जाते हैं। कभी कभी एक ही बोल पूरे सप्ताह भी चलते हैं—बोलों का चयन सावधानी से किया जाता है। ऐसे बोल, जो राष्ट्रीय होने पर भी विश्व भावना को अपने में समाहित करते हों—या जो बोल हमारे चरित्र को उन्नत करते हों—हमारी संस्कृति के प्रति अनुरागभरे हों—हमें सही दिशा की ओर ले जानेवाले हों—हमारी इच्छाशक्ति को दृढ़ करनेवाले हों—स्वर्णिम अतीत का सही दिग्दर्शन करानेवाले हों—वे ही चुने जाते हैं और प्रार्थना में बोले जाते हैं। जैसे एक बोल के पूरे पद देखिये —

> "वह शक्ति हमें दो दयानिधे, कर्तव्य-मार्ग पर डट जावें,
> पर सेवा पर उपकार में हम जग-जीवन सफल बना जावें।
> हम दीन दुखी निबलों विकलों के सेवक बन संताप हरें,
> जो हैं अटके, भूले भटके, उनको तारें, खुद तर जावें॥

छल दम्भ द्वेष पाखण्ड झूठ अन्याय से निशिदिन दूर रहें,
जीवन हो शुद्ध सरल अपना शुचि प्रेम सुधा रस बरसावें ॥
निज धर्म कर्म मर्यादा का प्रभु ध्यान रहे, अभिमान रहे,
जिस वसुन्धरा पर जन्म लिया, बलिदान उसी पर हो जावें ॥"

प्रार्थना के बोल के बाद ही 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देवदेव ॥" बोला जाता है और ईश्वर के लिए अपने आपको सर्व-समर्पित किया जाता है। उसके बाद सबके सुखी होने की कामनावाला मन्त्र—'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखमाप्नुयात् ॥"—बोला जाता है। सभी सुखी हों—सभी नीरोग हों—सभी भद्र दिखाई दें—कोई दुखित न हो। हम सभी ऐसी कामना करें कि कोई भी सुख से वंचित न हो—हम एक-दूसरे के सुख को बढावें—कोई रोगग्रस्त न हो—सबका शरीर सुन्दर, सुडौल और बलशाली हो और किसीको भी किसी भी प्रकार का दुख न हो—यदि कोई दुखी हो तो हम उसके दुख को दूर करने का मिलकर प्रयत्न करें।

इस उदात्त कामना के बाद हम शारदा देवी का स्मरण करते हैं— नमस्ते शारदे देवि, सरस्वति मतिप्रदे । प्रसीद मम जिह्वाग्रे, सर्वविद्याप्रदा भव ॥" हे देवि ! हमने जो कामना की है अपनी कृपा से हममें तुम वह स्फुरण दो—हममे विद्याशक्ति जगाओ कि हम अपनी कामना को मूर्त रूप दे सकें। तुम सुबुद्धि देनेवाली हो, हमारे जिह्वाग्र पर स्वय विराजमान होओ और हमें जनकल्याण की दिशा देने के लिए नित नया स्फुरण दो।

उसके बाद बोला जाता है—'ओम् सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओम् शान्ति शान्ति शान्ति ।" गुरु और शिष्य देवी सरस्वती की साक्षी में एक दूसरे के परिपूरक बनते हैं—'हम दोनों एकसाथ मिलकर अपनी विद्या को प्रकाश और गति दें।' गुरु सही दिशा दें—शिष्य उसको कार्यान्वित करें। गुरु शिष्य दोनों एक-दूसरे से प्रीतिपूर्वक सहयोग करके जीवन में सुवास भरें।

फिर एक बच्चा उठता है और हमें अपने कर्तव्य का भान कराता हुआ कहता है—'मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । बालदेवो भव ॥' माता का, पिता का, गुरु का, अतिथि का, बालक का आदर करो। जगत् में कर्म करते हुए अपने धर्म और कर्तव्य का हमेशा ध्यान रखो। माँ—जो स्वर्ग से भी महान है, पिता—जो आकाश से भी ऊँचा है, गुरु—जो

ज्ञान पर पड़े आवरण को दूर करता है अतिथि—जो हमें समय-समय पर कसौटी पर कसता है बालक—जो भगवान का ही वामनरूप होता है—इन सबका आदर करो—सेवा करो—ये सभी देवतुल्य है—देवत्व से परिपूर्ण है। यदि तुम सही माने में मनुष्य बनना चाहते हो तो मनुज में निहित देवत्व को परखो और उन्हें योग्य आदर दो। फिर बच्चा बोलता है और सभी से बोल वाता है— सत्य वद। धर्मं चर। स्वाध्यायात् मा प्रमद। (फिर इनके अर्थ बोले जाते हैं) श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया अदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।'—(फिर इसका अर्थ बोला जाता है।)—अपना काम करो। सत्यभाव से करो। अपने अध्ययन में चूक न होने दो। मनन चिन्तनपूर्वक कर्म करो। जो भी फल प्राप्त हो—उसमें से योग्य पात्रों को दान करो। अर्जित फल में केवल तुम्हारा ही भाग नहीं है। कण-कण में व्याप्त राम को देकर फिर लो। लेकिन राम को कैसे दो? क्या गुस्से से दो? क्या तिरस्कार भाव से दो? नहीं श्रद्धा से दो। श्रद्धा न हो तो न दो। अश्रद्धा की भावना से देना गलत है—हेतु बिगड़ता है। देना है देना चाहिए—देना मेरा धर्म है—मेरी हर वस्तु पर समाज का अधिकार है वैसे ही जैसे कि समाज की हर वस्तु पर मेरा अधिकार है—ऐसा समझकर दो—देना चाहिए। हे गुरुदेव! श्रद्धापूर्वक विद्यादान करो। देना ही तुम्हारा धर्म है। देने के लिए ही तुम्हें मिला है। हे शिष्य! श्रद्धापूर्वक तुम भी अपनी सेवा दान करो। गुरु से प्राप्त ज्ञान का दान करना ही तुम्हारा धर्म है।

फिर अगले मंत्र में इस भाव को और स्पष्ट किया गया है। यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयाताम् महोदधौ। समेत्य च व्यपेयाताम् तद्वत् भूतसमागमः।" हम सब यहाँ केवल कुछ दिन के लिए आये है। हम सभी बच्चे शिक्षक यहाँ कुछ ही दिन मिलकर रह सकेंगे। फिर हरेक को अपने प्राप्त ध्येय की पूर्ति में लगना होगा। गुरु से मिले ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन को तपाना निखारना होगा।

आगे गीता के श्लोक बोले जाते हैं— यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानम् अधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥ परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥" (यहाँ की भूमिका में) भगवान श्रीकृष्ण कहते है—हे गुरु शिष्यो! कर्म-क्षेत्र में जाओ। जहाँ जहाँ तुम्हें कठिनाई आवे मुझे स्मरण करना—मैं उनका निवारण करूँगा। जब जब धरती पर अधर्म बढ़ता है—कठिनाइयों की वृद्धि होती है—धर्म-क्षय होता है—अंधेरा फैल जाता है—प्रकाश की किरण फूट नहीं पाती—तब-तब मैं आकर अंधेरे

को मिटाता हूँ—कठिनाइयाँ दूर करता हूँ और धर्म की प्रतिष्ठा करता हूँ। तुम निर्भय निश्शंक होकर अपने कर्तव्य मे लगो। कठिनाइयो की परवाह न करो—वह मेरे लिए छोड दो।

यहाँ आकर प्रार्थना विधि पूरी होती है। आगे रोज के समाचारो की समीक्षा होती है। विगत दिवस जो समाचार रेडियो से प्रसारित किये जाते हैं उन्हें सकलित करके १ २ ३ ४ मे सक्षेप मे कृष्णपाट पर लिख दिये जाते हैं। बगल मे नुकीली छडी (स्थान बताने के लिए) और जगत् तथा भारत का मानचित्र टगा होता है। बच्चे एक-एक समाचार उठकर पढते है—सम्बन्धित प्रश्न करते हैं—शकाएँ पैदा होती है—उनका निवारण किया जाता है—सम्बन्धित जानकारी दी जाती है—सम्बद्ध व्यक्तियो का परिचय दिया जाता है। इस प्रकार भूगोल-शास्त्र और नागरिक-शास्त्र का प्रत्यक्ष पाठ चलता रहता है। उदाहरणार्थ २२ ४ ६८ का समाचार-समीक्षा प्रस्तुत करता हूँ।

कक्षा ७ के छात्र श्री भानुसिंहजी ने पहला समाचार पढा— मक्सिको मे होनेवाले ओलिम्पिक खेलो मे दक्षिण अफ्रीका को दिया गया आमत्रण वापस ले लिया गया है।" बच्चो ने ओलिम्पिक खेलो का 'ओलिम्पिक' का परिचय पूछा। दक्षिण अफ्रीका को दिया गया आमत्रण क्या वापस गया—इसके कारण जानने की जिज्ञासा बच्चो मे था। उन्हें ओलिम्पिक का और ओलिम्पिक खेलो का परिचय तथा ओलिम्पिक खेलो का इतिहास भी थोडे मे बताया गया। फिर दक्षिण अफ्रीका की रगभेदनीति पर प्रकाश डाला गया। अन्तर्राष्ट्रीय नियमो का उल्लघन करके उसने धोखा दिया—४० देशो ने उससे अपना विरोध प्रकट किया। फलत ओलिम्पिक खेलो की समिति ने दक्षिण अफ्रीका को दिया आमत्रण वापस माँग लिया।

श्री चित्रा बहन ने दूसरा समाचार पढा— कल दस बजे सोवियत प्रधान मत्री श्री अलेक्सेई कोसीगिन कराची से दिल्ली पहुचे। राष्ट्रपतिभवन पर आपने श्री इन्दिरा गाधी से डेढ घटे तक चर्चा की तथा श्री राष्ट्रपति महोदय से चर्चा कर एक बजे मास्को के लिए प्रस्थान किया।" श्री गौतमजी ने पूछा— वे क्या आये थे?" उन्हें बताया गया कि वे विचारो के आदान-प्रदान और आपसी मित्रता बढाने कई पारस्परिक समस्याओ पर चर्चा करने आये थे। उन्होने कहा कि हम अब किसीको युद्धोपयोगी सहायता नही देगा। श्री तुलसारामजी ने पूछा— आजकल श्री भुट्टोजी कहाँ है और क्या करते हैं?" उन्हें श्री भुट्टोजी की स्थिति की जानकारी दी गयी। बीच मे ही हागकाग का प्रसग आ गया। हागकाग की स्थिति नक्शे मे बतायी गयी। इस पर अभी किसका हक

है'—पूछे जाने पर उन्हें बताया गया कि यह अभी ९९ साल के पट्टे पर ब्रिटेन के कब्जे में है। सन् १९९७ में पट्टे की अवधि पूरी होगी। तब यह चीन का हो जायगा।

श्री जितेंद्र कुमारजी ने तीसरा समाचार पढ़ा—'खान अब्दुल गफ्फार खाँ ने कहा—'पख्तूनिस्तान पाकिस्तान से अलग होकर ही रहूँगा फिर उसे हिंसा का ही सहारा क्यों न लेना पड़े।' खान साहब का परिचय दिया गया—उनकी सेना खुदाई खिदमतगार की जानकारी देते हुए पख्तूनिस्तान लेने विषयक उनके विचार व्यक्त किये गये। एक लड़के ने पूछा—"जब वे सीमा के गांधी कहे जाते हैं तो उन्होंने ऐसा क्या कहा कि हम जरूरत पड़ने पर हिंसा का भी आश्रय ले सकते हैं? गांधीजी ने तो हिंसा के बारे में कभी सोचा भी नहीं था।" बात पते की पूछी गयी थी। पाकिस्तान का उनके प्रति रवैये का जिक्र करते हुए उन्हें समझाया गया कि क्यों एक शान्त आदमी भी अधिक दबाव के कारण अपना सन्तुलन खो बैठता है और अपनी नीति भी बदलने को मजबूर हो जाता है।

श्री विश्रामजी ने चौथा समाचार पढ़ा—'दक्षिण अफ्रीका से लन्दन जाने वाला एक विमान १२२ यात्रियों समेत टूटकर नष्ट हो गया। ७ आदमी बचाये जा सके।" इस पर किसीने कोई प्रश्न नहीं किया।

श्री उदय कुमारजी ५ वाँ समाचार पढ़ते हैं—'अल्जीरिया की सहायता से लुधियाना में ६ करोड़ की पूँजी से ट्रैक्टर का कारखाना खुला।" अल्जीरिया की और लुधियाना की स्थिति नक्शे में बतायी गयी। ट्रैक्टर आज की खेती के लिए कितना महत्व रखता है—यह बताया गया।

श्री भारतसिंहजी ने गोरखपुर में स्थापित होनेवाला खाद का कारखाना वाला छठा समाचार पढ़ा। बच्चों ने पूछा—'अपने देश में और कहाँ कहाँ खाद के कारखाने कायम हुए हैं?' उन्हें सिन्दरी, नांगल आदि स्थानों की जानकारी दी गयी।

श्री भोलूसिंहजी ने अगला समाचार पढ़ा—'खावड़ा के निकट कच्छ फैसला-विरोधी आन्दोलन में सौ से अधिक सत्याग्रही पकड़े गये, जिन्हें उसी दिन अलग-अलग स्थानों पर ले जाकर छोड़ दिया गया।"—बच्चों को कच्छ की स्थिति—सन्' ६५ में हुए भारत पाक-संघर्ष की जानकारी—फिर कच्छ फैसले के लिए मामला को न्यायाधिकरण को देने की विषयक बातें बतायी गयीं। फिर बताया गया कि न्यायाधिकरण का फैसला कुछ लोगों को मान्य नहीं है इस कारण वे इसके विरोध में सत्याग्रह कर रहे हैं। पश्चात् बच्चों को धारा १४४ का परिचय दिया गया। कच्छ का जिलामुख्यालय भुज को नक्शे में बताया गया।

इसी प्रकार उस दिन के उन बारहों समाचारों पर एक-एक कर विचार हुआ। बच्चों को सम्बन्धित जानकारी दी गयी—उनकी जिज्ञासा की पूर्ति की गयी।

समाचार समीक्षा के बाद यदि कोई रोचक संस्मरण सुनाने का अवसर होता है, तो वह सुनाया जाता है। कोई अतिथि आता है या अपने साथियों मे से ही कोई लम्बे प्रवास पर से आता है तो उसका यात्रा-वर्णन सुना जाता है। अतिथि का शाला की दृष्टि से, शाला की ओर से इसी समय अभिनन्दन होता है।

फिर सभी शान्तचित्त बैठ जाते हैं। बच्चों को प्रेरित करनेवाले गीत गाये जाते हैं। ये गीत सर्व बोधगम्य और स्वर-ताल-लय से निबद्ध होते है। कभी-कभी तो ४ ६ की टोली भी मिलकर पहले से तैयारी करके रखती है। और समाचारों की समीक्षा हो चुकने के बाद गाती है। गीतों का एक नमूना ध्यान देने लायक है

"उठो बालको कदम बढ़ाओ, ले लो कर पतवार रे।
तुम हो देश के वीर सिपाही, तुम्हें देश से प्यार रे,
तुम इसके खेवनहार रे ॥
तेरे बल पौरुष पर निर्भर, अनल अनिल का जीवन यौवन,
तेरी इच्छाओं पर आश्रित अम्बर का तूफानी गर्जन।
दिशा दिशा में शोर मचाये तेरा क्रान्ति विचार रे ॥ तू इसके खेवन ॥
रवि शशि तुममें ज्योति होते, तुममें पारावार गरजता,
तुमसे दीपित है यह जीवन, आशाओं का ज्वार उफनता।
हिम्मत की सिढ़ी पर चढ़कर मुक्त करो सब द्वार रे ॥ तुम इसके खेवन ॥
विजय-मुकुट लेकर हाथों में हिमगिरि तेरा स्वागत करता,
चरण चूमती अष्ट सिद्धियाँ सागर तेरा पानी भरता।
तेरे पथ में फूल बिछाते जगती के करतार रे ॥ तुम इसके खेवन० ॥
अमल विमल तुम नभ को कर दो, सुधासिक्त सब जग हो जाय,
सबका अन्तर सुरभि बिखेर, मुकुल मुकुल विकसे मुस्काये।
तेरी प्रतिभा तुममें चमके, तू ही देश आधार रे ॥ तुम इसके खेवनहार रे ॥

प्रेरक गीतो क बाद सभी उठकर, अनुशासनबद्ध होकर राष्ट्रगीत गाते हैं। फिर 'भारत माता की जय' का तीन बार उद्घोष होता है और शाला का यह सामूहिक पहला घंटा समाप्त होता है।

ग्रामभारती आश्रम, टवलाई
वाया-मनावर, जि० धार (मध्यप्रदेश)

वर्ष १६
अंक १२
मूल्य ५० पैसा

अनुक्रम

जुलाई '६८

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित अमल कुमार बसु,
इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी-२ मे मुद्रित।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष १६
अक १२
मूल्य ५० पैसा

अनुक्रम

जुलाई '६८

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का
- रचनाओ म व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा सघ की ओर से
इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी-२

अगस्त
१९६७

नयी तालीम : जुलाई '६८
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल १७२३

राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति

प्रधान केंद्र
राजघाट कालोनी, नई दिल्ली १
फोन २७६१०५

अध्यक्ष	डा० जाकिर हुसेन राष्ट्रपति
उपाध्यक्ष	श्री वी० वी० गिरि उपराष्ट्रपति
अध्यक्ष कार्यकारिणी	श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान मंत्री
मंत्री	श्री आर० आर० दिवाकर

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति

अध्यक्ष	श्री मनमोहन चौधरी
मंत्री	श्री पूर्णचन्द्र जैन

गांधीजी के जन्म के १०० वर्ष २ अक्तूबर, १९६९ को पूरे होंगे। आइए आप और हम इस शुभ दिन के पूर्व

- देश के गाँव-गाँव और घर-घर में गांधीजी का सन्देश पहुँचायें
- लोगों को समझायें कि गांधीजी क्या चाहते थे।
- व्यापक प्रचार करें कि विनोबाजी भी भूदान-ग्रामदान द्वारा गांधीजी के काम को ही आगे बढ़ा रहे हैं।

यह सब आप हम कैसे करेंगे ?

- यह समझने-समझाने के लिए रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति ने विभिन्न प्रकार के फोल्डर, पोस्टर, पुस्तक-पुस्तकादि, सामग्री प्रकाशित की है। इसे आप पढ़ें और दूसरों को भी पढ़ने को दें।
- इस सब सामग्री और विशेष जानकारी के लिए उपसमिति के नीचे दिये गये जयपुर कार्यालय से पत्र-व्यवहार करें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति
टुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरो
जयपुर ३ (राजस्थान)
फोन ७२६८३

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमन्दिर वाराणसी

शिक्षक और शिक्षामंत्री

अभी कुछ दिन पहले की बात है। समाजसेवियों की एक गोष्ठी हो रही थी। गम्भीर गोष्ठी थी। उसमे एक बडे शिक्षामत्री भी आये थे। नाम के मंत्री नही थे, बल्कि अपने राज्य म प्रभाव रखनेवाले, लोकप्रिय, कर्मठ, शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन की बात सोचनेवाले थे। चर्चा क सिलसिले मे अपने राज्य की शिक्षा और शिक्षको के बारे मे उन्होने जो बाते बतायी उनमे से कुछ ये हैं

१ 'मैं देखता हूँ कि जब शिक्षका से शिक्षा-आयोग की सिफारिशो और शिक्षा म सुधार की बात होती है तो वे वतन के सिवाय दूसरी किसी सिफारिश पर रुचि और उत्साह के साथ चर्चा नही करते। रुचि तो अलग रही, आयोग ने स्कूलो म काम के अनुभव (वर्कएक्सपीरियंस) के बारे म जो सुझाव दिया है वह तो उन्हे जैसे बेकार-सा लगता है।'

२ 'अभी एक बहुत बडी शिक्षा सस्था मे उपद्रव हुआ था। मैंने सीनियर अधिकारियो-द्वारा उसकी जाँच करायी। उनका कहना था कि अगर कालेज के बारह प्रोफेसर निकाल दिये जायँ तो बारह वर्ष तक शान्ति की गारटी रहेगी, और अगर उनके पाँच मुख्य अगुआ निकाल दिये जायँ तो कम से कम पाँच वर्षों तक कोई उपद्रव नहीं होगा। उनके रहते हुए *शान्ति असम्भव लगती है।'*

वर्ष : सोलह
•
अंक-एक

३. 'जहाँ विश्वविद्यालय है वहाँ सबसे अधिक अशान्ति रहती है। कुछ शिक्षक तो गुण्डे विद्यार्थियों को बाकायदा पालते हैं। उन्हें लाठी, भाला, छूरा आदि देते है। इम्तहान में नकल कराते हैं। पैसे की मदद करते हैं, और जरूरत पड़ने पर अपने विरोधी शिक्षकों, विद्यार्थियों या स्वयं अधिकारियों के विरुद्ध उनका इस्तेमाल करते हैं। उनका ऐसा जबरदस्त गुट रहता है, कि कोई कुछ बोल नही सकता।'

४. 'ऐसे शिक्षकों की संख्या बहुत कम है जिन्हें शिक्षण में रुचि है और जो सुधार के लिए खुद कुछ काम करने को तैयार हैं। ऐसी हालत मे मैं समझ नही पाता कि शिक्षा मे सुधार कैसे होगा।'

जिन मंत्रीजी ने ये बातें कही उन्हें शिक्षक आमतौर पर इज्जत की निगाह से देखते हैं। मैंने देखा कि उनके दिल में शिक्षक के लिए आदर का भाव है और जब वह गोष्ठी के सामने ये बातें कह रहे थे तो उनके शब्दों से गहरी चिन्ता प्रकट हो रही थी। अन्त मे कहते-कहते उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि, 'अगर दो-चार साल के अन्दर यह शिक्षा नहीं बदलती तो जहाँ तक मैं देख पा रहा हूँ इस देश को बचाने की कोई आशा नही रह जायगी।

ऐसी बातें मैंने किसी जिम्मेदार आदमी के मुँह से पहले कभी नहीं सुनी थीं। शिक्षा के अपने लम्बे अनुभव से जानता तो था कि विद्यालयों मे क्या-क्या होता है लेकिन यह नहीं सोचता था कि सचमुच शिक्षा की दुनिया यहाँ तक पहुँच गयी है। मालूम नही देश के दूसरे भागों में भी यही हाल है या कुछ दूसरा। इतना जाहिर है कि शिक्षा को लेकर क्या बड़े और क्या छोटे, सब समान रूप से चिन्तित है। शिक्षक खुद चिन्तित हैं क्योंकि उनके भी बच्चे हैं जिनके भविष्य के बारे मे पिता की हैसियत से उन्हें सोचना पड़ता है।

कितना अच्छा होता अगर शिक्षा के बारे में चिन्ता सबसे पहले शिक्षकों की ओर से प्रकट की जाती! लेकिन ऐसा नही हो रहा है। और विश्वविद्यालय का 'प्रोफेसर' तो सुनना भी नही चाहता कि उसमे भी घुन लग गया है। मजे की बात यह है कि जब इस तरह की चर्चा छिड़ती है तो विश्वविद्यालय कालेजों को दोषी बताते हैं, कालेजवाले सारा पाप स्कूल वालों के मत्थे मढ़ते हैं, और स्कूल वाले अपनी जगह यह कहकर निकल जाते हैं: 'क्या करें, परिवारों और समाज का

वातावरण इतना खराब है कि हम विद्यार्थियो को कितना सुधार सकते हैं। २४ घंटो मे विद्यार्थी मुश्किल से हमारे यहां ५-६ घंटे ही तो रहते हैं। वह भी साल मे कितने दिन ?'

यह सही है कि जो बुराइयाँ हैं उनकी जड दूर तक फैली हुई हैं। कुछ भी हो हमारे विद्यालय तर्क देकर अपनी जिम्मेदारी से बरी नहीं हो सकते। लेकिन कोई विद्यालय अपनी जिम्मदारी निभा नही सकता अगर उसके शिक्षक इस तरह बिगड गये हो। दुख इस बात का है कि स्वयं शिक्षक यह नही देख रहे हैं कि उनके घर मे उनके ही चिराग से आग लग गयी है, और उनकी अपनी ओर से आग बुझाने की कोशिश नहीं हो रही है।

क्या शिक्षक मित्र यह सोचते हैं कि समाज म उनकी प्रतिष्ठा तेजी मे केवल इसलिए गिर रही है कि उन्हे कम वेतन मिलता है ? कम वेतन की शिकायत कम-से-कम विश्वविद्यालय का शिक्षक तो नही कर सकता। लेकिन उसका भी क्या हाल है ?

शिक्षा की बात आने पर शिक्षक बराबर यह कहकर अपनी मजबूरी जता देते हैं कि वे क्या करे, सरकारी विद्यालयो म अफसरो की मर्जी से काम होता है, और गैर सरकारी विद्यालयो म मैनेजर की। यह कहना गलत नही है, लेकिन शिक्षक आज पहले से कही अधिक संगठित है। कौसिल में उनके प्रतिनिधि हैं। कुछ भी हो, समाज मे उनका कुछ स्थान अभी भी बचा हुआ है। कुल मिलाकर ऐसी बात नही है कि अगर वह शिक्षा मे बुनियादी परिवर्तन की बात कहे तो उसकी कही हुई बात पूरी की पूरी अनसुनी कर दी जायगी। सरकार भले ही तुरत न सुने, लेकिन समाज तो सुनेगा जिसे अपने बच्चो की चिन्ता है। क्या शिक्षको के संगठन अपने सदस्यो स कुछ नही कह सकते ? वे कहना चाहते भी हैं ?

क्या यह मान लिया जाय कि शिक्षा के मामले मे भी राजनीति शिक्षा से अधिक प्रगतिशील है ? आखिर क्या समझा जाय ? इससे भिन्न समझने का प्रमाण शिक्षको की ओर से मिलना चाहिए। इतना निश्चित है कि अगर राजनीति आगे निकल गयी तो न शिक्षा का कोई भविष्य है, न शिक्षक का। फिर तो शिक्षा राजनीति की दासी होगी और शिक्षक नेता का दासानुदास।

—राममूर्ति

अणुबम बनाना न नैतिक न व्यावहारिक

जयप्रकाश नारायण

- क्या हम अपना बम बना सकते हैं ? यदि हाँ तो कितना शीघ्र, कितनी संख्या में, और किस किस्म व कितनी क्षमता के ?
- यदि हम बम बनाने में सफल हो जायँ तो उसके आर्थिक और राजनीतिक परिणाम क्या होंगे ?
- राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान रखते हुए बम बनाना कहाँ तक अनिवार्य है ? उत्तर इस लेख में पढ़ें। सं०

भारत स्वयं अपना अणुबम बनाये या नहीं, इस प्रश्न के नैतिक और व्यावहारिक दो पहलू हो सकते हैं। नैतिकता के आधार पर विचार करने पर अणुबम से अधिक अनैतिक अस्त्र कोई हो सकता है यह सोचना कठिन है। जिस अस्त्र में लाखों मानवों को क्षणभर में खाक में मिलाने की क्षमता हो जो पूरी पृथ्वी को विषाक्त कर दे और गर्भस्थ पीढ़ी को विकृत और बरबाद कर दे वह नैतिक नहीं हो सकता।

दुर्भाग्यवश मानव का विकास अभी तक इतना नहीं हो पाया है जिससे प्रमुख कार्यरत मनुष्य की समझ में यह आ सके कि जो नैतिक है वह प्रमुख रूप से व्यावहारिक भी है। इस देश में, विशेष रूप से इस समय नैतिकता के आधार पर सोचने की कीमत गिर गया है। एक ऐसा मानस बना हुआ है कि राजनीति और नैतिकता को जोड़ना मूर्खता माना जाता है।

राजनीति का आधार नैतिकता

थोड़ा-सा भी सोचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि राजनीति को यदि नैतिकता से अलग कर दिया जाय तो उसका पतन असंयमित उत्पीडन, भ्रष्टाचार स्वार्थपरता तथा इनसे भी और गिरे हुए रूपों के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। वास्तव में नैतिकता पर ही राजनीति आधारित है। इस देश के चिरवांछित आदर्शों में से प्रत्येक—जनतंत्र, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद, न्याय व शान्ति—मूलतः नैतिक विचार ही है। यदि हमारे राष्ट्रीय जीवन में से नैतिकता

रुटा ली जाय तो फिर इन आदर्शों के पीछे जाने के लिए और कौन से अनिवार्य कारण रह जायेंगे ?

कुछ लोग अवश्य ऐसे हैं जिनकी मान्यता है कि राष्ट्रीय कार्यों में राजनीति का आधार नैतिकता हो। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में वे इसे मूर्खों की नहीं तो भोले लोगों की कल्पना की उडान मात्र मानते हैं। यहाँ भी यदि हम थोडा विचार करें तो स्पष्ट होगा कि यदि हम इस मान्यता को स्वीकार कर लें तो विश्व में शान्ति और न्याय की कोई आशा शेष नहीं रहेगी।

व्यावहारिक पहलू से सोचें तो इस विषय में सार्वजनिक चर्चा छेडने में सबसे बडी कठिनाई सम्बन्धित जानकारी के अभाव की आती है। सरकार इस विषय पर आवश्यकता से अधिक गोपनीयता अपनाये हुए है। फिर भी जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर मैं तीन प्रश्नों पर विचार करूँगा। पहला प्रश्न है कि क्या हम अपना बम बना सकते हैं ? यदि हाँ तो कितना शीघ्र, कितनी संख्या में और किस किस्म व कितनी क्षमता के ? दूसरा प्रश्न है---यदि हम बम बनाने में सफल हो जायें तो उसके आर्थिक और राजनैतिक परिणाम क्या होंगे ? और तीसरा है कि राष्ट्रीय सुरक्षा का ध्यान रखते हुए बम बनाना कहाँ तक अनिवार्य है ?

हम बम बना सकते हैं ?

पहले हम प्रथम प्रश्न को ही लें। अधिकृत रूप से यह कहा गया है कि हम १८ माह की छोटी अवधि में ही बम तैयार कर सकते हैं। यह हमारी अणु-सम्बन्धित क्षमता का अनुमान अधिक है बनिस्बत हमारी बम बनाने की सम्भावना के। कारण यह है कि हमारी मौजूदा क्षमता गम्भीर रूप से कनाडा और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सहायता की शर्तों पर आधारित है, जो कि उन्होंने हमारे वर्तमान तीन 'रियेक्टरों' को स्थापित करते समय की थीं। उनमें से एक शर्त यह है कि जो अणु शक्ति हम उत्पादित करेंगे उसका उपयोग केवल शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए हो। यदि चाहें तो हम यह शर्त तोड सकते हैं परन्तु तब विश्व में देश की नैतिक अप्रतिष्ठा के अलावा हमें उसके अन्य परिणामों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए जो कि बहुत कुछ गम्भीर ही होंगे। हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि हम विदेशी सहायता के बिना ही अपनी स्वतंत्र अणु शक्ति-योजना का आरम्भ करें। परन्तु उपलब्ध जानकारी के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमें कम-से-कम पाँच वर्ष साधारण प्लूटोनियम बम तैयार करने में लग जायेंगे जिनकी

कि फौजी उपयोगिता बहुत नही होगी। अधिक आधुनिक बम, जैसे कि यूरेनियम से तैयार हुए हैं उनके बनाने की क्षमता के लिए तो हम लम्बे अर्से तक साधनो के अभाव के कारण अयोग्य ही सिद्ध होगे।

बम बनाने के आर्थिक और राजनीतिक परिणाम

अब दूसरा प्रश्न लें। भारत के द्वारा अपना बम बनाने के राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक सम्भावित परिणामो का जिक्र मैंने कर ही दिया है। अणु अस्त्र विरोधी आन्दोलन मे अधिक समय से भारत के अग्रणी होने के कारण यदि अब वह उस ओर से अपना मुँह फेर ले तो उसकी क्या नैतिक प्रतिष्ठा रहेगी? इस बारे मे विस्तार से कहने की आवश्यकता नही है। परन्तु आर्थिक और राजनीतिक परिणाम अभी आम लोगो मे अधिक स्पष्ट नही है। हमे यह ध्यान मे रखना चाहिए कि न केवल अमेरिका और ब्रिटेन ही अणु अस्त्रो के विस्तार के विरोधी हैं बल्कि रूस भी उसका विरोधी है। अतः इसमे कोई शक नही कि हमारे इस कार्य के सम्बन्ध मे वे बहुत गम्भीर रुख अपनायेंगे। इन देशो जो कि हम प्रमुख रूप से सहायता देनेवाले हैं, की ओर से हम आर्थिक सहायता पूर्ण रूप से बन्द हो सकती है। और, राजनीतिक दृष्टि से भारत बुरी तरह से एकाकी कर दिया जायगा। थोड़े से बम यदि हम बना भी लेंगे तो ऐसी स्थिति मे वे हमारी क्या सहायता कर सकेंगे, यह समझना कठिन है।

बम बनाना अनिवार्य है?

अन्तिम प्रश्न यह है कि वास्तव मे अपनी सुरक्षा के लिए क्या हम बम की आवश्यकता है भी? इस प्रश्न पर हम (अ) चीन और (ब) सामान्य विश्व की स्थिति के सन्दर्भ मे विचार कर सकते हैं। पहले हम सामान्य विश्व की स्थिति को लें। इसमे कोई शक नही यदि जनतन्त्रवादी भारत जो कि अपनी श्रद्धा प्रजातन्त्र, सहअस्तित्व और शान्ति मे घोषित करता है और जो लगातार अणु अस्त्रो का विरोध करता रहा, अन्त मे अपने सिद्धान्त से डिग जाता है और अणु-शस्त्र की दौड मे शामिल हो जाता है तो प्रत्येक देश, जिसमे रत्ती भर भी अणु शक्ति उत्पादन की सामर्थ्य होगी वह भी इस दौड मे शामिल हो जायगा। पाकिस्तान तो अवश्य ही उनमे से सर्वप्रथम होगा। इस प्रश्न पर विचार करने वाले इस बात से सहमत हैं कि अणु अस्त्रो के फैलाव से विश्व की असुरक्षा बेहद बढ जायगी जिससे अणु युद्ध लगभग अनिवार्य हो जायगा। स्वभावतः भारत का खतरा, जितना आज है उससे कही अधिक हो जायगा।

चीन के बम का खतरा नहीं

जहाँ तक चीन के बम से खतरा है उसके बारे में प्रश्न है कि क्या चीन भारत पर अणु अस्त्र का हमला करना चाहता है और क्या वह इतना साहस करेगा ? मैं नहीं समझता कि चीन के कम्यूनिस्ट क्यों भारत को एक विस्तृत श्मशान बनाना चाहेंगे, न मैं यह समझ सकता हूँ कि इससे उन्हें क्या मिलेगा। जहाँ तक मैं समझता हूँ चीन का बम एक अधिक कूटनीतिक उद्देश्य के लिए है जो कि बजाय फौजी के राजनीतिक है। यदि हम भयभीत हो गये और बम बनाने में हमने जल्दबाजी की तो इस प्रकार हम चीन के राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति ही करेंगे। हमारा अणु अस्त्र का शस्त्रागार इतना विशाल हो जाय कि वह चीन के लिए प्रतिबन्धक रूप में सिद्ध हो, इसके लिए बहुत समय लगेगा। इस बीच चीन हमारी भयाकुलता का लाभ उठायगा और उस उपरोक्त आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति का भी फायदा उठायगा जो अणु बम बनाने के कारण हमारी होगी।

चीन अपना बम हमारे विरुद्ध प्रयोग करने का साहस करेगा कि नहीं, इस प्रश्न का उत्तर देना बाकी रह गया है। मेरे मन में यह बिलकुल साफ है कि चीन कभी भी इतनी मूर्खता की बात नहीं करेगा। यू० एस० ए० उसका तुरत बदला लेगा और सम्भवतः वह चीन के कुछ अणु-अस्त्रों के कारखाना को तबाह कर देगा। मुझे यकीन है कि उस समय रूस अपनी उँगली भी अमेरिका की ओर नहीं उठायगा, यह अलग बात है कि कैसी भी भाषा का प्रयोग वह अमरीका के विरुद्ध करे। मैं यह निष्कर्ष अमेरिका या रूस के सम्बन्ध में उनकी जन हितकारी वृद्धि के आधार पर नहीं निकाल रहा हूँ बल्कि शक्ति-सन्तुलन-सम्बन्धी स्पष्ट वास्तविकताओं के आधार पर। इस प्रकार वास्तविक प्रतिरोधक शक्ति जो चीन के बम के विरोध में काम कर रही है वह है यू० एस० ए० (अमेरिका) और यू० एस० एस० आर० (रूस) की शक्ति।

●

अणुबम और भारत

[भारत के आणविक-प्रधान डा० विक्रम ए० साराभाई ने बम्बई के पत्रकार सम्मेलन में १ जून १९६६ को पत्रकार के जिन प्रश्नों का उत्तर दिया था उनमें से तीन प्रश्नों को हम यहाँ दे रहे हैं। सं०]

प्रश्न : अणु बम के बारे में आपके क्या विचार है ?

उत्तर : यदि मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर ऐसी प्रस्तावना के साथ दूँ जो सीधा उत्तर न हो तो बुरा मत मानिए। मेरा ख्याल है कि हम पहले अपने-आपसे यह पूछें कि हमें अणु बम चाहिए किसलिए ? एक बात तो स्पष्ट है कि यह एक ऐसा लक्ष्य प्राप्त करने का साधन मात्र है जो हमारा नहीं हो सकता। अणु बम ने हिरोशिमा तथा नागासाकी में जो भयंकर नुकसान किया उससे सभी लोग भयभीत हो उठे। मैं नहीं समझता कि लोग ऐसी भयंकर चीज के साथ जीना पसन्द करेंगे। किन्तु यह सच है कि हम सब को अपनी सुरक्षा की चिन्ता होती है। और मुझे लगता है कि प्रत्येक मनुष्य को तथा राष्ट्र को अपनी सुरक्षा की चिन्ता करनी ही चाहिए। हमें यह देखना चाहिए कि किसी राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा उसकी सभ्यता का अतिक्रमण न हो। पर यहाँ मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ कि जिस प्रकार हमारी सुरक्षा को बाहर के आक्रमण से खतरा है वैसे ही उसे भीतर से भी हो सकता है। मुझे लगता है कि यदि हम देश को आर्थिक विकास की गति कायम न रख सके तो बहुत ही गम्भीर कठिनाइयों का अनुभव करेंगे और भारत की एकता नष्ट होगी। इसलिए जब हम सुरक्षा की बात करते है तो हमें देश के बाहर तथा भीतर के आक्रमणों का विचार करना चाहिए। यह भी सोचना चाहिए कि हम देश के विकास तथा सैनिक सुरक्षा के बीच कैसे सन्तुलन रख सकते हैं ? राष्ट्रीय विकास तथा सुरक्षा के लिए हम कहाँ तक विदेशी सहायता पर निर्भर रह सकते हैं ? यही कठिन प्रश्न आज हमारे सामने है। समस्या यह है कि हम देश के साधन-स्रोत के उत्पादन तथा समाज-कल्याण के लिए प्रयोग करें या सैनिक सुरक्षा के लिए ?

जो लोग सैनिक नीति से परिचित हैं वे यह जानते हैं कि कागज का शेर हमारी रक्षा नहीं कर सकता। इसका यह मतलब हुआ कि हम अपनी सैनिक-

शक्ति के बारे मे किसी को ठग नही सकते। यदि हम यह चाहते है कि हम अपनी रक्षा अणुबम-द्वारा कर सकें जैसे कि रूस तथा अमेरिका कर सकते है, तथा शत्रु हमारे अस्त्रों के कारण हम पर आक्रमण न करे, तो यह केवल एक बम विस्फोट से नही होगा। इसके लिए सम्पूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमे प्रक्षेप्यास्त्र, दूर तक जानेवाले क्षेपणीय अस्त्र होने चाहिएँ। इसके लिए रेडार आवश्यक होगा। विशेष प्रकार के धातु तथा वैद्युदणु सम्बन्धी (इलेक्ट्रोनिक्स) उद्योग का विकास करना होगा तथा औद्योगिक समाज की नींव रखनी होगी। यह सब हम कैसे कर सकते हैं ? ऐसी बात तो नही है कि वैज्ञानिक एक नमूना आपके सामने रख दे और फिर तुरत ही हमे आणविक सुरक्षा मिल जाय। उसके लिए तो देश की समूची सम्पत्ति लगानी होगी और बहुत से धन की जरूरत होगी। इसलिए जब हम सोचते है कि हमे बम बनाना है तो उसमे व्यय का प्रश्न उचित नही है। इसका सम्बन्ध तो अधिक महत्वपूर्ण बातो से है। आप मुझसे यह पूछ सकते है कि दो गज कपडे की क्या कीमत होगी ? किन्तु दो गज कपडा तब तक नही बन सकता जब तक आपके पास उसे बनाने के लिए करघा, मिल अथवा कोई अन्य साधन न हो। उसी प्रकार यदि हम अपनी रक्षा अमेरिका तथा रूस की भांति परमाणु-अस्त्रो से करना चाहते हैं तो उसके लिए कितना व्यय होगा, यह आप जानते ही है। वे अपना पैसा समुद्र मे तो फेंक नही रहे है। उस सैनिक व्यवस्था पर ही खर्च कर रहे हैं। और उनका व्यय शतश: अरबो मे हो रहा है। मुझे लगता है कि हम कितना धन लगा सकते हैं, यह सोचकर ही इस पर विचार करें। मैं प्रधान मन्त्री से पूर्णतया सहमत हूँ कि केवल बम विस्फोट से हमारी सुरक्षा नही बढ सकती।

प्रश्न : क्या हम परमाणु बम बना सकते हैं ?

उत्तर : यह भी इसी बात पर निर्भर करता है कि हम इसमे कहाँ तक शक्ति लगा सकते हैं। इसमे राजनीतिक निर्णय की आवश्यकता है और सामाजिक निर्णय की भी। यदि आप परमाणु सुरक्षा की बात सोच रहे हैं तो मैं आप को स्पष्ट ही बता दूं कि इसमे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। और इसके लिए आपको ४०० ५०० अरब डालर खर्च करने को तैयार होना चाहिए। लेकिन वह दूसरी बात है।

प्रश्न : हमारे आत्मविश्वास का क्या होगा ?

उत्तर : आत्मविश्वास का प्रश्न बहुत ही अच्छा है। मुझे लगता है कि प्रत्येक राष्ट्र को स्वाभिमानी होना चाहिए और अपना सिर ऊँचा रखना

चाहिए। मैं इसे बहुत जरूरी समझता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि हमारे लोगों मे यह धारणा फैली हुई है कि हमारे पड़ोसी हमसे आगे बढ गये हैं। पर मैं यह मानता हूँ कि हमें ठोस प्रगति करनी चाहिए। ऐसी प्रगति जिससे सारे देश का कल्याण हो। बम-जैसी निरर्थक चीज हमे नही चाहिए। हमारी प्रगति सचाई पर आधारित होनी चाहिए, केवल दिखावे के लिए नहीं। यदि आप देश में आत्म-विश्वास की भावना चाहते हैं तो वह दिखावटी प्रगति पर अधिक दिनों नही टिक सकती। विज्ञान तथा उद्योगविद्या केवल आणविक क्षेत्र मे ही नही, बल्कि देश के विकास के लिए कई क्षेत्रों में उन्नति कर सकती है।

हम चाहे वैज्ञानिक हो या नही, हमे इस कार्य मे जुट जाना चाहिए। इस प्रकार हम बाहर के आक्रमण से तथा भीतरी तनावों से अपनी सुरक्षा कर सकते हैं। ●

●

जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, अणुबम ने मनुष्य-जाति की ऊँची-से-ऊँची भावनाएँ, जो उसे युगों से टिकाये चली आ रही हैं, खतम कर डाली हैं। पुराने जमाने में लड़ाई के कुछ ऐसे कानून जरूर होते थे, जो लड़ाई को कुछ बरदाश्त करने लायक बनाते थे। अब हम उसका असली रूप देख रहे हैं। आज जोर-जबरदस्ती को छोड़कर लड़ाई का दूसरा कोई कानून ही नही है। अणुबम ने मित्र राज्यों को एक खोखली जीत तो दी, पर साथ ही उसने थोड़े समय के लिए तो जापान की आत्मा का खून कर दिया है। लेकिन नाश करनेवाले राष्ट्र की आत्मा का क्या हाल हुआ, यह कहना आज कठिन है। कुदरत किस तरह अपना काम करती है, यह समझना आज कठिन है। अणुबम की इस अत्यन्त करुण कहानी से हमे पाठ तो यह सीखना है कि जिस तरह हिंसा से हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता, उसी तरह एक बम को दूसरे बम से नहीं मिटाया जा सकता।

—गांधीजी

भारत और अणुबम

चीन ने अपना पहला अणुबम विस्फोट कर अणुअस्त्र क्लब मे प्रवेश किया है। क्या भारत को भी वैसा करना चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले परमाणु अस्त्रों के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

विध्वंसक शक्ति

पदार्थ के सूक्ष्मतम कोष परमाणु का स्फोट करने (अणुबम) या दो परमाणुओ के विगलन (हाइड्रोजन बम) से प्रचंड शक्ति निकलती है। उस शक्ति से ऐसे भयानक शस्त्र बनाये गये हैं कि जिनकी विध्वंसक शक्ति की कल्पना भी न की जा सके।

पिछले महायुद्ध में इस्तेमाल होनेवाले परम्परागत बम मे सामान्यतः एक टन विस्फोटक द्रव्य रहता था। हिरोशिमा पर गिराये गये प्रथम अणुबम मे इससे २०,००० गुनी विस्फोटक शक्ति थी और आजकल का साधारण परमाणु बम उस अणुबम से भी १,००० गुनी विध्वंसक शक्ति रखता है। यानी दूसरे विश्वयुद्ध मे इस्तेमाल होनेवाले औसत बम से आजकल के औसत परमाणु बम मे २ करोड गुनी विध्वंसक शक्ति होती है।

विस्फोट, प्रलयानल और रेडियेशन

ऊपर बताये आंकडे सिर्फ प्राथमिक स्फोट से सम्बन्धित हैं। किसी नगर पर बम गिरते ही अनेक मीलों तक सामेट इस्पात का इमारतों को तोडता हुआ और लाखों लोगों को मारता हुआ एक स्फोट होता है। फिर अनेक मीलों तक व्याप्त प्रचंड प्रलयानल उठता है जो आकाश मे अनेक मीलों तक ऊपर चढता है और वह सैकडों से हजारों वर्गमील के क्षेत्र को आग लगा देता है।

आग की धधक इतनी जल्दी आती है कि पलक मारने का भी समय नहीं बच पाता और उसकी ज्वाला इतनी प्रखर होती है कि दो सौ तीन सौ मील दूर से देखनेवाले की आँखें भी इस देखकर अंधी हो सकती हैं। इसके बाद एक ऐसी घटना घटती है जिसे 'आग का तूफान' कहा जाता है। आग के कारण

इतनी जोरो स हवा चलती है कि इससे आग की आंधी-सी चलने लगती है जो कि वातावरण का सारा प्राणवायु जला देती है और जमीन क बहुत नीचे छिपे लोगो को भी प्राणवायु के अभाव म घाट डालती है।

रेडियो एक्टिविटी (किरणोत्सर्ग)

परमाणु के हर स्फोट म बहुत बड प्रमाण मे पदार्थ रेडियो एक्टिव होते है जो कि किसी भी प्राणवान चीज क लिए खतरनाक है। आजकल तो वैज्ञानिक लोग छोट छोटे रेडिया एक्टिव पदार्थों को भी बहुत डरते व सम्हलते हुए छूत पकडते हैं। लेकिन परमाणु स्फोट स ऐसे खतरनाक हजारो टन पदार्थ व्यापक क्षेत्र मे बिखरते है और वातावरण के वायु प्रवाहो-द्वारा सारी दुनिया मे फैल जाते है। रेडियो एक्टिव पदार्थों की किरणें ईंट की दीवार या मनुष्य के शरीर जैसी चीजो मे घुस जाती हैं। उसस जीवन का तीन तरह से नुकसान होता है

१ शरीर क कोषो का तुरत नाश हो जाना, जिससे 'रेडियेशन' रोग होता है। इस बीमारी से पहल बाल या दाँत गिर जाते है और कुछ घटो या दिनो म मनुष्य मर जाता है।

२ किरणोत्सर्गी (रेडियो एक्टिव) पदार्थ शरीर म घुसने के बाद हड्डो मे सगृहीत होने है और उससे रक्त का कैन्सर (ल्युकमिया) होता है। उसमे मनुष्य वर्षो तक पीडित होते हुए मरता है। आज हिरोशिमा की दुर्घटना के बीस साल बाद भी वहा के लोग अणुबम क कारण हुए रोगो स मर रहे है।

३ किरणोत्सर्ग (रेडियेशन) के कारण रक्तकोषो की रचना मे परिवर्तन होता है और उसके कारण मनुष्य की भावी सन्तानो को नुकसान होने की सम्भावना रहती है। आज भी हिरोशिमा की माताएँ ऐसे बच्चो को जन्म देती है जो मनुष्य शरीर से कम मिलते-जुलत है। किसी के ललाट मे एक बडी चौरस आंख होती है, किसी के पैर पूँछ जैसे होते हैं किसी के मासिक अवयव ही नही होते, कोई मरा पैदा होता है कोइ जन्म क समय से पागल होता है। एक वैज्ञानिक ने यह गणना की है कि उस बम के दुष्परिणाम शायद ३० पीढी के बाद मिटने शुरू होगे।

अणुबम के परीक्षण से पैदा होनेवाली किरणोत्सर्गी (रेडियो एक्टिव) भस्म भी अनियन्त्रित रूप से गिरती है। गुप्त रूप से जलनेवाली यह भस्म वातावरण मे सैकडा मील ऊपर उडती है और फिर पवन पर सवार होकर वह

बहता है। वह कहाँ जायगी और किसकी हड्डियों में उसका किरणें घुसेंगी, यह इस चीज पर निर्भर रहता है कि उस समय हवा किस तरफ बह रही है। मनुष्य अपने-आप ही के साथ मौत का खेल खेलता है और अपने-आप को निर्जीव और लाचार बनाता है। चीन के अणु परीक्षण की किरणोत्सर्गी भस्म इस समय हवा चढा रूस, अफगानिस्तान पाकिस्तान या भारत पर गिर रही होगी। अभी उसका ठीक-ठीक पता नहीं चला है। इन सारे दुष्परिणामों के अलावा कुछ मनोवैज्ञानिक बुराइयाँ भी आती हैं जिनका अन्दाज हो नहीं हो सकता।

हर अणुअस्त्र में ये सारी विध्वंसक शक्तियाँ भरी पड़ी रहती है। अणुबम दुनिया के बड़े राष्ट्रों द्वारा इकट्ठे किये जा रहे हैं। इन देशों के पास बम को झट में ले जाने के लिये मिसाइल्स हैं जो बटन दबाते ही छूटने की तैयारी में खड़े रहते हैं और परमाणुबम गिराने वाले हवाई जहाज लगातार आकाश में मडरा रहे हैं जो किसी भी समय 'प्रत्याक्रमण' करने को प्रस्तुत हैं। आज मनुष्य के पास इतने शस्त्र मौजूद हैं वह कि जगत के जीव मात्र जिसमें वह स्वयं भी शामिल है, को अनेक बार नष्ट कर सकता है। (इस विषय में अंदाज ४ से ४० बार तक के लगाये जाते हैं। लेकिन एक बार जीवमात्र को नष्ट करने का पागलपन ही काफी है।)

परीक्षण

इतनी सारी शक्यता उन परीक्षणों के कारण हुई है जो वातावरण में रेगिस्तान में या समुद्र में किये जाते हैं। रेडिएशन के कारण होनेवाले नुकसान में ऊपर जो २ और ३ नंबर के नुकसान बताये गये है वे सिर्फ युद्ध के समय ही नहीं, बल्कि परीक्षण के कारण भी होते हैं। इस प्रकार आज वातावरण में पहले की अपेक्षा कहीं अधिक किरणोत्सर्गी छूट भरी पड़ी है और चुपके से वह ऊपर बताये दुष्कृत्य कर ही रही है। विश्व विख्यात नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक लाइनस पौलिंग का अनुमान है कि इन परीक्षणों के कारण डेढ़ करोड़ बच्चे मरे पैदा होंगे या विकृत होंगे। हर परीक्षण के साथ यह अन्दाज बढ़ता जाता है।

चीन का बम

१ रूस के साथ चीन के बिगड़ते हुए सम्बन्धों के कारण उसके लिए एक स्वतंत्र अणुशक्ति बनना आवश्यक बन जाता है।

२. चीन अनुमान करता है कि अणुशस्त्र बढ़ाने से दूसरे अणुशक्ति वाले राष्ट्रों के बीच उसे मान्यता मिलेगी और संयुक्त राष्ट्रसंघ में उसे स्थान मिलेगा।

३ बम के कारण शायद एशिया में अपना प्रभाव बढ़ाने के चीन के प्रयत्नों में वजन आयेगा।

४ बम को एक प्रतिष्ठा का चिन्ह माना गया है।

अणुशस्त्र बढ़ाने से चीन को क्या नुकसान होगा ?

१. अणुअस्त्र बनाने का आर्थिक बोझ विशेषकर आरम्भ की अवस्था में भयकर है। चीन अपनी राष्ट्रिय अर्थ-रचना का भयानक होम देते हुए इसे बढ़ा सकता है। यह कहा जाता है कि बम बनाने का खर्च इतना होगा कि लोग नंगे घूमेंगे।

२. अणुशस्त्रों के खिलाफ आज दुनिया में जो सख्त विरोध है (जो दुनिया की अधिकांश निषेध संधि से जान पड़ता है) उससे चीन के परीक्षण से दुनिया के अधिकांश देशों में उसकी इज्जत घटेगी।

३. वर्तमान अणुअस्त्रधारी सत्ता (अमरीका) से सीधे संघर्ष की सम्भावना बढ़ेगी।

४. इसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति अस्थिर बनेगी और विश्वशान्ति को खतरा होगा।

५. दुनिया की तरह चीन की जनता को भी परीक्षण के कारण रेडियो एक्टिविटी बढ़ने का नुकसान भुगतना पड़ेगा।

भारत की भूमिका

भारत इस परिस्थिति में अणुअस्त्र न बनाने तथा अणुअस्त्र सत्ता से संधि न करने का स्पष्ट संकल्प कर चुका है। यह नीति स्वर्गीय प्रधानमंत्री नेहरूजी ने बनायी थी और प्रधानमंत्री शास्त्री उसका अनुसरण कर रहे थे। यह निरी भावनावादी नीति नहीं है। यह राजनीतिक वास्तविकता और नैतिक मूल्यों को ध्यान में रखकर बनायी गयी नीति है और इसी नीति के कारण भारत विश्व-शान्ति में सबसे बड़ा योगदान दे सकेगा तथा अपना संरक्षण भी कर सकेगा।

भारत अणुबम बनाने से इनकार क्यों करे ?

१. चीन का बम प्रधानतः मिलिटरी बम नहीं अपितु राजनीतिक बम है। उसकी उपेक्षा करने से मुख्य उद्देश्य व्यर्थ जायगा।

२ अणुअस्त्र बनाने के लिए चीन के पास जो कारण हैं वे भारत के पास नहीं हैं। भारत के मन मे कोई साम्राज्यवादी आकांक्षा नहीं है और जगत् के मन मे भी भारत के लिए कोई सैनिकसत्ता का नहीं बल्कि शांतिकामी राष्ट्र ही का चित्र है।

३ भारत चीन के अणु आक्रमण के खिलाफ प्रत्याक्रमण भी करे तो भी उससे भारत की प्रजा बच नहीं सकती। वरन् रेडियो एक्टिव भस्मपात का खतरा भारत की भूमि पर बढ जायगा।

४ उसके कारण चीन द्वारा विश्वमत को ठुकराने की चीन की नीति को समर्थन मिल जायगा।

५ भारत यदि अणुअस्त्र न बनाय तो चीन के पास भारत पर अणु-आक्रमण करने का कोई बहाना नहीं रहेगा। और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव भी उसके खिलाफ जायगा।

६ इस प्रकार यदि भारत-चीन के बीच पारस्परिक युद्ध छिड जाये तो भी उस युद्ध के अणुयुद्ध मे परिणत होने की सम्भावना कम हो जायगी।

७ भारत के उदाहरण के कारण दूसरे देश जो अणुअस्त्र बनाने के बारे में सोच रहे हैं उन्हे मार्गदर्शन मिलेगा। इस प्रकार विश्व शान्ति की सेवा होगी।

८ अणुअस्त्र के लिए कोई राजनीतिक नैतिक या मानवीय कारण नहीं। इन अस्त्रों से पूरी मानवता पर भयानक असर होता है। उसके विनाश की और अनियंत्रित यातना की सम्भावना होती है। आदमी चाहे तो खुद मर सकता है लेकिन किसी को पूरी मानवता को मौत के मुँह मे ढकेलने का अधिकार नहीं है।

९ जो नुकसान अणुअस्त्र बनाने से चीन को हैं वे सारे-के-सारे भारत का भी लागू होते हैं।

अणुअस्त्र और उनके परिणामों के बारे में ऊपर जो बताया गया उससे स्पष्ट है कि हमारा तात्कालिक कर्तव्य अणु अस्त्र-मुक्त नीति का समर्थन करना है। हमें अपना सुर प्रधानमंत्री और सरकार के अभी के सुर में मिलाना चाहिए और भारत को विश्व को अणुअस्त्रों द्वारा होनेवाले विनाश से बचाने में सहायता करना चाहिए।

अखिल भारत शांतिसेना मण्डल, राजघाट वाराणसी द्वारा प्रसारित

●

शिक्षण-विचार

विनोबा

शिक्षक

● भारत की परम्परा मे शिक्षक का यानी आचार्य का स्थान सबसे श्रेष्ठ रहा है। राज्य से उसे सारी सुविधा मिलती थी और शिक्षण के विषय मे उसे पूरी आजादी थी कि क्या शिक्षण देना है और कैसे देना है।

शिक्षक मार्गदर्शक था,—मातृवित् था।

● आज वह गुरु नही है, नौकर है। उससे आज कोई सलाह लेने नही आता।

● उसको स्वतत्रता और मुक्तचितन का पथप्रदर्शक बनना चाहिए। उसे सरकार का गुलाम नही बनना चाहिए।

● शिक्षक नयी समाज-रचना का निर्माता है, नये मूल्यो की स्थापना के लिए सामाजिक और नैतिक क्राति लाने वाला है।

● शिक्षक को स्वच्छ और सादा जीवन का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। उसे सब प्रकार के व्यसनो से मुक्त रहना चाहिए और अध्ययन परायण होना चाहिए।

● बच्चो को जो उद्योग सिखाना हो, उसमे उसे (शिक्षक को) प्रवीण होना चाहिए। उसे स्वावलम्बी और उद्योग मे आस्थावान् होना चाहिए। वह बच्चो के साथ बच्चा बनता है तो अपने काम मे अधिक यशस्वी होगा।

● शिक्षक और छात्र दोनो को एक साथ मिलकर काम करना चाहिए।

● शिक्षक को किसी राजनीतिक पक्ष के साथ जुड़ना नही चाहिए। लेकिन उसे राजनीतिशास्त्र तथा राजनैतिक समस्याओ का पूरा ज्ञान होना चाहिए।

● शिक्षक को गाँव में बच्चे का शिक्षक ही नहीं रहना है, बल्कि ग्राम-शिक्षक की हैसियत हासिल करनी चाहिए।

● यदि शिक्षक अपने को किसी राजनैतिक पक्ष के अनुशासन में नहीं रखते हैं और स्वतंत्र अपनी हैसियत रखते है तो वे राज्य का आकार दे सकते है और राज्य बना सकते हैं।

● शिक्षक गाँव का अग्रणी है, ग्रामणी है। गाँव का नेता है, नौकर नहीं। शिक्षक को गाँव का मित्र, सलाहकार और पथप्रदर्शक बनना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि गाँव का कोई मुकदमा गाँव से बाहर, अदालतों में जाने ही न दे। उसके माध्यम से गाववालों को रामराज्य का अनुभव आना चाहिए।

● शिक्षक को गाँव की ओर से जमीन का एक टुकडा मिलना चाहिए और उसे उस जमीन में खेती करनी चाहिए, वह और उसका पूरा परिवार शाला का एक अंग बनना चाहिए। शिक्षक की पत्नी को भी पति के काम में हिस्सा लेना चाहिए।

● सब शिक्षकों का वेतन-स्तर समान होना चाहिए।

● शिक्षक को बच्चों के साथ के काम में दो घंटा, गाँव के लिए दो घंटा, खेत में दो घंटा काम करना चाहिए।

● वानप्रस्थ पुरुष उत्तम शिक्षक है।

● शाला कालेजों में ऐसे वानप्रस्थ व्यक्तियों को प्राध्यापक नियुक्त करना चाहिए जो राजनीति, उद्योग, व्यापार आदि विषयों में अच्छे अनुभवी है। नये और अनुभव शून्य युवकों को प्राध्यापक नहीं बनाना चाहिए।

● वानप्रस्थ पुरुष को और उसकी स्त्री को, दोनों को शिक्षक का काम करना चाहिए।

● नयी तालीम के शिक्षक को विद्यार्थी निष्ठ होना चाहिए, विद्यार्थी को विद्या निष्ठ होना चाहिए और दोनों को सेवा तथा ज्ञान निष्ठ होना चाहिए।

● केवल कुछ विषय पढा देनेवाला ही शिक्षक नहीं है। उत्तम शिक्षक अधिक से अधिक पाँच या दस बच्चों को पढा सकता है। ५० या सौ छात्रों की कक्षा तो भीड़ ही है।

● अच्छे अनुभवी और सर्वोत्तम शिक्षकों को प्राथमिक शिक्षण का काम करना चाहिए।

शिक्षण का माध्यम और भाषा

● शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए, विदेशी भाषा नहीं।

● अंग्रेजी माध्यम को अपनाने के कारण बहुत नुकसान हुआ है।

● कुछ लोग ऊँची कक्षाओं में जरूर अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास करें और विश्व से अपने देश का सम्पर्क बनायें।

● जिसको अपनी मातृ भाषा का ज्ञान बढ़िया है विदेशी भाषा वही अच्छी तरह सीख सकेगा।

● प्रादेशिक भाषा का भी ज्ञान होना चाहिए।

पाठ्य क्रम

● **शरीर के लिए**—खुली हवा में उद्योग, अदल बदल कर दिन भर कुछ न कुछ काम। खेल हित एवं मित आहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या निसर्गोपचार का ज्ञान और तदनुसार उचित आचरण।

● **वाणी के लिए**—स्वच्छ उच्चारण से पढ़ना, अर्थ का सामान्य ज्ञान वाचन वाक्य प्रकाशन और सत्य प्रिय, संयत वाणी का अनुभव।

● **मन के लिए**—व्यवहार वर्त्ताव कैसा हो सबके लिये उपयोगी कैसे बनें? देहेंद्रिय पर अंकुश कैसे रखें हम देह से भिन्न हैं—इन बातों का ज्ञान, अड़ोस-पड़ोस के समाज की और सृष्टि की जरूरी जानकारी।

●

बिहार की बुनियादी संस्थाओं का पुनर्गठन

तारकेश्वर प्रसाद सिंह

हाल मे शिक्षा आयोग ने भारत के भविष्य की शिक्षा के बारे मे एक बहुत बडा सुझाव दिया है। सुझाव यह है कि शिक्षा को काम द्वारा अनुभव प्राप्त करने का साधन बनाना देश की आर्थिक समृद्धि की दृष्टि से श्रेयस्कर होगा। इसको दूसरा नाम 'उद्योग केन्द्रित शिक्षा' भी दिया जा सकता है।

नयी तालीम मुख्यत. उत्पादक-कार्य केन्द्रित शिक्षा ही है। बच्चे विभिन्न प्रकार के उत्पादक कार्य-द्वारा शैक्षिक अनुभव प्राप्त करते हैं। विद्यालय के विभिन्न प्रकार के काम तरह-तरह की प्राकृतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों मे होते हैं। इन परिस्थितियों मे बच्चे शैक्षिक अनुभव प्राप्त करते है।

आज भी बिहार मे ५२० बुनियादी संस्थाएँ चल रही है। प्राथमिक संस्थाओं का पाठ्यक्रम भी अनुकूलित है। प्रशिक्षण-केन्द्रों के पाठ्य क्रम भी नयी तालीम के सिद्धान्तो पर आधारित हैं। फिर भी ये संस्थाएँ शिक्षा शास्त्रियों तथा जनता के भीतर विश्वास क्यों नहीं पैदा कर रही है, यह सोचने की बात है।

किसी समय बिहार की नयी तालीम की संस्थाएँ समूचे भारत के लिए आदर्श मानी गयी थी। फिर प्रश्न उठता है कि बिहार की संस्थाओं की दशा क्यों दिनों दिन बिगडती चली जा रही है।

कहना नहीं होगा कि बिहार की बुनियादी संस्थाओं के बिगड़ने का मुख्य कारण है इसके विभिन्न स्तर के कार्यकर्ताओं मे नयी तालीम के दर्शन का अभाव। सन् १९५० से बिहार में नयी तालीम का स्तर उत्तरोत्तर गिरता जा रहा है। आज बिहार की नयी तालीम उद्योग केन्द्रित शिक्षा नहीं रह गयी है, क्योंकि उद्योग की न तो बुनियादी शालाओं मे और न प्रशिक्षण केन्द्रों में ही पूरी व्यवस्था हो रही है। बौद्धिक तथ्यों से पाठ्य क्रम बोझिल बना दिया गया है। परीक्षा मे उस पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है। उद्योग की जाँच गौण कर दी गयी है। उद्योग का समय भी बहुत घटा दिया गया है। उद्योग चलाने के लिए समय पर अनुदान भी नहीं दिये जाते हैं। बिहार की बुनियादी शिक्षा में लगभग २० वर्षों तक काम करने से मेरा यह विश्वास बना है कि बिहार की बुनियादी संस्थाएँ काम द्वारा अनुभव प्राप्त करने की आदर्श इकाइयाँ बनायी जा सकती हैं। किन्तु इसके लिए यह जरूरी होगा कि उद्योग का समय बढाया जाय। प्रथम वर्ग मे एक

घटे, दूसरे तीसरे मे दो घटे, तीसरे-चौथे मे ढाई घटे, पाँचवें से लेकर छठे वर्ग, सर्वोदय हाई स्कूल तथा प्रशिक्षण-केन्द्रा मे 'मूल उद्योग' के लिए तीन-तीन घटे का समय रहना जरूरी है। जब तक उद्योग मे प्रवीणता नही आयगी तब तक शिक्षा काम द्वारा अनुभव प्राप्त करने का रूप नही धारण कर सकती। काम मे जितना ही अभ्यास होगा उतनी ही शैक्षिक सम्भावनाएँ उपस्थित होगी। अभ्यास-क्रम के बौद्धिक स्तर के बोझ को कुछ हल्का किया जा सकता है क्योकि आज के युग मे सामान्य-ज्ञान की अधिक जरूरत है।

बुनियादी शालाओ से निकलनेवाले छात्रों को सर्वोदय हाई स्कूल मे प्रवेश पाने की प्राथमिकता देनी चाहिए और सर्वोदय हाई स्कूल से निकले हुए छात्रो को प्रशिक्षण केन्द्रो मे भर्ती करने मे प्राथमिकता देनी चाहिए। इसी प्रकार ग्रामीण प्रतिष्ठान से निकले हुए छात्रों को प्रशिक्षण महाविद्यालय मे भर्ती होने की प्राथमिकता होनी चाहिए। मैं यह भी मानता हूँ कि समाज-सेवा के विभाग—जैसे शिक्षा-विभाग, सहकारिता विभाग, पंचायत विभाग, लघु उद्योग आदि मे नयी तालीम प्राप्त किए हुए छात्र विभिन्न पदो पर बहाल किये जायँगे तो वे अधिक उपयोगी साबित होंगे। लघु उद्योगों का विशेष शिक्षण देने के बाद अधिकाश छात्रा को अनुदान देकर देहातो मे लघु उद्योग चलाये जा सकते है।

बिहार की बुनियादी संस्थाओ को पुनर्जीवित करने के लिए निम्नांकित कदम उठाये जा सकते है —

१. निर्माण की अवधि मे (सन् १९३८ से १९७९ तक) सचिवालय से जितने परिपत्र जारी किये गये हैं उनका फिर से अध्ययन किया जाय और उनके अनुभव के आधार पर नये परिपत्र जारी किये जायँ।

२. प्रत्येक प्रकार की सस्थाओ को समय पर उचित अनुदान दिया जाय। उत्पादन की हुई वस्तुओ के आशिक रूप से छात्रो को उपयोग करने का मौका मिलना चाहिए, किन्तु सस्था का इतना धर्म होना चाहिए कि सरकारी कोष से जितने रुपये लिए जाते हो उतने लौटा दें।

३. प्रशिक्षण-केन्द्रों के लिए चालू पूँजी की व्यवस्था की जाय।

४. नयी तालीम की सस्थाओ मे काम करनेवालो का चयन करते समय ऐसे लोगो को अवसर देना चाहिए जिनकी नयी तालीम के शिक्षा-दर्शन में आस्था हो। छात्रो मे यदि श्रम की निष्ठा जगानी है तो आवश्यक है कि शिक्षक ऐसे हो जिनकी श्रम मे भरपूर दिलचस्पी हो। ●

यौन-शिक्षण

तलत निसार अख्तर

मेरे एक मित्र अपने शान्त स्वभाव के लिए काफी मशहूर हैं। उनको आमतौर पर आपे से बाहर होते हुए किसी ने नहीं देखा था। उस दिन मैंने देखा कि अपने ४-५ साल के मुन्ने को बेहिसाब धमका रहे थे और इस क़दर डाँट रहे थे कि मुझे अपनी आंखों पर यकीन नहीं हुआ। उनके लिए वह गैर-मामूली बात थी।

दो दिन बाद जब वह गरमी रह नहीं गयी थी, मैंने जानकारी की। मालूम हुआ कि मुन्ने की माँ ने मुन्ने की शिकायत की थी कि मुन्ना और पड़ोस का बबलू दोनों मिलकर सीढ़ियों पर अकेले में अपनी जननेन्द्रिय से खेल रहे थे।

यह ऐसा गुनाह था कि शान्त स्वभाववाले उन मित्र को भी बेकाबू होना पड़ा। उनकी डाट फटकार से मुन्ना खूब रोया। उसका पीला जर्द चेहरा, बदन की वह कँपकँपी, और उसकी उदास अपराधी सूरत देखकर कलेजा मुँह को आता था।

× × ×

पड़ोस की बेबी मुश्किल से ६-७ साल की होगी। मुझसे खूब हिलमिल गयी है। मेरे पास अकसर आती है। इधर-उधर की बातें किया करती है। उस दिन आयी तो उसके चेहरे से मालूम हो रहा था कि वह कुछ नयी बात बताने को उत्सुक है।

खुद मैंने उससे पूछा नहीं, तो उससे रहा नहीं गया। वही खुद बताने लगी। आरम्भ ही उसने इस ढंग से किया कि मुझे हँसी आ रही थी। वह बोली—'भाईजी, वह जो सरोज है न, बड़ी गन्दी है। उसकी बात मैं आपसे नहीं बताऊँगी।'

मैं समझ रहा था कि वह गन्दी बात बताने के लिए किस क़दर उतावली है। मैंने पूछा—'ऐसी कौन सी बात है? वह तो बड़ी भली लड़की है?'

'बताऊँ? वह बड़ी गन्दी है। खराब बात कहती है।'

लगभग ५-१० मिनट बेबी इसी तरह घुमा फिरा कर गन्दी, खराब, ये दो शब्द दुहराये जा रही थी, लेकिन मुद्दे की बात उसके मुँह से निकल नहीं पा

रही थी। काफी पूछताछ करने के बाद, यद्यपि वह बहुत साफ कुछ बोल न सकी, तो भी इतना मालूम हुआ कि जननेन्द्रिय सम्बन्धी ही कुछ बात है।

इतना तो स्पष्ट दीख ही रहा था कि यौन-सम्बन्धी बातों के बारे में वह कुछ भी जानती नहीं है लेकिन उसके संस्कार में यह बात पक्की हो गयी है कि 'गन्दी बात' है, खराब बात है।

× × ×

कई माताओं को मैं जानता हूँ कि जब उनका बच्चा उनसे सहज पूछ बैठता है कि 'माँ, मैं कहाँ से आया ?' तो इस सवाल से वे चकरा जाती हैं, ऐसी 'फूहड़ बात' करने की सजा के तौर पर बच्चे को अक्सर पीट भी देती हैं।

असल में न जानती नहीं है कि ऐसे सवालों का जवाब क्या दें। जो जानती है, यानी जो सच है वह बताने की उनमें हिम्मत नहीं होती, क्योंकि वह 'गन्दी बात' है।

कौन नहीं जानता कि छोटे बच्चों में नयी-नयी बातें जानने की जबरदस्त इच्छा होती है और वह कुदरती है। बच्चे तो न मालूम कैसी कैसी बातें पूछते रहते है। पहले हर चीज का नाम वे जानना चाहते है। कुछ उम्र हो जाने के बाद हर बात का कारण जानना चाहते है। ये सवाल भी उनके लिए सहज है कि रात अँधेरी क्यों होती है ? तितली उड़ती कैसे है ?

समझदार माता पिता जानते हैं कि बच्चों के सवालों का यथासम्भव सीधा, सही और छोटा जवाब देना चाहिए और वे देने की कोशिश भी करते हैं।

लेकिन जब बच्चा अपने पैदा होने के बारे में कोई बात पूछता है तो अधिकतर समझदार माता पिता भी झुँझला जाते है। उनको लगता है कि कुछ अनहोनी बात हो गयी, बेजा बात हो गयी।

× × ×

आये दिन हम देखते हैं कि बच्चे गन्दी बातें बहुत करते है। गन्दी बातों की ओर उनकी खास रुझान होती है। वे छिपकर गन्दा काम करते हैं।

थोडी उम्र बढ़ी कि उनकी आदतें गन्दी होती हैं, उनकी संगत गन्दी होती है और हमारी प्यारी सन्तानें हमारे लिए समस्या बन जाती हैं।

लडके-लडकियों की छेड़खानी, गन्दी शिकायतें, अश्लील व्यवहार वगैरह की समस्याएँ भी समाज का सिरदर्द बनती है।

जवान होते होते युवक-युवतियाँ निस्तेज, निर्वीर्य और पुरुषार्थहीन हो जाती हैं।

समस्या की जडे कहाँ ?

मनोविज्ञान के पण्डितो का कहना है कि इस समस्या की जड मे एक ही बात है और वह यह कि यौन-सम्बन्धी बातो की जानकारी हम उन्हें बचपन में ठीक से नही देते हैं ।

हर बच्चे म जिज्ञासा होती है । क्या न हो ? जिज्ञासा कुदरती है । अपने हाथ, पैर, सिर वगैरह सभी अगो का नाम और काम वह जानता है, तो जननेंद्रिय का नाम और काम क्या न जानना चाहेगा ? जरूर जानना चाहेगा और उसे जानना भी चाहिए ।

लेकिन हम हैं कि दुनिया भर की बातें सुनाने को तैयार हैं एक यही बात बचा जाते है, इसी से कतराते हैं ।

सभी माता पिता जानते हैं कि गुप्त अगो के बारे मे बच्चे अनजान नही रह जाते हैं, जब कि यह भी सच है कि खुद माता पिता ने उन्हे कुछ भी नही बताया है । इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे यह जानकारी कहीं दूसरी जगह से पाते हैं । माता पिता के रुख को वे जान लेते हैं और समझ जाते हैं कि इनसे कोई जानकारी मिलनेवाली नही है, इसलिए दूसरी जगह जाकर जानकारी लेने की कोशिश करते हैं । क्योकि एक तो उन्हे अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहिए, दूसरे, उस बात को छिपाकर माता पिता ने उसके बारे में विशेष कुतूहल भी जगा दिया है ।

भारत का ही बात नहीं है, विदेशी पुस्तको और पत्रिकाओं से मालूम होता है, सारी दुनिया की ही यह बदकिस्मती की बात है कि यौन-सम्बन्धी बातें माता पिताओं के लिए हौवा बन बैठी हैं । छोटे बच्चो को यौन विषयक जानकारी देने की जरूरत है यह सोचने को भी वे तैयार नहीं होते । बडी अजीब हालत है ।

सच बात तो यह है कि बच्चे के मन म वैषयिक भावना जरा भी नहीं रहती, केवल अमुक बात की जानकारी पाने भर की उसकी जिज्ञासा होती है । अपने बारे म वह कुछ तथ्य समझना चाहता है । उन प्रश्नो का यदि सीधा सादा सरल उत्तर मिल जाता है तो उसका कुतूहल तुरत शान्त हो जाता है । सही और सीधा जवाब नहीं मिलता तो वह अनेक प्रकार के सवालो मे उलझता है, जिसका नतीजा अच्छा नही होता ।

जिन बच्चो को उनके प्रश्नो का उत्तर बराबर मिला करता है वे चाहे जो प्रश्न निडर होकर माता पिता से पूछ लेते हैं, लेकिन जिन बच्चो को

धमका कर चुप करा दिया जाता है, वे अपने माता पिता से कभी प्रश्न पूछते नही है। गुमसुम रह जाते है। यह खतरनाक स्थिति है।

यौन जिज्ञासा की शुरुआत

विदेशो मे अकसर लोग ऐसी बातो का सर्वे करते रहते हैं। एक सर्वे म पता लगा है कि बच्चे १० या ११ साल की अवस्था म पहुँचते हैं, तब तक उन्हे यौन-सम्बन्धी जानकारी माता पिता को छोडकर बाहर के लगभग सात स्रोतो से मिला करती है। बच्चे जब ८ और ९ साल के बीच होते हैं तभी उनमे यौन-सम्बन्धी जानकारी की ओर प्रवृत्ति होती दीख पडती है और उनके दिमाग म उस बारे में कई सवाल उठते भी हैं। लेकिन प्रश्न यही है कि उन सवालों का उत्तर उन्ह उनके माता पिता स सहज भाव से शांति स, पूरा पूरा और चाहे जब मिलता है या ऐरे-गैरो म गलत और विकृत ढग स मिलता है।

आठ, नौ या दस साल की उम्र मे यदि आपका बच्चा इस बारे में आपस प्रश्न नही पूछता है तो यकीन मानिये कि उसे कही दूसरी जगह से जानकारी मिल गयी है। बहुत हद तक वह जानकारी या तो उम्र म अपने स बडे स्कूल के मित्रो से खेल के साथियों से राह चलते लोगो की बातचीत से या कही कुछ पढ सुनने से मिला करती है।

अकसर जो बच्चा इस प्रकार गलत और विकृत रूप म और भोंडे तरीके से यह जानकारी कर लता है उसक मन मे सामान्यतया एक ऐसी छाप पड जाती है कि सेक्स का विषय 'गन्दा' है खराब' है। ये दोनो शब्द उन्हे हमारी बातचीत के बीच शरीर के अग विशेषों के प्रति हम जो कुछ कहते हैं उसी स मिलते हैं। यह हमारी बदनसीबी ही है कि बच्चो के प्रश्नो का उत्तर देने के लिए हमारे पास सही और स्वस्थ शब्द नही होते है।

ठेठ बचपन मे बच्चे हर चीज का नाम जानने को उत्सुक रहते हैं। यह क्या है, इसका नाम क्या है ये प्रश्न रोजाना अनेक बार वे करते रहते हैं। लेकिन शरीर के अगो की बात आती है तो अकसर कई अगो के सही नाम की जगह हम कुछ दूसरा नाम बताते है। मनोवैज्ञानिको का कहना है कि बच्चो को सही नाम ही मालूम होना चाहिए और उन्हे उन शब्दो का सही प्रयोग करना भी आना चाहिए। जैसे कोई डाक्टर या प्रयोगकार वैज्ञानिक और स्पष्ट उच्चारण करता है उसी प्रकार सभी अगो का नाम और उन अगो का काम हम स्पष्ट और बलाग उच्चारण करते हैं तो बच्चों पर भी उसका अच्छा असर पडेगा और उनके प्रति घृणा या गन्दा भाव नहीं रह पायगा। यह अलग बात

है कि बच्चे उन शब्दों का सही सही उच्चारण न कर पाते हों। वे अपने ढग से उनका उच्चारण कर लेंगे, अपना शब्द बना लेंगे, लेकिन बडो को तो सही नाम का ही प्रयोग करना चाहिए।

कसौटी के क्षण

बच्चे को सबसे पहला यौन शिक्षण मिलता है उसके अपने घर मे। घर के लोगों मे जिस प्रकार का आपसी सम्बन्ध होता है तदनुरूप ही उसे वह शिक्षा मिलती है। माता पिता के बीच जो स्नेह और सौहार्द होता है उस बच्चा पहचानता है। घर, परिवार, माँ, बाप, भाई, बहन और छोटे बच्चे इन सबका असर उसके जीवन मे होता है और उसकी यौन-सम्बन्धी गतिविधि मे इस असर का बडा हाथ होता है। यह निर्विवाद है कि बच्चे के जीवन मे प्रेम, स्नेह, ममता और सौजन्य, जो घर मे मिलता है, वह कही और मिलता नही है।

लेकिन, माता पिता चाहे जितने ईमानदार और ममतालु क्यो न हो, कभी-न-कभी ऐसा समय आयगा जब बच्चो के प्रश्नो के प्रति माता-पिता पूरी तरह ईमानदार नही रह पाते, और वह उनको भरे-पूरे गार्हस्थ्य की कसौटी का क्षण साबित होगा।

बच्चो को सही-सही जवाब देने की इच्छा रखना एक बात है और सही जवाब देना बिल्कुल दूसरी बात है। खास कर उन माता पिताओ के लिए तो सर्वथा समस्या ही है जिन्हे खुद को यौन-शिक्षा ठीक ढग से मिली न हो। ऐसे माता पिता को मदद की जरूरत पडती है। उन्हे कुछ निश्चित और सीधे सादे उत्तर मिलने चाहिएँ, जिनका वे उपयोग कर सकें। यहाँ कुछ प्रश्न दे रहे है जो आमतौर पर बच्चे पूछा करते है। उनके उत्तर भी यहाँ दिये है जो कुशल माता पिताओ ने अपने बच्चो को दिये हैं। उनका उपयोग वे माता-पिता कर सकते हैं जो चाहते हैं कि बच्चो को सीधा और सही जवाब मिले और वे सच्ची बात समझ सकें।

यौन-जिज्ञासा-सम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर

प्रश्न—"शीला मौसी को बच्चा कहाँ से मिला ?"

उत्तर—"शीला मौसी के पेट मे था।"

यह प्रश्न और 'बच्चा कहाँ से आता है ?' ये दोनो अलग-अलग प्रश्न नहीं हैं, लगभग एक ही प्रकार के हैं। सामान्यतया बच्चे जब तीन साल के होते हैं, तब उनके दिमाग मे यह प्रश्न उठता है। लेकिन नन्हा प्रश्नकर्ता नही जानता

कि यह यौन सम्बन्धी प्रश्न है। सादा प्रश्न है और वह सीधा जवाब चाहता है। उसे ब्यौरा नहीं चाहिए। कुछ लोग पशु, पक्षी, फूल वगैरह के साथ जोड़ कर उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं। उससे बच्चों के दिमाग में उलझन ही पैदा होती है।

इस प्रश्न के बाद दूसरा प्रश्न उनके मन में सहज ही पैदा होता है—

प्रश्न— शीला मौसी के बच्चे की तरह ही मैं भी क्या तुम्हारे पेट में था ?"

उत्तर—"हाँ, तू भी था। सभी बच्चे अपनी माँ के पेट में ही पलते हैं।"

छोटी उम्र में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। योनि, गर्भाशय, आदि आदि शब्दों से नन्हा प्रश्नकर्ता चकरा जायगा। कुछ अरसे के बाद यह समझाया जा सकता है कि पेट में जहाँ बच्चा पलता है उसे गर्भाशय कहते हैं, जिस जगह से बच्चा बाहर आता है उसे योनि कहते हैं, आदि। सामान्यतया एक कदम बढ़ना काफी है।

प्रश्न—"माँ, अब भी तुम्हारे पेट में बच्चा है क्या ?"

उत्तर—"यदि बच्चे को यह बताया गया हो कि तुम्हारा भाई या बहन आनेवाली है अर्थात् माँ गर्भवती हो, तो सीधे कहना चाहिए, 'हाँ, मेरे पेट में बच्चा पल रहा है।' अगर ऐसी स्थिति नहीं है, तो स्पष्ट कहना चाहिए कि 'नहीं, इस समय मेरे पेट में बच्चा नहीं है।"

प्रश्न—"तुम्हें यह कैसे मालूम है कि तुम्हारे पेट में बच्चा है।"

उत्तर—"यह पेट देखने से मालूम होता है। बच्चा बढ़ता है तो उसे रहने को ज्यादा जगह जरूरी होती है तब माँ का पेट बड़ा होता है।"

प्रश्न—"माँ! पेट से बच्चा बाहर कैसे आता है ?"

उत्तर—"हर एक माँ के शरीर में एक रास्ता है जहाँ से बच्चा बाहर आता है। उस रास्ते को योनि कहते हैं। पेट के नीचे जहाँ से पैर शुरू होता है वहाँ वह रास्ता है। जब बच्चा बड़ा होता है, बाहर आ सकता है, तब पेट उसे बाहर ढकेलता है और बच्चा बाहर आता है। माँ के पेट को छोड़कर जब बाहरी दुनिया में बच्चा आता है, उसे ही जन्म कहते हैं।"

प्रश्न—"माँ के पेट में बच्चा कितने दिन रहता है ?"

उत्तर—"वहाँ उसे नौ महीना रहना पड़ता है।"

प्रश्न—"बच्चा पेट के अन्दर कैसे बढ़ता है ?"

उत्तर—"बच्चा शुरू से बच्चा नहीं रहता, शुरू में वह छोटा-सा कीड़ा रहता है। वहाँ बड़ा होकर बच्चा बनता है। उसे मादा कीड़ा या अण्डकोश कहते हैं।"

प्रश्नकर्ता समझने लायक न हो तो इन पारिभाषिक शब्दों को छोड देना चाहिए।

प्रश्न—"वह छोटा कीडा बडा बच्चा कैसे बनता है ?"

उत्तर—"वह कीडा अपने आप बच्चा नही बनता। वह बच्चा तभी बनता है जब उसमे नर कीडा जुडता है।"

प्रश्न पूछनेवाला बच्चा यदि बडा है और समझ सकता है तो उसे बताया जा सकता है कि "नर कीडे का नाम वीर्य है और वीर्य तथा अण्डकोश के मिलन को गर्भ होना कहते है। यह भी समझाया जा सकता है कि जब दो कोश मिलते हैं, तो वे मिलकर एक बनते हैं। यह एक कोश फिर दो बनता है, फिर दो के चार बनते हैं और यो बनते बनते करोडो कोश बनते हैं। वे ही मिलकर बच्चे का शरीर बनाते है।

चिडियो मे ये कोश बच्चे का रूप लेने तक पेट के अन्दर नही रहते। अण्डे के रूप मे पहले ही बाहर आते हैं और घोसल म कुछ दिन रहकर बच्चे बनते हैं। गाय, बकरी, बिल्ली वगैरह मे अण्डे बाहर नही आते है। पेट म ही पूरा बच्चा बनकर तब बाहर आते हैं। इतना जरूर है कि जब तक मादा और नर कीडे मिलते नही तब तक बच्चा नहीं बनता।"

सबसे कठिन प्रश्न

प्रश्न—"मादा कीडो मे नरकीडा कैसे जुडता है ?"

उत्तर—यही प्रश्न है जिसे सुनकर माताएं सबस ज्यादा घबडाती है। यदि बच्चा इतना समझदार हो गया हो कि लडका और लडकी का फर्क जानता हो और उपयुक्त शुरू के दो प्रश्नो का—यानी "बच्चा कैसे आया" और "बच्चा कहाँ से बाहर आया" का—उत्तर सही ढंग से दिया गया हो, तो इस प्रश्न का जवाब देना बहुत आसान है।

"आदमी और औरत दोनो जब शादी कर लेते हैं, तब वे पिता और माता बनते हैं। आदमी के पेशाब के रास्ते से दूध जैसी एक सफेद चीज निकलती है और वह माता के पेशाब के रास्ते से अन्दर जाती है तो माँ के पेट मे मादा और नर दोनो कोशो का मिलन होता है और तब दोनो मिलकर बच्चा बनता है।"

बच्चो को मालूम होना चाहिए भिन्न लिंगो के इस मिलन को सम्भोग कहा जाता है। उनके देखते हुए कुत्ते, बिल्ली, घोडा, गधा, गाय, कबूतर, कौआ आदि पशु पक्षियो मे सम्भोग क्रिया चलती है। यह कोई मनुष्य की ही अनोखी करतूत नहीं है। बच्चो को यह मालूम होना चाहिए कि पशु-पक्षियो

की तरह ही मनुष्यो का भी यह हक है कि वे प्यार करें, घर बनायें बच्चे प्राप्त करें।

अनेक माता पिताओ को भय है कि सम्भोग की बात समझाने पर बच्चे कहीं उसका प्रयोग करने न लग जायें। बच्चे का यदि सीधा, सादा और खुला जवाब मिलता है, उसके कुतूहल को तत्काल शान्त किया जाता है, उसके प्रश्न करते ही पूरा पूरा और स्पष्ट समाधान किया जाता है, तो यह भय रखने की कोई जरूरत नही कि उस जानकारी का वे दुरुपयोग करेंगे। दूसरे दूसरे प्रश्नो का जवाब जिस स्पष्टता से बिलकुल हिचकिचाये बिना माता पिता देते है उतनी ही स्पष्टता से और जरा भी झिझक महसूस न करके यौन विषयक प्रश्नो का भी उत्तर दिया जाय तो माता पिता तथा बच्चो के बीच कोई परदा नही रहेगा और वह उनके उत्तरो को सहज भाव से ग्रहण करेगा, वही उसका समाधान हो जायगा।

जिन बच्चो को ठेठ बचपन मे सही यौन शिक्षा नही मिलती है अधिकाश वे ही बच्चे अपने सगी साथियो की सगत म पडकर यौन सम्बधी कुत्सित प्रयोगो और विकृत क्रियाओ के शिकार होते है। अकसर लडकियो से ज्यादा लडको पर यौन विषयक प्रतिब ध विशेषरूप स लगे होते हैं। इसीलिए सही अर्थ न जानने के कारण लडको को गलत शब्दो और क्रियाओ का खास आक षण होता है। इसका कारण यह हो सकता है कि लडका की जननेन्द्रिय लडकियो की अपेक्षा विशेष महत्वपूर्ण होती है और उनमे साहस की वृत्ति भी अधिक है। कारण कुछ भी हो, कुशल माता पिता इस परिस्थिति को स्वीकार करते है और अपने बच्चे को सही मार्ग दर्शन कराते है। बच्चे की किसी भी बात पर उनको चिढना या धमकाना नही चाहिए। वरना उनका लडका उनसे बात नही करेगा, विश्वास खो देगा। बच्चे का विश्वास खोना बहुत आसान है, लेकिन फिर पाना बडा कठिन है।

जो माताएँ अपने बच्चो के यौन सम्बन्धी प्रश्नो का, बच्चे के जन्म, सम्भोग आदि का, उत्तर दृढता से, बिना झिझके देती हैं, व भी जब बच्चो को आपस आपस म वैसी चर्चा करते देखती हैं तो पसोपेश म पड जाती हैं। समझ नही पाती कि निगरानी कैसे की जाय। लेकिन मानसशास्त्रियो का कहना है कि यह निगरानी की बात नहीं है। परदा तभी तक पडा रहता है जब तक वह बीच म टगा होता है। परदा हटा दीजिये। अपनी ओर से सहज सुलभ सही-सही जानकारी दीजिये। भरसक आप प्रयत्न कीजिये ज्ञान देने का और फिर बच्चो पर भरोसा रखकर उन्हे छोड दीजिये। ●

तर्कहीन समाज की व्यूह-रचना

रघुवंश

एक प्रगतिशील गोष्ठी में एक सम्भ्रान्त वजनदार प्रोफेसर ने जोरदार तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि हमारा प्रजातंत्र बहुसंख्यक अशिक्षितों-द्वारा चुने गये मूर्खों तथा धूर्तों के द्वारा परिचालित रहा है, और हम ऐसे ही विधायकों के अथवा उनके दबाव के शासन में अपने आपको प्रगति के मार्ग में ले चलने की कोशिश करते रहे हैं। उपस्थित प्रगतिशील युवक और प्रौढ़ सदस्यों को प्रोफेसर के तर्क संगत और विश्वसनीय लगे। बात बहुत सीधी है। अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त और अंग्रेजियत के वातावरण के मानसवाले व्यक्ति की भावना से निकली हुई है। पर जिनका मानस बीस वर्षों के देश के प्रजातांत्रिक प्रयत्नों के वातावरण में बना है, यदि वे इस तर्क-पद्धति की दाद देते हैं तो कहीं हमारी समाज रचना में असंगति जरूर है। इस तर्क-शैली से, यह भाव, कहा गया हो या न कहा गया हो, निकलता है कि हमारे अशिक्षित और पिछड़े देश का बालिग मताधिकार पर आधारित प्रजातांत्रिक व्यवस्था नहीं मिलनी चाहिए थी। अर्थात् शिक्षितों, सम्पन्नों, सम्भ्रान्तों और साधन-सम्पन्नों के सीमित मताधिकार के आधार पर हमारी व्यवस्था चलनी चाहिए थी। धीरे धीरे देश के सभी नागरिक शिक्षित, सम्भ्रान्त और साधनसम्पन्न होते जाते और प्रजातांत्रिक व्यवस्था में भाग लेने के अधिकारी होते जाते।

आर्थिक सम्पन्नता का क्रम नीचे से नहीं !

ऐसी ही एक गोष्ठी में एक युवक अर्थशास्त्री मित्र ने बहुत बल देकर और अपने गहरे शास्त्र ज्ञान के आधार पर प्रतिपादित किया कि देश की अर्थव्यवस्था की प्रगति का एक मात्र सही उपाय है नीचे से नहीं वरन् ऊपर से आर्थिक सम्पन्नता का क्रम चलाया जाय, क्योंकि औद्योगिक विकास तथा वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रयोग की सीमा तथा दिशा यही है। यद्यपि उन्होंने प्रगतिशील होने के नाते इस पूँजीवादी तर्क को मानकर भी स्वीकार नहीं किया कि आर्थिक विकास की गति उद्योगों के व्यक्तिगत हाथों में रहने से अधिक तेज होगी। अपनी समाजवादी व्यवस्था के प्रति मौखिक सहानुभूति के बावजूद जिन मानसिक संस्कारों में उनका शास्त्र ज्ञान जुड़ गया है, उसके आधार पर उनका समाज-

रचना की आर्थिक परिकल्पना में सम्पन्न समाज सम्पन्नतर होता जायगा और इस वृत्त में क्रमश: देश का अधिकाधिक समाज आता जायगा। जरा-सा छेड़ देने पर कि क्या समाज का निचला वर्ग इस अनन्त छायावादी प्रतीक्षा के लिए तैयार हो सकेगा, वे तुरत देश के नये समाज की नींवें डालने वाले महान नेता नेहरू जी के तर्क पर आ गये—फिर देश के सामने विपन्नता और पिछड़ापन बांटने के सिवाय दूसरा उपाय नहीं रह जाता।

तर्क : विशिष्ट समाज की अनिवार्यता का

एक दिन बातचीत के दौरान हमारे एक विचारवान वैज्ञानिक मित्र ने विदेश में देश की वैज्ञानिक प्रतिभाओं के आयात और वस जाने की समस्या के समाधान के रूप में 'मेजर युनिवर्सिटियों' की स्थापना की परिकल्पना का स्वागत किया। इस ओर ध्यान आकर्षित करने पर कि इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में वर्गों की दीवार खड़ी होगी और देश में संगठित होते हुए विशिष्ट वर्ग को बल ही मिलेगा, उन्होंने दो-टूक बात कह दी कि यदि देश की समस्याओं का वैज्ञानिक और तकनीकी समाधान पाना है तो न केवल वैज्ञानिकों को विशेष सुविधाएँ देनी होंगी, वरन् उनके लिए विशिष्ट समाज की नागरिकता भी निश्चित करनी होगी, अन्यथा विदेशों का आकर्षण उन्हें खींचेगा ही। यानी कि देश की गरीब और पिछड़ी जनता को यदि अपने प्रतिभा-सम्पन्न वैज्ञानिकों, शास्त्रियों, चिन्तकों, लेखकों और कलाकारों से लाभान्वित होना है तो उसे उन्हें अपनी सुख सुविधाओं से कहीं भिन्न स्तर के विशिष्ट समाज में रहने की छूट देनी होगी। नेताओं, अधिकारियों, व्यवसायियों और उद्योगपतियों ने तो अपना विशिष्ट समाज बनाकर सुरक्षित कर ही लिया है।

इधर छात्रों की अनुशासनहीनता, अराजकता तथा उच्छृंखलता पर विचार-विनिमय के सिलसिले में हमारे युवक प्राध्यापकों को यह कहते हुए और तर्क देते हुए पाया गया कि शिक्षा के क्षेत्र में हमको चुनाव से काम लेना चाहिए। हर गँवार, असभ्य, संस्कारच्युत और अपरिपक्व लड़के को शिक्षा देने का हमारा काम नहीं है। मान लेता हूँ कि यह खीझ और परेशानी में कही गयी बात है। आज कक्षाओं में जिस विद्या-विमुख छात्र-वर्ग का सामना गम्भीर अध्यापक को करना पड़ रहा है उसमें यह मन:स्थिति स्वाभाविक है। पर यह ऐसा ही नहीं है। यह अलग बात है कि मन:स्थिति में भी दायित्व का अनुभव करनेवाले अध्यापक को चिन्तक के रूप में गहरे उतरकर तर्क देना चाहिए, लेकिन यहाँ अच्छे खासे सोचने-समझनेवाले लोग भी आज सोचने लगे हैं कि कम-से-कम उच्च शिक्षा प्रतिभा-सम्पन्नों का अधिकार होना चाहिए। तर्क

सीधा भी है। हमारे देश में आज प्रतिभा विशिष्ट वर्ग का एकाधिकार है और उससे मुक्त करने का न कोई उपाय है, और सच पूछो तो हमारी समाज-रचना की दृष्टि से न उसकी आवश्यकता ही।

तर्क : प्रतिभा के विकास का

इधर शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट छपने के बाद से विश्वविद्यालयों में प्राध्यापकों के बीच 'मेजर युनिवर्सिटी' की परिकल्पना को लेकर काफी चर्चा होती रही है। स्वाभाविक भी है, उनमें से हर एक को 'मेजर' होने की भावना मोहक लगती है। वर्णव्यवस्था के समान वर्गव्यवस्था में भी हर व्यक्ति ऊपर की श्रेणी के गौरव के लिए लालायित रहता है। एक बार घेरधार कर प्राध्यापकों के बीच प्राथमिक शिक्षा के सवाल को उठाया भी जा सका तो हमारे बीच के एक माने-जाने शिक्षा-शास्त्री ने काफी अन्दाज से बात चलायी। उनका गम्भीर तर्क था कि अगर हमारे पास साधनों की कमी है, सुविधाएँ काफी नहीं हैं, तो क्या हम अपनी शिक्षा में प्रतिभा के विकास को अवसर नहीं देंगे। हमको ज्ञान-विज्ञान के जिस स्तर की आवश्यकता है, विदेशों की प्रतिद्वन्द्विता ऐसे लोगों के ध्यान-केन्द्र में जरूर रहती है, उसकी पूर्ति क्या उस प्राथमिक शिक्षा से हो सकेगी जो शिक्षा के नाम पर चलायी जा रही है। यदि शिक्षा का स्तर वास्तव में उठाना है तो प्राथमिक शिक्षा से चुने हुए 'माडल स्कूलों' के आधार पर उसे संगठित करना होगा। एक मित्र ने उनके अन्दाज में जरा-सी बाधा उपस्थित करते हुए प्रश्न उठाया—और सब बातें मान भी ली जायें, पर क्या आपके द्वारा समर्थित दो वर्गों में बटी हुई शिक्षा-नीति को अर्थात् एक ओर देश भर में असख्य ऐसे प्राथमिक स्कूल चलेंगे जिनमें अड़तालीस-उनचास करोड़ जनता के बच्चे उस शिक्षा को पायेंगे जिसे 'होक्स' कहा जाता है और दूसरी ओर एक-दो हजार ऐसे प्राथमिक स्कूल, पब्लिक स्कूल होंगे जिनमें प्रतिभाओं को शानशौकत के साथ शिक्षा दी जायगी, समाजवाद की ओर किसी भी रूप में झुकी हुई पार्टियों का समर्थन मिल सकेगा? इस पर उन्होंने लगभग वितृष्णा के साथ चिढ़कर कह दिया—तो फिर होने दीजिये देश भर में अशिक्षा का प्रसार।

विशिष्ट वर्ग का मानस दर्शन

यह है हमारे उस समाज की झाँकी, जो पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त है, जो अपने को प्रगतिशील कहता और समझता है, जो चिन्तन की क्षमता रखने का दावा करता है और जिससे आशा की जाती है कि अपने ज्ञान-विज्ञान का देश की व्यापक और संकटकालीन समस्याओं के लिए उपयोग करेगा। अपने

रचना की आर्थिक परिकल्पना मे सम्पन्न समाज सम्पन्नतर होता जायगा और इस वृत्त मे क्रमश देश का अधिकाधिक समाज आता जायगा। जरा सा छेड दने पर कि क्या समाज का निचला वर्ग इस अनन्त छायावादी प्रतीक्षा के लिए तैयार हो सकेगा, वे तुरत देश के नये समाज की नीवँ डालने वाले महान नेता नेहरू जी के तर्क पर आ गये—फिर देश के सामने विपन्नता और पिछडापन बाटन के सिवाय दूसरा उपाय नही रह जाता।

तर्क विशिष्ट समाज की अनिवार्यता का

एक दिन बातचीत के दौरान हमारे एक विचारवान वैज्ञानिक मित्र ने विदेश मे देश की वैज्ञानिक प्रतिभाओ के आयात और बस जाने की समस्या के समाधान के रूप म 'मेजर युनिवर्सिटिया' की स्थापना की परिकल्पना का स्वागत किया। इस ओर ध्यान आकर्षित करने पर कि इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे वर्गो की दीवार खडी होगी और देश मे सगठित होते हुए विशिष्ट वर्ग को बल ही मिलेगा, उन्होने दो-टूक बात कह दी कि यदि देश की समस्याओ का वैज्ञानिक और तकनीकी समाधान पाना है तो न केवल वैज्ञानिको को विशेष सुविधाएँ देनी होगी, वरन् उनके लिए विशिष्ट समाज की नागरिकता भी निश्चित करनी होगी, अन्यथा विदेशो का आकर्षण उन्हे खीचेगा ही। यानी कि देश की गरीब और पिछडी जनता को यदि अपने प्रतिभा सम्पन्न वैज्ञानिको, शास्त्रियो, चिन्तको, लेखको और कलाकारो से लाभान्वित होना है तो उसे उन्ह अपनी सुख सुविधाओ से यही भिन्न स्तर के विशिष्ट समाज मे रहने की छूट देनी होगी। नेताओ, अधिकारियो, व्यवसायियो और उद्योगपतियो ने तो अपना विशिष्ट समाज बनाकर सुरक्षित कर ही लिया है।

इधर छात्रो की अनुशासनहीनता, अराजकता तथा उच्छृ खलता पर विचार-विनिमय के सिलसिले मे हमारे युवक प्राध्यापको को यह कहते हुए और तक देते हुए पाया गया कि शिक्षा के क्षेत्र म हमको चुनाव से काम लेना चाहिए। हर गँवार, असभ्य, सस्कारच्युत और अपरिपक्व लडके को शिक्षा दने का हमारा काम नही है। मान लेता हूँ कि यह खीझ और परेशानी मे कही गयी बात है। आज कक्षाओ मे जिस विद्या विमुख छात्र वर्ग का सामना गम्भीर अध्यापक को करना पड रहा है उसमे यह मन स्थिति स्वाभाविक है। पर यह ऐसा ही नहीं है। यह अलग बात है कि मन स्थिति मे भी दायित्व का अनुभव करनेवाले अध्यापक को चिन्तक के रूप मे गहरे उतरकर तर्क देना चाहिए, लेकिन यहाँ अच्छे खासे सोचने-समझनेवाले लोग भी आज सोचने लगे हैं कि कम से-कम उच्च शिक्षा प्रतिभा-सम्पन्नो का अधिकार होना चाहिए। तर्क

सीधा भी है। हमारे देश मे आज प्रतिभा विशिष्ट वर्ग का एकाधिकार है और उसमे मुक्त करने का न कोई उपाय है, और सच पूछो तो हमारी समाज-रचना की दृष्टि से न उसकी आवश्यकता ही।

तर्क प्रतिभा के विकास का

इधर शिक्षा-आयोग की रिपार्ट छपने के बाद से विश्वविद्यालयो मे प्राध्यापको के बीच 'मेजर युनिवर्सिटी' की परिकल्पना को लेकर काफी चर्चा होती रही है। स्वाभाविक भी है, उनमें से हर एक को 'मेजर' होने की भावना मोहक लगती है। वर्णव्यवस्था क समान वर्गव्यवस्था मे भी हर व्यक्ति ऊपर की श्रेणी के गौरव के लिए लालायित रहता है। एक बार घेरघार कर प्राध्यापको के बीच प्राथमिक शिक्षा के सवाल को उठाया भी जा सका तो हमारे बीच के एक माने-जाने शिक्षा शास्त्री ने काफी अन्दाज से बात चलायी। उनका गम्भीर तर्क था कि अगर हमारे पास साधनो की कमी है, सुविधाएँ काफी नही हैं, तो क्या हम अपनी शिक्षा मे प्रतिभा के विकास का अवसर नही देंगे। हमको ज्ञान विज्ञान के जिस स्तर की आवश्यकता है, विदेशो की प्रतिद्वन्द्विता ऐसे लोगो के ध्यान केन्द्र मे जरूर रहती है, उसकी पूर्ति क्या उस प्राथमिक शिक्षा से हो सकेगी जो शिक्षा के नाम पर चलायी जा रही है। यदि शिक्षा का स्तर वास्तव मे उठाना है तो प्राथमिक शिक्षा से चुने हुए 'माडल स्कूलो' के आधार पर उसे सगठित करना होगा। एक मित्र ने उनके अन्दाज मे जरा-सा बाधा उपस्थित करते हुए प्रश्न उठाया—और सब बातें मान भी ली जायें, पर क्या आपके द्वारा समर्थित दो वर्गों मे बटी हुई शिक्षा-नीति को अर्थात् एक ओर देश भर मे असख्य ऐसे प्राथमिक स्कूल चलेंगे जिनम अडतालीस-उनचास करोड जनता के बच्चे उस शिक्षा को पायेंगे जिसे 'हाक्म' कहा जाता है और दूसरी ओर एक-दो हजार ऐसे प्राथमिक स्कूल, पब्लिक स्कूल होगे जिनमे प्रतिभाओं को शानशौकत के साथ शिक्षा दी जायगी, समाजवाद की ओर किसी भी रूप मे झुकी हुई पार्टियो का समर्थन मिल सकेगा ? इस पर उन्होने लगभग वितृष्णा के साथ चिढकर कह दिया—तो फिर होने दीजिये देश भर मे अशिक्षा का प्रसार।

विशिष्ट वर्ग का मानस दर्शन

यह है हमारे उस समाज की झांकी, जो पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा प्राप्त है, जो अपने को प्रगतिशील कहता और समझता है, जो चिन्तन की क्षमता रखने का दावा करता है और जिससे आशा की जाती है कि अपने ज्ञान विज्ञान का देश की व्यापक और सकटकालीन समस्याओ के लिए उपयोग करेगा। अपने

सार चिन्तन और मानस में दया की अनिश्चित और पिछड़ी उनका माराक्ष जनता पर दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति को इस समाज के मानस में बार बार देश के लिए एक अनिवार्य विशिष्ट वर्ग की परिकल्पना स्पष्ट रूप ग्रहण करती हुई जान पड़ती है। प्रतिभा के चुनाव, संरक्षण और विकास के नाम पर, ज्ञान विज्ञान की उन्नति के नाम पर, शिक्षा का वास्तविक और उच्चस्तरीय चिन्ता के आधार पर, औद्योगिक तथा तकनीकी विकास की दृष्टि को सामने रखकर, अन्य विकसित और उन्नत देशों से प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति पर बल देकर और यहाँ तक कि सांस्कृतिक उन्नयन के आदर्श को प्रतिपादित करते हुए सारे देश में एक विशिष्ट वर्ग का ढाँचा ही उभरता आ रहा है।

यह सब आकस्मिक नहीं है। स्वाधीनता पाने के पहले भी भारतीय अँग्रेजी-मानस का एक वर्ग मैकाले की परिकल्पना के आधार पर बन चुका था, यह अलग बात है कि इस समय तक स्वाधीनता-संघर्ष से अलग रहने और प्रायः असहानुभूतिशील होने के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन में इस वर्ग का प्रभाव और महत्त्व नहीं के बराबर था। पर स्वाधीनता के इन वर्षों में अन्तरराष्ट्रीय-तावादी अंग्रेजी मानस के प्रतिनिधि नेहरू जी के नेतृत्व में न केवल इस वर्ग को बहुत ज्यादा प्रोत्साहन मिला वरन् उसको शक्ति और सामर्थ्य को बहुत संग-ठित रूप मिलता गया है। पिछले बीस वर्षों को हमारी आर्थिक योजनाओं, विदेश से लेकर शिक्षा तक चलनेवाली, समस्त नीतियों और शासन तथा व्यवस्था के स्तर पर उन सबके कार्यान्वयन ने क्रमशः एक ऐसे समाज का ढाँचा तैयार किया है, उसको रंग रूप प्रदान किया है जिसने आज स्पष्ट व्यक्तित्व ग्रहण कर लिया है।

जब तक इस समाज की रचना हो रही थी, विशिष्ट वर्ग ने अपने तर्कों का अधिक बलपूर्वक कभी उपयोग नहीं किया, हाँ उसने देश की व्यापक जनता के सन्दर्भ में चलनेवाले गांधी की दृष्टि पर आधारित और उनके चिन्तन से समर्थित तर्कों को कुशलतापूर्वक विभ्रम में डाला। उद्योग व धन्धों को लेकर, कुटीर उद्योगों और छोटी मशीनों के प्रयोगों की हँसी उड़ायी गयी। सभा-सामाइटियों में कहा जाता रहा है कि राकेट के युग में हम अपने देश में बैल गाड़ी चलाना चाहते हैं। जटिल मशीनों के स्थान पर हम हाथ से काम करना चाहते हैं। इसी प्रकार बुनियादी तालीम को असफल करके उसका उपहास उड़ाया गया और पब्लिक स्कूलों की शिक्षा की असफलता को उनके सामने प्रतिपादित किया गया। इन पिछले वर्षों में इस वर्ग का 'रोल' बड़ा कुटिल रहा है। एक ओर इसी वर्ग ने कांग्रेस सरकार की सारी योजनाओं को असफल

किया है जिनका सैद्धान्तिक आधार देश के जनजीवन से ग्रहण किया गया था और दूसरी ओर ऐसी योजनाओं को क्रमश प्राथमिकता दिलायी जिनमें इस वर्ग को सगठित शक्ति और व्यक्तित्व मिल सका। धीरे-धीरे जनता के व्यापक जीवन को विकास के मार्ग पर ले चलनेवाली किसी भी साहसिक और प्रगतिशील योजना अथवा सिद्धान्त को अपनी तर्कहीनता से इस वर्ग ने असगत सिद्ध कर दिया है।

आज यह वर्ग अपने व्यक्तित्व मे इतना स्पष्ट और प्रबल हो चुका है कि उसने सारी तर्कशीलता अपने निजी सन्दर्भों से विकसित कर ली है। अब उसके सामने उन्चास करोड जनता की महत्वाकाक्षाओ की कोई अडचन भी नही है जिससे अपने तर्कों को प्रस्तुत करने मे उन्हे किसी प्रकार कोई हिचकिचाहट हो। आज निर्द्वन्द्व भाव से इस वर्ग के लोग शिक्षा मे चुनाव का तर्क दे सकते हैं, अशिक्षा के प्रसार की बात कह सकते है, कुछ लोगो और वर्गों के भी विशेषाधिकारो की बात कह सकते है, विशेषज्ञो के हाथ मे देश की नीतियो के निर्धारण और उनके सचालन के दायित्व को सौंपने पर बल दे सकते हैं, विकसित देशो की समकक्षता की चर्चा कर सकते हैं, ज्ञान विज्ञान को उन्नत देशो के समकक्ष तुरत पहुँचाने का आग्रह प्रकट कर सकते हैं और उसके लिए 'मेजर' विश्वविद्यालयों की कल्पना कर सकते है, 'माडल' प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल चलाने पर बल दे सकते है। आगे चलकर, एक प्रकार से कहा जाने ही लगा है कि देश के विकास के लिए हमको समृद्धि की कल्पना करनी चाहिए, हमको कारें चाहिएँ, *वातानुकूल चाहिए, टेलीविजन चाहिए, प्रासाद चाहिए, साजसज्जा* साधन चाहिएँ, इन सबके आधार पर ही हमारे धन्धे बढ़ेंगे और आर्थिक विकास सम्भव हो सकेगा।

कुटिल चक्र-प्रवर्तन

यह सब तर्कसगत बताया जाता है और पूरी तर्कशीलता से बातें की जाती हैं, क्योकि अब इस समाज का वृत्त इतना बडा हो गया है कि अपने को अपने में पूरा समझ सकता है, समझने भी लगा है। उसकी शक्ति इतनी बढ गयी है कि वह सारी प्रजातात्रिक प्रक्रिया और समाजवादी घोषणाओ के बावजूद अपने को अनिवार्य तथा सुरक्षित समझता है। बीस वर्षों में इस वर्ग का मानस युवको म परिव्याप्त हो चुका है, और सबसे रोचक बात है यदि सारी कठिनाइयो और अवरोधो को पार कर कोई प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति उभरकर ऊपर आ भी जाता है तो वह अपने निचले स्तर के समाज का अग रहना नही चाहता, उसके प्रति उसमे वितृष्णा का भाव ही जागता है। सुविधाएँ पाते ही वह इस

समाज का अंग बन जाता है। तथाकथित जन नेताओं की स्थिति भी ऐसी हो गयी है कि जरा आगे बढ़ते ही या अधिकार पाते ही उनका पहला प्रयत्न यह होता है कि उनको इस सम्भ्रान्त विशिष्ट समाज का समझा जाय।

कौन चुनौती दे?

आज की यह स्थिति जटिल है। एक दुष्चक्र बन गया है, जिसका भेदने में अब समय लगेगा। साहस और सकल्प की जरूरत तो है ही। इस तर्कहीन समाज को उनकी तर्कहीनता से अवगत करने के लिए शायद अब गहरे संघर्ष की अपेक्षा होगी। इस समाज का अधिकार और शक्ति शासन, शिक्षा, उद्योग, व्यवसाय, पत्रकारिता, न्याय आदि के क्षेत्रों में ही परिव्याप्त नहीं है, वरन् कांग्रेस, स्वतंत्र और जनसंघ-जैसी पार्टियों के अलावा कई वामपंथी दलों पर भी इसका पर्याप्त प्रभाव है। आज देखना है बल, आग्रह और साहस के साथ कौन इस वर्ग को चुनौती देता है कि यदि देश की उन्चास करोड जनता का भविष्य शामिल नहीं तो तुम्हारी शिक्षानीति, तुम्हारी आर्थिक योजनाएँ, तुम्हारा विज्ञान और तकनीकी को विकसित करने का ढंग, तुम्हारी सामाजिक न्याय की पद्धति, तुम्हारी स्वाधीनता की परिकल्पना, यहाँ तक कि तुम्हारा सविधान के प्रति दृष्टिकोण सब तर्कहीन, और निरर्थक है। तुम्हारी विशेषज्ञता झूठी और भ्रामक है, विदेश से पाये प्रमाणपत्र हमारे लिए बेकार हैं। तुम हमारे लिए निकम्मे हो, तुम्हारी सारी पद्धति तर्कहीन है। तुमको सही दृष्टि और तर्कपद्धति अपनानी होगी, और उसके आधार पर नये शिक्षा के सिद्धांत खोजने होंगे। अर्थशास्त्र के नये सिद्धान्तों को खोजना होगा, विज्ञान तथा तकनीक के प्रयोग की नयी विधियाँ खोजनी होंगी, विकास का मार्ग निकालना होगा। तुम्हारे चलाये देश नहीं चलेगा, तुमको देश के अनुसार चलना होगा। हमारी गरीबी का तुम्हें एहसास होता रहे, यह तुम्हारी तक क्षमता के लिए जरूरी है, इस अर्थ में गरीबी बाँटकर ही काम चलाना होगा। सुविधाओं का अधिकार कार्यक्षमता और दक्षता के आधार पर स्वीकार करना एक बात है, विशिष्ट समाज रचना की छूट देना अलग बात है। यह छूट किसी हालत में देश देने के लिए तैयार नहीं, प्रजातंत्र और स्वाधीनता के तमाम झूठे सच्चे नारों के बावजूद।

पर यह साहस आज देश के किस नेता के पास है? सारे नेता इस वर्ग के प्रभाव क्षेत्र में हैं अथवा इससे आतंकित और प्रभावित हैं। लेकिन देश के सच्चे भविष्य के लिए इस वर्ग की तर्कहीनता के उत्तर में इस तर्क-पद्धति के अलावा कोई उपाय नहीं है। —'कल्पना' से साभार

संसद की शिक्षा-समिति की रिपोर्ट

३१ जुलाई '६७ को सर्व सेवा संघ में शिक्षा में दिलचस्पी रखनेवाले वाराणसी के ५० नागरिकों की एक गोष्ठी हुई। इस गोष्ठी का विषय था 'संसद की शिक्षा-समिति की रिपोर्ट'। गोष्ठी की अध्यक्षता की राजकीय बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने।

चर्चा के शुभारम्भ में आचार्य श्री राममूर्ति जी ने शिक्षा-आयोग के इस लक्ष्य का—कि राष्ट्रिय शिक्षा राष्ट्र के विकास और समाज के परिवर्तन का साधन बने—उल्लेख करते हुए कहा कि संविधान में देश को जिस व्यवस्था की योजना है उसके आधार हैं—सत्ता की राजनीति (पावर पालिटिक्स) और निजी सम्पत्ति (प्राइवेट प्रापर्टी)। इनको मानकर जो शिक्षा विकसित होगी वह किसी प्रकार का क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं ला सकेगी। उन्होंने कहा कि भारत का भविष्य लोकतन्त्र और समाजवाद में है और उसके लिए आर्थिक साधनों का निजी स्वामित्व (प्राइवेट ओनरशिप), सरकार स्वामित्व (स्टेट ओनरशिप) और मिश्रित स्वामित्व (मिक्स्ड ओनरशिप) से भिन्न ग्राम-स्वामित्व की जरूरत है।

साधनों के स्वामित्व का आधार बदले

आज खेती और कारखाने प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर चलते हैं। प्रतिद्वन्द्वितामूलक खेती और कारखाने शिक्षा के साथ नहीं जुड़ सकते। आज के आर्थिक आधार को ही बदलना होगा। जब आर्थिक आधार बदल जायगा और उसके साथ शिक्षा जुड़ जायगी तब क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा और शिक्षा विकास का साधन बनेगी। क्या भारत के आर्थिक साधनों का स्वामित्व भारतीय संविधान की सीमाओं के भीतर रहते हुए बदला जा सकता है? यह परिस्थितियों के सन्दर्भ में से एक महत्वपूर्ण सवाल पैदा होता है। लगता है कि साधनों के स्वामित्व की सांविधानिक सीमाओं के अन्दर रहते हुए देश की भूमि समस्या या किसी भी बड़ी समस्या का हल नहीं प्राप्त होगा।

उन्होंने कहा कि केवल कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरियंस) से उत्पादन नहीं बढ़ेगा। उत्पादन बढ़ाने के लिए विद्यार्थी और शिक्षकों के ऊपर उत्पादन की

जिम्मेदारी डालनी होगी। शिक्षा को उत्पादन के साथ जोडना होगा, ताकि शिक्षा से उत्पादन बढ़े और उसकी प्रक्रिया शिक्षा का माध्यम बने।

गाँव प्रधान भारत के गाँव को स्वामित्व का इकाई, उत्पादन का इकाई, व्यवस्था की इकाइ और शिक्षण की इकाई एक साथ मानकर चलना चाहिए। गाँव केवल कच्चे माल का आपूर्ति का केन्द्र नही है बल्कि उनका एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। गाव एक इकाई है और इसलिए विनोबाजी ने कहा कि हर गाँव विश्वविद्यालय बने। इसका यह अर्थ है कि हर गाँव मे अद्यतन ज्ञान विज्ञान पहुचे तभी गाँव की समस्याएँ हल होगी और देश सुखी और समृद्ध होगा।

अगर गाँवा की उपेक्षा की गयी तो समस्याओ के समाधान के लिए नक्सल बाडी की ओर आकर्षण होगा।

उन्होने कहा कि शिक्षा केवल विशेषज्ञा और प्रशासको के लिए नही है बल्कि करोडो-करोड नागरिको का विषय है।

सामाजिक समता का प्रारम्भ शिक्षा से

श्री राममूर्ति के बाद श्री राजाराम शास्त्री अध्यक्ष समाज विज्ञान विभाग काशी विद्यापीठ ने नेबरहुड स्कूल की सराहना की और कहा कि अच्छा हो पब्लिक स्कूल बन्द हो जाँय। उन्होने कहा कि साधन और सामग्री के अभाव मे थोडे से लोगा को शिक्षा दी जाय इस विचार का समाजवाद से मेल नही बैठता। सबको शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए। समता शिक्षा से शुरू हो।

देश भर की शिक्षा का एक दर्शन हो—पद्धतियाँ अलग अलग हो सकती हैं। यह शिक्षा का दर्शन कमिशन की रिपोर्ट मे कही नही है।

समता और एकता की दृष्टि से स्कूल जीवन म विषमता और अनेकता का अवसर नही आने देना चाहिए। हमारी संस्कृति के बुनियादी आधार ढूँढे जाने चाहिएँ और उन्हे शिक्षा का आधार बनाया जाना चाहिए।

उन्होने अन्त मे कहा कि मनुष्य शक्ति की योजना की जानी चाहिए और उसके अनुसार शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए।

शिक्षा मे मानवीय सम्बन्धो का महत्व

श्री विश्वबन्धु चटर्जी, सहायक निदेशक, गांधी विद्या स्थान, वाराणसी ने कहा कि रिपोर्ट मे मानवीय सम्बन्धो और मानवीय मूल्यो का उल्लेख नही है। यह रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा की नही बल्कि मात्र पाठ्यक्रम की रिपोर्ट है। इसमे

विषयों की बात बहुत है लेकिन आदमी को आदमी कैसे बनाया जायगा यह कही नहीं है। उन्होंने आक्षेप किया कि जनता की शिक्षा की बात इसमें नहीं कही गयी है। इस रिपोर्ट के सामने शहरी और सम्पन्न समुदाय का चित्र रहा है, देश के ७० प्रतिशत अशहरी नागरिकों का चित्र नहीं।

उन्होंने कहा कि रिपोर्ट में प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा की गयी है। प्राथमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय योजना बननी चाहिए। ऊपर की शिक्षा अपने आप बन जायगी अगर बुनियाद ठीक कर दी जाय।

यह कहा जाता है कि शिक्षा का इस तेजी से फैलाव होता जा रहा है कि विस्फोट की नौबत आ गयी है। जब कि देश में इतनी निरक्षरता है तो विस्फोट का क्या प्रश्न है? हमारे स्कूलों का इतना बुरा हाल है कि कहीं-कहीं एक शिक्षक द्वारा एक पूरा स्कूल चलाया जाता है।

शिक्षा राजनीति से मुक्त हो

श्री रोहित मेहता वाराणसी के प्रसिद्ध थियोसाफिस्ट तथा शिक्षाविद् ने कहा कि संसद के सदस्य इससे भिन्न क्रान्तिकारी रिपोर्ट क्या बनाते? वे सब राजनीति के लोग हैं। राजनीतिज्ञों के हाथ से शिक्षा को निकालना चाहिए। इसके लिए नागरिकों का संगठन होना चाहिए और उनकी ओर से जोर डाला जाना चाहिए।

उन्होंने इस बात की जोरदार आलोचना की कि शिक्षा का कोई दर्शन नहीं बना है, शिक्षा का सिर्फ ढाँचा तैयार हुआ है।

रिपोर्ट में समाज परिवर्तन की बात है लेकिन उसका स्वरूप क्या होगा? क्या पश्चिम की समाज-व्यवस्था लानी है? क्या पुरानी व्यवस्था में कुछ नहीं है जिसे कायम रखा जाय? मनुस्मृति में समाज-व्यवस्था की मूल बातें हैं लेकिन उनकी ओर हम ध्यान नहीं देते। कुछ संशोधन के साथ उनके मूल सिद्धान्तों को लिया जा सकता है।

समान अवसर और सामाजिक समानता ही काफी नहीं है मनोवैज्ञानिक पक्ष भी उतना ही जरूरी है। एक-एक व्यक्ति को विकसित होने का अवसर मिलना चाहिए।

राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकात्मकता, ये सब राजनीतिक नारे रह गये हैं। आज हम भारतीय नहीं रह गये हैं। इसकी जिम्मेदारी राजनीति की है।

विश्वविद्यालयी शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो

उन्होंने उच्च शिक्षा म क्षत्रीय भाषाओं का शिक्षा के माध्यम होने म एक खतरा बताया और कहा कि इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अग्रेजी का समथन कर रहा हूँ। भारत की हा कोई एक भाषा पूरे देश म उच्च शिक्षा का माध्यम बने। वह भाषा हिन्दी हो हो सकता है। क्षेत्रिय भाषा के माध्यम होने से विश्वविद्यालय एक टापू की तरह हो जायँगे। इससे एक क्षेत्र का विचार दूसरे क्षेत्र म नहीं जा सकेगा क्योंकि भाषा क्षेत्रीय रहेगी। अत विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी माध्यम होनी चाहिए। हिन्दी राष्ट्रभाषा होने ही वाली है लेकिन राजनीति के कारण यह नहीं हो रहा है।

विज्ञान और अध्यात्म मे मल होना चाहिए लेकिन इसपर रिपोर्ट म कोई सकेत नहीं है। यह बुनियादी प्रश्न है।

उन्होंने दो समस्याओं का उल्लेख किया—१ अधिक से अधिक लोगो की शिक्षा साक्षरता तथा २ अच्छा मे अच्छी शिक्षा। अगर शिक्षा के स्तर की ओर ध्यान नहीं दिया गया तो शिक्षित निरक्षरता पैदा होगी।

उन्होंने शिक्षक प्रशिक्षण का उल्लेख करते हुए कहा कि शिक्षकों का अच्छा प्रशिक्षण होना चाहिए। इस ओर ध्यान देना जरूरी है। अपने देश म प्राथमिक शिक्षा कलक है। प्राथमिक शिक्षा मे माताओं को स्थान मिलना चाहिए और प्राथमिक शिक्षा के लिए एक कमीशन नियुक्त होना चाहिये।

उन्होंने प्रश्न रखा कि माध्यमिक शिक्षा के बाद विद्यार्थी क्या करेंगे? अगर सामाजिक ढाँचा यहा रहा तो वे क्या काम करगे? काम नहीं मिलेगा तो निराशा होगी। माध्यमिक शिक्षा पूण होनी चाहिए।

सरकार से समाज का ढाँचा नहीं बदल सकता। यह गैर सरकारी प्रयत्न से ही होगा। इसलिए नागरिकों को चाहिए कि वे शिक्षा की समस्या पर विचार करें। शिक्षा का दर्शन बन जायगा तो पद्धति बनने म देर नहीं लगेगी।

सुश्री शुभदा जी, प्राचार्या, बसन्त कन्या महाविद्यालय, वाराणसी ने कहा कि शिक्षा राजनीति का अखाडा न बने। बातें बहुत की जाती है और काम कम होता है। हम लोगो को कुछ काम करना चाहिए।

उनकी राय थी कि शिक्षा की रिपोर्ट उद्देश्यहीन है। अर्थनीति राजनीति ज्यों की त्यो है। यूरोप और अमेरिका की नकल से भारतीय शिक्षा कैसे बनेगी? ऊपर से लादा हुई शिक्षा से जनमानस नहीं बनेगा। ग्रामीण समाज का क्या होगा? क्या उसे शहरों मे लाना है?

डा० राजनाथ सिंह प्राचार्य, उदयप्रताप कालेज, वाराणसी ने कहा कि प्रचलित शिक्षा केवल पुस्तक और परीक्षा पर आधारित नहीं है बल्कि वह शिक्षक तथा संस्था पर आधारित है। जिस संस्था में अच्छे और योग्य शिक्षक हैं वहाँ छात्र अधिक संख्या में भरती हों इसलिए समाजवाद के नाम पर तथा नेबरहुड स्कूल के कारण अच्छे स्कूल नहीं बन्द करने चाहिएँ।

उन्होंने कहा कि शिक्षा की पद्धति के बदल देने से शिक्षा नहीं बदल सकती है।

शिक्षा-संस्थाएँ ही अच्छा नागरिक बना सकती है ऐसा मानना ठीक नहीं। इसके लिए घर और समाज को ठीक होना होगा क्योंकि विद्यार्थी अपने परिवार और समाज में अधिक समय तक रहते हैं।

उन्होंने कहा कि थोड़े से साधन-सामान को सबमें बाँट देने से उतना लाभ नहीं होगा जितना कि थोड़े-से लोगों में उसे बाँटकर उनको ज्यादा अच्छा बनायें।

श्री पुरुषोत्तमदास खत्री, प्रधानाध्यापक सारस्वत खत्री हाई स्कूल ने कहा कि आज शिक्षकों में आदर्श की भावना का अभाव है। आदर्श भावना के अभाव की पूर्ति कैसे होगी इसका कोई उपाय कमीशन ने नहीं सुझाया। हमें इस का हल ढूँढना चाहिए।

जीवन-दर्शन के अभाव का कारण

श्री वंशीधरजी ने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि विभिन्न जीवन पद्धति वाले शिक्षा-आयोग में थे इसलिए उन्होंने किसी एक जीवन पद्धति की बात नहीं की।

शिक्षा-आयोग ने गांधीजी की बहुत-सी बातों को माना लेकिन उनके जीवन-दर्शन को स्वीकार नहीं किया।

इस संसद समिति ने उन विशिष्ट ६ संस्थाओं को बनाने की बात, जिनकी शिक्षा-आयोग ने सिफारिश की थी, न मानकर अच्छा काम किया है।

दस साल में क्षेत्रीय भाषा में पुस्तकें तैयार हो जायें ऐसी सिफारिश शिक्षा-आयोग ने की थी लेकिन इसकी अवधि इस समिति ने ५ साल करके सराहनीय काम किया है।

पिछले २० वर्षों में पूँजीवाद और सामन्तवाद की भावना बढ़ी है और पब्लिक स्कूल बढ़े हैं। उन्हें धीरे-धीरे ५ साल में बन्द कर देना चाहिए।

—कृष्णकुमार

अरब-इसराइल-समस्या की पृष्ठभूमि

रुद्रभान

अरब इसराइल संघर्ष मिटने के बजाय और अधिक खतरनाक होता चला जा रहा है क्योंकि दोनों पक्षों ने परस्पर विरोधी रास्ता अख्तियार कर लिया है। दोनों पक्षों की जनता के लिए यह संघर्ष उनके अस्तित्व को ही चुनौती दे रहा है। अरब देशों की दृष्टि से इसराइल एक ऐसा साम्राज्यवादी छुरा है जो जबरदस्ती अरब प्रदेश में घोंप दिया गया है। इसके कारण उनकी राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक विशिष्टता और आर्थिक स्वायत्तता का अस्तित्व खतरे में पड गया है।

यहूदियों के लिए इसराइल एक ऐसे सपने का मूर्तरूप है जिसे वे २ हजार वर्षों से देखते आये हैं। यहूदी राष्ट्रवादियों का लक्ष्य है अपनी आदि पैतृक भूमि में फिर से अपना राष्ट्रीय आवास बनाना। अपने इस हक को वे ऐसा मानते हैं जिसे किसी जन के लिए इनकार नहीं किया जा सकता है।

यहूदियों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यहूदियों का अपना एक विशेष धर्म और अपनी एक जाति रही है। अठारहवीं सदी तक उन्होंने कहीं भी अपना कोई राष्ट्रीय आवास नहीं बनाया। वे यूरोप के देशों में बिखर कर फैले थे और वहाँ के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में भरपूर हिस्सा लेते रहे। लेकिन हरेक देश में वे अल्पसंख्यक और दूसरे दर्जे के नागरिक के रूप में रहे। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दौर से रूस तथा पूर्वी यूरोप के देशों में वहाँ की सरकारों-द्वारा ऐसे कदम उठाये गये जिनके कारण यहूदियों को सामूहिक रूप से पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में स्थानान्तरित होना पडा।

पश्चिमी यूरोप के देशों में यहूदियों की स्थिति दिनों दिन खतरनाक होती गयी। जर्मनी, आस्ट्रिया और फ्रांस में यहूदियों के विरुद्ध ऐसा विद्वेष और बर्बरतापूर्ण वातावरण बना कि इन देशों की जनता यहूदियों के खून की प्यासी बन गयी। यहूदियों को यह मानने के लिए विवश होना पडा कि पश्चिमी यूरोप के देशों की नागरिकता उनके लिए खतरे से भरी हुई थी।

५० वर्षों के भीतर ही पूरा यूरोप यहूदियों के लिए यातना गृह बन गया। इन विषम परिस्थितियों ने यहूदियों को इस बात के लिए विवश किया कि वे अपने लिए किसी पैतृक भूमि की तलाश करें। सहज ही उनका ध्यान इसराइल की ओर आकर्षित हुआ जो उनकी धार्मिक और ऐतिहासिक स्मृतियों में मौजूद था।

फिलिस्तीन के साथ यहूदियों का ऐतिहासिक सम्बन्ध कैसे आया इसकी जानकारी के लिए यहूदियों के दो हजार वर्ष के इतिहास पर एक सरसरी नजर दौड़ाने की जरूरत है।

फिलिस्तीन से पुराना लगाव

ईसा से लगभग २ हजार वर्ष पूर्व अब्राहम ने यहूदियों को इसराइल में बसाया और उन्हें हिब्रू नाम दिया। कई वर्षों के सूखे और फसलों की हानि के कारण उन्हें उस क्षेत्र से हटकर नील नदी की घाटी में बनजारों की जिन्दगी बिताने के लिए लाचार होना पड़ा। वहाँ उनकी हालत गुलाम चाकरों-जैसी हो गयी थी। ईसा से १३ सौ वर्ष पहले उनके अन्दर एक नेता पैदा हुआ जिसने उन्हें वहाँ से मध्य फिलिस्तान के पहाड़ी हिस्से में स्थान ग्रहण करने को प्रेरित किया। वहाँ यहूदियों ने एक छोटे किन्तु उन्नतिशील राज्य की नींव डाली। वहीं यहूदियों के बीच साउल, डेविड और सोलोमन-जैसे इतिहास प्रसिद्ध सम्राट जन्मे। ईसा से लगभग ६ सौ वर्ष पूर्व इसराइल की राजधानी यरुसलम पर असीरियनों का आक्रमण हुआ जिसमें यहूदी हार गये और सीमा पार देश निकाल दिये गये। वहाँ भी उनकी स्थिति बिगड़ती गयी। एक हारी और मजदूर कौम के रूप में वे इधर-उधर बिखर कर मारे मारे फिरते रहे। अपने मूल स्थान से उनका सम्बन्ध टूट गया। वे व्यापारी, रोजगारी और कारीगरों के रूप में, जहाँ-जहाँ अवसर मिला, बसते गये।

इन परिस्थितियों में से गुजरते हुए यहूदियों ने अपने साहित्य में एक भावपूर्ण कल्पना की, कि तमाम देशों में बिखरे हुए यहूदी एक-न-एक दिन अपने मसीह के नेतृत्व में अपनी मातृभूमि में अवश्य वापस लौटेंगे।

फिलिस्तीन से यहूदियों के निष्कासन के बाद वहाँ जो लोग बच गये उन्होंने रोमन शासन के प्रभाव में आकर ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। सन् ६३६ ई० में अरबों ने फिलिस्तीन पर विजय पायी और बड़ी संख्या में वे वहाँ बस गये। तब से वे वहीं रह रहे हैं।

प्रथम महायुद्ध के समाप्त होने पर ब्रिटेन ने हारे हुए तुर्की साम्राज्य के

भूभाग पर अपना अधिकार जमा लिया था। (यह वही स्थान है जहाँ आज इसराइल देश बसा हुआ है)।

सन् १९१७ के महायुद्ध में इंग्लैंड तथा दुनिया में अन्य यहूदियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए, ब्रिटिश सरकार ने 'बालफोर घोषणा' की, जिसमें फिलिस्तीन में यहूदियों को अपना राष्ट्र संगठित करने का वचन दिया। बालफोर घोषणा में यह भी कहा गया था कि ऐसा कोई कार्य न किया जायगा, जिससे गैर यहूदी जनता के धार्मिक और नागरिक अधिकारों में कोई हस्तक्षेप हो। उस समय फिलिस्तीन की कुल आबादी ७ लाख के लगभग थी। इनमें एक दशमांश यहूदी थे और इतने ही अरब ईसाई थे। बाकी अरब मुसलमान थे।

सन् १९२२ में लीग आव नेशन्स ने ट्रांसजार्डन और फिलिस्तीन की ब्रिटिश घोषणा को अन्तिम स्वीकृति प्रदान कर दी थी, जिसमें यहूदियों के लिए पृथक् राष्ट्र बनाने की बात शामिल थी। शुरू के वर्षों में ब्रिटेन ने फिलिस्तीन में बाहर से यहूदियों के आकर बसने को प्रोत्साहित किया ताकि उस क्षेत्र का शीघ्र ही विकास हो सके। इसी के साथ-साथ विश्व-यहूदी-संगठन ने क्षेत्र की अर्थ-व्यवस्था के सुधार के लिए धन का संग्रह किया ताकि अधिक से अधिक यहूदियों को जीविका दी जा सके।

इसी अवधि में जर्मनी की बागडोर हिटलर के हाथों में आयी। हिटलर ने जर्मनी में यहूदियों के दमन की नीति अपनायी। हिटलर की दमन-नीति के परिणामस्वरूप फिलिस्तीन में यहूदियों का आगमन और भी जोरों से शुरू हुआ। शुरू में जहाँ यहूदियों की आबादी ११ प्रतिशत थी वहाँ वह बढ़कर २९ प्रतिशत तक पहुँच गयी।

आबादी की इस बदलती हुई स्थिति के प्रति धीरे-धीरे अरबों का असन्तोष बढ़ने लगा। अरब प्रदेश में यहूदियों के भारी तादाद में बसने का विरोध करना अरबों के लिए जरूरी हो गया, क्योंकि इस प्रक्रिया-द्वारा उन्हें अपनी उस जमीन को जोतने के अधिकार से बेदखल किया जा रहा था जिसे वे अपनी कई पीढ़ियों से हासिल करते आये थे। १९३७ में अरब हाई कमान ने आम हड़ताल करने की घोषणा की। इस स्थिति को टालने के लिए पील-आयोग फिलिस्तीन भेजा गया। पील-आयोग ने पहली बार उस क्षेत्र को तीन हिस्सों में बाँटने की सिफारिश की जिसमें एक तिहाई क्षेत्र में यहूदी राष्ट्र बनाने की भी सिफारिश की गयी थी। पील-आयोग की सिफारिशों को लीग आव नेशन्स तथा विश्व यहूदी-कांग्रेस ने कुछ शर्तों के साथ स्वीकार कर लिया। अरब प्रतिनिधियों ने इसके विरुद्ध मतदान किया और विरोध

जाहिर किया। उन्होंने माँग रखी कि बाहर से आकर यहूदियों के बसने तथा भूमि खरीदने पर रोक लगायी जाय। इसके साथ-साथ फिलिस्तान में अरबों ने अपनी उग्र कारवाई बन्द की। अरबों के असंतोष के कारण ब्रिटिश सरकार पील आयोग की सिफारिशें लागू करने का साहस न दिखा सकी।

दूसरा महायुद्ध छिड़ने पर विश्व-यहूदी-संगठन हिटलर के विरुद्ध ब्रिटेन को सहयोग देने में एकजुट हो गया। सन् १९४२ में अमेरिकी यहूदियों ने एक यहूदी राज्य और एक यहूदी सेना की माँग की। सन् १९४५ में अमरिकी राष्ट्रपति ट्रूमन ने यूरोप के १० लाख विस्थापित यहूदियों को अमेरिका में पुनर्वास की अनुमति माँगी। १९४५ तक फिलिस्तीन के दोनों पक्षों (यहूदियों और अरबों) ने अपना सैनिक संगठन खड़ा कर लिया। समस्या का कोई समाधान न निकलते देखकर ब्रिटेन ने इस प्रश्न को राष्ट्रसंघ के सुपुर्द कर दिया। १९४७ के अंत में संघ य महासभा ने फिलिस्तीन के प्रश्न पर राष्ट्रसंघ के विशेष आयोग की रिपोर्ट को जिसमें फिलिस्तान के विभाजन का सुझाव दिया गया था स्वीकार कर लिया अरब प्रतिनिधियों ने इसका विरोध किया। अरब लोग ने पवित्र भूमि के विभाजन को रोकने के लिए बल प्रयोग की धमकी दी। दोनों पक्षों की आतंकपूर्ण कारवाई बढ़ गयी। सेनाएँ पूरी तरह से फिलिस्तान में हटा ली गयी। १४ मई १९४८ को बेनगुरियन और बेंजामिन के नेतृत्व में इसराइल की सरकार का गठन हुआ।

रूस संसार का पहला देश था जिसने इसराइल को राजनयिक मान्यता प्रदान की। रूस के बाद अन्य कम्यूनिस्ट राष्ट्रों (पोलण्ड चेकोस्लोवाकिया हंगरी रूमानिया और युगोस्लाविया) ने भी इसराइल को मान्यता दी। रूस के साथ साथ पश्चिमी राष्ट्र (अमेरिका ब्रिटेन फ्रांस) ने भी मान्यता दी।

भागा मे बांटा गया। बहुत समय तक पूरा क्षेत्र तुर्की साम्राज्य के अन्तर्गत एक ही प्रशासनिक और राजस्व-व्यवस्था द्वारा शासित हुआ। इससे आगे बढ़कर वे मानते हैं कि सीरिया का इलाका दरअसल उस विशाल अरबी क्षेत्र का ही अंग है जिसमे ईराक, अरब, मिस्र, सूदान और अफ्रीका का उत्तरी भाग शामिल है। इन सभी क्षेत्रो के लोगो की वंशपरम्परा, भाषा, धर्म, सस्कृति और ऐतिहासिक परम्परा एक समान है।

अरब और यहूदी-संघर्ष की एक विशेषता यह रही है कि शुरू से ही अरब लोग यहूदियो के मुकाबिले कमजोर पडते गये। शुरू मे ही जो यहूदी शरणार्थी फिलिस्तीन मे बसने के लिए पहुँचे उनके पास भरपूर पूँजी, हुनर और तालीमी काबलियत थी। उनमे नयी स्फूर्ति और एकता की ताकत थी। वे प्राय नवजवान और तमन्नावाले होते थे। उनके मुकाबिले अरब किसान कर्ज से दबे हुए, अनपढ, बटाई पर खेती करनेवाले और गरीबी मे जैसे-तैसे गुजर बसर करनेवाले थे। अरबो का राष्ट्रीय संगठन अरब जमीदारो और अमीरो की आपसी खीचातानी और होड का अखाडा था। इसलिए यहूदियो के मुकाबिले न तो उनके पास साधन ही थे न संगठन, और न तो समझदारी। कुल मिलाकर पूरा अरब-क्षेत्र टुकडो मे बँटा हुआ, पिछडा और मुहताज था।

फिलिस्तीन मे यहूदियो के बसने से जो आर्थिक समृद्धि हुई उसका फायदा अरबो को नही नसीब हुआ। यहूदियो ने अपने कारोबार से अरबो को प्राय अलग रखा। धीरे-धीरे जमीन की कीमतें बढती गयी, यहूदी जमीन खरीदते गये और अरब धीरे-धीरे भूमिहीन होते गये। जैसे जैसे यहूदी फिलिस्तीन मे बसते गये वैसे वैसे अरब बेघरबार और बेकार होने चले गये। फिलिस्तीन की जमीन जितनी आबादी के खिलाने पिलाने का बोझ उठा सकती थी उससे कही ज्यादा आबादी बढ जाने पर भी बाहर से यहूदियो के आकर बसने पर कोई पाबन्दी नही लग सकी। इस प्रक्रिया से धीरे धीरे अरब लोगो को फिलिस्तीन छोडकर पास-पडोस के देशो मे शरण लेनी पडी।

अरब इसराइल-समस्या का निष्पक्ष दृष्टिकोण

● यहूदी जाति की सबसे घनी आबादी पश्चिमी यूरोप के देशो (जर्मनी, रूस, फ्रास, स्पेन आदि) मे थी। इन्ही देशो मे यहूदियो को सबसे अधिक तिरस्कृत और पीडित भी किया गया। न्याय का तकाजा था कि इन देशो से बहिष्कृत यहूदियो को वहीं के किसी भू-भाग मे बसने की सुविधा दी गयी होती। पर पश्चिमी राष्ट्रो ने ऐसा नही होने दिया। सबने मिलकर ब्रिटेन और

संयुक्त राष्ट्र संघ के मार्फत फिलिस्तीन में ही यहूदियों को बसने और अपना राष्ट्र संगठित करने का अवसर दिलाया। जर्मनी पश्चिमी देशों का बिरादरी का है इसलिए अमेरिका और ब्रिटेन ने उस यहूदियों के बसाने की समस्या से दूर रखा। अत यह बला निरीह अरबों पर आयी।

● जब तक इसराइल राष्ट्र का गठन नहीं हुआ था तब तक यहूदी फिलिस्तीन में अरबों से जमीन खरीदकर बसते थे। इसराइल बन जाने के बाद यहूदियों ने अपनी सैनिक शक्ति का उपयोग करके धीरे धीरे इसराइल की भौगोलिक सीमा बढ़ानी शुरू की और अधिकृत क्षेत्र के अरबों को दूसरे दर्जे की नागरिकता प्रदान की या उन्हें इलाका छोड़कर शरणार्थी की तरह दूसरे मुल्कों में जाने को मजबूर किया। ऐसे अरब शरणार्थियों की संख्या आज दस लाख से ऊपर पहुँच गया है। न्याय का तकाजा है कि इन अरब शरणार्थियों को इसराइल में लौटकर बसने या अन्यत्र रहकर जीविका चलाने की सुविधाएँ प्राप्त हों।

● अरब इसराइल-समस्या की सबसे कठिन उलझन यह है कि पश्चिमी राष्ट्रों ने फिलिस्तीन में इसराइल की स्थापना कराकर अरब और इसराइल, दोनों के समक्ष निरन्तर अशान्ति की परिस्थिति पैदा की है। जब तक इसराइल से विस्थापित १० लाख अरब शरणार्थियों के बसने की कोई पक्की व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक अरब-जनता के असन्तोष की आग नहीं बुझ सकेगी, और न वे इसराइल के अस्तित्व को स्वीकार करने के लिए तैयार हो सकेंगे।

● सन् १९४८ में इसराइल का जो भौगोलिक सीमा थी वही उसकी वैधानिक और न्यायोचित सीमा मानी जा सकती है। सैन्यबल के सहारे हस्तगत किये गये क्षेत्र पर कब्जा जमाये रखना और उसे अपना भू भाग बनाने का प्रयास करना इसराइल के भविष्य और स्थिरता के लिए खतरनाक चीज है।

● इसराइल की समस्या का कोई स्थायी समाधान हो जाय यह अरब देशों के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि इसराइल को हमेशा इस बात का भय रहे कि अरब उसके साथ दुश्मनी चाहते हैं तो वह अरब शरणार्थियों को अपने यहाँ वापस बुलाने को कभी तैयार नहीं होगा। अरबों को राजनैतिक स्तर पर इसराइल का अस्तित्व स्वीकार करके अरब-शरणार्थियों की समस्या का शान्तिपूर्ण हल ढूँढना चाहिए। इसी में दोनों देशों का हित और स्वस्थ विकास निहित है। ●

सर्वोदय-पर्व

दत्तोबा दास्ताने
सचालक
सर्व सेवा सघ प्रकाशन

पिछले कई वर्षों म हम देश मे ११ सितम्बर से २ अक्तूबर यानी 'विनोबा-जयन्ती' से 'गांधी-जयन्ती' तक की अवधि सर्वोदय पर्व क रूप मे मना रहे है। विनोबा जी ने इसे 'शरदारभे शारदोपासना'' का पर्व कहा है। अर्थात् इस अवधि म शारदापासना का कार्यक्रम सघनरूप मे चलाया जाय, इस लक्ष्य को ध्यान म रखकर विभिन्न प्रदेशा और स्थानो पर सर्वोदय पर्व के अनेकविध आयोजन किये जाते हैं जिनमे साहित्य प्रचार का काम मुख्य रहता है।

सर्वोदय-पर्व की अवधि मे सर्वोदयविचार को जनप्रिय बनाने की दृष्टि से स्थानीय लागो की रुचि, प्रवृत्ति और परिस्थितियो के अनुरूप कार्यक्रम उठाये जाते हैं। कायक्रमो की दिशा का सकेत आगे दिया जा रहा है। आशा है आप अपने यहा इस वर्ष उक्त कार्यक्रम सघनरूप से आयोजित करेंगे और सर्वोदय साहित्य का अधिकाधिक प्रचार कर आन्दोलन को बल प्रदान करेंगे।

साहित्य का बिक्री पर हम सामान्यतया २५ प्रतिशत कमीशन देते है पर इस वर्ष पर्व के दौरान १०० रुपये से अधिक बिक्री हुए साहित्य पर १० प्रतिशत विशेष कमीशन दिया जायगा। १००) से अधिक का साहित्य मँगाने पर निकट तम रेल्वे स्टेशन तक फ्री डिलीवरी स भेजा जायगा। इसस कम के साहित्य पर साहित्य भिजवाने का खर्च हम वहन नही करेंगे।

आशा है साहित्य प्रचार के इस अभियान को आपका सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा।

सर्वोदय-पर्व के कार्यक्रम

साहित्य प्रचार को ध्यान म रखते हुए निम्नलिखित कार्यक्रम सर्वोदय पर्व की अवधि म उठाये जा सकते हैं —

१ घर घर जाकर सर्वोदय-साहित्य की बिक्री एव प्रचार करना।
२ सर्वोदय विचार की पत्र-पत्रिकाओं के ग्राहक बनाना।
३ महादेव भाई की डायरी के ग्राहक बनाना।

उद्देश्य पूर्ति की योजना

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है —

१ गाँवों में पदयात्राओं का आयोजन।

२ शहरों में टोलियाँ बनाकर घर घर पहुँचना।

३ स्कूल और कालेजों में जाकर विशेष तौर से साहित्य बिक्री का आयोजन करना।

४ हर स्कूल एवम् मध्यम परिवार को महादेव भाई की डायरी के ग्राहक बनाना।

५ खादी भण्डारों पर साहित्य बिक्री का विशेष प्रबन्ध एवं प्रोत्साहन करना।

६ विशेष प्रसंगों या उत्सवों के निमित्त साहित्य का या विशेष पुस्तकों का वितरण।

७ रेल्वे प्लेटफार्म और बस स्टेशनों पर अस्थायी बिक्री का विशेष आयोजन।

८ विभिन्न वर्गों के पाठकों को ध्यान में रखकर यहाँ तैयार की गयी बगकार सेट के ग्राहक नोट करना।

९ कारखानों एवं औद्योगिक बस्तियों में साहित्य प्रचार का आयोजन करना।

इसी प्रकार के साहित्य प्रचार के और तरीके भी स्थानीय अनुकूलता देखते हुए अपनाये जा सकते हैं।

वातावरण का निर्माण

उक्त कार्यक्रमों की सफलता के लिए वातावरण निर्माण करने की दृष्टि से प्रचार की कुछ पद्धतियाँ इस प्रकार हो सकती हैं

१ शहरों कस्बों तथा सार्वजनिक स्थानों पर छोटी बड़ी साहित्य प्रदर्शनियों का संयोजन।

२ विचार गोष्ठियों और व्याख्यान मालाओं का आयोजन।

३ स्थान-स्थान पर सुरुचिपूर्ण एवं आकर्षक पोस्टर या साइन बोर्ड लगाना।

४ सर्वोदय-साहित्य की जानकारी देनेवाली छोटी छोटी पर्चियाँ और सूचीपत्र जनता में वितरित किये जायँ।

५ स्थानीय समाचार-पत्रों के सहयोग से सर्वोदय-पत्र और कुछ विशिष्ट पुस्तकों की जानकारी प्रकाशित करायी जाय।

६ आमसभाओं का आयोजन भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ●

अनुक्रम

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- नयी तालीम प्रति माह १४वीं तारीख को प्रकाशित होती है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छह रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है

नयी तालीम, अगस्त, '६७
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि सं० एल. १७२३

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा सघ की ओर से खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमंदिर, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

नयी तालीम
शिक्षकों, अभिभावकों एवं समाज-सेवकों के लिए
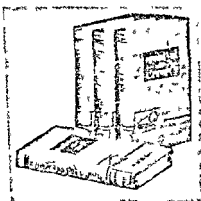
शिक्षक का दिन अभी नहीं

मेरे एक शिक्षक मित्र थे। वे कालेज में कला के शिक्षक थे। उनकी सरकारी नौकरी थी। कुल मिला-कर दो सौ से ऊपर ही मिलता रहा होगा।

एक दिन की बात है, वह शाम को मेरे घर आये। अक्सर आते थे, लेकिन उस दिन कुछ उत्तेजित-से नजर आये। मैंने पूछा 'क्यों, क्या आज कोई खास बात हो गयी है?' बोले 'क्या पूछते हो? मुझे अफसोस है कि तुम शिक्षक हुए।' ऐसी चर्चा चल पडेगी, इसका मुझे ख्याल भी नहीं था। मैंने कहा 'मुझे तो कोई दु:ख है नहीं, आप ऐसा क्यों सोचते हैं?' चट बोल उठे 'अभी क्या, उस दिन देखोगे कि समाज में तुम्हारी उतनी इज्जत भी नहीं है जितनी पुलिस के एक मामूली दारोगा की। अब तो जमाना ऐसा आ गया है कि मास्टर की स्कूल में भी बादशाहत नहीं रही।' इस पर मैंने फिर कहा 'आपके पढाये हुए कितने ही लडके दारोगा होंगे, फिर आप शिक्षक का दारोगा से क्यों मुकाबिला करते हैं?' मैं नहीं सोचता था कि इतनी-सी बात पर वह उबल पडेंगे। क्रोधभरी आवाज में बोले 'तो और क्या, कलक्टर और डिप्टी कलक्टर से मुकाबिला करें? कहाँ है दिमाग आपका?'

वर्ष : १६
अंक : २

मैं चुप हो गया। चाय आयी। अच्छी बनी थी, दो-दो प्याले पीयी गयीं। मिजाज कुछ हल्का हुआ। मैंने चर्चा बदल दी।

मैं उस वक्त चुप तो हो गया, लेकिन मेरा मन किसी तरह नहीं मानता था कि दारोगा की हैसियत किसी अर्थ में शिक्षक की हैसियत से बड़ी है। साथ ही यह बात भी सही है कि ऐसे अनेक शिक्षक मित्र हैं जो दारोगा का रोब-दाब देखकर नाहक अपना दिल जलाया करते हैं।

यह सही है कि हमारा आज का समाज शिक्षक की कद्र नहीं करता। लेकिन किस शिक्षक की? क्या हजार रुपये पानेवाले विश्वविद्यालय के प्रोफेसर की भी कद्र नहीं करता? उसकी करता है, क्योंकि उसके पास ऊँची डिग्री है, ऊँचा पद है, ऊँची तनख्वाह है, वह काम कम करता है, मोटर में चढ़कर आता है, और आलीशान बिल्डिंग में क्लास लेता है।

क्या यह सही नहीं है कि समाज में कद्र सचमुच शिक्षा की ही नहीं है? जब शिक्षा की कद्र नहीं है तो शिक्षक की क्या होगी? शिक्षा डिग्री दिलाती है, और डिग्री से नौकरी मिलती है, ऐसी बातें स्कूलों-कालेजों में भी दिखाई देती है। शिक्षा और नौकरी का नाता तोड़ दिया जाय तो शिक्षा की कलई खुलने में देर नहीं लगेगी।

शिक्षक कहता है 'हम देश की इतनी सेवा करते हैं, लेकिन हमारा पेट भी नहीं भरता।' खेत का मजदूर कहता है 'हमारी मेहनत के अनाज से देश का पेट पलता है, लेकिन हम भूखों मरते हैं।' दस्तकार कहता है 'मेरे हुनर को देखिये और मेरी हालत को देखिये। हमारी हालत तो मजदूर से भी बदतर है।' इसी तरह की बात पुलिस का सिपाही, फौज का जवान, बस का ड्राइवर, रिक्शा खींचनेवाला आदि सभी कहते हैं। ये ही नहीं, अब तो डाक्टर और इंजीनियर भी 'इन्साफ' की माँग करने लगे हैं। इसी तरह अगर आप उद्योगपतियों से पूछें तो वे घंटों सुनायेंगे कि शेषनाग की तरह वे देश के उत्पादन का बोझ ढो रहे हैं, लेकिन बेचारे समाज और सरकार, दोनों की ओर से ज्यादती के शिकार बनाये जा रहे हैं। स्त्रियों, बच्चों, हरिजनों, आदिवासियों की तो बात ही जाने दीजिये। उनकी यातना का इतिहास तो पत्ता-पत्ता पर लिखा हुआ है।

जब चारों ओर अभाव और अन्याय का इस बुरी तरह बाजार गर्म है तो कौन कहेगा कि किसकी पुकार सही है और किसकी गलत।

पर जब समाज में सभी असन्तुष्ट हैं, सभी दुखी हैं, तो मान लेना चाहिए कि समाज का सारा खून खराब हो गया है। और अब उस साफ करने की बात सोचनी चाहिए। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि इस हालत में भी समाज परिवर्तन की पुकार नहीं लगायी जा रही है। लोग यह समझ ही नहीं रहे हैं कि दोष समाज के इस ढांचे का है जिसमें सत्ता और सम्पत्ति ये दोनों भगवान बन बैठे हैं। कुर्सीपरस्ती और मुनाफाखोरी के इस समाज में विद्या धर्म कला साहित्य विज्ञान यहां तक कि स्त्री का शील और मजदूर की मेहनत आदि सब खरीद बिक्री की वस्तुएँ हो गयी हैं। लेकिन इस मूल बात को न पकड़कर लोगों के मन में दूसरी ही बातें बसी हुई हैं। जाति का जाति से, दल का दल से, वर्ग का वर्ग से, क्षेत्र का क्षेत्र से, भाषा का भाषा से, यहां तक कि हर आदमी का हर दूसरे से युद्ध-सा छिड़ा हुआ है। मजा यह कि नामधारी विद्वानों अधिकारियों और नेताओं ने इस गृह-युद्ध को विज्ञान और लोकतन्त्र के मोहक नारे दे रखे हैं और देश की भोली जनता माया के पर्दे को पकड़कर वास्तविकता को नहीं पहचान पा रही है।

शिक्षक अपने विद्यार्थियों को आनेवाले कल के लिए तैयार करता है। यह काम दूसरा कोई नहीं करता। इसीलिए यह कहने की लालच होती है कि शिक्षक परिस्थिति को पहचानेगा और समाज के चालू ढांचे को जड़ से बदलने में जो कुछ कर सकता है करेगा। स्त्री, श्रमिक और शिक्षक अब ये तीन ही शक्तियां हैं जिनकी त्रिवेणी देश को बचा सकती है। सेठ, शासक और नेता को देश देख चुका। उनकी थाली का जूठन मांगने से न हमारी इज्जत बढ़ेगी न पेट भरेगा।

५ सितम्बर हो या और कोई शिक्षक का दिन अभी नहीं आया है। उसका दिन तब आयगा जब शिक्षा सेठ और सरकार के टुकड़ों का आसरा छोड़कर श्रम और समाज के साथ जुड़गी।

शिक्षण तंत्र का काम नहीं होना चाहिए। यह तो जनता का काम होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज दुनिया के सामने जितनी भी समस्याएँ हैं उनमें प्रायः सभी विषयों पर विनोबाजी ताजे, मौलिक और तत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। हमें तो लगता है जैसे उनकी वाणी के रूप में लोक शिक्षा की गंगा बह निकली हो, तभी तो सृष्टि और संस्कृति का कण-कण उनके दर्शन का आधार बन शिक्षा का पावन और उदार स्वरूप प्रस्तुत करता दीखता है। सच ही कहा गया है कि वे तो एक चलते विश्वविद्यालय की तरह हैं—ऐसा विश्वविद्यालय नहीं जो नगर में अलग रहकर काम करता है, बल्कि ऐसा विश्वविद्यालय जिसका जन जीवन के साथ निकट-सम्पर्क है।

वस्तुतः विनोबाजी जन्मजात शिक्षक हैं—एक महान् चिन्तक हैं विचारक हैं। उन्होंने कहा है, 'मेरा सारा जीवन शिक्षण कार्य में बीता है और बीत रहा है। अगर मुझसे पूछा जाय कि आपका कौन सा धन्धा है, तो मैं यही कहूँगा कि मेरा धन्धा शिक्षक का है। तरह साल तक पदयात्रा चली। उसमें अगर मैंने कोई काम किया तो शिक्षक और विद्यार्थी का ही। जो शिक्षक होता है वही विद्यार्थी भी होता है। इसलिए शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों एक ही हैं। और इस सत्य से हम परिचित तो हैं ही कि वे महान् दार्शनिक और शिक्षाशास्त्री रहे हैं। इस पृष्ठभूमि पर विनोबाजी में दोनों स्वरूप उद्भासित होते हैं। एक ओर वे महान् दार्शनिक हैं तो दूसरी ओर महान् शिक्षा-शास्त्री भी। शिक्षा-क्षेत्र में उनकी देन अपूर्व है मौलिक है। उनके शिक्षा दर्शन का रूप प्राजल है जीवन्त है।

पूरी आशा है कि यदि विनोबा के शैक्षिक विचारों पर गहराई में विचार कर उनके संकेतों के अनुसार शिक्षण पद्धति को व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाय तो एक सबल लोकतंत्र एवं सबल लोक चिन्तन की बुनियाद पर खड़ा हो सकता है जहाँ लोक-शिक्षण की बुनियाद पर आधारित नया लोक चिन्तन धारा नये मानव के निर्माण के लिए कटिबद्ध होगी।

शिक्षक और शिक्षा

विनोबा

प्राचीनकाल से आज तक यह जो हिन्दुस्तान बना वह शिक्षकों ने ही बनाया है। उस प्राचीन जमाने से आज बिलकुल अर्वाचीन काल तक हिन्दुस्तान में आचार्यों की परम्परा चली और उन्होंने समाज को तैयार किया और अपनी ओर से उसे विचारदान दिया। अपने यहाँ रामानुज हो गये। उनके शिष्य रामानन्द, और उनके दो शिष्य हुए—कबीर और तुलसीदास। रामानन्द सारे भारत में घूमे। घूम-घूमकर कश्मीर से कन्याकुमारी तक विचारों का प्रचार किया और उन विचारों के अनुसार सारा समाज बदलता गया। यह सारा आचार्यों ने किया है। उन आचार्यों ने समाज का जो परिवर्तन किया, उस पर राज्यसत्ता का कोई असर नहीं था। राज्यसत्ता आयी और गयी, लेकिन भारत का समाज, जो आचार्यों ने बनाया, वह उन्हीं परम्पराओं के अनुसार आज तक चला आ रहा है।

शिक्षक: शान्तिमय क्रान्ति के अग्रदूत

मैं कहना यह चाहता था कि आपलोग शिक्षक हैं तो यह ध्यान में रखें कि आपका काम शिक्षा-द्वारा सारे समाज की रचना बदल देना है। अगर आपने यह मान लिया हो कि आज की समाज-रचना में परिवर्तन किये बिना किसी तरह हमें कुछ करना है—थोड़ा चरखा वगैरह चलाना है या और कुछ काम करना है—तो लोग आपको बेवकूफ कहेंगे। लोग कहेंगे कि 'भाई हमारे विद्यार्थियों को नौकरी करनी पड़ती है। वहाँ तकली, चरखा आदि के ज्ञान की प्रतिष्ठा नहीं होती। आप उनको कोल्हू चलाना सिखायेंगे तो नौकरी करने में उनके कोल्हू चलाने का कोई मूल्य नहीं है। वहाँ तो ज्ञान का सवाल है। अंग्रेजी अच्छी आनी चाहिए, हिन्दी आनी चाहिए, और इतिहास, भूगोल वगैरह भी आना चाहिए। उस ज्ञान में जो आठ-आठ घण्टे समय देगा वह आगे बढ़ेगा, या चार-चार घण्टे कताई-धुनाई-बुनाई कर बाकी समय पढ़नेवाला ?'

अगर आपको उसी माग पर जाना है, अपने लडको से नौकरी ही कराना करवानी है तो नाहक बच्चो को उद्योग क्या सिखाते है ? क्या उनका समय बर्बाद करते है ?

इसलिए आपको यह भलीभाँति समझना चाहिए कि हम एक नयी समाज-रचना करने म लगे है। हम आज की समाज रचना को बिलकुल बदलना चाहते है। हम शान्तिमय क्रांति के अग्रदूत हैं।

शिक्षक का गुण

पुराना पूजी में जो व्यापार करता है उसका व्यापार आगे नही बढ़ता। जो नयी-नयी पूजी हासिल करता है, उसका व्यापार आगे बढ़ता है। वैसे ही शिक्षक का काम है कि नित्य नया ज्ञान वह प्राप्त करे। मै जानता नही कि आप लोग सतत अध्ययनशील होगे कि नही। मुझे शिक्षको का बहुत परिचय है, अक्सर वे लोग दो चार किताबें, जो होती है उनके अन्दर ही अपने को कैदी बनाते है। दुनिया भर म ज्ञान के, जो अनेक विषय है उन विषयो म ज्यादा दिलचस्पी नही लेते।

और, उन बेचारो के पीछे सासारिक मुसिबतें भी होती है, घर म ससार पडा है बाहर सिखाना है, तनख्वाह भी कम है। कुल मिलाकर उन्हे चिन्तन करने का समय मिलता नहीं, सदैव चिन्ता करते रहते है।

शिक्षक को नित्य अध्ययनशील और चिंतनशील रहना चाहिए। अगर इतना आप याद रखेंगे तो ज्ञान आपका सतत बढेगा, चित्त में समाधान होगा। विद्या आपके कण्ठ म होनी चाहिए। इन दिनो कण्ठ म विद्या नही होती, पुस्तक खोलते है और उसम स विद्या निकालते है। 'पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगत धनम्'। बोले—आपको विद्या तो बहुत है न ? जी हाँ, मैं बहुत विद्या सीखा हूँ। कुछ कहो, तो पुस्तक खोलना पडगा। 'पुस्तकस्या तु या विद्या'—जो विद्या पुस्तक म पडी है, और 'परहस्तगत धनम्'—आप बडे धनी है न ? बोले—हा हैं। पैसा ? वह दूसरे के हाथ म है। अब तुम धनी हो और तुम्हारा पैसा दूसरे के हाथ म है। क्या काम आयगा ? परहस्तगत धनम्। कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद् धनम्—काम का मौका आया तो वह विद्या काम म नहीं आयगी न वह धन काम में आयगा। कौन-सा धन ? अपना धन जो दूसरे के हाथ में है और अपनी विद्या जो पुस्तको म है। जो कण्ठगत है, वही अपनी विद्या है जो पुस्तक म है वह अपनी विद्या नही। ●

(६ ५ ६६ तथा १३ ५ ६६ के प्रवचन स)

धीरेन्द्र मजूमदार

लोकतंत्र में शिक्षक की जिम्मेदारी

प्रश्न है, आज के जमाने में शिक्षक को कैसा होना चाहिए? किसी भी देश का शिक्षक, उस देश के नागरिक को तैयार करता है। इसलिए उसे देश दुनिया की परिस्थितियों और समस्याओं के प्रति, जागरूक रहना पड़ता है—वर्तमान समस्याओं के प्रति और साथ ही भविष्य की समस्याओं के प्रति भी। प्राचीन समय में काल-पुरुष की गति धीमी होती थी। आज के युग में विज्ञान के कारण परिस्थिति बहुत शीघ्र बदल जाती है। वर्तमान समस्याओं के सन्दर्भ में ही यदि शिक्षा को चलाया जाय तो उस शिक्षा में शिक्षित व्यक्ति, आगे चलकर परिवर्तित परिस्थितियों और जीवन-संघर्षों में असफल होगा। अतः काल किस दिशा में चल रहा है? चलते चलते कहाँ पहुँचेगा? २० साल बाद बच्चे के सामने की परिस्थितियाँ क्या होंगी? यह सब शिक्षक को सोचना पड़ेगा।

प्राचीनकाल में जब राजतंत्र था, तब समाज अधिक लोकतांत्रिक मूल्य पर चलता था, बनिस्बत आज के जब राजनीतिक लोकतंत्र का अधिष्ठान है। इसका कारण यह है कि उन दिनों का लोक 'तंत्र' आधारित नहीं था, 'मंत्र' आधारित था। मंत्र-दाता गुरु शिक्षक-समुदाय ही होता है। इस प्रकार उन दिनों लोक-नायक राज-पुरुष नहीं होते थे, शिक्षक होते थे, जो समाज का स्वतंत्र चिन्तन का मार्ग-दर्शन करते थे।

प्रचलित राजनीतिक लोकतंत्र की जो पद्धति चल रही है, उसमें मूलभूत विसंगति है। लोकतंत्र में जनमत मुख्य तत्व है। जन प्रतिनिधि का स्वधर्म है, कि वह लोकमत के पीछे चले। लोकमत सामान्य रूप से रूढ़िवादी होता है। काल प्रवाह के साथ कदम मिलाकर लोकमत बने, इसके मार्गदर्शन के लिए जननायक की आवश्यकता होती है। स्वभावतः जननायक जनमत से आगे चलनेवाला होगा। आज की विसंगति यह है कि जनमत के पीछे चलनेवाला प्रतिनिधि ही जनमत को आगे ले जानेवाले नायक के रूप में मान्य है। एक ही व्यक्ति का भार लोकमत के आगे और पीछे दोनों स्थानों पर अधिष्ठित नहीं कर सकता। इसी विसंगति के कारण आज लोकतंत्र पराजित है। राजनीतिक

लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है, जब समाज में पीछे चलनेवाले लोक-प्रतिनिधि से भिन्न आगे चलनेवाले लोकनायक का अधिष्ठान होगा। जननायक का यह स्थान स्वाभाविक रूप से शिक्षक का है।

शिक्षकों पर लोकतंत्र की प्रथम चुनौती

लोकतंत्र ने मनुष्य की आकांक्षा में आमूल परिवर्तन कर दिया है। राजतंत्र में राजा का प्रथम पुत्र ही राजा हो सकता था। दूसरे किसी के लिए राजा होने की सम्भावना नहीं थी। लोकतंत्र में हर एक आदमी राजा यानी राजदण्ड-धारी हो सकता है। इस सम्भावना के कारण प्रत्येक आदमी के मन में उस योग्यता को हासिल करने की आकांक्षा पैदा होती है। इस प्रकार लोकतंत्र में प्रत्येक मनुष्य की आकांक्षा उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने की हो जाती है। लोकतंत्र की आवश्यकता भी ऐसी ही है। बालिग मताधिकार के कारण हर एक बालिग स्त्री-पुरुष के लिए अनिवार्य है कि वह प्रत्येक चुनाव घोषणापत्र का अध्ययन तथा विश्लेषण कर यह निर्णय कर सके कि कौन-सी नीति मुल्क के लिए श्रेष्ठ है। इस तरह लोकतंत्र की आवश्यकता भी प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए काफी दूर तक उच्चशिक्षा की है इतना ही नहीं, बल्कि हर एक स्त्री-पुरुष के प्रधानमंत्री बनने की सम्भावना के कारण मुल्क का प्रत्येक बच्चा और बच्ची जन्मजात युवराज है। राजतंत्र में जिस प्रकार युवराज के लिए उच्चतम शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी उसी प्रकार लोकतंत्र में प्रत्येक शिशु के लिए जन्म से ही उच्चतम शिक्षा का आयोजन करना जरूरी है। शिक्षा और शिक्षक पर जनतंत्र की यह दूसरी चुनौती है।

लोकतंत्र के उपासकों का कहना है कि हमारी साधना दबाव-पद्धति से सम्मति-पद्धति पर पहुँचने की है। निःसन्देह दबाकर किसी को मजबूर किया जा सकता है, लेकिन किसी की सम्मति नहीं ली जा सकती। सम्मति लेने की प्रक्रिया तो शिक्षण प्रक्रिया यानी सांस्कृतिक प्रक्रिया ही हो सकती है। अर्थात् वर्तमान महासंकट से मुक्ति के लिए तथा सभ्यता के विकास के अगले कदम के लिए इस युग की अनिवार्य आवश्यकता यह है कि हम जल्दी-से-जल्दी दण्डशक्ति के विकल्प में सांस्कृतिक शक्ति को समाज की गतिशक्ति (डायनेमिक्स) के रूप में अधिष्ठित कर सकें। यही कारण है कि मैं अक्सर कहता हूँ कि इस युग में परिवर्तन, विकास और संरक्षण की सामाजिक शक्ति राजनीति नहीं, अर्थनीति नहीं, एकमात्र शिक्षानीति ही है, जिसके वाहन शिक्षक हैं।

अतएव शिक्षक समुदाय को सोचना होगा कि आज की शिक्षण-व्यवस्था तथा पद्धति की क्या रूपरेखा होगी? ●

'दुनिया के शिक्षको एक हो जाओ'

बोगदाँ सुचोदोल्स्की (पोलैण्ड)

दुनिया युद्ध से मुक्ति पाने के लिए बेचैन है। युद्ध-मुक्ति के लिए राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर जो प्रयास हो रहे हैं, उनसे युद्ध की समस्या का अन्त नहीं हो सका है।

युद्ध की समस्या का निदान ढूँढने-ढूँढते दुनिया के विचारशील व्यक्ति शिक्षा-प्रणाली तक पहुँच गये हैं। प्रस्तुत लेख की पृष्ठभूमि भले ही विदेशी प्रतीत हो लेकिन सन्दर्भ सार्वभौम है। स०

आज विश्व के शान्ति आन्दोलन का दुहरा स्वरूप है एक, देश की आन्तरिक शान्ति बनी रहे, देश का स्थान मान और हक सुरक्षित रहे दूसरा, देश-देश के बीच मैत्री और सहयोग का आधार निर्मित हो। इसलिए शान्ति के लिए शिक्षण देने का अर्थ है राष्ट्र राष्ट्र के बीच सहयोग, मैत्री और सहिष्णुता का शिक्षण देना, साथ ही अपने देश के प्रति आत्मीयता और प्रेम जगाना। इसका अर्थ यह नहीं कि 'अपनेपन' के आवेश में दूसरे राष्ट्रों की उपेक्षा करने लगे। इसलिए प्रयत्न यह होना चाहिए कि लोगों में देशप्रेम तो जरूर दृढ़ हो, लेकिन वह विश्व के अनुबन्ध में हो।

दुनिया में अनेक राष्ट्र हैं जहाँ शिक्षकों ने आज तक राष्ट्र राष्ट्र के बीच सौहार्द बढ़ाने और एक-दूसरे को अधिकाधिक समझने की शक्ति बढ़ाने का प्रयास किया है। इनका यह काम मानवतावादी और मानवताप्रेमी समाज में बहुत श्लाघनीय रहा है। इनके प्रयत्न से मनुष्य को मनुष्य के नाते महत्त्व देने का विचार पुष्ट हुआ है, जाति, रंग, धर्म, देश आदि भेदों को भुलाकर महज मनुष्य के रूप में विचार करने की परम्परा को बल मिला है। चारों ओर इस दिशा में प्रयत्न हुए। कई अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बने, संस्थाएँ खड़ी हुईं, विचारों का आदान प्रदान हुआ, स्कूल-कालेजों में शान्ति-आन्दोलन और शान्ति की विभिन्न प्रवृत्तियों का शिक्षण दिया जाने लगा, शान्ति विचार का काफी प्रचार

हुआ और बहुत हद तक मैनिक-सत्ता का जोर घटा और मैनिकशाही का ह्रास हुआ। इन सब प्रयत्नों के बावजूद हम देख रहे है कि युद्ध खत्म नहीं हो रहे है। दुनिया के शिक्षकों का बल अधूरा ही पड़ा है। गत विश्वयुद्ध ने और हाल की घटनाओं ने भी सिद्ध कर दिया है कि शान्ति के अब तक के ये सारे प्रयास कितने अपर्याप्त है।

इसलिए शका होती है कि परस्पर मैत्री और परिचय मात्र से, क्या वास्तव मे शान्ति स्थापित हो सकती है? शान्ति की शिक्षा का जो सिलसिला आज तक चला आया है क्या वह हमारा उद्देश्य पूरा करने के लिए पर्याप्त है? क्या भरोसा कि हम यहाँ सब करते रहे, और उधर विश्वयुद्ध न छिड़ जाय?

विश्व की तीन धाराएँ

आज विश्व म तीन धाराएँ देखने को मिलती है

एक—कई राष्ट्रों ने अपने अन्दर वर्गों का खत्म कर दिया है। निजी मालिकी, शोषण आदि पर आधारित समाज-व्यवस्था को बदल दिया है। व्यक्तिगत मालिकी की जगह समूह का मालिकी चालू की है। शोषक और शोषितों का बना रहना जहा अनिवार्य माना जाता था, उसकी जगह प्रत्येक नागरिक की हैसियत और जिम्मेदारी म समानता ला दी है।

दूसरी—विज्ञान मे और तकनीक म अद्भुत प्रगति हो गयी है। इसके कारण मनुष्य के हाथ म महानतम शक्ति आ गयी है। यन्त्रों से, मनुष्य की कम से कम सहायता से, इतने सारे काम होने लगे है कि यह सिलसिला (आटोमेशन) किस हद तक जा पहुँचेगा कहा नहीं जा सकता। इन सबके लिए अधिक कुशल लोगों की अधिक मात्रा म जरूरत पड़ रही है। इसके परिणाम स्वरूप बौद्धिक श्रम और शरीर-श्रम के बीच का भेद मिटता जा रहा है, क्योंकि शरीर-श्रम की जरूरत ही कम होती जा रही है।

तीसरी—एशिया और अफ्रीका के अनेक राष्ट्र स्वतत्र होते जा रहे है। सदियों से विदेशी सल्तनत वहाँ रही है, यूरोप की सभ्यता ही वहाँ का आदर्श रही है। अब उन राष्ट्रों म स्वाभिमान जगा है, स्वतन्त्रता की भावना पैदा हुई है और उनकी अपनी आर्थिक और राजनीतिक शक्ति बन रही है।

इन तीन धाराओं के कारण राष्ट्रीयता और विश्वमैत्री की भावना के शिक्षण को एक नया सामाजिक और ऐतिहासिक आधार मिला है।

राष्ट्रप्रेम का आज इतना ही अर्थ नहीं रह गया कि हम अपने देश की आसक्ति रखें और उसकी सेवा करें, बल्कि हमम समाजवादी लोकतन्त्र का ज्ञान और मान विकसित होना चाहिए जिसमे समाजहित के लिए प्रत्येक व्यक्ति के

योगदान का महत्त्व है। अन्तर्राष्ट्रीयता का इतना ही अर्थ नहीं रह गया है कि छोटे छोटे राष्ट्र अपने छोटे-मोटे स्वार्थों की सिद्धि के लिए एक हो जायँ, बल्कि उसका अर्थ आज यह है कि सारे राष्ट्र मिलकर विश्व राजनीति को नया मोड़ दें, जो विश्वहित में सहायक हो, परस्परावलम्बन में मददगार हो और कुल मिलाकर सारा विश्व सुखी और समृद्ध हो।

शिक्षण में युगीन समस्याओं का समावेश आवश्यक

हमारे शिक्षण में इन भावनाओं और वृत्तियों का पोषण और वर्धन न होता हो तो केवल शान्ति का पाठ पढ़ाने से, हम एक कदम भी आगे बढ़ सकेंगे, ऐसा हम नहीं लगता। शिक्षण में समय की समस्याओं और परिस्थितियों का आकलन होना ही चाहिए।

हम नया मानव निर्माण करना है। उसमें सामाजिक न्याय समता, समाजहित में पूर्ण योगदान, सामूहिक उत्तरदायित्व और सहिष्णुता के गुण विकसित करने हैं।

नये मानव में दूसरी यह कुशलता बढ़ना चाहिए कि वह विज्ञान की माँग के अनुरूप दक्ष और कार्यक्षम हो। अकुशल श्रम का युग खतम होता जा रहा है। दूसरी ओर स्वचालित यंत्रों के कारण मनुष्य का काम ज्यों-ज्यों घटता जाता है, त्यों-त्यों उसकी फुरसत के उपयोग का भी एक समस्या खड़ी होती जाती है। हमारे शिक्षण में इसका भी समाधान होना चाहिए।

तीसरी बात, राष्ट्र राष्ट्र के परस्परावलम्बन की जो स्थिति बनती जा रही है, इसके अनुकूल संस्कृति, विद्या, कला, ज्ञान आदि सब क्षेत्रों में आदान प्रदान भी बढ़ना चाहिए जिसमें आज की सांस्कृतिक और सामाजिक समस्याओं का भी हल निकले।

ये सभी विषय शिक्षण के ही अंग हैं। यह भी सही है कि हम अपनी परिस्थिति, अनुकूलता और क्षमता के अनुसार किसी-न किसी एक ही विषय पर जोर देना सम्भव हो पाता है, सब पहलुओं पर समान रूप में जोर देना कठिन है। फिर भी इतना भान रखकर चलना चाहिए कि ये सभी विषय एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, किसी एक की भी उपेक्षा करने से काम नहीं चलेगा। दृष्टि समग्र हो, तभी हेतु सिद्ध हो सकता है।

नयी पीढ़ी को भावी युग के योग्य बनाना हमारा प्रमुख लक्ष्य है, लेकिन हम वर्तमान जगत् की विविधताओं का भी ध्यान रखना होगा।

हर राष्ट्र की अपनी विशेषता है। कई राष्ट्र समाजवादी पद्धति अपना रहे हैं, कुछ राष्ट्रों में वर्ग-पद्धति यानी पूँजीवाद कायम है। चन्द राष्ट्र अभी अभी

निराधार भय का परित्याग

लेकिन यह सारा भय निराधार है। सामयिक समस्याएं इतनी कठिन नहीं हैं जितने निराकार गणित या भूगोल आदि के सिद्धान्त हैं। अनुभव हम बता रहा है कि लड़के ऐसी समस्याओं पर चर्चा करने में न केवल रुचि ही लेते हैं बल्कि काफी गहराई में समझ भी सकते हैं। अपने छात्रों को हम नाहक अयोग्य समझ बैठे हैं। यह हमारा ही दोष है। एक ओर हम उन्हें तटस्थ वृत्ति में सोचना और समझना सिखाते नहीं व दूसरी ओर उनमें भेदभाव, वैर, द्वेष और भ्रामक बुद्धि ही पैदा करते हैं।

कई देशों ने सर्वे करके देखा है कि युवकों में जो उच्छृंखलता और विध्वंसक वृत्ति अधिकाधिक बढ़ रही है उसका कारण यही हमारी शिक्षा है जो विद्वेष बढ़ाती है सौहार्द को पनपने नहीं दे रही है।

जब हम सामयिक समस्याओं की चर्चा भी उनमें नहीं करते हैं तो कैसे उनसे अपेक्षा करें कि वे बड़े होकर दुनिया की समस्याओं को समझें या उन्हें हल करेंगे? समता, न्याय और भाईचारा आदि वृत्ति उनमें पनपेगी कैसे?

इसलिए हम समझ लेना चाहिए कि जीवन के मूल्य और मानवता के सिद्धान्तों को केवल नारा ही बने रहने नहीं देना चाहिए, प्रत्यक्ष जीवन में विचार में, शिक्षण में और व्यवहार में भरसक उतारना चाहिए। यह नहीं होता है तो अच्छे सिद्धान्तों की अवहेलना होने लगती है और बच्चों के मन में यह दृढ़ हो जाता है कि कहने को कुछ भी कहें, कहने में और करने में फरक भी रहा तो कोई हर्ज नहीं।

इसलिए शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे छात्रों को समस्त समस्याओं का तटस्थ विचार करना सिखायें और गलत और भ्रान्त धारणाओं को पनपने न दें।

शिक्षक वर्तमान भयंकर दुःस्थिति का कारण ठीक से समझें, उसको दूर करने में अपने रोल को भी समझ लें तो फिर यह प्रश्न बहुत महत्त्व नहीं रखेगा कि क्या हमारे शिक्षक इतना बड़ा समस्या का निवारण-सामर्थ्य क्षमता रखते हैं। जिन-जिन शिक्षकों में इतना भी माद्दा है कि मानवता को मद्देनजर रखकर अपनी सुविधा से किसी भी पहलू को लेकर बच्चों में उन जीवनमूल्यों का प्रवेश करा सकें। वे आज कमर कस लें तो संसार का भविष्य उज्ज्वल होगा और यही सही माने में शान्ति के लिए शिक्षण होगा। ●

—मूल अंग्रेजी से

की-सी भक्ति के साथ काम करना होगा। शिक्षिका को फूल-से सुकुमार बालकों के साथ काम करना होता है। इस उमर में बालक जिन संस्कारों का ग्रहण करेगा, उसे जैसी आदतें पड़ेंगी, उसके जीवन में जो गाँठें बँधेंगी या छूटेंगी, उन पर ही इस बात का आधार रहेगा कि उसका समूचा जीवन कैसा बनेगा।

आत्मसम्मान और वैज्ञानिकता

प्रायः हम शिक्षक अपने आपको अपने 'अहं' को भूल ही नहीं पाते। हमारी आँखों के सामने हमारा अपना मान सम्मान, हमारी अपनी प्रतिष्ठा, हमारा पद अधिकार और हमारा वेतन बस ये ही चीजें खड़ी रहती है। किसी बड़े महाविद्यालय के अध्यापक का काम हम अधिक प्रतिष्ठावाला प्रतीत होता है। इसलिए बाल शिक्षक के नाते काम करते समय हम बालक के साथ बालक बनकर नाचने-खेलने में, उसकी नाक या मुँह धोने में उसके बाल सँवारने में,- उसे खाना-पीना नहाना धोना, झाड़ना-बुहारना आदि छोटे-छोटे काम सिखाने में और इन सारे कामों को उनके साथ घुल मिलकर करने में एक प्रकार की हीनता का अनुभव होता है। ऐसी दशा में हमारे काम में वह सूक्ष्मता और वह भक्ति कैसे प्रकट हो सकती है जिसकी अपेक्षा डाक्टर मौण्टीसोरी हमसे रखती है?

मैडम मौण्टीसोरी तो कहती है कि आप अपने काम को एक महान् वैज्ञानिक का-सा काम मानो और उसी ढंग से करो। वैज्ञानिक का व्यवहार कैसा होता है? विद्वानों की सभाओं या सम्मेलनों में भले वह विद्वत्ता की-सी वेश भूषा में ऊँचे आसन पर बैठता हो, अथवा किसी राज्य का शिक्षा मंत्री ही क्यों न हो, तथापि जब वह अपने ऊँचे आसन से नीचे उतरकर अपनी प्रयोगशाला में पहुँचता है, तो ठाट-बाटवाली अपनी पोशाक उतार देता है, घुटनों तक की चड्डी और कुर्ता पहन लेता है, बाँहें चढ़ा लेता है और एक मामूली कारीगर की तरह काम करने लग जाता है। अपने काम के सिलसिले में उसे बलगम या मैले की जाँच करनी पड़े या मुरदे की चीर फाड़ करनी पड़े या हथौड़े और छेनी की मदद से लोहे या लकड़ी का कोई नया साधन बनाना पड़े, तो इन सब कामों में वह अपने को प्रसन्नतापूर्वक लगा देगा। उसके मन में यह विचार कभी उठता ही नहीं कि इतना बड़ा विद्वान् होकर मैं ऐसा हलका काम क्या करूँ? वह जानता है कि उसका सच्चा काम यही है और जो भी विद्या उसे प्राप्त हुई है और जो भी मान प्रतिष्ठा उसे मिली है, सो सब इसीलिए मिली है कि इस तरह के छोटे-छोटे काम वह वर्षों तक करता रहा है। यदि ऐसा कोई आचार्य बाल शिक्षक का काम करे, तो वह उतनी ही सूक्ष्मता से और उतनी ही

दिलचस्पी के साथ बालकों की नाक भी पोंछेगा, उनके साथ नाचे-गायेगा, उनके लिए शिक्षण-साहित्य की रचना करेगा और उनकी शोध-खोज में लगा रहेगा।

मोण्टीसोरी के मन में बाल-शिक्षिका की ऐसी कल्पना थी और इस तरह उन्होंने स्वयं अपने 'कासा-डी-बम्बनी' में काम भी किया था। उन्हें सारे संसार से जो प्रतिष्ठा और महत्ता प्राप्त हुई, वह इसी काम के कारण हुई। आशा है, उनके इन विचारों और व्यवहारों से सभी बाल-शिक्षिकाओं को प्रेरणा मिलेगी, उनका संकोच दूर होगा, उनमें बालक के साथ बालक बनने की और बाल-शिक्षा के क्षेत्र में नित-नयी खोजें करते रहने की रुचि और दिलचस्पी पैदा होगी।

शिक्षक-दिवस

अपने जन्मदिवस के उपलक्ष में आयोजित एक समारोह में सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् ने कहा—"दुनिया के और लोगों की तरह ही हमारे देश के लोग भी चालाक ही ज्यादा बन रहे हैं, समझदार नहीं। हमें अपना घमण्ड खत्म करके उदार और विनम्र बनना चाहिए।

"हमें अहम्मन्यता और अत्यधिक आलोचना की प्रवृत्ति नहीं अपनानी चाहिए तथा प्रत्येक अवसर का अपने देश के उत्थान के लिए उपयोग करना चाहिए। हर चीज मनुष्य के विनय आदि गुणों पर निर्भर करती है और ये गुण प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन विद्या है। विद्यादान हमारे शिक्षकों पर निर्भर करता है। अतः उनके प्रति आदर और सम्मान का भाव अपनाना बहुत जरूरी है।

"हम अक्सर कहते रहते हैं कि किसी व्यक्ति का दर्जा उसकी तनख्वाह पर निर्भर नहीं करता, मगर यथार्थ यह है कि दर्जा तनख्वाह पर निर्भर करता है और जहाँ तक शिक्षकों का सम्बन्ध है, इस बात की व्यवस्था होनी चाहिए कि उनके सामने अपना कर्तव्य निभाने में भौतिक बाधाएँ न आने पायें।"

शिक्षा-आयोग :
अध्यापक और वेतनमान

सुरेश भटनागर

शिक्षा के आयोगों की परम्परा में वर्तमान शिक्षा-आयोग का प्रतिवेदन समग्र दृष्टि से बेजोड़ है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् मुख्यरूप से राधाकृष्णन्-कमीशन और मुदालियर-कमीशन ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है। परन्तु अध्यापकों के कल्याण के लिए समग्र रूप से चिन्तन करके नवीन सम्नुतियां-द्वारा विकास एवं स्तर का निर्माण करने के सत्प्रयत्न का श्रेय कोठारी-कमीशन को है। कमीशन ने सभी स्तर के अध्यापकों के लिए नये वेतनमान दिये जाने की सम्नुति की है। ये वेतनमान इस प्रकार हैं—

क्रम ।	अध्यापक का स्तर	। वेतनमान
(१)	दो वर्ष का प्रशिक्षण-प्राप्त प्राइमरी अध्यापक	१५०-२५०
(२)	सेलेक्शन ग्रेड (प्राइमरी स्कूल के अध्यापक के लिए) इसमें केवल १५ प्रतिशत अभ्यार्थियों पर विचार किया जायगा (अप्रशिक्षित प्राइमरी अध्यापक को १०० रु० मासिक मिलेगा। प्रशिक्षित होने पर उसका वेतनमान बदल दिया जायगा।)	२५०-३००
(३)	प्रशिक्षित ग्रेजुएट अध्यापक	२२० ४००
(४)	सेलेक्शन ग्रेड १५ प्रतिशत के लिए	४००-५००
(५)	अप्रशिक्षित ग्रेजुएट (प्रशिक्षण प्राप्त करने तक)	२०० वेतन
(६)	सेकेण्डरी स्कूलों में पढ़ानेवाले पोस्टग्रेजुएट अध्यापक, (ट्रेण्ड होने पर एक इन्क्रीमेण्ट और मिलेगा)	३००-६००
(७)	सेकेण्डरी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों का वेतन-मान स्कूलों के आकार पर निर्भर होगा, इसमें दो ग्रेड हैं	(१) ३००-६०० (२) ४००-३०-६४० ४०-८००

(८) कालेजों के अध्यापक	
(१) जूनियर	(१) ३००-२५-६००
(२) सीनियर	(२) ४००-३०-६४०-४०-८००
(३) सीनियर लेक्चरर या रीडर	(३) ६००-४०-११००
(९) प्रधानाचार्य	
(१) श्रेणी १	(१) ६००-४०-११००
(२) श्रेणी २	(२) ८००-५०-१२५०
(३) श्रेणी ३	(३) १०००-५०-१५००
(१०) विश्वविद्यालय के विभाग	
(१) लेक्चरर	(१) ४००-४०-८००-५०-९५०
(२) रीडर	(२) ९००-५०-११००
(३) प्रोफेसर ए ग्रेड	(३) ए-११००-१६००
बी ग्रेड	बी १६००-१८००

जिस समय ये वेतनमान आयोग ने घोषित किये, शिक्षा के सभी क्षेत्रों में इनका स्वागत हुआ। अध्यापकों को आशा की किरण दिखाई दी। उन्हें आशा बँधी कि शायद उनके दिन अब लौटेंगे। कमीशन ने इन वेतनमानों को लागू करने के सम्बन्ध में कहा—'उक्त वेतनमान उच्चशिक्षा के अध्यापकों के लिए सरकार-द्वारा पहले से ही स्वीकृत है। उनको लागू करने के लिए केन्द्रीय सरकार को ८० प्रतिशत तथा राज्य सरकार को २० प्रतिशत सहायता देनी चाहिए। प्राइवेट संस्थाओं के लिए केन्द्र से १०० प्रतिशत सहायता तक दी जानी चाहिए।'

देश में अध्यापकों के वेतनमान में समानता नहीं है। एक ही जगह पर काम करनेवाले अध्यापकों के वेतन में असमानता है, जब कि उनकी योग्यताएँ समान हैं। निम्न तालिका से देश के वेतन-क्रम का आभास हो जायगा।

क्रम।	अध्यापक	। वेतन दर
(१) विश्वविद्यालय		
	(१) प्रोफेसर	(१) १०००-५०-१५००
	(२) रीडर	(२) ८००-४०-१०००
	(३) लेक्चरर	(३) ४००-८००
	(४) जूनियर लेक्चरर	(४) ३००

(१) अध्यापक-कल्याण-कोष की स्थापना, जिसमें १॥ प्रतिशत वेतन अध्यापक जमा करेंगे। इसके संचालन के लिए एक समिति होगी।

(२) सभी श्रेणी व वर्गों के अध्यापकों को अवकाश की सुविधाएँ देना।

(३) अवकाशग्रहण करने की आयु स्कूल तथा कालेज में क्रमशः ६० तथा ६५ वर्ष हो।

(४) हर पाँचवें वर्ष में भारत भ्रमण के लिए कन्सेशनल रेलवे पास की व्यवस्था हो।

(५) अध्यापकों को अपने नागरिक अधिकारों का पूरा-पूरा उपयोग करने का अधिकार हो। वे स्थानीय, जिला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर चुनाव लड़ सकते है। तथा किसी पद पर कार्य कर सकते है।

इसी प्रकार अध्यापक को राष्ट्रीय सम्मान देने के लिए भी राष्ट्रीय पुरस्कारों की संख्या में वृद्धि करने की बात भी कमीशन ने कही है।

वर्तमान सन्दर्भ

डा० सम्पूर्णानन्द ने कहा है—"राष्ट्र को अध्यापकों की कठिनाइयों और भावनाओं को अनुभव करना चाहिए, जिनसे राष्ट्र यह आशा करता है कि वे योग्य, चरित्रवान् व्यक्ति तथा नेताओं का हर क्षेत्र में निर्माण करें। जब कि उन्हें (अध्यापकों को) ऐसी परिस्थितियों में जिन्दा रहना पड़ रहा है जिनमें आत्माभिमान तथा कार्यकुशलता की दशाओं की गणना नहीं की जाती।"

हम यह स्वीकार करके चलते है कि अध्यापकों की दशा ठीक नहीं है। उन्हें कमीशन की संस्तुतियों ने आशावान किया, पर योजना आयोग के कथन ने उनकी आशाओं पर तुषारपात किया। रूस अपनी राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत, जापान ६ प्रतिशत, इंग्लैंड ४.५ प्रतिशत और अमरिका ४.४७ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करते है। भारत अपनी आय का केवल २.३ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करता है। सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि राष्ट्रीय आय का शिक्षा पर व्यय किया जानेवाला प्रतिशत क्या वास्तव में राष्ट्र की भावी पीढ़ी के लिए कल्याण की रूपरेखा बना रहा है या केवल खानापूरी कर रहा है। शिक्षा आयोग ने १९७५ ई० तक राष्ट्रीय आय का ७ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करने के लिए कहा है।

प्रश्न यह है कि क्या मौजूदा हालात, जिनमें अध्यापक जिन्दा रहने की कोशिश कर रहा है, इसी प्रकार बने रहेंगे। क्या कोठारी-कमीशन की सिफारिशें लागू होंगी? क्या वे उस समय लागू होंगी जब मूल्य की सामान्य दर इस समय से भी आगे जा चुकी होगी?

वास्तविकता यह है कि अध्यापक के पेशे का भविष्य निम्न तीन कारकों के आपसी सहयोग के अभाव में बन सकना सम्भव नहीं है।

(१) सरकारी तथा गैरसरकारी शिक्षण-संस्थाओं को हर स्तर के अध्यापक के लिए जीवन-निर्वाह-योग्य मजदूरी देनी होगी।

(२) अध्यापकों को यह समझना चाहिए कि उनका पेशा केवल धन कमाने के लिए नहीं है अपितु यह वह सत्कार्य है जिसके माध्यम से वे अपने छात्रों की प्रतिभा का विकास करते हैं।

(३) आज का विद्यार्थी समझता है कि जीवन-संघर्ष में शिक्षा के माध्यम से ही आगे बढ़ा जा सकता है। वह सीखना चाहता है। यदि वह निर्धन है तो उसे शुल्क-मुक्ति तथा छात्रवृत्ति का सहारा लेना होगा। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह प्रतिभा को अविकसित न रहने दे।

हमारी राय में इस समय तुरत निम्न कार्य होने चाहिए—

(१) कमीशन की वेतन-सम्बन्धी सिफारिशों को केन्द्रीय सरकार के महँगाई-भत्ते सहित तुरत लागू किया जाय।

(२) अध्यापकों को प्रतिवर्ष पारिवारिक रेलवे कन्सेशन दिये जायँ।

(३) अध्यापकों के वेतनदरों की असमानता को दूर किया जाय, अर्थात् कालेज तथा विश्वविद्यालय के वेतनदरों में अन्तर न हो।

(४) हर विश्वविद्यालय में यह नियम लागू किया जाय—वह अध्यापक जिसकी नियुक्ति परीक्षण-काल के शर्त से हुई है, उसकी स्वीकृति सम्बन्धित अधिकारी से भी ली जानी चाहिए। यदि उस व्यक्ति की सेवाओं को समाप्त करना है तो स्वीकृति प्रदान करनेवाले अधिकारी की स्वीकृति के बिना उसे अलग न किया जाय। अध्यापक को अपनी बात कहने का पर्याप्त अवसर दिया जाय।

(५) सरकार समस्या-कालेजों पर अपना नियंत्रण करे। ऐसा करने के लिए वह अपने कानून में परिवर्तन तथा संशोधन करे।

(६) आवासीय संस्थाओं में सहकारी भण्डार अनिवार्य हों।

आवश्यकता इस बात की है कि हम समय की माँग को समझें और उसके अनुसार अपने को ढालें। यदि हम इसमें शिथिलता बरतेंगे तो समय हमें कभी क्षमा नहीं करेगा। ●

शिक्षक का रोल

रुद्रभान

शिक्षक का पेशा समाज के कठिन पेशों में से एक है। इस पेशे में रहने पर शिक्षक को बालकों और प्रौढ़ों के बीच की दो दुनिया में रहना पड़ता है। बालकों के सीधे सम्पर्क में रहते हुए उसे एक तरफ बालकों की उमगों और उम्मीदों की मांग पूरी करने की जिम्मेदारी सँभालनी पड़ती है, दूसरी तरफ बालकों के माता-पिता की उम्मीदों और जजबातों का भी उसे खयाल रखना पड़ता है, तीसरी तरफ उसे समाज की परिस्थिति और उसके भविष्य का विचार करते हुए बालकों के प्रति अपना फर्ज तय करना पड़ता है। शिक्षक को एक ओर विद्यार्थी की ज्ञानवृद्धि की चिन्ता करनी पड़ती है, दूसरी ओर उसे उसके चारित्र्य-विकास की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती है। अपने पेशे में रहते हुए शिक्षक को जिन विशेष जिम्मेदारियों को खूबी के साथ निभाने की जरूरत पड़ती है, उनमें से कौन बड़ी है और कौन छोटी, यह कहना मुश्किल है। अक्सर उसे अपनी हर एक जिम्मेदारी समान मुस्तैदी से निभानी पड़ती है।

निर्माण की असली कसौटी विद्यार्थी की स्वयस्फूर्ति, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान और लक्ष्यसिद्धि है, न कि दर्जे में शिक्षक का आज्ञाकारी और लकीर का फकीर बनना।

जो जितना ही कुशल शिक्षक होता है, वह उतना ही कुशल चरित्र-निर्माता भी होता है। कुशल शिक्षक अपने सम्पर्क में आनेवाले विद्यार्थियों में बौद्धिक समझदारी का एक ऐसा दीया जला देता है, जो विद्यार्थी को कदम-कदम पर रोशनी देता रहता है। अपने ज्ञान के प्रकाश में विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं का परिचय मिलता है, जो किसी भी व्यक्ति के चारित्रिक विकास की कुंजी है।

मौजूदा समाज मे शिक्षक का दर्जा

आज के समाज में शिक्षक का दर्जा इज्जत का नहीं है। इसके कई कारण हैं। एक कारण तो राजकीय है कि हमारे राष्ट्रीय जीवन में शिक्षण को वह वरीयता नहीं मिल पायी है, जो उसे मिलनी चाहिए। आज हमारे यहाँ प्रतिरक्षा, उद्योग-व्यवसाय, राजनीतिक सत्ता तथा पूँजी निर्माण की प्रवृत्तियाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानी जाती हैं और राष्ट्रीय स्तर पर इन्हीं पर मुख्य शक्ति लगायी जा रही है। हमारे समाज पर भी इन्हीं प्रवृत्तियों की गहरी छाप है। समाज में उन्हीं लोगों की ऊँची हैसियत है, जो इन प्रवृत्तियों से सम्बन्धित हैं।

देश और समाज के इस उलटे मोड़ का असर उसके सांस्कृतिक जीवन पर पड़ना स्वाभाविक है। आज सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन के सभी हिस्सों में आपसी खींच-तान, झगड़ा-फसाद, भ्रष्टाचार और खुदगर्जी का बोलबाला है। सब दूसरों का दोष देखते दिखायी देते हैं। अपने भीतर झाँककर अपनी दबी छिपी बुराइयों को पहचानने और उन्हें अच्छाइयों की तरफ मोड़ने की फुरसत और दिमागी तैयारी इने गिने लोगों में ही दिखायी देती है।

शिक्षक की भीतरी हालत

सामाजिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक विघटन की जो प्रक्रिया पूरे देश में पुरजोर है, उसके असर से हम शिक्षक लोग अछूते नहीं बचे हैं। हममें से अधिकांश शिक्षकों की दृष्टि सामाजिक विघटन के प्रभाव से इतनी धूमिल हो गयी है कि हम अपने लक्ष्य को स्पष्ट रूप से नहीं देख पा रहे हैं। दलबन्दी, अवसरवाद और कर्तव्यहीनता के कीटाणु शिक्षण-संस्थाओं में मजबूती से पैठ गये हैं। न हम देश, समाज, समाज के प्रति वफादार रह गये हैं, न अपने पेशे के प्रति निष्ठावान। समाज में हमारी गिरती हुई प्रतिष्ठा और दूसरों की तुलना में घटिया इज्जत होने का एक बड़ा कारण यह भी है। हम अपने दायरे में चुस्त,

दुरुस्त और मुस्तैद हो सकें तो आज की हालत में भी शिक्षक का दर्जा समाज की निगाहों में इज्जत का दर्जा हो सकता है। आज भी समाज के ज्यादा से ज्यादा लोगों में जिसका गहरा और नजदीकी रिश्ता कायम है, वह समुदाय शिक्षकों का ही है।

जमाने की चुनौती

यह एक कड़वी, लेकिन सही बात है कि हम शिक्षकों में से ज्यादातर लोग उस चुनौती को महसूस ही नहीं कर पा रहे हैं, जो आज का जमाना शिक्षकों के सामने पेश कर रहा है—उन लोगों के सामने, जिनकी यह जवाबदेही तो है ही कि वे शिक्षण-द्वारा समाज के लिए ज्यादा कुशल नागरिक तैयार करें, साथ-साथ यह जिम्मेदारी भी है कि वे ज्यादा अच्छे सामाजिक ढाँचे के विकास के लिए कोशिश करें।

इस जमाने में कई खतरनाक और नुकसानदेह ताकतें काम कर रही हैं। इसके साथ-साथ यह एक ऐसा जमाना है, जिसका भविष्य नयी उम्मीदों से भरपूर है। इस जमाने में विज्ञान एक ऐसी ताकत है, जिसने इनसान को इस दुनिया की हालत बदलने की बेहिसाब कूवत बख्शी है। आज की दुनिया में गरीबी, अज्ञान, बीमारी और तरह-तरह के आर्थिक तथा सामाजिक अन्यायों की भरमार है। साइंस और टेक्नालाजी का इस्तेमाल शोषण, लड़ाई, बर्बादी और खूँरेजी के लिए हो रहा है। दर हकीकत दुनिया के इनसानों का एक बड़ा हिस्सा इस बेइन्साफी का शिकार है।

दुनिया की यह हालत शिक्षक के लिए एक बड़ी चुनौती है। क्या शिक्षक-समूह आज के जमाने के इस न्याय और अन्याय, सहयोग और शोषण, इनसानियत और हैवानियत के बीच चलनेवाली कशमकश को एक अदना तमाशबीन की तरह देखता रहेगा या वह उस आन्दोलन में अपनी पूरी ताकत लगायगा, जो आज समाज से अन्याय, असमानता, अभाव और अशान्ति को दूर करना चाहता है? शिक्षक-समूह इस चुनौती के प्रति जो रुख अपनायगा उसी पर इस देश और समाज के भविष्य का बनना बिगड़ना निर्भर करता है। •

चलता किया

विवेकी राय

यदि आप किसी हायर सेकण्डरी स्कूल में हिन्दी-टीचर हैं तब तो एक प्रकार से आपकी ही बात है। दूसरों के लिए भी कम ज्ञातव्य नहीं। मेरे ऊपर तो इसका भरपूर असर है। बड़ी गम्भीरतापूर्वक सोच रहा हूँ।

फर्श पर पड़ी चटाई की लाल और सजाकर रखी कापियों के बण्डल और बीच में बैठकर किसी काम में उलझे शर्माजी को देखकर मुझे भारी कुतूहल हुआ।

अरे भाई! कापियों की दुकान कब से खोल दी? और ठीक उसी समय शर्मा ने दाँत पीसते हुए कलम की नोक एक खुली कापी के पृष्ठ के एक सिरे पर लगाकर नीचे तिरछे-तिरछे भगा दिया। कलम कुछ दूर तिरछी पंक्तियों को काटती हुई लाल लकीर बनाती और उसके बाद कापी को फाड़ती निकल गयी।

कापियों की दुकान नहीं, हिन्दी शिक्षा के दिवालियेपन की राकडगड्डियों को सजाये हूँ। शर्मा ने फुर्ती से हस्ताक्षर के रूप में कुछ चिह्न बनाकर उस कापी को एक ओर रखते हुए उत्तर दिया। अर्थात्? मैंने पूछा।

ये मेरे सामने जाँचने के लिए पड़ी सातवीं से लेकर दसवीं कक्षा के छात्रों की हिंदी की अभ्यास पुस्तिकाएँ हैं—करीब छह-सात सौ।

मगर आप क्या यह जाँच रहे हैं?

जाँचने की स्थिति कहाँ है? एक नया प्रयोग कर रहा हूँ। ट्रेनिंग कालेज में बताया गया कि अध्यापक को जैसी भी स्थिति मिले उसमें युक्तिपूर्वक काम निकाल लेना चाहिए।

'आपका मतलब मैं नहीं समझ सका।

मतलब यह है कि यह हिन्दुस्तान है। कोड के अनुसार एक अध्यापक को प्रतिदिन चार पाँच पीरियड से अधिक न दिया जाय और होता है ठीक विरोम। सात आठ तक लाद दिया। कैम्ब्रिज और आक्सफोर्ड में एक अध्यापक पर करीब आठ छात्र हैं और यहाँ इससे छह गुने से भी अधिक।

'तो आपके इस जाँचनवाले नये प्रयोग से इसका क्या सम्बन्ध है ?'

'अरे महाराज, यही नहीं समझे ? यदि प्रयोग न करूँ तो यह पहाड़ दो महीने में भी न हिले। एक-एक विद्वान दर्जे में है कि उनकी कापियों को एक पृष्ठ अच्छी तरह जाँच देने पर सिर में चक्कर आने लगे और सूरज का गोला पूरब से पश्चिम की ओर चला जाय। हमलोग कक्षा को नहीं, भीड़ को पढ़ाते हैं। एक-एक कक्षा के प्रत्येक वर्ग में पचास से लेकर साठ तक छात्र ! एकदम हाउसफुल !'

'तो इसका अर्थ यह कि किसी प्रकार खींच-खाँचकर हस्ताक्षर करके बेगार टाल देना मात्र ही आपका प्रयोग है ?'

'प्रत्यक्ष देखने में तो यही है, परन्तु उन आड़ी-तिरछी रेखाओं और काटकूट की त्वरा में एक सिद्धान्त है ·· 'आप इसी कापी को देखिये।' सामने ही एक मस्तक में दो शब्दों पर दृष्टि गयी। एक जगह लिखा है 'इसलिये' और ठीक नीचे सही रूप में 'इसलिए'। दो शब्दों को रेखांकित किया और फिर पूरे को बेरहमी के साथ काट फेंका।

'ऐसा क्या किया आपने ?'

'इसलिए कि लड़का तेज है। सही लिखने की योग्यता है। असावधानी के कारण गलत लिख जाता है। यह काटना सिर पर चाँटा की तरह लगेगा ·· ' अरे अभी देखिये एक से एक प्रयोग है। पहले जलपान कर लें।'

नौकर ने जलपान की सामग्री प्रस्तुत कर दी थी, परन्तु मेरी रुचि शर्माजी के प्रयोगों में उलझी थी। शीघ्र जलपान कर पास ही डट गया। उस समय उन्होंने एक ऐसे छात्र की कापी पर इधर उधर लाल-लाल चटकीली रेखाएँ खींचना और किञ्चित् संशोधन करना प्रारम्भ किया था, जिसकी लिखावट अत्यन्त भद्दी, गन्दी और अशुद्ध थी। शर्माजी ने आधे मिनट में इस कापी से निबट लिया और बोले—'बस, इस कापी का शृङ्गार हो गया। खींच-खाँच की चटक लालिमा से कापी का कुछ भाग अलंकृत हो जाना चाहिए। छात्र में हीनता की भावना नहीं आयेगी। वह समझेगा कि मेरी भी कापी जाँची गयी है। वैसे यह उन अनेक दुलारे छात्रों में से एक है, जिसके कानों के पास आकर साक्षात् सरस्वती महारानी वर्षों तक वीणा की भंकार करें, तब भी शुद्ध लिखना असम्भव ही रहेगा।'

'अच्छा ? यह किस दर्जे का छात्र है ? क्यों ऐसा छात्र समय और धन बरबाद करता है ?'

'पढ़ता तो है दसवीं कक्षा में, परन्तु अक्षर 'क' से लेकर पूरी वर्णमाला

नहीं लिख सकता। पढ़ता इसलिए है कि सब लड़के पढ़ते हैं अथवा दहेज पाने में पढ़ाई सहायक होगी। वैसे उसे देखा तो कापी में कोई मेल नहीं। पालिश किया बूट, लोहा किया बुशशर्ट, सँवारे गये बाल और पूरा दिव्य रूप! सुबह ही सुबह उठकर दरवाजे पर झुण्ड के झुण्ड बैल देखता है। छा गये हैं मारे बैल दिमाग पर।'

'और, क्या ऐसे ऐसे छात्र भी पास हो जाते हैं?'

'काम की बात है। पास नहीं होते तो बोर्ड का परीक्षा-फल चालीस प्रतिशत के लगभग कैसे होता? अच्छा देखिये, यह एक पास होनेवाला लड़का है।'

शर्माजी ने एक कापी खोली। वाक्य का पहला शब्द गलत। 'निचे' लिखा था। ज्ञात हुआ कि यह शब्द दर्जा ६ में ही बनवाया जाता है, परन्तु १० वीं कक्षा तक जाते जाते भी गलत होता ही जाता है। शोध चलने लगा। प्रत्येक वाक्य गलत। हर पंक्ति में दो-तीन शब्दों की गलती। इकार-उकार का मानो बिलकुल ही ज्ञान नहीं। सुन्दर का 'सुन्द्र', 'मुश्किल' को 'मुस्कील', 'भाषण' को 'भाखड'। इसी प्रकार एक पृष्ठ में लगभग ५० त्रुटियाँ, कापी लाल हो गयी। वाक्यों की त्रुटियों के लिए काट देने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं अथवा पूरी बात फिर से लिखी जाय।

'देखो! ये हजरत जरूर पास हो जानेवालों में से एक हैं! यह है हाई-स्कूल की हिन्दी। 'इसका कारण क्या है शर्माजी?'

'पूछो दिल्ली में त्रिभाषा फार्मूला सम्मेलन कर अँग्रेजी के लिए नित्य हाय-हाय करनेवाले मोटे मोटे लोगों से! अजी, अंग्रेजी यह काली छाया प्रेतिनी की तरह हिन्दी को खाती चली जा रही है। नीचे से हिन्दी टूटती चली जा रही है। ऊपर स्वार्थियों के पौ-बारह हैं।' '' यह देखिये, प्रथम श्रेणी में आने वाला लड़का है। लिखता है, 'कृष्ण कहे थे—'

'शर्माजी, इसकी तो दो-चार गलतियों को ही काटकर आपने चलता कर दिया!'

'तो पूरा जाँचता हूँ किसका? अधिक काटने में कहीं न कि हीनता की भावना आयेगी। कुछ काट दिया। गलतियाँ बतायेगा। सही लिखने की आदत आयगी और प्रवाह में हिन्दी आ जायगी। यही न प्रयोग है?

'लेकिन आप तो सिर्फ काट देते हैं। गलतियों को शुद्ध करके बता नहीं देते हैं।'

शर्माजी की रफ्तार तूफान मेल की रफ्तार हो गयी। हाथ में कापी आयी

नहीं कि उलटकर काट कूट किनारे किया। बोले—'आप समझते हैं यों ही काट-कूट रहा हूँ। अजी महाराज, अभ्यास हो गया है। आँखें बस गलतियों पर ही तो गड़ती हैं।...रही बात सुधार की, तो एक तो समय कहाँ है ? दूसरे, उन्हें शुद्ध मनोवैज्ञानिक पद्धति पर स्वावलम्बन की सीख दे रहा हूँ। अपनी त्रुटि स्वयं प्रयत्न करके समझें और सुधारें।'

'......अरे...रे रे र...इसकी तो पूरी-पूरी लिखावट ही आपने दोनों ओर से क्रास कर दिया। क्या सब गलत है ?

'नहीं ..यह देखिये लिखता हूँ। 'महागन्दा' 'लिखना सुधारो'' "गलतियों की क्या बात ? कुछ अच्छा लिखता है और अच्छा लिखेगा तो शायद लिखना देखकर ही नम्बर पा जाय।'

'क्या ऐसा भी होता है ?'

'पचहत्तर प्रतिशत। आप क्या समझते हैं ? कापियों को जाँचने पर कोई पास होगा ? अजी, यहाँ तो परीक्षा की कापियाँ उठायी, देखा कि कुछ लिखा है, प्रश्न और उत्तर की कुछ झलक मिली। लिखावट कुछ साफ है ! बस कुछ नम्बर देकर चलता किया। जैसी शिक्षा वैसी परीक्षा। एक तो करैला दूजे नीम चढ़ा !...शिक्षा तो बस एक ही विषय की होती है। वह विषय है अंग्रेजी। देखो, जहाँ हिन्दी के लिए एक पीरियड, वहाँ अंग्रेजी के लिए दो। छात्र एड़ी-चोटी का पसीना एक करते हैं इस नायाब सौदे के लिए, पर हाय ...'

'अच्छा ? यह कौन-सा प्रयोग है ? आपने पूरे पृष्ठ पर 'अण्डे' की शक्ल बनाकर रख दी। क्या इसे यह बड़ा-सा 'शून्य' नम्बर के रूप में दिया है ?'

'देखिये, यह हिन्दी शिक्षा का शुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। इस शून्य का छात्र देखे तो कुछ और समझेगा। अभिभावक देखेगा तो कुछ और ही अर्थ निकालेगा। यदि स्कूल के प्रधान की दृष्टि इस गोले पर पड़ी तो उसकी दृष्टि में इसका तात्पर्य कुछ और होगा और यदि किसी सरकारी स्कूल-अधिकारी की नजर में यह अण्डे की शक्ल आयी तो वहाँ इसका मतलब सबसे भिन्न होगा। अब इसके पहले कि मैं सारे तात्पर्य आपको समझाऊँ, यह भी ध्यान रखना है कि तैयार होकर अब स्कूल जाने का समय हो गया।'

शर्माजी की प्रयोग-चर्चा ने मुझे स्तब्ध कर दिया। मुझे आनेवाला अगला दशक दिखायी पड़ने लगा, जिसमें हिन्दी शिक्षा की कुल वर्तमान उपलब्धियों का अण्डा पूरे विकास के साथ फूटेगा। •

बाल-शिक्षण के साथ-साथ लोक-शिक्षण

श्री बबन भाई महता ने बिहार से गुजरात की वापसी यात्रा के दौरान दो दिन 'जीवन भारती' को दिये। वे 'बाल भारत' में आये। बच्चों की प्रवृत्तियाँ ध्यान से देखीं। साधनों का अवलोकन किया। बालकों को गीत और कहानियाँ सुनायी। बात की। बच्चों ने भी मित्रता महसूस की, अभिनय दिखाये। सवाल भी पूछे। बबन भाई को अपने साथ नाश्ता में शामिल किया। इन सब कार्य क्रमों के बीच दो बच्चे दिनेश और संजय तूफान करते रहे। वे अनायास जोर से चिल्लाना उठना, निरर्थक कुछ भी बोल देना, पैर फैलाकर बैठना और लेटना-जैसी अशिष्ट क्रियाएँ करते रहे।

हमलोगों ने समझाने का प्रयास किया। उनकी क्रियाओं से होनेवाले व्यवधान की ओर सब बच्चों का ध्यान खींचा।

सभी बच्चे उन दोनों की शरारतों को गलत बता कर कहने लगे कि "हम ऐसा नहीं करते।"

बच्चे जब हमउम्र साथियों से आलोचना सुनते हैं तो तुरन्त अपने को समूह के अनुकूल बना लेते हैं। बड़ों द्वारा कही गयी, बतायी गयी बात का असर जहाँ नहीं होता वहाँ अपने साथियों की बात तुरत असर करती है।

साथियों का रुख छोटे-बड़े सभी के मानापमान का विषय होता है न।

हमने देखा कि संजय शान्त हो समूह के साथ शामिल हो गया, परन्तु दिनेश की शरारत हठ में बदल गयी। वह और अधिक शोर-गुल करने लगा।

हम लोग ने उपेक्षा का ही रुख अपनाया। जहाँ प्यार, आदर और समझाना सब असफल हो जाय, वहाँ उपेक्षा ही हमारा अस्त्र है। ऐसी ही घड़ियों में शिक्षक को भी अवसर मिल जाता है—स्थिति पर सन्तुलित चिन्तन विचार करने का। बार बार समझाने पर भी बालक यदि कहा न मानता या न समझता हो तो अपना भी धीरज टूटने-सा लगता है—झुँझलाहट और फिर क्रोध आ जाता है। इस सबसे बचने के लिए बालक की गलत क्रियाओं की उपेक्षा ही एक मात्र उपाय है।

जब ग्लेन ने देखा कि उसका रूठने का किसी पर भी असर नहीं हो रहा, बदले में किसी से किसी भी तरह का रिस्पांस नहीं मिल रहा तो वह स्वयं सहम-सा गया, शान्त हो गया और चुपके-से दूसरे बच्चों के साथ खेल प्रवृत्तियों में लग गया।

छुट्टी के बाद बहन माई के साथ आज की प्रवृत्तियों, साधना के प्रयोग, साथियों के सहयोग असहयोग, स्थान की अनुपयुक्तता, बच्चों की मानसिक प्रगति तथा अभिभावकों की गतिविधि आदि विषयों पर विचार विमर्श करते हुए तो ग्लेन का प्रसंग भी सामने आये।

वातावरण म जानेवाल व वे भ प्रम वग्गा सवन्ननीतना विश्वास जम माननाय गुणा और सस्कारा का उन्माद क्या निशक और समाज रव सकता है ? बालक को इनसान बनाना है ता क्या स्वय बडा का पहल अपना पशुता छाडकर इनसान बनना आवश्यक नहा है ? इसी तरह के अनेक सवाल सामने आये।

हम लोग परस्पर पुन नय सम्भ म बातचात करने लग ता एक सुझाव आया कि गलती बार मां बाप को सूचना दी जाय यह अपना आदत न छोड तो बच्चे का नाम काट देना चाहिए।

माता-पिता की त्रुटता का परिणाम भोगना क्या बच्चे के लिए इतना आव श्यक है कि उस स्वस्थ वातावरण म भी वचित रखा जाय ? क्या इस तरह हम आनेवाली पीढी के साथ न्याय कर सकते ?

अन्त म लोक शिक्षण लोक जागृति लोक-सवदना का विकास ही एक मात्र रास्ता मालूम पडा। परिवार-सम्पर्क परिचय घनिष्ठता के बाद माता पिता का विश्वास प्राप्त करना उनके आवेगयुक्त असन्तुलित दिमाग को सन्तुलित करना उनके कुठित दिल को सवेदनशील बनाना शिक्षक की जिम्मेदारी मानी गयी। मुहल्ले मुहल्ले टोले-टोले म जाकर गोष्ठी गपशप करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

क्या य सब काम केवल वतनभागी शिक्षकों द्वारा हो सकते हैं ? अपने ही दाल भात की चिन्ता म ग्रस्त शिक्षकों से क्या बालशिक्षण और लोक शिक्षण की उम्मीद की जा सकती है ?

अनाज पानी और चारे का अकाल देश के किसी किसी हिस्से म कभी कभी पडता है किन्तु देश म अच्छे शिक्षकों का अकाल हर जगह है और लगातार वर्षों से चला आ रहा है। जब तक यह समस्या बनी रहेगी तब तक समाज म भी सवेदनशील सवेदना का अकाल बना रहेगा।

अध्यापक अभिभावक सम्पर्क

बच्चे के व्यक्तित्व का निर्माण चिन्ता का एक विषय है। इसका एकमात्र हल है परिवार और शाला के वातावरण मूल्य और मान्यताओं का एक दिशा म होना और बालक को प्रधानता देते हुए परिवार की व्यवस्था करना। इसके लिए माताओं का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं बनाया जा सकता। पाठ्यक्रम पूरा करने से जीवन के मूल्य और मान्यता

नहीं बदलता। उसके लिए सतत सम्पर्क और परस्पर मां तथा शिशु का प्रेमपूर्ण विश्वास भरा रिश्ता ही काम कर सकता है। ये प्रेम और विश्वास, दोनों ही ऐसे गहन विषय हैं जिनके उस ज्ञान और सूक्ष्म जाने पर बारीक भेद का पता नहीं चलता। फिर भी आज विज्ञान के युग में हर चीज का शास्त्र विकसित हुआ है इसी तरह प्रेम और विश्वास के भेद को हरा भरा रखने की कला भी बड़ी है। उस दिशा की ओर बढ़ने का छोटा-सा प्रयास 'जीवन-भारती' ने 'बालभारती' द्वारा किया।

मैंने माताओं की गोष्ठी की। अलग अलग दिन १८ २० के ग्रुप में माताओं को निमन्त्रित किया। छोटे-छोटे समूह में माताओं को भी अपनी बात कहने का अवसर और साहस प्राप्त हो जाता है। गोष्ठी के पूर्व तैयारी-स्वरूप मातृ मिलन परिपत्र तैयार किये। बालक और मां का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध जानने की दृष्टि से तैयार किये गये १० सवालों के इस परिपत्र ने अभिभावक जगत में एक लहर पैदा की। बच्चों को बनाने के लिए स्वयं को बनाना कितना जरूरी है यह चेतन व्यक्तियों ने महसूस किया। चर्चा भी की। अभिभावकों ने उन सवालों के उत्तर भेजते समय यह एहसास किया कि हमारी भी बालक के प्रति कुछ जिम्मेदारी है। अकेला नाता अधूरा है।

गोष्ठी में यह भी तय हुआ कि अपने पर्वों को सामूहिक रूप में मनाया जाय। बच्चों के सहजीवन के साथ माताओं की भी आपस में तथा बच्चों के साथ निकटता बढ़े। सर्वप्रथम इस मास की तीज को बालभारती में आकर मनाने, झूला झूलने, एक दूसरे से मिलने की तैयारी की। तीज की सुबह से ही काली-काली घटाएँ आती रहीं और बरसती रहीं। जहाँ रोज ये बादल, यह हवा, यह फुहार, यह रिमझिम की आवाज दिल को उल्लसित करती थी वहाँ कल ना दिल बैठने लगा। कैसे सब सम्पन्न होगा। होते होते शाम तक बादल तितर बितर हो गये सूर्य की ऊष्मा भी महसूस होने लगी और वे माओं की उँगलियाँ थाम महिलाएँ झूले के इर्द गिर्द झूमने लगी। बच्चे अपनी माँ और शिक्षिकाओं को इस तरह हिल मिल आनन्द मनाते देख आह्लादित हो रहे थे।

समूह का प्रभाव कुछ ऐसा होता है कि बहुत-सी अधकचरी और सीमित भावनाएँ स्वयमेव छिन्न-भिन्न होने लगती हैं। अमीर-गरीब, शिक्षित अशिक्षित की ग्रंथि भी टूटने लगती है। मन की अति खटास और अति मिठास प्रकट होने के लिए एकान्त ढूंढती है जब कि सन्तुलित भावाभिव्यक्ति के लिए समूह ही अवसर प्रदान करता है। एक समान धरातल पर आकर व्यवहार करने

र किए व्यक्ति सहज हो प्रेरित हो जाता है। दूसरा दर्शन भूरे पर हमने किया। यह स्पष्ट दिखाई दिया कि मात्र आर्थिक-स्तर बदलना या राजनीतिक दल बदलना या भाषा का पढ़ाई का क्रम बदलना, नया संस्कृति का ज्ञान या धारणा का प्रचार हो सकता है वह उस दिशा में कदम नहीं है। सांस्कृतिक मूल्यों में व्यापकता नवीनता और नैसर्गिक योग्यता का समावेश तभी हो सकता है जब हमारे जीवन का छोटी-बड़ी हर क्रिया के प्रति बना हुआ दृष्टिकोण हम बदलें हमारे रीति रिवाज बदलें हमारी भावनायें बदलें। हमारे दिल में वैशिष्ट्य की गंध निकल जाय।

जो महिलाएँ अपने बचपन में कभी स्कूल के दर्शन नहीं कर सकीं वे भी प्रौढ़ावस्था में स्कूल आकर आनन्दित होती हैं। जो महिलाएँ गृहस्थी की घाणी में अपने को पिसता-सा महसूस करती हैं वे भी अपना समय मुक्तता और निश्चिन्तता में बिताकर आनन्दित होती हैं। जो महिलाएँ प्रवृत्ति के अभाव में समय बिताने के बहाने खोजा करती हैं वे भी अपने समय का सदुपयोग महसूस करती हैं। जो महिलाएँ नयी श्रद्धाओं और पुरानी मान्यताओं के चक्र में फँसकर भार बैर का एहसास करती हैं वे बालभारती में अपनापन अनुभव करती हैं। तरह-तरह के फूलों से जैसे बाग की शोभा बढ़ती है उसी तरह 'बालभारती' विविधता की खुशबू से महक उठी।

—शान्ति

जहाँ अधिकतर अध्यापक अन्य सभी पेशों में ठुकराये हुए नन्छट हों और जीवन के अन्य क्षेत्रों में निराशा और मायूसी के कारण निरुपाय होकर अंतिम सहारे के रूप में अध्यापन के पेशे में आये हों वहाँ हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वे अपने काम में आदर्शवादिता योग्यता और साहस का समावेश करेंगे?

—प्रो० हुमाऊँ कबीर

शिक्षक और प्राइवेट ट्यूशन

लखन सिंह भटनागर

आजकल देश में चारों ओर शिक्षा के अनेक बिन्दुओं पर चर्चा होती है। उनमें शिक्षा के स्तर की गिरावट का भी समावेश होता है।

इस गिरते हुए स्तर को उन्नत करने के लिए आज कई नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं, जैसे अध्यापक द्वारा शैक्षणिक सामग्री का निर्माण, परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन, अध्यापन के लिए अध्यापक की तैयारी पर जोर देना, लिखित कार्य को कराने व शुद्ध करने पर अधिक आग्रह आदि।

प्रत्येक स्थान पर चाहे वह सड़क हो, पान की दुकान हो अथवा होटल हो, इन समस्याओं पर वार्तालाप करते समय आलोचना का शिकार अध्यापक होता है। यदि गम्भीरतापूर्वक सोचें तो वह आलोचना किसी हद तक सही भी है क्योंकि अध्यापक-द्वारा एक ऐसा कार्य किया जा रहा है जो निर्धन छात्रों का किसी हद तक शोषण करता है। यह शोषण प्राइवेट ट्यूशन के द्वारा किया जाता है।

जहाँ तक अध्यापक का प्रश्न है वह केवल अपनी न्यून आय में वृद्धि करने तथा सुख से जीवन व्यतीत करने के लिए प्राइवेट ट्यूशन करता है। यह प्रश्न अलग है कि वह प्राइवेट ट्यूशन के लिए लगन तथा परिश्रम से काम करता है या अनुचित साधनों का सहारा लेता है।

चन्द अध्यापक प्राइवेट ट्यूशन प्राप्त करने के लिए विद्यालय के नियमित अध्यापन में भी उदासीनता बरतते हैं। मुझे इस सम्बन्ध में एक घटना याद आती है। मैं कक्षा ८ के एक खण्ड में गणित पढ़ा रहा था। दूसरे खण्ड के गणित पढ़ानेवाले अध्यापक साथी आये और कहने लगे कि बेकार की मेहनत क्यों करते हो? इनको गरज होगी तो नाक रगड़ते हुए प्राइवेट ट्यूशन के लिए आयेंगे। यह तो एक घटना है। ऐसी और भी विधियाँ हैं जो अध्यापक प्राइवेट ट्यूशन प्राप्त करने के लिए अपनाता है। जैसे कक्षा में छात्रों को अनावश्यक सजा देना, परीक्षा में कम अंक देकर अनुत्तीर्ण करना आदि। यही

नहीं बल्कि उच्च कक्षा में उन्नति हेतु कुछ रकम ठेके के रूप में तय करते हैं और उस रकम में से कुछ भाग अन्य अध्यापकों में बाँट देते हैं और बिना अध्यापन के ही छात्रों को उच्च कक्षा में उन्नत करवा देते हैं। ऐसी अनेक अनुचित विधियाँ अध्यापक ट्यूशन-प्राप्ति हेतु अपनाते हैं।

ट्यूशन करनेवाला शिक्षक सुख से नहीं रह पाता है। अतिरिक्त कार्य रक्त चूसनेवाला व त्रासदायक होता है, फिर भी आय का साधन होने से वह ट्यूशन करता है। समाज में वकील, डाक्टर आदि कमाते हैं, फिर शिक्षक क्यों नहीं कमाये ? शिक्षक भी मनुष्य है। उसे थोड़े में सन्तुष्ट रहने का मिथ्या उपदेश दिया जाता है। समाज में प्रतिष्ठा रखनी है तो अन्य धन्धेवालों के साथ आर्थिक धरातल समान होना चाहिए। शिक्षक के भी कुटुम्ब होता है। उसकी भी सामाजिक जिम्मेदारियाँ हैं। परन्तु फिर भी यह प्रश्न तो है ही कि शिक्षण की दृष्टि से क्या यह उचित है कि शिक्षक प्राइवेट ट्यूशन करे ?

गम्भीर मनन करने पर स्पष्ट होगा कि शिक्षण की दृष्टि से कोई भी विचारवान् व्यक्ति प्राइवेट ट्यूशन की हिमायत नहीं करेगा। शुद्ध अन्तःकरण वाला नियमित अध्यापक इस प्रकार की आय से मुक्त रहना चाहता है। वह यह भी जानता है कि ट्यूशन से उसका ध्यान व्यक्तिगत और असंगत हितों में उलझेगा। ऐसा अध्यापक विद्यालय में कार्य करने के अवसर का दुरुपयोग करेगा। वह अच्छे नागरिक तैयार करने के अवसर का सम्यक् उपयोग नहीं कर पाता है। संस्था के प्रति निष्ठा में बाधा उत्पन्न होती है। दूसरी ओर ट्यूशन करनेवाला अध्यापक विद्यालय के दैनिक कार्य के प्रति भी उदासीन रहता है क्योंकि उसकी शक्ति का उपयोग अन्यत्र हो जाता है एवं वह थका हुआ होने से भी अनुपयुक्त रहेगा।

बालक की कुछ विशेष मनोवृत्तियों को ठीक मार्ग पर चलाने के लिए अच्छे मार्गदर्शन की आवश्यकता रहती है। संगीत अथवा नृत्यकला में मार्गदर्शन के लिए निष्णात शिक्षक सहायक हो सकता है। ऐसा कार्य रुचि का कार्य होने से आनन्द-प्राप्ति का कार्य होगा। वह परीक्षा या वर्गोन्नति (प्रमोशन) का कार्य नहीं होगा। विशिष्ट उच्चतर वृत्तियों के शिक्षण देने का ध्येय उस प्राइवेट ट्यूशन में होगा। उसमें शिक्षक का ध्येय बालकों को ज्ञान देना मात्र होगा, उनकी शक्तियों को कुण्ठित न कर फलीभूत तथा जगदुद्धारक विभूति बना देना होगा।

आज के इस भयंकर महँगाई के युग में अध्यापकों को भी अपना जीवन-यापन अच्छे ढंग से करना है। राजकीय सेवा में नियुक्त डाक्टर या वैद्यों को

या तो प्राइवेट काम करने का ?? होती है या विशेष भत्ता दिया जाता है। फिर अध्यापकों के इस कार्य को नीचा क्यों समझा जाता है? वास्तव में आजकल प्राइवेट ट्यूशन को नैतिक कार्य न माना जाकर एक व्यापारिक कार्य माना जाने लगा है।

कभी-कभी अध्यापक अपने छात्रों को उच्च कक्षा में उत्तीर्ण कराने हेतु अनुचित तथा अनैतिक साधनों का प्रयोग करते हैं। यदि छात्र परीक्षा में खूब परिश्रम तथा लगन से पढ़ने पर भी अनुत्तीर्ण हो जाता है तो वह अध्यापक की असफलता मानी जाती है न कि छात्र की। कभी-कभी अध्यापक अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों की भी प्राइवेट ट्यूशन ले लेते हैं तथा अपने साथियों को लाभ से वंचित कर देते हैं। परिणामस्वरूप विद्यालय में गुटबन्दी हो जाती है और अनुशासन खराब होने लगता है। इसके अतिरिक्त आज के युग में इतने विषय पढ़ाने को हो गये हैं कि एक अध्यापक सभी विषय पढ़ाने में निष्णात नहीं हो सकता। इसमें भी वांछित परिणाम न होने पर अध्यापक को समाज में नीचा देखना पड़ता है। प्राइवेट ट्यूशन में हानिकर तत्त्व निम्नांकित हैं —

अध्यापक को आराम के लिए समय नहीं मिलता है जिससे उसका स्वास्थ्य गिरता जाता है। कोई अध्यापक यदि अधिक ट्यूशन प्राप्त कर लेता है तो उसमें अहं का जागरण होता है। अवांछनीय तथा अनीतिपूर्ण आस्था और प्रलोभनों की ओर वह ललचाता है जैसे परीक्षा के समय मदद देना या प्राइवेट कॉपी बनाना। विद्यालय केवल मात्र वेतन देनेवाली संस्था रह जाता है। ट्यूशन करने से उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है तथा वह सभी अन्य छात्रों के साथ न्याय नहीं कर पाता है। विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से नहीं कर पाता है। अध्यापक वेतन किराये का व्यक्ति मात्र बन जाता है। जनसाधारण की दृष्टि में वह शिक्षक नहीं वरन् एक नौकर रह जाता है और इसलिए समाज में आदर पाने से वंचित रह जाता है। ईर्ष्या आदि अनेक दुर्गुण उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। उस स्वदेश के बालकों की शिक्षा-दीक्षा से वास्ता नहीं रहता। वह तो केवल हर समय अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए चिन्तित रहता है। परिणामस्वरूप छात्रों का विकास रुकता है। लोकदृष्टि में शिक्षक-समाज के प्रति घृणा फैलती है।

समाज में शिक्षक का स्थान आज बहुत नीचा है। अध्यापक का जागरूक रहना है और अपने कर्तव्य-द्वारा समाज में अपना स्थान प्राप्त करना है।

— जनशिक्षा से साभार

सम्पादक के नाम चिट्ठी

महोदय,

मै एक शिक्षक हूँ और हूँ शिक्षा-जगत मे महान क्रान्ति का तीव्र हामी। आज की निरर्थक व विनाशकारी शिक्षा के स्थान पर जीवन की जीवनद्वारा व जीवन के लिए उपयोगी शिक्षण की व्यवस्था की उपलब्धि के लिए यत्नशील हूँ। आपके सम्पादकीय* विचारों से पूरी तरह सहमत हूँ। पर, साथ ही उन विचारों की क्रियात्मक भूमिका के दर्शन की लालसा भी रखता हूँ। मै ऐसे प्रयोगों के लिए तत्पर हूँ, क्षेत्र बनाने के लिए यत्न चलता है पर ऐसे प्रयोगों से अवगत अपने को रखना भी परम कर्तव्य समझता हूँ। अत: इस अभाव की पूर्ति आपके व्यक्तिगत सम्पर्क से व योग्य मार्गदर्शन से करना चाहता हूँ।

नयी तालीम के लिए नया समाज बनाना है और नये समाज के लिए पुराने सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं, आस्था-विश्वासों तथा व्यवस्था व ढाँचे मे जो परिवर्तन अपेक्षित है उसे ग्रामदानी समाज के माध्यम से उपलब्ध किया जाय ऐसा हमारा चिन्तन चलता है। यह ठीक भी है पर आज की स्थिति मे जबकि समाज स्वार्थप्रेरणा से चल रहा है, त्याग या दान की बात करना ही पर्याप्त नहीं होता। पुराने सामाजिक ढाँचे को बदलने के लिए जिस विचार-क्रान्ति की आवश्यकता है वह जनव्यापी हो जाय तभी कुछ सम्भव है। पर ग्रामदान का विचार अभी जनव्यापी आन्दोलन के रूप मे नहीं उभरा है। तूफान की तरह एक झोका-सा आता है और फिर यथावत् जीवन का क्रम चलता है। वही स्थिति यहाँ भी हुई है। समझ में नहीं आता कैसे क्या हो? यदि हमारा चिन्तन सत्य है तो फिर उसके लिए आग्रह करना ही है। यदि आग्रह से जनता का मानस आन्दोलित नहीं होता है तो विचार आता है कि हमारे चिन्तन मे कोई त्रुटि तो नहीं! हमारा सत्य व्यावहारिक है या नहीं!

---

* जुलाई '६७ के अक मे।

चिन्तन में तो लगता है सर्वोदय विचार युग की नितान्त आवश्यकता है, पर व्यवहार में युग प्रवाह इसके उल्टा चल रहा है। आखिर समाधान यह आता है कि सर्वोदय का व्यावहारिक पहलू सुस्पष्ट जनता के सामने नहीं आने, तथा सही रूप में इस विचार का प्रचार न होने से यह स्थिति रहती है।

एक बात और भी है। सर्वोदय आज एक वाद या सम्प्रदाय समझा जाने लगा है। समाज में ऐसी भावना है और इस निर्मूल किये बगैर सर्वोदय सबका जीवन-विचार नहीं बन सकता। या मेरी अपनी दृष्टि में सर्वोदय पुरातन और शाश्वत ही नहीं सहज व नवीन विचारधारा है। मनुष्य अपने सहज रूप में सामाजिक प्राणी है। समाज से भिन्न उसका अस्तित्व ही नहीं। मनुष्य मूलतः सामाजिक या समाजवादी है स्वार्थी व व्यक्तिवादी नहीं। जो बुनियादी संस्कार परिवार में मिलते हैं वे त्याग, प्रेम सहिष्णुता के होते हैं न कि भोग, घृणा व विरोध के। आदान प्रदान के बिना समाज का उद्भव हो नहीं हो सकता। अन्न दान यानी आदान प्रदान तो समाज का मूल कारण ही है। उसे कहीं से लाना या स्थापित नहीं करना है वरन् जागृत मात्र करना है। जो मानवीय भावनाएँ सुप्त हो गयी हैं उन्हें भी जागृत करना है, यही सर्वोदय विचार को मान्यता मिलना सम्भव है। किसी ढाँचे का (ग्रामदानी ढाँचे का) मंजूर करवाना मात्र से नहीं, वरन् पहले वैचारिक दृष्टि से सहज सामाजिक या मानवीय भावनाएँ जगाने की आवश्यकता है। तब सब कुछ आसान होगा। तब यह ग्रामदान जनव्यापी बन सकेगा। जब तक जनता सर्वोदय को सहज स्वाभाविक स्वरूप नहीं समझ पाती तब तक रूढ़ स्वरूप में कोई परिणाम सामने न रहे। इस मिशन के लिए जो कार्यकर्ता सामने आते हैं वे स्वयं स्पष्ट नहीं होते, न उनमें पूरी भावना होती है।

अतः सर्वोदय को कोई नया विचार न मानकर सहज स्वाभाविक मानवीय भावना माना जाय तथा उसे सूत्ररूप से प्रयुक्त करके जनता के सामने रखा जाय। विचारक उसके अव्यक्त रूप को समझ सकता है, पर साधारण जन नहीं।

—हरवल्लभ अरोरा 'हर्ष'
राजकीय उच्च मा० विद्यालय
चित्तौड़गढ़

डा० जाकिर हुसेन

राष्ट्र-सरकार की नैतिक सत्ता

[अमेरिका के मिशिगन विश्वविद्यालय की स्थापना की १५० वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में २९ अप्रैल '६७ को एक विशेष दीक्षान्त समारोह का आयोजन किया गया था, जिसमें डा० जाकिर हुसेन-द्वारा दिये गये भाषण के महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिये जा रहे है। सं०]

हमारी यह प्रवृत्ति हो गयी है कि हम अपनी अधिकाश समस्याओं का इलाज राष्ट्र-राज को मान बैठते है और इसमें सन्देह नहीं कि उससे कुछ समस्याएँ हल भी हुई है। किन्तु, इस बारे मे कुछ गम्भीर और विभिन्न समयों मे, न्यायोचित सन्देह भी किये गये है कि क्या यह उतना प्रभावकारी है जितना दावा किया जाता है और क्या उससे शक्ति और नैतिक उद्देश्यो के पारस्परिक सम्बन्धो का महत्त्वपूर्ण मसला हल किया जा सकता है। वास्तव मे, कुछ ऐसे राज्य है, जिनमे यह बात स्पष्टता से समझी ही नहीं जाती कि वे शक्ति और भौतिक समृद्धि की प्राप्ति की जिन कोशिशो मे जुटे हुए है, वहाँ नैतिक आदर्शो का कोई विशिष्ट महत्व भी है।

राष्ट्र-राज आज जिस रूप मे भी विद्यमान है उसका निर्माण अतीत में सभी प्रकार के व्यक्तियों-द्वारा किया गया है जैसे—राजनीतिज्ञ, शहीद, अन्वेषक, डाकू, साम्राज्यवादी, दुर्दम्य साहसी, अध्यवसायी, विचारक, वैज्ञानिक, इतिहासज्ञ, कवि।

कभी उन्होंने सगठित होकर काम किया तो कभी सघर्ष और विरोध करके, और इस प्रकार सम्पूर्ण वस्तु के उद्भव मे अपने अनूठे योगदान किये। उनमें से अब्राहमलिंकन-सरीखे कुछ लोगों ने राज को नैतिक उद्देश्यो को स्वीकार करने और उन पर अमल करने के लिए विवश किया, कुछ ने नैतिक आदर्शो को इस प्रकार तोडा-मरोडा कि वे राज्य के हितो से मेल खायें और कुछ ने राज्य के हितों की प्राप्ति के मार्ग मे नैतिक आदर्शों को अप्रासगिक समझा। उन सभी ने राष्ट्र-राज के गिने-चुने स्वरूप पर अपनी छाप छोडी है।

जब से भारत स्वाधीन हुआ है तब से उसने विभिन्न रूपों में सहायता देकर भारतीय लोकतन्त्र को मजबूत किया है। भारत की भलाई के लिए उसकी गहरी चिन्ता का यह प्रमाण है।

उधर, भारतीय भी लोकतन्त्री सिद्धान्तों और स्वतन्त्रता की महत्ता के प्रति समान निष्ठा होने तथा शान्ति व न्याय के लिए सहयोगात्मक प्रयत्नों के कारण अमेरिकियों के साथ अपने रिश्ते को महसूस करते हैं। लेकिन इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कभी-कभी गलतफहमी या असहमति पैदा हो जाती है।

अमेरिकी कभी-कभी इस बात पर रुष्ट हो जाते हैं कि उनकी नीयत पर, चाहे वह कितनी भी उदार हो, सन्देह किया जाता है। हालांकि मैं यह स्वीकार करता हूँ कि संसार के सभी देशों में तथ्यों के बारे में घपला हो सकता है।

भारतीयों को अमेरिकियों की प्रभुता का भय है। यह ऐसे देश के लिए स्वाभाविक भी है जो हाल ही में औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुआ है और श्रेष्ठता की भावना—चाहे वह वास्तविक हो या काल्पनिक—के विरुद्ध रोष पैदा होना भी स्वाभाविक है। यद्यपि दोनों देशों में लोकतन्त्र का शक्तिशाली बन्धन है फिर भी अमेरिकी उद्योग और पूँजी की ताकत इतनी अधिक है कि भारत उसकी उदारता देखकर, सर्वथा तर्कसंगत रूप में, आतंक महसूस करने लगता है।

सहिष्णुता और समानता

यदि हम इस गलतफहमी के कारणों को दूर करना चाहते हैं तो हमें औपचारिक स्तर से—चाहे वह राजनीतिक हो या आर्थिक या शैक्षिक—ऊपर उठकर विचार-विमर्श करना चाहिए। विकास की केवल आशाओं के मुकाबिले में निरन्तर शानदार सफलताओं को दिखलाकर समानता का वातावरण तैयार नहीं किया जा सकता।

हमें जो चीज इकट्ठा कर सकती है और साथ रख सकती है वह रहन-सहन का समान रूप से ऊँचा स्तर हासिल करने की बात नहीं है, बल्कि हममें सत्यवादिता, अपने से भिन्न प्रवृत्तियों के प्रति सहिष्णुता तथा पुरुषों व स्त्रियों में निरायास समानता की भावना की है।

तभी हम विनम्रता और दृढ़ सकल्प के साथ परमात्मा और अपनी अन्तरात्मा के सामने खड़े होकर यह कह सकेंगे कि हम अपने जीवनों और कामों-द्वारा ही पूर्णता प्राप्त करने के हार्दिक प्रयत्नों को दिखलाने का यत्न करेंगे। ●

आज हमारा हालत गिरी हुई है। इसके मुख्य कारण को समझना चाहिए। वैदिक काल में सामूहिकता का विचार विकसित हुआ था। वह उस समय के मन्त्रों में पाया जाता है। लेकिन ऊंचे शब्दों के संयोजन के आयोजन के तौर विज्ञान नहीं विकसित हुआ था। धीरे धीरे मुक्ति प्राप्ति की कल्पनाएं व्यक्तिगत स्तर की हो गयीं। सामूहिकता का लोप हो गया।

अब हम समझना है कि व्यक्तिगत मुक्ति यानी व्यक्ति के अहं का समाज में विलीनीकरण और इसी तरह समाज के अहं का परमात्मा में विलीनीकरण होना चाहिए। व्यक्तिगत मुक्ति की कल्पना अब सामूहिक मुक्ति की हो गयी है।

प्रह्लाद सामूहिक मुक्ति का आचार्य हो गया। नैनका मुनि आदि अपनी मुक्ति की कल्पना करते थे लेकिन प्रह्लाद ने कहा कि—इन दोनों को छोड़कर मैं मुक्ति नहीं चाहता।

ना हम ऐहिक-पारलौकिक भेद मिटाकर सामूहिक मुक्ति की बात समझानी है।

(विनोबाजी से आचार्य राममूर्तिजी की हुई एक वार्ता के आधार पर। पूना रोड १५-७-६७)

पिछले कई वर्षों से ५ सितम्बर सारे देश में शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। भारत के पिछले राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के जन्मदिन-समारोह के रूप में इसकी शुरुआत हुई थी।

११ सितम्बर विनोबाजी का भी जन्मदिन है। शिक्षा के क्षेत्र में विनोबाजी का योगदान विशेष महत्व रखता है। शिक्षक दिवस के उपलक्ष में इस अंक की पाठ्य-सामग्री का मूल बिन्दु शिक्षक है।—सम्पादक

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

अनुक्रम

सितम्बर ६७

●

निवेदन

- नयी तालीम का वर्ष अगस्त में आरम्भ होता है।
- नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छह रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

अक्तूबर १९६७
वर्ष-१६ : अंक-३

राष्ट्रभाषा ... सम्पर्क भाषा ... शैक्षिक भाषा

भाषा ...... भाषा ...... भाषा ....

अंग्रेजी ... नहीं हिन्दी ... नहीं अंग्रेजी ... नहीं ...

शिक्षा के उच्चतम उद्देश्य

इस बात को मानना कि शिक्षा स्वय में एक उद्देश्य है, सच्चाई को छिपाना है। निश्चय ही शिक्षा का पहला और बुनियादी उद्देश्य है, योग्यता और कर्म-कौशल हासिल कर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार लाना। दूसरा उद्देश्य है, दुनिया के बारे में समझ और सहानुभूति हासिल करना। दिमाग खुला और छाती चौडी, शिक्षा के उच्चतम उद्देश्य है।

शिक्षा के साथ तर्क और एक प्रकार की दृष्टि का निर्माण भी जरूरी है, अन्यथा शिक्षा जिन्दगी में किसी प्रकार की चेतना नही ला सकती। तर्क जानकारी और दृष्टि में तारतम्य स्थापित करता है।

डा० राममनोहर लोहिया

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

श्री चागला का त्यागपत्र

वर्ष : १६
अंक : ३

शिक्षामंत्री होने के बाद श्री त्रिगुण सेन ने शिक्षा-आयोग द्वारा संस्तुत क्षेत्रीय भाषाओं को जल्दी से जल्दी शिक्षा का माध्यम बनाने की जो नीति अपनायी थी और जिस नीति का समर्थन पार्लियामेण्टरी समिति और शिक्षा-मंत्रियों ने किया था, उस नीति के विरुद्ध भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री श्री चागला ने अपने विदेश मंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। अपने त्यागपत्र मे उन्होंने लिखा है—"मैं भारतीय भाषाओं के विकास के पक्ष मे हूँ। साथ ही साथ मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि अन्तत. हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ग्रहण करेगी और देश को एक सूत्र मे बाँधने का जो काम आज अंग्रेजी कर रही है, वह एक दिन हिन्दी करेगी। परन्तु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अंग्रेजी भाषा के स्थान पर क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग धीरे धीरे होना चाहिए और इस परिवर्तन काल में शिक्षा का स्तर गिरना नहीं चाहिए। जब तक अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी प्रतिष्ठित नहीं हो जाती तब तक अंग्रेजी को सुदृढ़ बनाना चाहिए।"

शिक्षा मे माध्यम-परिवर्तन की नीति का राष्ट्र की एकता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अंग्रेजी के कारण आज देश मे जो राजनीतिक, प्रशासनिक और

कानूनी एकता बनी हुई है, वह खण्डित हो जायगी और देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। राष्ट्र छोटे-छोटे राज्यों में बँट जायगा। हमें अपने ही देश मे एक-दूसरे को समझने के लिए दुभाषियों का प्रयोग करना पड़ेगा। देश में शिक्षा का, विशेषत: वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा का स्तर बहुत ही गिर जायगा। देश विज्ञान और टेकनालोजी की प्रगति में पिछड जायगा। देश की दुर्दशा के इस दु:स्वप्न की विभीषिका से श्री चागला काँप उठे और राष्ट्र की एकता बनाये रखने के लिए उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

पीछे अपने एक इन्टरव्यू मे श्री चागला ने अपने त्याग-पत्र के दृष्टिकोण को और भी स्पष्ट किया है। वे कहते हैं—"देश की एकता जीवन-मरण का प्रश्न है। मै चाहता हूँ कि देश का प्रशासन, यहाँ का न्याय, यहाँ की कचहरियाँ, और यहाँ का बौद्धिक जीवन, और तो और विज्ञान और तकनीकी को भी शामिल करूँगा, एक ही भाषा में चले।" इस पर जब उनसे फिर पूछा गया कि वे क्षेत्रीय भाषाओं के विकास के खिलाफ तो नही हैं ? तो उन्होने कहा—"नहीं, मै तो उन सारे प्रयासो का समर्थक हूँ जो इस बात के लिए किये जायँ कि क्षेत्रीय भाषाएँ एक दिन अंग्रेजी का स्थान ले लें। परन्तु मैं यहाँ फिर लोगों को सावधान करना चाहता हूँ—खतरा इस बात में नही है कि हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले ले। इसका तो मैं स्वागत करूँगा। लेकिन खतरा तो इस बात मे है कि क्षेत्रीय भाषाएँ अंग्रेजी का स्थान तो ले ले, अर्थात् अंग्रेजी के स्थान पर उच्च शिक्षा का माध्यम तो बन जायँ, परन्तु देश मे एक ऐसी सशक्त सम्पर्क भाषा न हो, जो अंग्रेजी का स्थान ले ले और उसमे वे सारे काम होने लगेंगे जो आज अंग्रेजी में हो रहे हैं, तो क्षेत्रीय भाषाओं मे माध्यम-परिवर्तन से देश में भाषायी अराजकता फैल जायगी और देश की एकता नष्ट हो जायगी।" और जब उनसे फिर पूछा गया कि आपका कार्यक्रम क्या होगा, तो उन्होंने कहा कि जहाँ हम क्षेत्रीय भाषाओं का विकास करें वहाँ हम अंग्रेजी को दृढ़ बनायें, अथवा अन्तत. हिन्दी को। संक्षेप मे श्री चागला यह चाहते हैं कि अंग्रेजी चलती रहे और जब हिन्दी सशक्त हो जाय तो वह पूर्णत: उस आसन पर प्रतिष्ठित हो जाय जिस पर आज अंग्रेजी बैठी है। यह हो जाय तभी क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम बनायी जायँ।

यह है श्री चागला का दृष्टिकोण। सरसरी नजर से देखने पर उनका यह कथन एक ऐसे देश प्रेमी का उद्गार मालूम पडता है जिसके हृदय म राष्ट्रीय एकता की ज्वाला धधक रही है। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर उनके कथन म ऐसे तत्त्वा का समावेश है जो राजनीति की दृष्टि से ही नही शिक्षा की दृष्टि से भी हानिकर हैं।

सीधा-सा सवाल है कि जिस पद पर स्वतत्रता के पूर्व अग्रेजी प्रतिष्ठित थी और आज स्वतत्रता प्राप्ति के बीस वर्ष बाद भी प्रतिष्ठित है, क्या उस पद पर हिन्दी प्रतिष्ठित हो सकेगी और उसे किया भी गया तो ऐसा करना क्या राष्ट्र के हित म होगा ?

हिन्दी द्वारा अग्रेजी का स्थान लिये जाने का मतलब है हिन्दी राजभाषा बने और भारत के केन्द्र म ही नही भारत के सभी राज्यो मे, राज्यो के छोटे-छोटे नगरो की अदालतो मे और दूसरी प्रशासनिक सस्थाओ म सारा काम हिन्दी मे चले। फिर वह देश के प्रशासन की ही नहीं, अपितु वह सम्पूर्ण भारत की सारी बौद्धिक राजनीतिक और सास्कृतिक हलचलो का भाषा बन जाय ठीक वैसे ही जैसे अग्रेजो के राज्यकाल में अग्रेजी थी। अथवा जैसी बहुत कुछ आज भी है। और फिर वह अग्रेजी की तरह देश के सभी विश्वविद्यालयो मे शिक्षा का एकमात्र माध्यम बन जाय। दूसरे शब्दो म हिन्दी भी आज की तरह भारत के बुद्धिजीवियो और शिक्षाविदो के सम्पर्क और विचार विनिमय का माध्यम बन जाय अर्थात् जो काम आज अग्रेजी-परस्त नौकरशाही अथवा बुद्धिजीवियो की जमात कर रही है वही काम कल हिन्दी-परस्त नौकरशाही और बुद्धिजीवी जन करे। एक वाक्य मे कहूँ तो यो कहूँगा कि अगर देश मे आज अग्रेजी का साम्राज्यवाद है तो कल हिन्दी का साम्राज्यवाद स्थापित हो जाय। इसी साम्राज्यवाद से तो अहिन्दी भाषी राज्यो को भय है और श्री चागला, जो अचानक अपने त्यागपत्र के कारण अहिन्दी भाषियो के 'नायक' बन गये हैं इसी भाषायी साम्राज्यवाद को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं—जब तक रहे—अग्रेजी का साम्राज्यवाद और इसके बाद हिन्दी का साम्राज्यवाद।

परन्तु प्रश्न है—क्या यह सम्भव है ? क्या इसे होने देना चाहिए ? दक्षिण कहता है हम हिन्दी का साम्राज्यवाद नही स्थापित होने देगे। ऐसा है तो दक्षिण को श्री चागला के इस त्यागपत्र के विरुद्ध प्रदर्शन

करना चाहिए। परन्तु इसे जाने दीजिये, मेरा तो कहना है कि आज किसी भी प्रकार का किसी भी भाषा का साम्राज्यवाद स्थापित नहीं होगा। अंग्रेजी का साम्राज्यवाद जिन कारणों से, जिन परिस्थितियों में स्थापित हुआ, उन ऐतिहासिक कारणों और परिस्थितियों की पुनरावृत्ति हिन्दी को लेकर सम्भव नहीं है। उस युग के विदेशी साम्राज्यवाद की जगह आज देश में गणतंत्र है। साम्राज्यवाद के उस युग में शासकों की भाषा शासित पर लाद दी गयी थी। जाहिर है, सामान्य जनता इस भाषा को सीख नहीं सकती थी—आवश्यकता भी नहीं थी। अतः अंग्रेज शासकों को प्रशासन-कार्य में सहायता देने के लिए गिने-चुने व्यक्तियों ने ही अंग्रेजी सीखी। और आज भी अंग्रेजी जाननेवाले व्यक्तियों की संख्या २ प्रतिशत से अधिक नहीं। परन्तु लोकतंत्र में प्रशासक और प्रशासित की भाषा में अन्तर नहीं होना चाहिए। अतः लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त हो जाती है कि विभिन्न राज्यों का सारा काम उन क्षेत्रीय भाषाओं में ही चले जो वहाँ बोली जाती है। यह तभी सम्भव होगा जब पूर्व प्रारम्भिक स्तर से स्नातकोत्तर स्तर तक क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम बनें और राज्य की उच्च से उच्च नौकरियाँ क्षेत्रीय भाषा के माध्यम में पढ़नेवालों को मिलें। यह तभी सम्भव होगा जब अंग्रेजी को उस स्थान से अपदस्थ किया जाय, जहाँ राज्यों में वह आज भी बैठी है।

अपदस्थ करने का यह काम प्रारम्भ भी हो गया है। देश के ७३ विश्वविद्यालयों में से ३५ विश्वविद्यालयों में परीक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषाएँ हो गयी हैं और १५ तो ऐसे विश्वविद्यालय हैं, जहाँ ९० प्रतिशत छात्र परीक्षा के माध्यम के लिए क्षेत्रीय भाषाएँ चुनते हैं। १७ ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहाँ स्नातकोत्तर स्तर पर भी क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम हैं। परिवर्तन का यह कार्य प्रारम्भ हो गया है। जहाँ इसके कई कारण हैं, वहाँ सबसे बड़ा कारण यही है कि लोकतंत्र का तकाजा स्वीकार कर राज्य प्रशासन के लिए क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग करना चाहते हैं। इसीलिए शिक्षा-आयोग ने संस्तुति की थी कि माध्यम-परिवर्तन का काम शीघ्रातिशीघ्र लगभग १० वर्ष के भीतर विश्वविद्यालयों की ओर यू० जी० सी० की सहायता से समाप्त कर लिया जाय क्योंकि इस कार्य में जितना अधिक विलम्ब होगा, समस्या उतनी ही अधिक उलझती जायगी।

परन्तु राजनीतिक दृष्टिकोण और लोकतंत्र की बात छोड़ भी दें तो भी क्षेत्रीय भाषाओं को प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का माध्यम बनाने की बात शिक्षा और देश की एकता के दृष्टिकोण से सही है। क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने से उच्च शिक्षा के स्तर बढ़ेंगे, छात्रों की प्रतिभा का मौलिक विकास सम्भव होगा, ज्ञान-विज्ञान का लाभ साधारण जनता को सुलभ होगा, साधारण जनता में वैज्ञानिक और आधुनिक दृष्टिकोण का सृजन होगा और बुद्धिजीवियों और श्रमजीवियों के बीच की खाई पटेगी। क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने की बात कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं गांधीजी ने ही नहीं की थी, मुदालियर-कमीशन और राधाकृष्णन्-आयोग और शिक्षा-आयोग की भी उस पर मुहर है। इसी प्रकार क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने से देश की एकता बढ़ेगी—यह बात नेशनल इन्टीग्रेशन कार्उसिल और भावनात्मक एकता समिति, दोनों ने कही थी क्योंकि इससे एक ही राज्य मे रहनेवाले बुद्धिजीवियों और सामान्य जनता के बीच एकता बढ़ेगी, जो आज अंग्रेजी के कारण नहीं है और यह राष्ट्र की एकता के लिए बहुत बड़ा लाभ होगा। विभिन्न राज्यों मे रहनेवाले बुद्धिजीवियों के बीच मे भी सम्पर्क बना रहेगा और विचार-विनिमय का मार्ग बन्द नही होगा, क्योंकि अभी कम से कम ३० वर्ष तक तो *अंग्रेजी को देश की सशक्त सम्पर्क भाषा वही बनाये रहेंगे जो स्वतंत्रता-* प्राप्ति के बाद पहले से भी अधिक मुस्तैदी के साथ अंग्रेजी पढ़कर तैयार हो गये हैं। और इसी बीच हिन्दी के 'लिंक' को दृढ़ कर लिया जायगा।

अतः माध्यम-परिवर्तन के प्रश्न को लेकर श्री चागला के त्यागपत्र देने की बात समझ मे नही आती।

अब दूसरे दृष्टिकोण से समस्या पर विचार करें। हिन्दी माननेवालों ने कभी भी यह दावा नहीं किया था कि हिन्दी पूर्णतः अंग्रेजी का स्थान ले ले। प्रारम्भ से ही हिन्दी के लिए तो इतना ही दावा किया गया है कि वह केन्द्र की राजभाषा हो, अर्थात् सुरक्षा, संरक्षण, राजस्व आदि जो केन्द्रीय विषय हैं, उनमे हिन्दी मे वैसे ही काम चले जिस प्रकार आज अंग्रेजी मे चलता है और इस क्षेत्र मे वह विभिन्न राज्यों की सम्पर्क भाषा हो। अतः प्रारंभ से हिन्दी को इसी सीमित रूप मे स्वीकार करने की मांग की गयी थी। परन्तु किन्हीं कारणों से और

उन कारणों में ही चागला के मत के उन विद्वानों की राय भी शामिल है, चाहे वे हिन्दी के पक्षवाले हों चाहे विपक्षवाले, जो यह चाहते थे कि हिन्दी अंग्रेजी की भाँति उच्च शिक्षा का माध्यम बने और अंग्रेजी की तरह वह देश के बुद्धिजीवियों की समस्त राजनैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक हलचलों का माध्यम बन जाय। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है यह स्पष्टतः अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी के साम्राज्यवाद की स्थापना की बात थी और इस दृष्टिकोण ने स्वभावतः दक्षिणवालों को चौंका दिया। उन्होंने हिन्दी के साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठायी। मैं मानता हूँ कि उनका दृष्टिकोण सही है, परन्तु यह भी मानता हूँ कि चागला का त्यागपत्र अंग्रेजी के साम्राज्यवाद को, और अन्ततः हिन्दी के साम्राज्यवाद को बल देता है और इसका विरोध होना चाहिए। अगर श्री चागला का तर्क मान लिया गया तो लोकतन्त्र और समाजवाद की स्थापना के शपथ-ग्रहण के बावजूद देश में आज जैसे अंग्रेजीपरस्त बुद्धिजीवियों का राज्य है वैसे ही कुछ दिनों बाद हिन्दीपरस्त बुद्धिजीवियों का राज्य होगा। परन्तु यह स्थिति बहुत अवाञ्छनीय होगी।

एक बात और समझ लेनी चाहिए। लाख प्रयत्न करने पर भी हिन्दी उस पद पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती जिस पद पर आज अंग्रेजी है। क्योंकि जिन कारणों से अंग्रेजी को वह पद प्राप्त हो गया था उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जा सकती।

अतः देश की एकता, लोकतन्त्र और शिक्षा की दृष्टि से अगर श्री चागला क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम को टालने की बात अथवा माध्यम-परिवर्तन की गति को धीमी करने की बात छोड़कर शीघ्रातिशीघ्र अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी को सम्पर्क भाषा और राजभाषा बनाने की बात दृढ़तापूर्वक कहते, तो उनकी बात अधिक न्यायसंगत होती। संक्रमण-काल में दो ही बातें करनी थीं, और यह संक्रमण-काल बहुत लम्बा न हो, कि अंग्रेजी और हिन्दी दोनों चलें, दोनों का ही स्तर न गिरने दिया जाय और संक्रमण-काल के बाद नियोजित ढंग से हिन्दी आ जाय और केन्द्र में जिन विभागों के संचालन के लिए अंग्रेजी का प्रयोग होता है उनका विभाजन हिन्दी में होने लगे।

—वंशीधर श्रीवास्तव

हिन्दुस्तान की राष्ट्रभाषा

महात्मा गांधी

हमने अपनी मातृभाषाओं के मुकाबिले अंग्रेजी से ज्यादा मुहब्बत रखी, जिसका नतीजा यह हुआ कि पढ़े लिखे और राजनीतिक दृष्टि से जागे हुए ऊँचे तबके के लोगों के साथ आम लोगों का रिश्ता बिलकुल टूट गया और उन दोनों के बीच एक गहरी खाई बन गयी। यही वजह है कि हिन्दुस्तान की जबानें या भाषाएँ गरीब बन गयी हैं, और उन्हें पूरा पोषण नहीं मिला है। अपनी मातृभाषा के अटपटे और गहरे तात्त्विक विचारों को प्रकट करने की अपनी व्यर्थ चेष्टा में हम गोते खाते हैं। हमारे पास विज्ञान की कोई निश्चित परिभाषा नहीं—पारिभाषिक या इस्तिलाही शब्द नहीं। इस सबका नतीजा खतरनाक हुआ है। हमारी आम जनता नये युग के मानस से यानी नये जमाने के विचारों से बिलकुल अछूती रही है। हिंदुस्तान की महान् भाषाओं की जो अवगणना हुई है, और उसकी वजह से हिन्दुस्तान को जो बेहद नुकसान पहुँचा है, उसका कोई अन्दाजा या माप आज हम निकाल नहीं सकते, क्योंकि हम इस घटना के बहुत नजदीक हैं। मगर इतनी बात तो आसानी से समझी जा सकती है कि अगर आज तक हुए नुकसान का इलाज नहीं किया गया, यानी जो हानि हो चुकी है उसकी भरपाई करने की कोशिश हमने न की, तो हमारी आम जनता को मानसिक मुक्ति नहीं मिलेगी। वह रूढ़ियों और वहमों से घिरी रहेगी। नतीजा यह होगा कि आम जनता स्वराज्य के निर्माण में कोई ठोस मदद नहीं पहुँचा सकेगी। अहिंसा की बुनियाद पर रचे गये स्वराज्य की चर्चा में यह बात शामिल है कि हमारी आम जनता लड़ाई के हर पहलू और उसकी हर सीढ़ी से परिचित न हो, और उसके रहस्यों को भलीभाँति न समझती हो, तो स्वराज्य की रचना में वह अपना हिस्सा किस तरह अदा करेगी? और जब तक सर्वसाधारण को अपनी बोली में लड़ाई के हर पहलू और कदम को अच्छी तरह समझाया नहीं जाता, उनसे यह उम्मीद कैसे की जाय कि वे उनमें हाथ बटायेंगे?

समूचे हिंदुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में से एक ऐसी भाषा या जबान की जरूरत है जिसे आज ज्यादा से-ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी के लोग जिसे झट सीख सकें। इसमें शक नहीं कि हिन्दी ऐसी ही भाषा है। उत्तर के हिन्दू और मुसलमान दोनों इस भाषा को बोलते और समझते है। यही बोली जब उर्दू लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू कहलाती है। राष्ट्रीय महासभा ने सन् १९२५ के अपने कानपुरवाले जलसे में मंजूर किये मशहूर ठहराव में सारे हिंदुस्तान की इसी बोली को हिंदुस्तानी कहा है। और तब से भले उसूलन् ही क्यों न हो हिंदुस्तानी राष्ट्रभाषा या कौमी जबान मानी गयी है। उसूलन् या सिद्धांतत मैंने जान-बूझकर कहा है क्योंकि खुद कांग्रेसवालों ने भी इसका जितना मुहावरा रखना चाहिए नहीं रखा। हिंदुस्तान की आम जनता की राजनीतिक शिक्षा के लिए हिंदुस्तान की भाषाओं के महत्त्व को पहचानने और मानने की एक खास कोशिश सन् १९२९ में शुरू की गयी थी। इसी हेतु से इस बात का खास प्रयत्न किया गया था कि सारे हिंदुस्तान के लिए एक ऐसी भाषा को जान और मान लिया जाय जिसे राजनीतिक दृष्टि से जागा हुआ हिन्दुस्तान आसानी से बोल सके और अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा के आम जलसों में इकट्ठा होनेवाले हिंदुस्तान के जुदा जुदा सूबों से आये हुए कांग्रेसी जिसे समझ सकें। यह राष्ट्रभाषा हम इस तरह सीखनी चाहिए कि जिससे हम सब इसकी दोनों शैलियों को समझ और बोल सकें और इसे दोनों लिखावटों में लिख सकें।

अंग्रेजी की मोहिनी

मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि बहुतेरे कांग्रेसजनों ने इस ठहराव पर अमल नहीं किया। मेरी समझ में इसका एक शरमनाक नतीजा यह हुआ कि आज भी अंग्रेजी बोलने का आग्रह रखनेवाले और अपने समझने के लिए दूसरों को अंग्रेजी में ही बोलने के लिए मजबूर करनेवाले कांग्रेसजनों का बेहूदा दृश्य हमें देखना पड़ता है। अंग्रेजी जबान ने हमपर जो मोहिनी डाली है उसके असर से हम अभी तक छूटे नहीं है। इस मोहिनी के वश होकर हमलोग हिंदुस्तान को अपने ध्येय या मकसद की ओर आगे बढ़ने से रोक रहे है। जितने साल हम अंग्रेजी सीखने में बरबाद करते हैं अगर उतने महीने भी हम हिंदुस्तानी सीखने की तकलीफ न उठायें तो सचमुच ही कहना होगा कि

जन-साधारण के प्रति अपने प्रेम को ज डागें हम हाँका करते है, वे निरी ढोगें ही हैं।[१]

हमारी दयनीय गुलामी

अंग्रेजो को हम गालियाँ देते हैं कि उन्होने हिंदुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गये है । अंग्रेजो ने हिंदुस्तान को काफी पामाल किया है । इसके लिए मैने उनकी कडी से कडी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उन्हे जिम्मेदार नही समझता । खुद अंग्रेजी सीखने और बच्चो को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी कितनी मेहनत करते है ? अगर कोई हम यह कहता है कि हम अंग्रेजो की तरह अंग्रेजी बोल लेते है तो हम मारे खुशी के फूले नही समाते । इससे बढकर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है ? इसकी वजह से हमारे बच्चो पर कितना जुल्म होता है ? अंग्रेजी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बरबाद होता है ? इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान इसमें दिलचस्पी ले ।

हमें ईश्वर सुबुद्धि दे

आज हवा ही कुछ ऐसी बह गयी है कि हमारे लिए उसके असर से बच निकलना मुश्किल हो गया है । लेकिन अब वह जमाना भी नही रहा, जब विद्यार्थी को जो कुछ मिलता था, उसी में वे सतुष्ट रह लिया करते थे । अब तो वे बडे-बडे तूफान भी खड़े कर लिया करते हैं । छोटी-छोटी बातो के लिए भूख हडताल तक कर देते है । अगर ईश्वर उन्ह बुद्धि दे तो वे कह सकते है— "हमें अपनी मातृभाषा मे पढाओ ।" और, अगर वे मेरी अक्ल से काम लें, तब तो उन्हें कहना चाहिए कि हम हिंदुस्तानी है, चुनाचे हमें ऐसी जबान में पढाइये जो सारे हिंदुस्तान में समझी जा सके। और, वैसी जबान तो हिंदुस्तानी ही हो सकती है ।

कहा जापान, कहाँ हम ?

जापान आज अमेरिका और इग्लैंड से लोहा ले रहा है। लोग इसके लिए उसकी तारीफ करते हैं । मैं नही करता । फिर भी जापान की कुछ बातें सचमुच हमारे लिए अनुकरणीय है । जापान के लडको और लडकियो ने यूरोप

१ 'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी' पृष्ठ ११२, ११३, ११४ ।

वाले मे जो कुछ पाया है वो अपनी मातृभाषा जापानी के जरिये ही पाया है अंग्रेजी के जरिये नहीं। जापानी लिपि बहुत कठिन है फिर भी जापानियों ने रोमन लिपि को कभी नहीं अपनाया। उनकी सारी तालीम जापानी लिपि और जापानी जबान के जरिये ही होती है। जो चुने हुए जापानी पश्चिमी देशों में खास किस्म की तालीम के लिए भेजे जाते हैं वे भी जब आवश्यक ज्ञान पाकर लौटते हैं तो अपना सारा ज्ञान अपने देशवासियों को जापानी भाषा के जरिये ही देते हैं। अगर वे ऐसा न करते और देश में आकर दूसरे देशों-जैसे स्कूल और कालेज अपने यहाँ भी बना लेते और अपनी भाषा को तिलांजलि देकर अंग्रेजी में सब कुछ पढ़ाने लगते तो उससे बढ़कर बेवकूफी और क्या होती? इस तरीके से जापानवाले नया भाषा तो सीखते लेकिन नया ज्ञान न सीख पाते। हिंदुस्तान में आज हमारी महत्वाकांक्षा ही यह रहती है कि हमें किसी तरह कोई सरकारी नौकरी मिल जाय या हम वकील बैरिस्टर, जज वगैरह बन जाय।[1]

लोग समझते हैं कि मैं अंग्रेजी भाषा का और अंग्रेजों का प्रेमी हूँ। लेकिन मेरा यह प्रेम चतुराई और समझदारी से खाली नहीं। इसलिए मैं दोनों को उनके अनुरूप ही महत्व देता हूँ। मसलन् मैं अंग्रेजी को मातृभाषा का या हमारी अपनी राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी का निरादर कभी नहीं करने देता और न अंग्रेजों की मुहब्बत के कारण मैं अपने उन देशवासियों का निरादर होने देता हूँ जिनके हितों को मैं किसी भी हालत में हानि नहीं पहुंचने दे सकता। हाँ अंतर्राष्ट्रीय कामकाज के लिए मैं अंग्रेजी के महत्व को मानता हूँ। जिन चुने हुए हिंदुस्तानियों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने देश के हितों का प्रतिनिधित्व करना है उनके लिए दूसरी भाषा के तौर पर मैं अंग्रेजी को अनिवार्य समझता हूँ। मेरी राय में अंग्रेजी एक खुली खिड़की है जिसकी राह हम पश्चिमवालों के विचारों और वैज्ञानिक कार्यों से परिचित रह सकते हैं। यह काम भी मैं कुछ चुनिन्दा लोगों को ही सौंपना चाहता हूँ और उनके जरिये यूरोप के ज्ञान का प्रचार देश में देशी भाषाओं द्वारा कराना चाहता हूँ। मैं अपने देश के बच्चों के लिए यह जरूरी नहीं समझता कि वे अपनी बुद्धि के विकास के लिए एक विदेशी भाषा का बोझ अपने सिर ढोयें और अपनी उगती हुई शक्तियों का ह्रास होने दें।[2] ●

---

१ वही पृष्ठ–११५ ११६।
२ वही पृष्ट १२२।

शिक्षा का माध्यम

महात्मा गाधी

हमे जो कुछ उच्च शिक्षा मिली है अथवा जो भी शिक्षा मिली है, वह केवल अंग्रेजी के ही द्वारा न मिली होती, तो ऐसी स्वयसिद्ध बात को दलीलें देकर सिद्ध करने की कोई जरूरत न होती कि किसी भी देश के बच्चो को अपनी राष्ट्रीयता टिकाये रखने के लिए नीची या ऊँची सारी शिक्षा उनकी मातृभाषा के जरिये ही मिलनी चाहिए। यह स्वयसिद्ध बात है कि जब तक किसी देश के नौजवान ऐसी भाषा मे शिक्षा पाकर उसे पचा न लें जिसे प्रजा समझ सके, तब तक वे अपने देश की जनता के साथ न तो जीता-जागता सम्बन्ध पैदा कर सकते है और न उसे कायम रख सकते हैं।[1]

मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्र के जो बालक अपनी मातृभाषा के बजाय दूसरी भाषा में शिक्षा प्राप्त करते है, वे आत्महत्या ही करते है। यह उन्हे अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वचित करती है। विदेशी माध्यम से बालको पर अनावश्यक जोर पड़ता है। वह उनकी सारी मौलिकता का नाश कर देता है। विदेशी माध्यम से उनका विकास रुक जाता है और वे अपने घर और परिवार से अलग पड़ जाते हैं। इसलिए मै इस चीज को पहले दरजे का राष्ट्रीय सकट मानता हूँ।[2]

विदेशी माध्यम ने हमारे बालको को अपने ही घर मे पूरा विदेशी बना दिया है। यह वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का सबसे करुण पहलू है। विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओ की प्रगति और विकास को रोक दिया है। अगर मेरे हाथो मे तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिये अपने लड़को और लड़कियो की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षको और प्रोफेसरो से यह माध्यम तुरन्त बदलवा दूँ या उन्हे बरखास्त करा दूँ। मै पाठ्य-पुस्तको की तैयारी का इन्तजार नही करूँगा। वे तो माध्यम के परिवर्तन के पीछे-पीछे चली आयेंगी। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुरत इलाज होना चाहिए।[3]

'शिक्षा का माध्यम' पुस्तक से—१. पृष्ठ-१६, २. पृष्ठ-१६, ३ पृष्ठ-११,

मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों, मैं उसमें उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवन प्रदान करनेवाला दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजी को उसकी अपनी जगह पर प्यार करता हूँ। लेकिन अगर वह उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गयी है। इसलिए मैं उसे दूसरी भाषा के नाते जगह दूँगा, लेकिन युनिवर्सिटी के पाठ्यक्रम में, स्कूलों में नहीं। वह कुछ चुने हुए लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों-करोड़ों की नहीं। रूस ने बिना अंग्रेजी के विज्ञान में इतनी उन्नति कर ली है। आज हम अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही यह मानने लग गये हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मैं काम शुरू करने से पहले ही हार मान लेने की इस निराशापूर्ण वृत्ति को कभी स्वीकार नहीं कर सकता।[1]

शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत में बदला जाना चाहिए, और प्रान्तीय भाषाओं को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिए। यह जो काबिले-सजा बर्बादी रोज-ब-रोज हो रही है इसके बजाय तो अस्थायी रूप से अव्यवस्था हो जाना भी मैं पसन्द करूँगा।

प्रान्तीय भाषाओं का दरजा और व्यावहारिक मूल्य बढ़ाने के लिए मैं चाहूँगा कि अदालतों की कारवाई अपने-अपने प्रान्त की ही भाषा में हो। प्रान्तीय धारासभाओं की कारवाई भी प्रान्तीय भाषा या जहाँ एक से अधिक भाषाएँ प्रचलित हों वहाँ उनमें होनी चाहिए। धारा-सभाओं के सदस्यों से मैं कहना चाहता हूँ कि वे चाहें तो एक महीने के अन्दर-अन्दर अपने प्रान्तों की भाषाएँ भलीभाँति समझ सकते हैं। तमिल भाषी के लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं कि वह तेलगु, मलयालम और कन्नड के, जो कि सब तमिल से मिलती जुलती ही हैं, मामूली व्याकरण और कुछ सौ शब्दों को आसानी से न सीख सके।[2]

●

१ वही, पृष्ठ-१५, २ वही, पृष्ठ १०।

भाषा-सम्बन्धी कुछ और रायें

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर .

बहुत वर्षों से तो अंग्रेजी ही हमारी राष्ट्रभाषा बनी हुई है, जो साधारण जनता की समझ से बिलकुल बाहर है। यदि हम प्रत्येक भारतीय के नैसर्गिक अधिकारो के सिद्धान्त को स्वीकार करते है तो हमें उस भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भाग म बोली जाती है और जिसके स्वीकार करने की सिफारिश महात्मा गाधी ने हम लोगों से की है अर्थात् हिन्दी।

केशवचन्द्र सेन

समस्त भारतवर्ष में जितनी भाषाएं प्रचलित है उनम हिन्दी भाषा प्राय सर्वत्र ही प्रचलित है। इस हिन्दी भाषा को यदि भारत की एकमात्र भाषा बना दिया जाय तो अनायास ही एकता का काय शीघ्र ही सम्पन्न हो जाय। भाषा एक न होने से एकता कभी नही हो सकती।

बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी

अंग्रेजी भाषा के द्वारा जो भी हो, किन्तु हिन्दी का शिक्षा न देने से किसी भाँति काम नही चल सकता। हिन्दी भाषा की सहायता से भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशो के बीच जो ऐक्य सम्बन्ध स्थापित कर सकेंगे, वे ही वस्तुत भारतबन्धु कहलाने योग्य हो सकेंगे।

श्रीनिवास शास्त्री

यद्यपि मैं गणतन्त्र का सहायक और समथक हूँ तथापि प्राय सोचा करता हूँ कि किसी तरह स यदि मेरे पास शक्ति होती तो कुछ क्षणो के लिए मैं सारे भारत का डिक्टेटर बन जाता। यदि सौभाग्यवश उक्त पद को प्राप्त कर पाता तो कितनी आदश योजनाएँ कार्यान्वित करता। इस सेवा में भी सबसे प्रथम और महत्वपूर्ण मेरा आदेश सारे भारतवर्ष के लिए यह होता, मैं अपनी समस्त शक्ति एव अधिकार के साथ यह आदेश देता कि सभी विद्यालयो म, सरकारी दफ्तरों में हिन्दुस्तानी को ही कार्यवाही का माध्यम माना जाय।

—'नागरी पत्रिका से साभार

राजभाषा का सवाल

काका कालेलकर

भाषा का सवाल दिन पर दिन अधिकाधिक जटिल होता जाता है, क्योंकि लोग इसके सच्चे क्षेत्रों को नहीं पहचानते। भाषा का सवाल असल में शिक्षा विभाग का नहीं है, वह है राज्य-व्यवस्था का और सार्वजनिक जीवन का। वहीं पर उसका हल ढूंढना चाहिए।

अगर राज्यों में सारा राजकाज प्रजाकीय भाषा में यानी प्रान्तीय भाषा में चलाने का निर्णय किया जाय तो उसके लिए प्रजा को तो तैयारी करने की आवश्यकता होती ही नहीं। जो भाषा घर में, बाजार में और समाज में बोली जाती है और जिस भाषा में हमारे मिनिस्टर चुनाव के दिनों में मतदाताओं से विनय करते हैं उसी भाषा में अगर उस प्रदेश का राज्य चले तो वह आदर्श स्थिति होगी। जहाँ राज्य आज अंग्रेजी में चलता है वहाँ प्रादेशिक भाषा चलाने के लिए एक दिन की भी तैयारी करनी नहीं पड़ेगी, यदि राज्य जनता के लिए चलना हो तो।

आज के छोटे-बड़े राज्यकर्ता कहते हैं कि हम अंग्रेजी के आदी हैं, इसलिए दीर्घकाल तक राजकाज अंग्रेजी में ही चलेगा। इसके मानी यह हुए कि राज्य जनता के लिए नहीं, किन्तु छोटे-बड़े राज्यकर्ताओं की सहूलियत के लिए है। इस दुर्दैवी बात को स्वीकार करके हम राजभाषा के परिवर्तन के लिए दस साल की मोहलत देने के लिए तैयार हैं। लेकिन राज्यकर्ता हैं गिरजार। उन्हें एक साल तो क्या, दस साल भी कम नहीं हैं। मतदाताओं को खुश करने के लिए थोड़ा-थोड़ा राजकाज प्रादेशिक भाषा में चलना है सही लेकिन वह मतदाताओं को खुश करके भुलाने मात्र के लिए है।

अब रहा केन्द्रीय राजभाषा का सवाल। यहाँ राज्यकर्तागण (जिसे लोकमान्य तिलक नौकरशाही कहते थे) बड़े मजबूत हैं। वे मन में कहते हैं, "अंग्रेज गये, अंग्रेजों का राज्य गया। राज्य-सत्ता भले ही देश के नेताओं के हाथ में आयी हो, हमारे बिना वे राज्य चला नहीं सकते। हम को बाजू पर रखने का न उनकी शक्ति है न इच्छा। इसलिए राज्य तो नौकरशाही के हाथ में ही रहेगा। इसलिए हम दलीलें कुछ भी करें फार्मूला कैसा भी बना लें केन्द्रीय राज्य चलेगा अंग्रेजी के जरिये ही। अंग्रेजों का राज्य गया किन्तु अंग्रेजी का राज्य कायम है, पहले से ज्यादा मजबूत हुआ है। देश के नेताओं को इस परिस्थिति का पूरा ज्ञान है। राज्य अंग्रेजी में चले इसमें वे मन से राजी हैं। उनकी हिम्मत नहीं कि वैसा कहें। उनकी यह भी हिम्मत नहीं कि आज की स्थिति में वे कुछ परिवर्तन करें।

और जब तक राज्य अंग्रेजी में चलनेवाला है, बच्चों के माँ-बाप चाहेंगे ही कि उनको अन्य भाषा अब सिखायें या नहीं सिखायें, अंग्रेजी सिखानी ही है। अंग्रेजी सिखायें, टूटी-फूटी सिखायें, लेकिन अंग्रेजी के बिना हमारा चलेगा नहीं।

ऐसी हालत में लोग लाचार होकर अंग्रेजी का पक्ष करते रहेंगे और हिन्दी को उसके नसीब पर छोड़ दिया जायगा।

राज्य चलाने की भाषा जब अंग्रेजी है तब उसकी इस प्रतिष्ठा के कारण हमारे सार्वजनिक जीवन की भाषा भी अंग्रेजी ही होगी।

गांधीजी ने चाहा था कि अखिल भारतीय राजभाषा के स्थान पर कोई परदेशी भाषा न रहे। राष्ट्र का हित, राष्ट्र की सहूलियत और राष्ट्र का सम्मान इसीमें है कि अखिल भारतीय भाषा कोई ऐसी स्वदेशी भाषा हो जो करोड़ों जनता के लिए आसान हो, नजदीक की हो।

आज के राज्यकर्ताओं को अन्दर से यह मंजूर नहीं है। दबी आवाज से वे

कहते है कि "अंग्रेजी का प्रचलन इतना सार्वत्रिक है कि उसे स्वदेशी भाषा ही मानने मे क्या हर्जा है ? (अंग्रेजी भाषा जाननेवाले लोगो की तादाद फीसदी सात या दस से कुछ अधिक क्यों न हो ?) राज्यकर्ता, अध्यापक और अधिकाश अखबार चलानेवाले अंग्रेजी को जानते है। और अंग्रेजी भाषा आ-सेतु हिमाचल फैली है। उसीको स्वदेशी भाषा मान लीजिये। वे कहते है कि शादी की आमत्रण-पत्रिका भी लोग अंग्रेजी मे छापने मे अपनी शान समझते है। तब आप कैसे कह सकते है कि अंग्रेजी भाषा स्वदेशी नही है ? अंग्रेजी जाननेवाले लोगो की सख्या भले ही कम हो, अंग्रेजी सिखाने का प्रबन्ध सर्वत्र है। इतनी बडी व्यवस्था आपको अन्यत्र नही मिलेगी।"

दुःख की बात है कि इस तरह अंग्रेजी का पक्ष करनेवाले लोगो में हिन्दी-भाषी कम नही है। अगर हिन्दी राजभाषा हुई तो उन्हे एतराज नहीं है। किन्तु वे चाहते है अंग्रेजी का ही राज्य। अंग्रेजी का राज्य तोडने मे और हिन्दी का पक्ष मजबूत करने मे ऐसे लोगों ने आज तक कुछ भी नही किया है।

अंग्रेजी का पक्ष करनेवाले लोगो मे बडा जोर है अंग्रेजी अखबारो का। नौकरशाही जिस तरह इस देश मे दृढमूल है, वैसे ही अंग्रेजी अखबारवाले भारत के सार्वजनिक जीवन के जबरदस्त ठेकेदार बन गये है। आज भारत की राज्य-व्यवस्था और सार्वजनिक जीवन की चर्चा अंग्रेजी मे चलती है—इन्ही दो वर्गों की सहूलियत के लिए। अंग्रेजी जाननेवाले लोगो की एक जबरदस्त जमात है। उसीके हाथ मे राज्य सत्ता है। जनता के हाथ मे मतदान का अधिकार भले ही हो, राज्य तो अंग्रेजी जाननेवाली जमात के हाथ में ही है और उसका प्रयत्न है कि यही स्थिति दीर्घकाल तक चले। दीर्घकाल याने कम-से-कम पाँच-दस पुश्त।

यह है देश की परिस्थिति। इस हालत मे शिक्षा-तत्र मे कौनसी भाषा को हम स्थान दें और कौनसी भाषा को न दें, यह गौण बात है। सारी चर्चा शिक्षा के क्षेत्र मे ले जाकर राज्यकर्ता की जमात अपने क्षेत्र को सुरक्षित रख रही है। राज्यकर्ता की जमात जब देश की एकता की बात करती है, तब वह अपनी जमात की सत्ता और सगठितता की ही सोचती रहती है। वह जमात कहती है कि राज्यकर्ता हम है। जनता तो केवल प्रजा है। उसे हमने दो हक दिये हैं—(१) चुनाव के दिनो में अपने प्रतिनिधियो को पसन्द करना और (२) अपने बच्चों को अंग्रेजी पढाकर उन्हे राज्यकर्ताओ की जमात मे भर्ती करना।

जब तक यह स्थिति कायम है, शिक्षा के क्षेत्र मे चाहे जो फॉर्मूला मान्य

करें, अंग्रेजी को अनिवार्य बनावें या ऐच्छिक, परिस्थिति में कोई फर्क होनेवाला नहीं। जनता ही कहेगी—"जब तक राज्य अंग्रेजी में चलता है और कोर्टों का भी काम अंग्रेजी में चलता है तब तक हमारा जबरदस्त आग्रह अंग्रेजी के पक्ष में ही रहेगा। हम नहीं चाहते कि हमारे बाल-बच्चे नौकरी के बिना भूखों मरें और सार्वजनिक जीवन में बुद्बुद जैसे दीख पड़ें।"

ऐसी हालत में जो लोग प्रजाहित चाहते हैं, स्वदेशी संस्कृति को अपमानित और कमजोर हालत में रखना नहीं चाहते, उनको संगठित होकर बुलन्द आवाज से कहना चाहिए कि हम आपके राजनैतिक पक्षों में से किसीको भी नहीं पहचानते। कांग्रेस हो या जनसंघ, कम्युनिस्ट हो या स्वतन्त्र, हम किसीको भी वोट नहीं देंगे। हम अपना वोट उसी पक्ष या जमात को देंगे जो वचन देगा कि तीन चार वर्ष के अन्दर सब प्रदेशों का राज्य चलेगा प्रान्तीय भाषा में, अर्थात् प्रादेशिक भाषा में और केन्द्रीय सरकार का राज्य अंग्रेजी में नहीं चलेगा, किसी स्वदेशी भाषा में ही चलेगा। जो लोग ऐसा वचन देंगे और हमें विश्वास होगा कि ये लोग दिये हुए वचन का पालन करेंगे, उन्हींको हमारा वोट मिलेगा।

जापान पिछड़ा हुआ देश नहीं है। उसने यूरोप और अमेरिका से पश्चिमी विद्या और विज्ञान पूर्ण रूप से अपनाया है। तो भी जापान का राज्य अंग्रेजी या किसी युरोपियन भाषा में नहीं चलता। वहाँ का राज्य तो शुरू से आज तक जनता की भाषा में ही चलता है। चीन जैसे बड़े देश में भी राज्य युरोपियन भाषा में या किसी परदेशी भाषा में नहीं चल रहा है, हालाँकि वहाँ का राज्य कम्युनिस्टों के हाथ में है। इन दोनों देशों में प्रजा की शक्ति सार्वभौम है। भारत में जनता लाचार है, परदेशी भाषा के पूरे भक्त और दास बने हुए स्वदेशी राज्यकर्ताओं की जमात की मुहताज है, आश्रित है। उसके नेता भी प्रजा भाषा के भक्त और अभिमानी नहीं है। भाषाकीय क्रान्ति करके स्वदेशी संगम-संस्कृति का उद्धार करने का निश्चय जनता को करना होगा, जिसके लिए महात्मा गांधी ने पूरी-पूरी कोशिश की थी और जो उनका काम हमने अपने दुर्दैव से कमजोर किया और अधूरा रहने दिया।

जब तक भारत का राज्य जनता की भाषा में नहीं चलेगा, भारत की जनता प्राणवान नहीं बनेगी और भारत की संस्कृति में चैतन्य नहीं आयेगा।

इस तरह का प्रजा का आन्दोलन अगर हम आज से शुरू करें तो अगले चुनाव तक जनता अपना राज्य अपने हाथ में ले सकेगी।

('मंगल प्रभात' १ जून, '६७ से साभार)

भारत की भाषा : भारती

प्रबोध चोक्सी

भाषा के सवाल को लेकर बड़ा हंगामा हो रहा है। सब अपनी-अपनी तूती बजा रहे है। एक दूसरे की शायद ही कोई सुनता है। 'मेरी बात सच है,' नही मै कहता हूं वही सच है। आशय सबका देश की एकता से है किन्तु आग्रह सबका अपनी अपनी बात पर है। विनोबा ने सिखाया है कि वेद में युद्ध के लिए एक शब्द ही मम सत्य कह दिया है।

तरह-तरह के सवाल भाषा की गुत्थी के भीतर घुसकर उलझ गये है। तरह-तरह के स्वार्थ उसमे घोटाला किये हुए है। अलग-अलग किये बिना बात कुछ समझ म ही नही आती।

एक सवाल है कि इस बहुभाषी देश म सबको जोडनेवाली लिंक (सम्पर्क) भाषा कौन हो? सबसे ज्यादा लोग हिन्दी समझते है तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना जाय ऐसा एक पक्ष है। तो प्रतिपक्ष कहता है कि इससे तो हिन्दीभाषी लोगो को नाजायज फायदा मिल जायगा। नौकरी म हम पिछड जायेंगे। क्या हिन्दी हम पर राज करेगी? यह तो नामवर है।

अंग्रेजी समर्थको का तर्क

दूसरा सवाल है उच्च शिक्षा की बोध भाषा (माध्यम) क्या हो? मातृभाषा आदि से अन्त तक बोध भाषा (माध्यम) रहे इसे शिक्षा विज्ञान ने श्रेष्ठ कहा है। हरेक राज्य में बहुसंख्य जनता की मातृभाषा यानी प्रादेशिक भाषा को उच्च शिक्षा की बोध भाषा (माध्यम) बनाया जाय ऐसा सकल्प विकल्प चल रहा है। इसको लेकर अंग्रेजीवाला ने बवंडर मचाया हुआ है। प्रादेशिक भाषाएँ अंग्रजी के बराबर विकसित और समृद्ध नही है, विज्ञान और आधुनिकता चौपट हो जायगी, इधर के छात्र और अध्यापक उधर नही जा पायेंगे, देश की एकता टूट जायगी, दुनिया से देश बिछुड जायगा हम पिछड जायेंगे, इत्यादि दलीलें जोर-शोर स की जा रही है। छागला साहब का इस्तीफा इसी आवेश की नाक बन गया है।

और भी उलझनें खड़ी हो गयी हैं न्यायालय का क्या होगा? न्यायशास्त्र

सारा-का-सारा अंग्रेजी नमूने पर [खड़ा किया है," सन्दर्भ सारे अंग्रेजी में हैं, परिभाषा और पूर्वापर सम्बन्ध सारे अंग्रेजी में है। बिना अंग्रेजी वकालत कैसे चलेगी ? न्यायाधीशों की सेवाएँ स्थानान्तरक्षम है, सर्वोच्च न्यायालय मे विभिन्न प्रदेशों के न्यायमूर्ति विराजमान है। बिना अंग्रेजी के यह सारा मूल्यवान ढाँचा ढह जायगा। यह नहीं चल सकता।

हिन्दी के हामियो को, देश प्रेमियो को यह बुरी तरह अखरता है। अंग्रेज गये, यह अंग्रेजियत क्यो नही जाती ? अंग्रेजी को भगाये बिना देश की आजादी अधूरी है। जो होना हो सो हो, अंग्रेजी को तो हटायेंगे। लोहिया साहब इस आवेश की मूर्ति है।

बुनियादी सवाल

माध्यम की भाषा और सम्पर्क भाषा (लिंक लैंग्वेज) भिन्न भिन्न सवाल होते हुए भी उच्च शिक्षा के स्तर पर दोनो मिल जाते है। उच्च शिक्षित लोग देश में इधर-उधर जाते-बसते है, आपस में चर्चा करते है, सीखते है, सिखाते हैं, बाहर की दुनिया से उन्हे सम्पर्क रखना है, विज्ञान और तकनिक इस देश मे लाने है। उनका सुझाव स्वभावत अंग्रेजी को बनाये रखने के लिए है। देश के वह 'क्रीम' है, देश का भविष्य उनके अध्ययन और ज्ञान पर निर्भर करता है। स्वराज्य यहाँ की धरती से उगा नहा है, अंग्रेज इन पढे लिखो को सौंपकर गये है। अत अंग्रेजीयत बढी है। बिना अंग्रेजी के चीन, जापान और रूस ने विज्ञान म इंग्लैंड को अब मात दे दी है। लेकिन भारत में हमारा आत्म विश्वास नही बनता। विदेशी भाषा और विदेशी विचार के आधार पर समाज की सतह पर आये हुए 'इलीत' (भद्रजनो) के लिए आत्म विश्वास भी विदेशी ही हो जाय, यह तो स्वाभाविक ही माना जायगा। परन्तु बुनियादी सवाल चन्द भद्रजनो के आपसी सपर्क का नहीं है, कोट्यावधि भारतीय जनता के सामूहिक व्यवहार और आपसी सम्पर्क का सवाल है। उन्हें अज्ञान में रखकर उनकी पीठ पर सवार बने रहना है तो अंग्रेजी अच्छा औजार है। अंग्रेजी ही चलती रही तो शासन, न्याय, शिक्षा, समान अवसर आदि से देश का अवाम अछूता ही रहेगा। इस देश के वर्ग विग्रह को विभाषा व्यापक बना देगी, क्योंकि उच्च शिक्षा और ऊँचे अवसर चन्द लोगो का एकाधिकार बनायेंगे। इस दृष्टि से गाधी के बाद अब कोई सोचता ही नहीं है। क्योंकि स्वराज्य गरीब के लिए है, यह मुख्य बात है। भद्रजन अपनी स्वार्थी होड मे भूल गये हैं। किन्तु क्या इतिहास उसे भूल सकता है ?

भाषा और जीवन का अटूट नाता

हिन्दी में और भारतीय भाषाओं में शब्द-समृद्धि संख्या अंग्रेजी से ज्यादा होगी। अध्यात्म, कला, संस्कृति के शब्दों और उनके पर्यायों की अपने यहाँ भरमार है, लेकिन नये विज्ञानों में पारिभाषिक शब्दों के लाले पड़ जाते हैं। जो शास्त्र जहाँ पैदा होता है, वहाँ उसकी भाषा भी साथ-साथ पैदा होती है। चमड़ी की तरह भाषा जीवनदेह से आजन्म जुड़ी हुई है। देह बढ़ती है तो चमड़ी भी बढ़ती है। पहले चमड़ी की पूरी खाल तैयार हो जाय तब जाकर अन्दर देह सजीवन हो ऐसा न कहीं हुआ है न हो सकता है। विज्ञान पश्चिम में जन्मा तो उसकी भाषा भी वहाँ पैदा हुई, वेदान्त की भाषा पश्चिम को यहाँ से लेनी पड़ती है। अतः पहले पारिभाषिक कोश बने, तब भारत में विज्ञान बढ़े—यह बात तो बैल के आगे गाड़ी जैसी है। इधर की भाषाओं को आवश्यकता नहीं पड़ेगी तब तक शब्दों का आविष्कार भी नहीं होगा। जब जीवन व्यवहार भाषा खोजने लगेगा तब दूसरी भाषाओं के शब्दों का संस्कार करके उन्हें भी गोद ले लिया जायगा। प्रादेशिक भाषाओं में अध्ययन-अध्यापन शुरू कर देने पर उन भाषाओं का अपने आप विकास होगा। पानी में उतरने से पहले किसने, कब तैरना सीखा है, और बिना अखाड़े में उतरे मल्ल कौन बना है?

जीवित भाषा की विशेषता

लेकिन देश-व्यापी समान परिभाषा का क्या? विज्ञान के विषयों में सारी दुनिया में एक सी परिभाषा चलती है। उसमें हमें मूल नाम और मूल धातु सीधे ही अपना लेने चाहिए, फिर उसमें भारतीय रंग-ढंग के प्रत्यय, पूर्ववर्ग आदि बेखटके लगाकर अपना काम चलाना चाहिए। डा० कोठारी ने एक बार ऐसा सुझाव भी दिया है। सारी दुनिया में प्रचलित शब्दों का अनुवाद न किया जाय, उन्हें अपनी भाषा में सीधे ही हजम करने की ताकत दिखायी जाय। जिन्दा भाषा वह है, जिसका हाजमा तेज है।

सम्पर्क भाषा (लिंक लैंग्वेज) न हिन्दी तय की जाय न अंग्रेजी, तो कैसा रहेगा? क्या लोग बातचीत ही नहीं करेंगे? देश जीना बन्द कर देगा? भाषा जिन्दगी के लिए है, लेकिन इधर तो जिन्दगियाँ भाषाई लड़ाई में बलि कर दी जा रही हैं। भारत जीने के लिए जिस एक भाषा में बोलेगा उसे हम 'भारती' कहें। मेरा ख्याल है, उसका सर्वसाधारण ढाँचा शुद्ध-शुद्ध हिन्दी का-सा होगा, लेकिन उसमें बंगला, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, गुजराती, पंजाबी का अच्छा खासा असर होगा। लिंग-वचन के बारे में हिन्दी या संस्कृत के नियम

उस पर लागू नहीं होंगे, मुहावरे भी उसमें सब भाषाओं से आयेंगे। कोई यदि भारती में लिखेगा कि 'आन नीर खायेगा (हम पानी पीयेंगे) तो उसे अशुद्ध नहीं कहा जायगा। वैसे ही ह्रस्व-दीर्घ का लोप होकर एक ही चिह्न से दोनों का बोध होगा।

भारती का आदि-सेवक भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के समान शब्दों का अर्थ-छायायुक्त कोश एकत्र करेगा। यह बेसिक भारती होगी, जिसका ज्ञान होते ही वह अपने आप चल पड़ेगी। फिर इसमें खास भाषा के खास शब्द प्रचलन-द्वारा प्रतिष्ठित होंगे, जैसे कि इस वक्त 'इडली' और 'डोसा' हो गये है। फिर भारती का कोशकार एक पर्याय कोश सकलित करेगा, जिसमें सभी प्रमुख भाषाओं के बेसिक शब्द एक साथ दे दिये जायेंगे।

यदि झगड़ों से बाज आकर 'स्टेटस' को रहने दिया जायगा तो भारती स्वयमेव पनपेगी, ऐसा मेरा खयाल है। हिन्दी का नाहक राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेशवाले अपनी मातृभाषा कहे हुए हैं। यदि मेवाडी-मारवाडी-ब्रज-अवधी भोजपुरी मैथिली, जो बड़ी ताकतवर बोलियाँ है, उनके लिखित रूपों का विकास किया गया होता तो इन प्रदेशों के शिक्षितों एवं अशिक्षितों के बीच इतनी खाई न रहती, जो मातृभाषा के आग्रह का मूल कारण है। और तब अन्य भाषियों को यह न लगता कि हिन्दी हम पर हावी होना चाहती है।

भारती का स्वरूप

राजभाषाएँ अब तक दंड शक्ति से थोपी गयी है। मौर्यकाल में प्राकृत चली, गुप्त साम्राज्यों में दरबारी संस्कृत चल पड़ी, फिर वह पंडितों की भाषा बनी और लोग-बाग विविध प्राकृत बोलियाँ बोलने लगे। फिर मुसलमानी राज में फारसी चली, अंग्रेजी राज में अंग्रेजी चली। अब हिन्दीवालों का राज तो आया नहीं कि हिन्दी थोपी जा सके। सारे भारत की जनता का राज है, तो कुछ मिली-जुली 'भारती' ही तो पनप सकती है, जो अंग्रेजी से भी भरपूर शब्द आत्मसात् करेगी। वृद्धि और शुद्धि ये भाषा विकास की दो विरोधाभासी अवस्थाएँ हैं। संस्कृत ने भी ग्रीक, हूण, शक आदि कितनी ही जातियों के शब्द पचा लिये थे और तब व्याकरण और अमरकोष रचे थे। भारती भी पहले तो फारसी, अरबी, अंग्रेजी, रशियन, जर्मन, चीनी-जापानी आदि जीवन-समृद्ध भाषाओं से हर तरह के उपयोगी शब्दों का हरण कर लेगी, उनसे विवाह करके नये उत्तम 'हायब्रीड' शब्द-बाजों का संवर्धन करेगी, स्वयं कल्पनातीत वृद्धि

करेगी और तब वैयाकरणी और कोशकार लोग उसमें कटनी छटनी करके शुद्ध एव एकता की व्यवस्था लायेंगे। कोई १०० साल वृद्धि को देने होंगे। तब शुद्ध 'भारती' प्रगट होगी। अव्यवस्था के बिना कब कोई जन्म होता है? वैसे आज तो हिन्दी का लोकतंत्र से ही विरोध आ गया है।

निर्णय लेने का लोकतान्त्रिक तरीका

लोकतंत्र म दड-सत्ता से निर्णय नही थोपा जा सकता, लेकिन यदि धैर्य नही है तो निर्णय थोपने का एक और सही तरीका है। लोकमत (रेफरेण्डम) ले लिया जाय। दो तिहाई लोग हिन्दी या अंग्रेजी को मान लेते है तो उसे लाजिमी कर दिया जाय। हर पाँच साल के बाद लोकमत लिया जाय। जब तक निर्णय न हो सके, जैसे थे, चलता रहे। कूपजलवाली हिन्दी या तो इस प्रकार मनवायी जा सकती है, अथवा कोई हिन्दी प्रेमी तानाशाह तख्ता पलटकर गद्दी पर बैठ जाय, उसकी राह देखी जा सकती है। लेकिन सेना भी तो भाषाओं में विभाजित है अतः तानाशाही भी क्या करेगी?

हमारा सही मुकाम सुनिश्चित है

कबीर ने कहा था भाषा बहता नीर है। लेकिन कबीर शुद्धिवादी नही था, जीवन उपासक था, समन्वय उसकी सहज सूझ थी। गाधी ने 'हिंदुस्तानी' कहा तब भी बात वही थी कबीरवाली। लेकिन युयुत्सुओं ने माना कि गाधी सिद्धान्तवादी है उसका रास्ते से रोडे की तरह हटा दिया। पर यह देन जो था सो रहा ही। विविधता जायगी कहाँ? अब फिर से बखेडा खडा है कूपजल या बहता नीर? मेरा अन्दाज है कि भाषा का नीर तो बहेगा ही, क्योंकि जीवन के माने ही है पानी का प्रवाह। देश के 'इलीट (भद्रजन) को तकलीफ तो होगी। सबसे आगे रहने की लत जिनको पडी है उनको एकदम 'एबाउट टर्न' कर देना पड यह कोई मामूली बात थोडे ही है? इस देश में मामूली लोगो का राज होना है तो ऐसा हुए बिना कोई चारा नही है। फिर चाहे वह धमाके से हो या धीरे धीरे। मेरा खयाल है हम थोडी-बहुत हाथापायी करते हुए, गडबड घाधली और होहल्ला करते हुए मुकाम पर पहुँच ही जायेंगे और कैसे पहुँचे यह कभी समझ नही पायेंगे। भीड मला द्वार-गुरु जोश-खरोश और 'वर्गलिंग' अपना जाती मिजाज जो है। अनेकता में एकता, अव्यवस्था में व्यवस्था, विकेन्द्रितता में रक्षा—भारत का यह विचित्र, विपुल निधि-वैभव भारती भी धारण करेगी। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'। ●

शिक्षा का माध्यम और विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों का निर्णय

"अंग्रेजी चलती रहेगी"। अन्तिम दिन की प्रात कालीन बैठक मे यह तय हुआ था कि स्नातकोत्तर स्तर पर अग्रेजी ५ वर्ष तक माध्यम रहे, परन्तु सायकालीन बैठक में अवधि की बात भी निकाल दी गयी और केवल इतना कह दिया गया कि इस स्तर पर माध्यम के सामान्य अर्थ का कोई मतलब नही होता और इस प्रकार माध्यम और अवधि का प्रश्न गोल-मोल और अस्पष्ट ही रखा गया। परन्तु ध्वनि यही है कि 'अग्रेजी चलती रहे।'

वाइस चान्सलरो का यह सुझाव प्रतिगामी कदम है, क्योकि इसमे क्षेत्रीय भाषाओ के विकास में बाधा पडेगी और यह काम लोकतन्त्र के हित मे न होगा। जाहिर है कि स्नातकोत्तर स्तर पर जो माध्यम रहेगा उसोका महत्व होगा और स्नातकपूर्व स्तर के मेधावी छात्र तो निश्चय ही क्षेत्रीय भाषाओ की उपेक्षा करेंगे। विश्वविद्यालय के सभी स्तरो पर एक ही अग्रेजी या क्षेत्रीय भाषा को माध्यम रखने की बात तो समझ मे आती है, पर यह 'आधा तीतर और आधा बटेर' की बात तो समस्या से दूर भागने की मनोवृत्ति की सूचक है। इस निर्णय ने समस्या को और भी उलझा दिया है। शिक्षा आयोग ने खूब सोच-विचार करके, देशभर के विद्वानो और शिक्षा शास्त्रियो से चर्चा करके पूरे विश्वविद्यालय-स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओ को माध्यम रखने की सस्तुति की थी। और हम मानते है कि भारत भर के शिक्षा शास्त्रियो से बातचीत करके शिक्षा आयोग के जिन विद्वानो ने आयोग की रिपोर्ट लिखी है, वे अधिक सही अर्थ मे शिक्षा-शास्त्री (एकेडेमिशियन) है, बनिस्बत इन कुलपतियो के, जिनमे कल तक एक से अधिक न्यायमूर्ति और राजदूत थे।

(२) और फिर स्नातकोत्तर और अनुसधान स्तर पर 'माध्यम' के सामान्य अर्थ के समाप्त हो जाने का कुछ भी मतलब नही है। माध्यम का अर्थ होता है सीखने का माध्यम, कक्षा मे काम करने का माध्यम, परीक्षा देने का मध्यम। स्नातकोत्तर कक्षाओ के और अनुसधान की कक्षाओ के छात्र सन्दर्भ के लिए चाहे जिस भाषा के ग्रथो का अध्ययन और मनन करें, परन्तु परीक्षा देने के लिए अथवा अपनी थीसिस लिखने के लिए तो वे किसी एक भाषा का प्रयोग करेंगे ही। जिस भाषा का प्रयोग वे करेंगे, वही उनका माध्यम होगा। सन्दर्भ ग्रन्थो के अध्ययन-मात्र से कुछ नहीं होता।

ऐसी साफ-सीधी बात के विषय मे विद्वानो की इस सभा के इस प्रकार कतराकर निकल जाने का एक ही अर्थ होता है—'किसी भी कीमत पर अग्रेजी को बनाये रखना।' अग्रेजी बनी रहेगी तो उनके विशेषाधिकार अक्षुण्ण रहेंगे और 'अग्रेजी' में पले हुए उनके बच्चे भी उन सुविधाओ से लाभ उठा

मर्केंगे, जिनसे उन्होंने अपने जीवन में स्वराज्य के पहले तो कम, परन्तु स्वराज्य के बाद पहले से भी अधिक लाभ उठाये है। 'शिक्षा का स्तर' और 'देश के टूट जाने' की बात तो बहाना मात्र है। वास्तव में यह निर्णय अशैक्षिक और अमनोवैज्ञानिक है और देश तो क्या, राज्य का जीवन भी इससे टूटेगा ही, जुड़ेगा नहीं।

(३) इसी प्रकार माध्यम-परिवर्तन के लिए अवधि-सम्बन्धी जो निर्णय लिया गया है, वह भी शिक्षा-आयोग की संस्तुतियों के विरुद्ध है। शिक्षा-आयोग ने बहुत समझ-बूझकर यह सुझाया था कि 'माध्यम-परिवर्तन का यह काम जितनी जल्दी संभव हो, हो जाना चाहिए और किसी भी हालत में लगभग १० वर्ष के भीतर हो जाय, क्योंकि समय बीतने के साथ समस्याएँ और भी उलझती जायेंगी।' (१–२४–२)। उच्च शिक्षा से संबंधित अध्याय में आयोग ने परिवर्तन के ढंग और अवधि को विश्वविद्यालय प्रणाली पर छोड़ने की जो बात कही है (११–४८), वह भी इस १० वर्ष की अवधि के भीतर ही की बात है। ऐसा नहीं होता तो फिर संस्तुतियों का संक्षेप बनाते समय पैरा १३४ में आयोग यह स्पष्ट न कहता कि क्षेत्रीय भाषाएँ विश्वविद्यालय स्तर पर (क्रमिक कार्यक्रम अपनाकर) १० वर्ष में शिक्षा का माध्यम बना ली जायें। आयोग की सीमा रेखा १० वर्ष के भीतर है। इसके भीतर जितना शीघ्र काम हो जाय (सुचारु रूप से और बिना स्तर को गिराये) उतना ही अच्छा है। इसीलिए शिक्षा मंत्रियों और पार्लियामेण्टरी समिति ने ५ वर्ष की बात की थी और पहले केन्द्रीय शिक्षा मंत्री भी ५ वर्ष की बात करते थे। इनका मत आयोग-सम्मत है, अर्थात् शैक्षिक दृष्टिकोण के अधिक समीप है। अतः दस या दस वर्ष से कम अवधि की बात को सरकार अथवा पार्लियामेण्टरी कमेटी या शिक्षा-मंत्रियों का 'क्लैवेण्ट निर्णय' कहकर श्री छागला ने अपने त्याग-पत्र में जो भ्रम फैलाया है, वह गलत है।

हमारा विचार है कि माध्यम और अवधि के प्रश्नों पर वाइसचान्सलरों को शिक्षा-आयोग की संस्तुतियों के चौखटे के भीतर ही काम करना चाहिए था। चौखटे से बाहर निकलकर उन्होंने एक बार फिर 'विवाद और 'फूट' का रास्ता खोल दिया है। हमें पूरी आशा है कि लोकतंत्र, देश की एकता और शिक्षा के हित में सरकार अथवा पार्लियामेण्ट इनके निर्णयों को नहीं मानेगी। ●

राष्ट्रभाषा का भविष्य

ताहेर कापुसवाला

हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाकर हिन्दी साहित्य को राष्ट्र-साहित्य बनाने की वृत्ति हिंदी साहित्यकारों में जागी और उन्होंने दक्षिण में भी अपने साहित्य की लकीर पीटनी चाही, इसीसे न हिन्दी साहित्य सर्वव्यापक हुआ और न हिन्दी पूर्ण भारत मे राष्ट्रभाषा का सम्मान पा सकी। दक्षिण भारत के लोगो ने हिन्दी तथा हिंदी साहित्य के माध्यम से आर्य-संस्कृति का उनकी संस्कृति पर दबाव हो रहा है, ऐसा महसूस किया। उन्हें लगा कि हिंदी द्वारा उत्तर हिन्द दक्षिण को दबाने का प्रयत्न कर रहा है। परिणाम यह हुआ कि संविधान मे नियम बना देने मात्र से हिंदी सही अर्थ म राष्ट्रभाषा न बन सकी। धीरे धीरे संविधान को ही बदल देने की बात सामने आ गयी।

भाषा, साहित्य और ज्ञान

प्रश्न यह है कि इस सवाल को हम कैसे सुलझा सकते है। भाषा विचारो को प्रकट करने का तथा फैलाने का माध्यम है। भाषा मे दो पक्ष होते है— एक, ज्ञान पक्ष और दूसरा कला पक्ष। विचारशील मानव इन दोनो के द्वारा भाषा को प्रौढ करता है और सक्षम भाषा इन दोनो को प्रबल रूप दे सकती है।

हमारे देश म व्यापक रूप से समझी, बोली जानेवाली एक भाषा है, हिन्दी। इस भाषा को हमने राष्ट्रभाषा का मान दिया। दुर्भाग्य से यह वही भाषा थी, जो कि बिहार, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के लोगो की मातृभाषा और साहित्य की भाषा थी और हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने के बाद हिन्दी साहित्य का राष्ट्रभाषा के साहित्य के नाम पर प्रचार प्रसार शुरू हो गया।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ हिंदी साहित्य को जोड देने की भूल हम कर बैठे, जिससे हिन्दी साहित्य के साथ उसके साहित्यकार को और तज्जनित संस्कृति को भी राष्ट्रीयत्व का गर्व हो गया। हमने राष्ट्रभाषा हिन्दी के ज्ञानपक्ष को प्रबल करने की बजाय कला पक्ष पर ही अधिक जोर दिया।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बारबार दोहराया था कि राष्ट्रभाषा हिन्दी तो अभी बनना है उसे अभी व्यापक रूप धारण करना है।' उनके विचार में, जहाँ तक मै समझता हूँ, यही धारणा होगी कि हमने राष्ट्रभाषा के रूप में जिस हिन्दी को चुना है वह एक भाषा मात्र है आदान प्रदान का माध्यम है। जब पूरे देशवासी इस माध्यम को अपना लगे तब उसम उसका अपना राष्ट्रीय साहित्य तैयार होगा और तब उसमें ज्ञान के बड़े-बड़े ग्रन्थ भी तैयार हो सकेंगे, क्योकि

उसम तब तक इतनी क्षमता भी आ जायगी कि आसानी से विदेशी ज्ञान का अनुवाद हो सके।

मैं समझता हू कि हम अब भी हिन्दी को हिन्दी साहित्य से अलग करके देखने का प्रयत्न करना चाहिए। हिन्दी साहित्यकारों ने तथा हिन्दी क्षेत्र के राजनीतिज्ञों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद मिला है इस बात का फायदा उठाकर अपने साहित्य को राष्ट्र के साहित्य के नाम पर खपाने का जो प्रयत्न किया है इससे पन्द्रह साल के बाद भी उनकी हिन्दी को अखिल भारतीय मान्यता न मिल सकी।

राष्ट्रभाषा का प्रचार

हिन्दी की प्रचार परीक्षाओं म पाठशालाओं की पाठय पुस्तकों म तथा कालेज के लिए कोर्स म सब जगह आपको वही हिन्दी साहित्य मिलेगा जो कि हिन्दी साहित्यकारों की देन है। फिर अहिन्दी प्रान्तीय लोग ऐसी प्रान्तीय हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप म कैसे ग्रहण कर सकते हैं? मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा को इस प्रश्न पर लिख चुका हू परन्तु पाठ्यक्रम बनाने समय उन्होंने कभी इस बात पर खास ध्यान नहीं दिया। इस प्रचार समिति के दिल्ली अधिवेशन म मैं गया था वहाँ नेहरूजी ने पाठ्यक्रम के साहित्य के बारे मे यह खास तौर से बताया था कि जिन्हें पढ़ाना है उनकी रुचि का साहित्य उन्हें हिन्दी म पढ़ाया जाय तो उनके लिए हिन्दी भाषा अधिक ग्राह्य होगी।

हमें हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना है। हिन्दी साहित्य तो अपनी जगह रहेगा ही राष्ट्रीय साहित्य बाद म बनेगा।

सर्वमान्य भाषा

यह हम अपना सौभाग्य समझेंगे कि अब शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषा या मातृभाषा रहेगा। दूसरा स्थान हिन्दी को मिला है और तीसरा स्थान अंग्रेजी या कोई भी विदेशी भाषा का रहेगा। अहिन्दी भाषियों के लिए हमें सर्वमान्य हिन्दी चाहिए। तब हम हिन्दी भाषी प्रान्तों की मातृभाषा और राष्ट्र भाषा हिन्दी म अवश्य अन्तर करना होगा। यह हिन्दी प्रत्येक प्रान्त में अपना भारतीय ढाँचा लेकर जायगी और अपना रूप आकार साजसज्जा उस प्रान्त की आवश्यकता शक्ति संस्कार संस्कृति और उस प्रान्त के लोगों के मातृभाषा नुकूल वातावरण म निर्मित करेगी। हर प्रान्त की हिन्दी भाषा में उस प्रान्त के श्रेष्ठ साहित्य के अनुवादों की झलक मिलेगी। और प्रान्तीय साहित्य को हिन्दी में सिखाने का उद्देश्य यही रहेगा कि वे लोग राष्ट्रभाषा हिन्दी सीख जाय। फिर राष्ट्रीय साहित्य को अपनी देन देने के लिए हर प्रान्त से आपको राष्ट्र

भाषा के साहित्यकार मिल जायेंगे। हमारे दक्षिणी भाइयों को हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सीखने में यही तो तकलीफ होती है कि उन्हें सब कुछ पराया सा लगता है। उनकी संस्कृति और उनके रीति रिवाजों से हिन्दी साहित्य मेल नहीं खाता।

कुछ लोगों का तर्क यह है कि भाषा का साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता तथा साहित्य के सिवाय भाषा की ऊँचाई और प्रौढ़ता को परखा नहीं जा सकता। अंग्रेजों ने भारतीयों को अंग्रेजी सिखायी तो अंग्रेजी साहित्य का ही सहारा लिया और आज भी वही हो रहा है। परन्तु अंग्रेज शासक थे। वे अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता भी प्रतिपादित करना चाहते थे, इसीलिए तो भारतीय विद्यार्थियों को इंग्लैंड का इतिहास भी सीखना पड़ता था। पर हम उसी रास्ते का अनुसरण क्यों करें?

अनुवाद की व्यापकता

ग्रीक संस्कृति का साहित्य और तत्कालीन विज्ञान कला का साहित्य ईसाई धर्म धुरंधरों के विचार से खतरनाक समझा गया था। वह धर्म में बाधक माना गया था। इसलिए वह मिटाया और जलाया गया। और तब अरब में ग्रीक ग्रंथों का अनुवाद हुआ। पूरा ग्रीक साहित्य अरबी में आ गया। ग्रीक का ज्ञान अंग्रेजों को अरबी द्वारा मिला है यह जगत का सांस्कृतिक इतिहास हमें बताता है।

और हमने आज तक भारतीय एकात्मता के नाम पर बड़ी बड़ी योजनाएँ बनायीं परंतु अपनी पाठशालाओं में अनुवाद का महत्व नहीं बढ़ाया। हमने एम० ए० पास कर लिया परन्तु शुद्ध और सुन्दर अनुवाद करने की, दो भाषाओं को नजदीक लाने की, दो संस्कृतियों में आदान प्रदान प्रस्थापित करने की कला का विकास नहीं किया।

अब भी समय नहीं गया है। मातृभाषा यदि व्यक्ति के लिए माँ से प्राप्त खजाना है तो राष्ट्रभाषा नागरिक के लिए राष्ट्र से प्राप्त धरोहर है। मातृभाषा और राष्ट्रभाषा को मिलाने का साधन है अनुवाद। हर प्रांत में, हर पाठशाला में अनुवाद को एक साधन कला और आवश्यकता मानकर उसे विशेष स्थान दिया जाय और योग्यता प्राप्ति के लिए आवश्यक समझा जाय।

अनुवाद दो भाषाओं दो संस्कृतियों और दो प्रान्तों तथा देशों को मिलाने का उत्तम साधन है। वह लेन-देन और भावनात्मक एकता प्रस्थापित करने का सुवर्ण माध्यम है।

हमारी राष्ट्रभाषा का प्रश्न हल करने का यह एक उत्तम मार्ग है। उसको कार्यान्वित करने के अनेक मार्ग हो सकते हैं। परन्तु अभी तत्वतः यह मान लेना चाहिए कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की सर्वमान्यता अनुवाद के सिवाय शक्य नहीं होगी। ●

भाषा और लोकतंत्र

कृष्ण कुमार

भाषा का विवाद भारत की एकता के अस्तित्व का सवाल बन गया है। कहा जाता है कि यही सवाल १०–१५ साल पहले आसानी से हल हो जाता तो आज के विवाद से देश बच जाता। लेकिन उस समय की राजनीतिक भूल का परिणाम आज भुगतना पड रहा है।

जबतक कोई निर्णय नही हो जाता तबतक भाषा का यह प्रश्न जीवन-मरण का प्रश्न बना रहेगा। भाषा के जो फार्मूले सुझाये गये है, चूंकि उनको शत प्रतिशत समर्थन नही मिला है और न मिलनेवाला है, अत कोई एक ऐसा समझौता करना होगा जो दोनो पक्षो को मान्य हो। भाषा के इस प्रश्न को देश की एकता के साथ जोडना नही चाहिए। भाषा देश की एकता के लिए एक मुख्य माध्यम जरूर है, लेकिन देश की एकता किसी भी कीमत पर टूटनी नही चाहिए। एकता पहले और भाषा बाद म। एकता बनी रहेगी तो देश कोई एक भाषा जरूर ढूंढ लेगा, वह भाषा जो देश को एक सूत्र में बांधने का काम करेगी।

भाषा-समस्या के दो पहलू

भाषा-समस्या के दो पहलू है—एक, शिक्षा का माध्यम और दो, सम्पर्क-भाषा। शिक्षा-आयोग ने यह सुझाव दिया है कि प्राइमरी से विश्वविद्यालय तक की शिक्षा मातृभाषा (क्षेत्रीय भाषा) मे दी जानी चाहिए। इसे राज्य के शिक्षा-मत्रियो ने स्वीकार किया है और बाद म ससद की शिक्षा-समिति ने भी मान्य किया। विश्वविद्यालय के उपकुलपतियो ने मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार तो किया, लेकिन स्नातक-स्तर तक ही। एम ए और शोध-कार्य में प्रत्यक्ष रूप से माध्यम के प्रश्न को टालते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप स अंग्रेजी को मान्य किया।

मातृभाषा

कुछ लोगो का यह कहना है कि मातृभाषा का माध्यम प्राइमरी और माध्यमिक शिक्षा में तो ठीक है लेकिन उच्च शिक्षा में ठीक नही। इससे शिक्षा का स्तर गिरेगा। मातृभाषा के माध्यम से अच्छे वैज्ञानिक, डाक्टर, तकनीशियन,

इजीनियर आदि पदा नही होगे और देश में इनका अभाव हो जायगा। परन्तु ऐसा सोचनेवाले शिक्षा मनोविज्ञान से अनभिज्ञ है, इतना तो कहा ही जा सकता है। मातृभाषा शिक्षा का माध्यम बने तो वैज्ञानिक, तकनीसियन, डाक्टर, इजीनियर आदि ज्यादा सख्या में मिल सकेंगे, इस सभावनीय तथ्य को क्यो वे नजरअन्दाज करते है, इस सन्दभ म दूसरे देशो की ओर निगाह जानी चाहिए। जापान, फ्रास, इटली रूस आदि देशो ने अपनी भाषा म ही प्रगति की है। स्वय इग्लैड में भी 'नामन विजेताओ द्वारा इग्लैंडवासियो पर जबरन लादी गयी फ्रेंच भाषा के स्थान पर जब अ ग्रेजी को पदासीन करने के लिए वहा की जनता ने १४वी सदी में आवाज उठायी थी, तब प्रोफेसरो, जजो, वकीलो और उच्च अधिकारियो ने इस मूखता का कसकर विरोध किया था। उनकी दलील थी कि अ ग्रेजी भाषा म राजकाज चलाने और शिक्षा का माध्यम बनाने की कुछ भी क्षमता नही है, क्योकि उसमे उन दिनो न तो कोई अच्छा कोश था, न अच्छा व्याकरण और न कानूनी किताबें। लेकिन जनसाधारण ने उन मुट्ठीभर समझदारो की बात अनसुनी कर दी, और फ्रेंच भाषा के स्थान पर निपट अक्षम अ ग्रेजी को बिठाकर ही चैन लिया। जिस अ ग्रेजी का विरोध गवाँरू करार देकर किया गया था, वही अनुकूल अवसर पाकर आज कितनी सक्षम और समृद्ध हो गया है।[1]

अगर १४वा शताब्दी म उन कुछ समझदार लोगो की बात मान ली गयी होती तो अ ग्रेजी का इतना विकास नहा होता और इग्लैंड म विज्ञान का भी इतना विकास न हुआ होता।

मातृभाषा का अपमान

जो यह कहता है कि मातृभाषा हम योग्य बनाने म असमथ है वह मातृभूमि का अपमान करता है। माँ के दूध पर पलनेवाला बच्चा ज्यादा स्वस्थ और पुष्ट हो सकता है लेकिन अगर माँ कमजोर है तो उसे छोड नही दिया जाता, बल्कि यह कोशिश की जाती है कि वह बच्चे का पोषण दे सकने लायक सक्षम बन सके। आज उसी प्रकार अगर मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा अक्षम है तो उसे छोडने की या उसे उपेक्षित करने की जरूरत नही है, बल्कि वह हमें योग्य बनाने म समथ बन सके इसकी कोशिश करनी है। और, यह कोशिश तभी हो सकती है जब वह आज से ही शिक्षा का माध्यम बने और जहाँ कही भी उसमें कमी नजर आये उसमें जोडते जाना है, वृद्धि करते जाना है। और, यह सब विश्वास के साथ होगा तभी सफलता मिलेगा। गाधीजी ने कहा है—'मेरी

१ वियोगी हरि—'हिन्दुस्तान' दैनिक १६ सितम्बर '६७।

मातृभाषा में कितनी भी खामियाँ क्यों न हों मैं उसमें उसी तरह चिपटा रहूँगा, जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवन प्रदान करनेवाला दूध दे सकती है।' क्या गांधीजी की इस भावना को स्वीकार नहीं किया जा सकता?

'दुनिया में ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है जहाँ इस तरह मातृभाषा छोड़कर दूसरी भाषा लादी जाती हो। यहाँ के लड़कों को अंग्रेजी के जरिये तालीम देने का परिणाम क्या होता है यह देखना हो तो लन्दन के लड़कों को हिन्दी के जरिये तालीम देकर देखिये। अगर लड़कों पर अंग्रेजी न लादी जाय और मातृभाषा के जरिये उन्हें सब विषयों का ज्ञान दिया जाय तो बहुत ही कम समय में वे ज्ञान ग्रहण कर सकेंगे। प्रयोग करने से यह बात जाहिर हो जायगी।'[1]

काल्पनिक भय

चूंकि आज मन में काल्पनिक भय है—जिसका कोई आधार नहीं है—इसके विरोध में तमाम मनगढ़न्त दलीलें पेश की जा रही हैं। क्या न एक बार दृढ़तापूर्वक इसे स्वीकार किया जाय और प्रयोग करके देखा जाय?

कुछ लोगों का यह मानना है कि क्षेत्रीय भाषा जब शिक्षा का माध्यम बना दी जायगी तो क्षेत्रवाद की भावना बनेगी और देश टुकड़ों में बट जायगा। यह एक ऐसी दलील है जिसमें कोई दम नहीं है। आज जब कि क्षेत्रीय भाषाएँ शिक्षा का माध्यम नहीं है, क्षेत्रवाद और प्रान्तवाद की भावना क्यों बढ़ी है? इसमें भाषा का क्या हाथ है? और, जब क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम हो जायगी तब इससे ज्यादा क्षेत्रवाद और प्रान्तवाद की सम्भावना किस ओर से है? ऐसी दलील देनेवाले राजनीति के छोटे-छोटे स्वार्थों की सीमा में से बोलते हैं। राजनीति ने जिस प्रकार हर सवाल को अपने हाथ में लेकर उलझाया है उसी प्रकार भाषा के इस निर्दोष सवाल को भी—जो राजनीति नहीं शिक्षा का विषय है—उलझा दिया है। और, चूंकि यह सवाल उलझ गया है इसलिए इसको सुलझाने का काम बड़ी सावधानी से करना होगा। आग्रह और दुराग्रह से—चाहे वह किसी भी पक्ष का क्यों न हो—इसका समाधान नहीं निकलेगा।

क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम बने या न बने, इसका विचार शैक्षणिक दृष्टि से होना चाहिए, न कि राजनीतिक दृष्टि से।

सम्पर्क भाषा

दूसरा प्रश्न देश की 'सम्पर्क भाषा' का है। यह कुछ पेचीदा प्रश्न बन गया है या बना दिया गया है। करीब-करीब सौ वर्षों तक अंग्रेजी हिन्दुस्तान में

---

१ विनोबा—शिक्षण विचार पृष्ठ ३५१ सर्व सेवा संघ प्रकाशन।

शासकों की भाषा रही है। शासकों ने जानबूझकर अंग्रेजी को हम पर लादा। हमने उसे खुशी से स्वीकारा भी। क्योंकि सत्ता में घुसने के लिए तथा उसमें लाभ उठाने के लिए अंग्रेजी का माध्यम जरूरी था। आज स्वराज्य के बाद भी यह शासकों, प्रशासकों तथा बुद्धिजीवियों की भाषा रही है। और यही कारण है कि जनता और सरकार के बीच की खाई चौडी होती चली गयी। दुर्भाग्य ही है कि स्वराज्य में और लोकतंत्र में ऐसी भाषा सम्पर्क का माध्यम बनी हुई है जो कुछ लाख लोग ही जानते, बोलते और समझते हैं। करोडों करोड लोग अंग्रेजी के माध्यम होने के कारण अपने ही राज्य में पराये बन गये हैं। स्वराज्य और लोकतंत्र का अर्थ तो यह होना चाहिए कि उसका हर नागरिक उसको समझ सके और उसे अपना मान सके। सिर्फ वोट का अधिकार हो तो सब कुछ नहीं होता। इस सन्दर्भ में गांधीजी ने कहा है—"अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होनेवाला हो तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोडों भूखों मरनेवालों, करोडों निरक्षरों, निरक्षर बहनों और दलितों व अन्त्यजों का हो और इन सबके लिए होनेवाला हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।"[1]

अंग्रेजी का समर्थन करनेवाले जब यह कहते हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा सम्पर्क दुनिया के देशों से टूट जायगा तो वे यह नहीं देख रहे हैं कि अपने देश के अन्दर का ही सम्पर्क टूटता चला जा रहा है। अगर उनका चिन्तन सचमुच देश को बचाने और देश की एकता को कायम रखने का होता तो लोकतंत्र की इस बुनियादी बात को वे नजरअन्दाज नहीं करते। उनकी सबसे पहली चिन्ता होती कि देश के सम्पर्क को न टूटने दिया जाय और उसके लिए एक राष्ट्रभाषा का विकास किया जाय। हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है। इसे देश के करीब सभी राज्य मानते हैं—विरोध है तो मद्रास और बंगाल का। मैसूर के मुख्यमंत्री ने हिन्दी के समर्थन में जो कहा है वह सही है—"हिन्दी सिर्फ उत्तर भारत के कुछ प्रदेशों की भाषा नहीं है। इसका सम्बन्ध दक्षिण से भी है। इसका विकास स्वाभाविक गति से होने देना चाहिए। आज की सबसे बडी आवश्यकता राष्ट्र की एकता है। एकता को बढावा देने में भाषा की बहुत बडी भूमिका है और हिन्दी इसमें मदद कर सकती है।"

गांधीजी ने कहा है—"दक्षिण भारत की सर्वसाधारण जनता के लिए, जिसे राष्ट्रीय कार्य में ज्यादा-से-ज्यादा हाथ बँटाना होगा, कौनसी भाषा सीखना

---

१ गांधीजी—'राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी,' पृष्ठ ३७, नवजीवन प्रकाशन।

आसान है—जिस भाषा में अपनी भाषाओं के बहुतेरे शब्द एक-से है और जो उन्हे एकदम लगभग सारे उत्तरी हिन्दुस्तान के सम्पर्क में लाती है वह हिन्दी, या मुट्ठीभर लोगों द्वारा बोली जानेवाली सब तरह से विदेशी अंग्रेजी ?"

लोकतंत्र के लिए आवश्यक है कि जनता और सरकार का सीधा सम्पर्क हो। लोकतंत्र की यह अनिवार्य शर्त है। और, ऐसा है, इसलिए शासन का सारा कारोबार जनता की भाषा मे होना चाहिए। इसके विपक्ष म चाहे जितनी भी दलील दी जाय—देश इसका खर्च नहीं बर्दाश्त करेगा, कामकाज म कठिनाई होगी—यह सब लोकतंत्र-विरोधी दलीलें हैं। जनता को इसे साफ-साफ समझना चाहिए। जिस तरह इग्लैंड की जनता ने फ्रेंच के खिलाफ आवाज उठायी थी, उसी तरह हमें अंग्रेजी के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। करोडो को दबाकर अंग्रेजी को मान्य करनेवाले कुछ थोडे लोगो के मोह या स्वार्थ सर्वोपरि कैसे हो सकते है ?

हिन्दी राष्ट्रभाषा हो सकती है। उसे मातृभाषाओ के पूर्ण विकास के साथ-साथ स्वीकार कर लेने में देश की एकता खतरे मे पडेगी, ऐसा नही मानना चाहिए। हिन्दी एक क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषा है, यह मानना उचित नही है। अंग्रेजी को छोड दिया जाय तो हिन्दी ही एक भाषा रह जाती है जो विभिन्न राज्यो के बुद्धिजीवियो मे ही नही, सामान्य स्तर की जनता मे भी सम्पर्क भाषा का काम करती है। ●

अंग्रेजी की भारत मे दो महत्वपूर्ण स्थितियाँ अथवा पद प्राप्त कर लिये हैं। हम लोग उसकी यह स्थिति समाप्त कर रहे हैं। अंग्रेजी की पहली विशेषता यह है कि वह राज्यो के प्रशासन की भाषा बन बैठी है। अब यह चलने को नही है। प्रशासन जनता की भाषा मे होना चाहिए। अंग्रेजी की दूसरी विशेष स्थिति यह है कि वह केन्द्रीय प्रशासन की भाषा बन बैठी है। केन्द्र मे अंग्रेजी की समाप्ति के लिए अहिन्दी राज्यो की सहमति आवश्यक है। इस कार्य की ओर धीरे धीरे किन्तु दृढ़ता-पूर्वक कदम उठाये जा रहे हैं।

शेष विश्व के लिए अंग्रेजी खिडकी का काम करती है। हमे फ्रेंच, जर्मन, चीनी और जापानी भाषाओं को सीखकर खिडकियों की संख्या और बढ़ानी चाहिए।

केन्द्रीय शिक्षामंत्री- डा० त्रिगुणसेन

अंग्रेजी-समर्थकों का दृष्टिकोण

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के विरुद्ध अंग्रेजी समर्थकों के निम्नलिखित तर्क है—

१ उत्तर भारत की दक्षिण भारत पर आर्थिक और राजनीतिक प्रधानता गहरी और मजबूत होगी।

२ दक्षिणवालों की निराशा और बेरोजगारी बहुत बढ जायगी।

३ व्यावहारिक रूप मे प्रतिरक्षा विभाग, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और अन्य प्रशासनिक नौकरियों पर उत्तरवालों का एकाधिकार हो जायगा।

४ शैक्षिक-स्तर बहुत नीचे गिर जायगा।

५ जगह जगह क्षेत्रवाद और सकीर्णवाद का बोलबाला हो जायगा। प्रत्येक राज्य की एक दूसरे के प्रति उपेक्षा और विरोधीपन की भावना बनेगी।

६ विज्ञान और प्राद्योगिकी की नयी प्रगति की जानकारी से हम वंचित होगे।

७ आर्थिक वृद्धि के क्षेत्र मे हमारा देश बहुत पीछे हो जायगा।

८ विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता बहुत कुछ समाप्त हो जायेगी और वे राजनीतिज्ञो के हाथ के खिलौने बन जायेंगे।

९ एक विश्वविद्यालय का स्नातक दूसरे विश्वविद्यालय के लिए बिल्कुल अनुपयोगी हो जायगा।

१० अध्यापकों या शिक्षकों का एक स्थान से दूसरे स्थान का आवागमन लगभग बन्द हो जायगा।

११ हमारा विश्व के साथ जो सम्बन्ध है वह बहुत अंशों तक कम हो जायगा।

१२ पूरे देश मे विचारों के सचार का कोई प्रभावकारी साधन न रह जायगा। इसके कारण प्रशासन की एकता और क्षमता का ह्रास होगा।

१३ दक्षिण की भाषाओं का हिन्दी के कारण नुकसान होगा।

१४ अन्त मे हिन्दी के कारण देश में विघटन पैदा होगा और वह भाषायी टापुओं मे परिवर्तित हो जायगा।[1]

---

१ साउथ इण्डियन टीचर के सितम्बर अङ्क में प्रकाशित श्री के टी थोमस के लेख से।

हिन्दी-समर्थकों का दृष्टिकोण

हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाये जाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क हैं

१—भारत के सविधान में हिन्दी को राजभाषा बनाने का निर्णय हो चुका है। उस निर्णय को बदलना ठीक नही होगा।

२—हिन्दी देश के बहुसख्यक लोगो की भाषा है। अग्रेजी को छोड़ दीजिये तो आज भारतीय भाषाओ में एक वही ऐसी भाषा है, जिसमें दूसरे प्रान्त के सामान्य जन ही नही बुद्धिजीवी भी मिलने पर विचार-विनिमय करते है।

३—स्वतत्र लोकतत्रात्मक देश में, जैसे राज्यो में क्षेत्रीय भाषाएँ राजभाषाएँ बनायी जायें, जिसमे प्रशासन की भाषा और जनता की भाषा मे साम्य हो और प्रकाशक और जनता के बीच की खाई पटे, वैसे ही सम्पर्क भाषा अपने देश की ही एक भाषा बनायी जाय और वह ऐसी भाषा हो जो थोडी बहुत सभी राज्यों में बोली-समझी जाती हो। हिन्दी ही एकमात्र ऐसी भाषा है। वह आज भी गौहाटी, शिलाग, कलकत्ता, बम्बई, पूना, बगलोर, श्रीनगर, काशी, प्रयाग, पुरी, काजीवरम्, रामेश्वरम् के बाजारो मे विभिन्न प्रदेशो से आनेवाले व्यापारियों और तीर्थयात्रियो द्वारा बोली और समझी जाती है।

४—हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाने से सही अर्थ में राष्ट्र की एकता बढ़ेगी क्योकि वह समान रूप से सामान्य जनता और बुद्धिजीवी दोनो की सम्पर्क भाषा होगी। ऐसी भाषा देश को जोडेगी, बिखेरेगी नहीं।

५—हिन्दी के राजभाषा बनने पर जब उच्च स्तर पर उसका प्रयोग ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों मे होने लगेगा तभी ज्ञान-विज्ञान का लाभ साधारण जनता तक पहुँचेगा और तभी राष्ट्रीय प्रतिभा का विकास होगा।

६—देश की राष्ट्रभाषा ऐसी ही भाषा होनी चाहिए जिसमे प्रयोग में आनेवाले शब्द देश की दूसरी भाषाओ में अधिक से अधिक पाये जाते हो और जिनके शब्द-समूहो का आपस मे आदान-प्रदान भी हो सके। अग्रेजी इस प्रकार की भाषा नही हो सकती। अत. किसी भी रूप में उसे राजभाषा बनाये रखने की बात इस राष्ट्र के लिए हानिकर होगी।

७—अपनी भाषा के व्यवहार से शिक्षा का स्तर गिरेगा नही, बढ़ जायगा।

अंग्रेजी पढने से बालक की जिस शक्ति का अपव्यय होता है वह शक्ति जब दूसरे विषयो मे लगेगी तो शिक्षा का स्तर बढेगा ही, घटेगा नही।

८—यह विचार कि क्षेत्रीय भाषाओ से आर्थिक स्तर गिरेगा, गलत है। राष्ट्र का विकास राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही हो सकता है। पचवर्षीय योजनाएँ, जिनमें सोचने-समझने और नियोजन बनाने की माध्यम अंग्रेजी रही है, सफल नही हुई है। इन योजनाओ को कार्यान्वित करनेवाले विकास-अधिकारी भारत की सामान्य जनता के साथ अपने को एक नही कर सके है। फलत विकास न होकर ह्रास ही हुआ है।

९—हिंदी के राजभाषा होने से उत्तर भारत की दक्षिण भारत पर राजनीतिक प्रधानता गहरी होगी—यह शका निर्मूल है। केन्द्रीय नौकरियो के काम करनेवाले छोटे-बडे कर्मचारियो का, जो सभी आज अंग्रेजी जाननेवाले ही है, आज की राजनीति पर कितना प्रभाव है। राजनीति का सचालन जिस लोकसभा के प्रतिनिधियो के हाथो में होगा वह सभी प्रदेशो के होगे और आज वह अंग्रेजी मे बोलते है कल हिन्दी में बोलेंगे तो उससे अन्तर क्या पडेगा? ●

भारतीय भाषाओ के बहुमुखी विकास के लिए जोरदार प्रयास किया जाना चाहिए। हमे यह ध्यान रखना होगा कि केवल एक या दो भारतीय भाषाओ के विकास से काम न चलेगा। सभी भारतीय भाषाओं को समान अधिकार प्राप्त हैं।

हिन्दी का जिसे देश की बहुसख्यक जनता बोलती है, विकास किया जाना चाहिए ताकि वह देश की सम्पर्क भाषा बन सके। हमे उसी भाषा को (सम्पर्क भाषा का) महत्व देना पडेगा जिसे न केवल मुट्ठी भर बुद्धिजीवी ही समझते हैं बल्कि देश के करोडो किसान और मजदूर भी आसानी से समझते और व्यवहार मे लाते हैं।

—राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन

नये ग्राहकों को विशेष उपहार

श्री जयप्रकाश नारायण के जन्म दिन ११ अक्तूबर ६७ से क्रिसमस के २५ दिसम्बर ६७ के बीच की अवधि में कम से कम १ साल के लिए ग्राहक बनने पर

नयी तालीम (मासिक) के साथ गाँव की बात (पाक्षिक) के दो चित्र, महत्वपूर्ण विशेषांक,

'भूदान-यज्ञ (साप्ताहिक) तथा गाँव की बात (पाक्षिक) के साथ नयी तालीम का भाषा विषयक विशिष्ट-अंक

सर्व सेवा संघ, न्यूज लेटर (अंग्रेजी मासिक) के साथ गांधी जयंती (२ अक्तूबर ६७) से नेहरू जयंती (१४ नवम्बर ६७) तक की अवधि में, फ्रीडम फार दी मासेज और 'पीस आन अर्थ' नामक दो महत्वपूर्ण पुस्तकें

सर्व सेवा संघ प्रकाशन की ओर से ग्राहकों को उपहार में दी जायेगी।

पत्रिकाएँ	वार्षिक शुल्क
नयी तालीम (मासिक)	६.००
गाँव की बात (पाक्षिक)	४.००
भूदानयज्ञ (साप्ताहिक)	१०.००
सर्व सेवा संघ न्यूजलेटर (मासिक)	१०.००

दत्तोबा दास्ताने
संचालक
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१

उत्तर प्रदेश की सरकार का निर्णय

उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा परिषद् की परीक्षा-समिति ने १३ सितम्बर, १९६७ के शिक्षा-निदेशक की उस घोषणा पर गम्भीर चिन्ता प्रकट की है, जिसमें यह कहा गया है कि हाईस्कूल और इण्टर की परीक्षाओं में जो पाठ्यक्रम पहले सूचित किये जा चुके है, वे सन् १९६८ की परीक्षा मे ही लागू होगे। परिवर्तन निम्न प्रकार है—

(१) हाईस्कूल की परीक्षा के लिए हिन्दी और गणित अनिवार्य विषय होगे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक छात्र को तीन अन्य वैकल्पिक विषय लेने होगे। इन वैकल्पिक विषयो में आधुनिक भारतीय (हिन्दी के अतिरिक्त) तथा यूरोपीय भाषाएँ रहेगी। हाईस्कूल की छात्राओं को इस बात की छूट रहेगी कि वे चाहे तो गणित के स्थान पर अनिवार्य विषय के रूप मे गृह-विज्ञान ले सकती है।

(२) इटरमीडिएट परीक्षा के लिए हिन्दी अनिवार्य विषय होगी। इसके अतिरिक्त तीन वैकल्पिक विषय और होगे। इनके अलावा हिन्दी को छोड़कर किसी दूसरी भारतीय अथवा विदेशी भाषा मे एक सामान्य पर्चा, जो विद्यार्थी चाहे, वैकल्पिक रूप मे, ले सकते है। इस पर्चे मे केवल ५० अङ्क होगे और विद्यार्थियो के लिए इसमें पास होना अनिवार्य नही होगा। परन्तु जो इसमें पास होगे, उन्हे अलग से प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे।

परीक्षा-समिति ने विचार प्रकट किया है कि ये परिवर्तन राज्य के शैक्षिक स्तर के लिए हानिकारक सिद्ध होंगे और उन १५ लाख विद्यार्थियो के हितो के खिलाफ होगे, जो सन् १९६९ तक की इन परीक्षाओ के लिए बोर्ड द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर तैयारियाँ कर रहे है। जो परिवर्तन किये गये है, अगर उन्हें चालू परीक्षा-वर्ष में ही लागू होने दिया गया, जब परीक्षा के कुल ५ महीने ही शेप रह गये है, तो यह भावी परीक्षार्थियो को दिये गये वचनों का उल्लघन होगा। क्योंकि बोर्ड ने १७ अगस्त को सूचना दी थी कि परिवर्तन १९६८ की परीक्षा में लागू नही होंगे और १९६९ की परीक्षा के लिए विचाराधीन है।

सरकार का यह कदम बोर्ड की स्वायत्तता में हस्तक्षेप है और परीक्षा-समिति ने उसके प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बोर्ड की इमरजेंसी मीटिंग बुलाने की माँग की है और शासन से अपील की है कि वह कानून से प्राप्त बोर्ड की शैक्षिक (एकेडेमिक) स्वायत्तता में हस्तक्षेप न करे।

इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में हम तीन बातों पर विचार करना है—

१—पाठ्यक्रम में परिवर्तन

पाठ्यक्रम में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया गया है, जिससे छात्रों की क्षति हो। केवल कुछ विषय कम कर दिये गये हैं और कुछ को ऐच्छिक बना दिया गया है। हाईस्कूल में पहले भी ५ विषय ही लेने होते थे—३ अनिवार्य और २ वैकल्पिक, और अब भी ५ ही विषय लेने होंगे—२ अनिवार्य और ३ वैकल्पिक। परिवर्तन इतना ही हुआ है कि अंग्रेजी को अनिवार्य विषय-सूची में निकालकर वैकल्पिक विषय-सूची में रख दिया गया है। जिन विद्यार्थियों ने अंग्रेजी पढ़ी है, वे अगर चाहें तो इस विषय में परीक्षा दें। मेरा विचार है कि अंग्रेजी छोड़ देने से उन्हें दूसरे विषयों को पढ़ने का अधिक अवसर मिलेगा और उनके दूसरे विषयों का स्तर बढ़ेगा ही।

इसी प्रकार इण्टर की परीक्षा में पहले २ अनिवार्य और ३ वैकल्पिक विषय थे और अब १ अनिवार्य और ३ वैकल्पिक विषय रह गये हैं। ५ वें विषय के रूप में विद्यार्थी चाहें तो अंग्रेजी ले सकते हैं। इस तरह इण्टर की परीक्षा में अंग्रेजी का बोझ हल्का हो जाने से विद्यार्थियों को दूसरे विषयों का पढ़ने का अधिक समय मिलेगा, विशेषतः विज्ञान के विद्यार्थियों को जो अपने तीनों विषय—भौतिक-विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित अथवा जीवविज्ञान आदि अधिक अच्छी तरह पढ़ सकेंगे। ये विद्यार्थी अंग्रेजी वैकल्पिक रूप से पढ़ ही सकते हैं, अतः इनका अंग्रेजी का स्तर इतना नहीं गिरेगा कि वे विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी में पढ़ाये जाने पर विषयों को समझें ही नहीं और अब तो वहाँ भी शीघ्र ही हिन्दी माध्यम हो जायगी।

२—स्वायत्तता का अपहरण

शासन की इस घोषणा से बोर्ड की स्वायत्तता का अपहरण नहीं हो रहा है। बोर्ड के चेयरमैन को इण्टर एजुकेशन एक्ट धारा ६(४) के अन्तर्गत बोर्ड की मीटिंग बुलाये बिना निर्णय लेने का अधिकार है और यह कहना इस समय ऐसी कोई इमरजेंसी नहीं थी कि इस धारा का प्रयोग किया जाना गलत है। अंग्रेजी को छोड़ने, न छोड़ने पर हम स्वराज्य प्राप्ति के बाद बीस वरसों में

विचार करत आ रहे है। अत अग्रेजी को वैकल्पिक रूप में रखने का निणय लेकर सरकार ने न तो काइ जल्दी की है और न ऐसा कोई काम किया है जो शिक्षा क हित के विरुद्ध हो। अग्रेजी को बनाये रखने की आड म 'अग्रेजी शिक्षित समुदाय हिन्दी बोलने और समझनेवाली जनता को उनके सहज स्वाभाविक अधिकारो स वचित कर स्वराज्य के अवसरो को अपने लिए सुरक्षित रखना चाहता है। हिन्दी के अधिकार का सवाल जनता के अधिकारो का सवाल है भारतीय लोकतन्त्र के विकास का सवाल है और अग्रेजी को अनिवाय विषय सूचा स हटाये बिना हिन्दी का अपना स्थान प्राप्त नही होगा। हमने बीस वष तक कभी शैक्षिक स्तर के नाम पर कभी विज्ञान और टेक्नालाजी के नाम पर हिन्दी भाषी जनता को धोखा दिया है और हमारी जनता के प्रतिनिधि विधायक अग्रेजीदा नौकरशाही के हाथ में खेलते रहे है। अब आज बीस वष के बाद जब एक सही कदम उठाया गया है तो उसे जल्दबाजी का काम कह कर उसके माग म बोड की स्वायत्तता के नाम पर रोडा अटकाना ठीक नही है।

●

यदि शिक्षा का माध्यम धीरे धीरे बदलने के बजाय एकदम बदल दिया जाय, तो बहुत ही शीघ्र हम यह देखेंगे कि आवश्यकता को पूरा करने के लिए पाठ्य-पुस्तकें भी प्राप्त हो रही है और अध्यापक भी। और अगर हम ईमानदारी से काम करना चाहते है तो एक ही साल में हमे यह मालूम हो जायगा कि विदेशी माध्यम द्वारा संस्कृति के आवश्यक तत्त्व सीखने के प्रयत्न म राष्ट्र का समय और शक्ति नष्ट करने म हमें भागीदार नही होना चाहिए था। बेशक सफलता की शर्त यह है कि सरकारी दफ्तरो में और अगर प्रान्तीय सरकारा का अपनी अदालता पर अधिकार या प्रभाव हो तो उन अदालता में भी प्रान्तीय भाषाएँ तुरन्त जारी कर दी जायें। यदि इस सुधार की आवश्यकता में हमारा विश्वास हो तो हम उसम तुरत सफल हो सकते है।

—गाधीजी

नयी तालीम का नया सन्दर्भ

मनमोहन चौधरी

(गाधीजी ने कहा था—अगर सब लोग मेरे बनाये हुए रास्ते पर चलें तो एक उँगली भी उठाने की जरूरत न पड़े और अंग्रेज इस देश से सदा के लिए विदा हो जायँ। वे हँसते हँसते विदा हों, मैं बम्बई जाकर उन्हें विदा करूँ और उनके विदा होने पर जब मैं देश की ओर मुँह मोड़ूँ तो सारा देश सुव्यवस्थित, शान्त और भरा-पूरा नजर आये। गाधीजी के इस कथन का पहला हिस्सा तो पूरा हुआ और अंग्रेज यहाँ से विदा हुए—खुशी खुशी विदा हुए। परन्तु उनके कथन की दूसरे हिस्से में प्रकट की हुई उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई है। इसके जहाँ अनेक कारण हैं वहाँ एक यह भी है कि अपनी कल्पना का सर्वोदय समाज बनाने के लिए उन्होंने देश को जो एक नयी शिक्षा-पद्धति दी थी उसको देश ने ईमानदारी से नहीं अपनाया। गाधीजी के सपने का समाज तब बनता जब उनकी बुनियादी शिक्षा-पद्धति पूर्व प्रारम्भिक स्तर से स्नातकोत्तर स्तर तक अपनायी गयी होती। पर ऐसा नहीं हुआ और आज हताश राष्ट्र मुट्ठी भर अन्न के लिए दूसरे राष्ट्रों के सामने भिक्षापात्र लिये खड़ा है। हम गाधी जयन्ती के अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी का लेख दे रहे हैं जिसमें देश की नयी परिस्थितियों में नयी तालीम को अपनाने की सिफारिश की गयी है।—स०)

सन् १९३७ में देश के कुछ राज्यों में जब कांग्रेस का शासन आया, तब गाधीजी ने कांग्रेस मंत्रियों से कहा कि शिक्षण की पुरानी पद्धति के स्थान पर नयी पद्धति चालू करें, जो हमारे देश की जनता के लिए अनुकूल और अनुरूप हो।

ऐसी नयी शिक्षा-पद्धति क्या हो सकती है, इस पर विचार करने और निर्माण करने की दृष्टि से गांधीजी ने देश के शिक्षा शास्त्रियों और विचारकों का एक सम्मेलन वर्धा में बुलाया और तब बुनियादी तालीम का जन्म हुआ। आगे चलकर उस प्रवृत्ति के विकास और विस्तार के लिए सन् १९३८ में कांग्रेस ने 'हिंदुस्तानी तालीम संघ' की स्थापना की। उस संस्था के मंत्री का काम करने के लिए गांधीजी ने श्री आर्यनायकम्‌जी को चुना और उस दिन से अपने जीवन की आखिरी घड़ी तक श्री नायकम्‌जी ने अनन्य निष्ठा और अटूट श्रद्धा से उस काम में अपनी शक्ति लगायी।

शुरू में कई राज्यों में बुनियादी तालीम के विषय में बहुत उत्साह रहा और उल्लेखनीय प्रगति भी हुई। उस समय यह आशा बँधी कि देश के स्वतंत्र होते ही बुनियादी तालीम देश भर में फैलायी जायेगी, परन्तु वह आशा आशा ही रह गयी! स्वतंत्रता के बाद देश में शिक्षा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ी जरूर, लेकिन यह सब वही पुरानी लीक की शिक्षा थी। राज्य-सरकारों ने नयी तालीम को एकदम भुला दिया। यह बड़े दुर्भाग्य की बात थी, क्योंकि आज देश जिस दुःस्थिति का शिकार बना हुआ है, उसका एक प्रमुख कारण यह रहा है हमने शिक्षा की गलत पद्धति का ही चालू रखा। आज हम चारों ओर उसके दुष्परिणामों को देख रहे हैं। अधिकांश बच्चे थोड़ी-बहुत शिक्षा पाते ही किसी भी तरह का शरीर-श्रम करने में कतराने लगते हैं। कुछ ऊँची शिक्षा पानेवाले लड़के गाँव छोड़कर शहरों की ओर भाग निकलते हैं, ताकि वहाँ ज्यादा पैसा कमाने का कोई जरिया खोज लें। अपने ज्ञान और अपनी बुद्धि का उपयोग करके गाँव को उन्नत बनाने की बात शायद ही कोई सोचता हो। यहाँ तक कि जो लोग कृषि, गो-सेवा या उद्योगों की शिक्षा पाते हैं, वे भी उन उद्योगों पर जीवन बिताने की बात नहीं सोचते, किसी सरकारी नौकरी में आराम से जीना ही पसन्द करते हैं।

इस प्रकार अधिकतर होशियार बच्चे गाँव छोड़ देते हैं। देहात की कृषि में, गो-पालन में और देहाती उद्योगों में नये ज्ञान और विज्ञान का प्रवेश हो नहीं पाता, वे सब सदियों पुरानी पिछड़ी और प्राथमिक अवस्था में ही रह गये हैं। गाँवों में थोड़ा-बहुत नया रोशनी पहुँचाने के इरादे से सरकार चन्द विकास अधिकारियों और विशेषज्ञों आदि की नियुक्ति करती है, लेकिन वे अधिकारी शायद ही इन सब बातों की परवाह करते हैं, और वे जरा भी मेहनत करने को तैयार रहते हैं। वे तो थोड़ी दूर पैदल चल कर सुदूर देहात में जाने को भी तैयार नहीं होते हैं।

आज की दुर्दशा

देश में आज हम देख रहे है कि ज्यों-ज्यों शिक्षित जवानों की संख्या बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसी अनुपात मे उनमें बेकारो की संख्या भी बढ़ती जाती है। देश मे सभी चीजों का अभाव है, उत्पादन बढ़ाने की जरूरत है। ये शिक्षित जवान गाँव से बाहर निकल भले जाते, लेकिन शहरो म यदि किसी न किसी उत्पादक धन्धे में लगते, तो भी सहन हो सकता था, लेकिन ऐसा तो इने गिने ही करते हैं। अक्सर ये ऐसा ही काम खोजते है, जिसमे ज्यादा सिर खपाना न पड़े और कम-से-कम मेहनत लगे। शिक्षित बेकारो की इस बढ़ती हुई सेना से सरकार बहुत डरती है, क्योंकि यह सेना बड़ी उद्दण्ड है और अपने असन्तोष को जाहिर करने के लिए चाहे जिस तरह का प्रदर्शन और उपद्रव खड़ा करने मे हिचकती नही है। इसलिए सरकार इनको कही-न-कही काम पर लगाने के लिए नयी-नयी नौकरियाँ शुरू करती है। अलबत्ता ये सब नौकरियाँ कागज-कलम की ही होती है, जो सरकारी दफ्तरो में बैठकर की जाती है। फलस्वरूप आज देश में सरकारी कर्मचारियो की संख्या ६५ लाख से ऊपर पहुँच गयी है—वास्तव में जितने लोग चाहिए, उससे यह संख्या बहुत ही ज्यादा है—और इतने लोगों के भरण-पोषण का बोझ मेहनतकश जनता पर पड़ता है।

अधिकांश लोगों को इस परिस्थिति की भयानकता मालूम नही। देहाती लोग अपने लड़को को महज इसलिए पढ़ाते है कि पढ़-लिखकर वे किसी आसान काम में लगें, मेहनत से बचें और उन्हें भी खेत और जमीन की मशक्कत से बचायें। शिक्षण मेहनत से छूटने का मानो सिंहद्वार बन गया है।

वही पुरानी हालत

शिक्षा की आज की पद्धति और उसकी ओर देखने की लोगो की दृष्टि, दोनों वही है, जो पहले थी। हमारे देश में—और दुनिया के अधिकांश राष्ट्रों में भी—सामाजिक और राजनैतिक ढाँचा कई सदियो से ऐसा रहा है कि जिसमें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सत्ता मुट्ठी भर लोगो के हाथ मे केन्द्रित हो गयी है। इसकी वजह से समाज मे यह भेद पड़ गया कि कुछ लोग अमीर बन गये और बहुत लोग गरीब रह गये। बड़ी संख्या में जो लोग मेहनत करते थे, वे गरीबी म ही पड़े रहे, क्योंकि एक तो उत्पादन का उनका तरीका अनाड़ी था—जैसे आज भी भारत के अनेक गाँवो मे है। इस वजह से उत्पादन बहुत कम होता था और दूसरे, वे जो भी उत्पादन करते, उसका बड़ा भाग बड़े लोग हड़प जाते थे। जो समझदार और सुशिक्षित लोग थे, उन्हे

इस बात की जरा भी परवाह नहीं थी कि कृषि और अन्य उद्योगों में उत्पादन वृद्धि की समस्या हल करने में उनके ज्ञान का और विद्या का उपयोग हो। सच बात तो यह है कि उत्पादक-श्रम और श्रमिक की ओर नीची निगाह से देखा जाता था, उनसे नफरत की जाती थी। दौलत इकट्ठी करने का एक यही चालाकी भरा मार्ग लोग जानते थे कि बड़े-बड़े जमींदार बनकर दूसरों की मेहनत का बेजा फायदा उठाया जाय, लेन देन या व्यापार में लगा जाय या सत्ता हथियायी जाय। ज्ञान तो केवल उन लोगों के मतलब की चीज रह गया था जो दर्शनशास्त्र या अध्यात्म विद्या में रुचि रखते थे। उधर सरकारी कामों में मदद करने के लिए कारकून और अफसर चाहिएँ थे, तो उनको उस ढंग की शिक्षा की जरूरत पड़ी। कुछ लोगों के लिए तो शिक्षा शौक की चीज थी। बहुसंख्यक श्रमिकों के पास न तो इतना समय था न उसमें उनकी रुचि ही थी, क्योंकि वह उनकी रोज रोज की समस्या में रत्तीभर काम नहीं आ सकती थी। वे अपने भाग्य के भरोसे पर रह गये और शिक्षा—जिस रूप में वह थी—उनका भाग्य बदलने में हर तरह असमर्थ थी। कहीं कहीं एकाध युवक ऐसे थे जो ज्ञान की सीढ़ी चढ़कर ऊंचा मंजिल पर पैर रखने का सपना देखते थे।

यह भारत की पिछले जमाने की हालत थी। अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवाद के लायक नौकर तैयार करने के लिए स्कूल शुरू किये और वहां पढ़ाई का क्रम भी वैसा ही बैठाया। उन्होंने समाज की हालत और दृष्टिकोण को बदलने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने प्रशासन का जो तंत्र खड़ा किया और उद्योगों का जो ढांचा निर्माण किया उससे तो सफेदपोश लोगों का एक वर्ग बना और कुछ और लोगों को शासक वर्ग में दाखिल होने का या देशबंधुओं को फांसी पर चढ़ानेवालों के दल में शामिल होने का अवसर मिला। स्वराज्य के बाद परिस्थिति कुछ बदली लेकिन बहुत ही कम। शिक्षित लोगों की केवल संख्या बढ़ी और साथ ही समस्याएँ भी बढ़ीं।

नयी शक्तियां

परन्तु इस बीच दुनिया में भारी परिवर्तन हुए, नयी-नयी शक्तियाँ उभरने लगीं, नये विचार पनपने लगे। संसार भर में मानव ऊँचा उठने लगा। वह अब किसी का गुलाम या हाथ का औजार बन कर रहना नापसन्द करने लगा। अपना स्थान मान बदलने की उसने ठानी। लोकतंत्र, समाजवाद, समता, भाईचारा आदि विचारों का प्रचार हुआ और जगत की आग की तरह वे फैलने लगे। बड़ी-बड़ी क्रान्तियाँ हुईं और आन्तरिक व्यवस्था को बदलने लगा।

हर बच्चा इस धरती पर सुख से जी सकता है, बढ़िया जीवन जी सकता है। हर तरह की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करने लायक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, रोग दूर किये जा सकते हैं, बरबादी घटायी जा सकती है। यह सब कई राष्ट्रों म हुआ भी है और वे आर्थिक दृष्टि से हम से आगे है लेकिन यह सब इस बात पर निर्भर है कि लोगो को सही ढग की तालीम मिले। गाधीजी बुनियादी तालीम से यही अपेक्षा रखते थे।

इसम कताइ खेती, बढईगिरी, लुहारी आदि उत्पादक कामो को शिक्षा का अङ्ग माना गया है। लोग काम भी करते जाते है और शिक्षा भी लेते जाते हैं। इससे भी बड़ी बात यह कि वे काम के द्वारा शिक्षा पाते है। उनको यह शिक्षा मिलती है कि गणित, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगोल आदि का उनके नित्य जीवन म और हर काम म क्या उपयोग है, तथा इनमे वे अपने जीवन को कैसे समृद्ध और सुविधापूर्ण बना सकते है।

बुनियादी शिक्षा लोगो को नयी और नैतिक दृष्टि देने का प्रयत्न करती है, जिससे वे दफ्तरो म दाखिल होने की न दौड़े, बल्कि आसपास की जनता की सेवा करने और उनकी परिस्थिति बदलने का प्रयत्न करें। वह लोगो म उत्पादक श्रम के प्रति प्रतिष्ठा जगाने की कोशिश करती है।

लोग यदि अपना भाग्य स्वय निर्धारित करने की शक्ति चाहते है, तो उन्हे आसपास की दुनिया को ठीक स जानना चाहिए। उन्हे जाति, धर्म, भाषा आदि सकुचित और पुराने बधनो स मुक्त होना चाहिए। विशाल मानवीय दृष्टि अपनानी चाहिए। निर्भय और मजबूत होना चाहिए और अपना हक हासिल करने की दृढता उनमें आनी चाहिए। उनमें उत्साह हो, साहस करने की उमग हो तथा दूसरो के दुख-दर्द की सवेदना हो। साथ मिलकर काम करने की तैयारी हो, लोकतान्त्रिक ढग से जीने की क्षमता हो, और इन सारे गुणो और इन सारी योग्यताओ को शिक्षार्थियो में भरने का प्रयास नयी तालीम करती है।

जिन थोड़े से स्थानो म पूरी निष्ठा से सब नयी तालीम का प्रयोग हुआ, उसम इन अपेक्षाओ की पूर्ति म बहुत हद तक सफलता मिली है। यह सही है कि इस दुनिया में कोई चीज पूर्ण नही है। पूर्णता पाने के लिए सतत प्रयत्न करते रहना होगा। नयी तालीम म ऐसे प्रयत्न बराबर होते रहे हैं और आज भी हो रहे है कि वह बदलती हुई परिस्थितियो के अधिकाधिक अनुकूल होती जाय।

सरकार की उपेक्षा-नीति

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे शासक लोग अपनी पुरानी गयी-गुजरी मान्यताओं से मुक्त नहीं हो पाये हैं। उनके मन में वास्तव में विश्वास ही नहीं है कि गरीबी पूरी-की-पूरी मिटायी जा सकती है और अमीर-गरीब का भेद दूर किया जा सकता है। वे यही मानते हैं कि राजनैतिक और आर्थिक सत्ता हमेशा मुट्ठीभर लोगों के ही हाथ में रहनेवाली है और जिस तरह पुराने जमाने में ब्राह्मण रहते थे, उसी तरह शिक्षित और ज्ञानी लोग कम ही रहनेवाले हैं। लोकतंत्र और चुनावों को वे लोगों को बहलाकर खुद सत्ता हथियाने का एक साधन ही मानते हैं? दुर्दैव से सामान्य जनता भी लगभग इसी तरह की दकियानूसी मान्यताओं और विचारों में फँसी हुई है। वे ही सारी पुरानी पद्धतियाँ आज भी ज्यों-की-त्यों विराजमान हैं और उनके परिणाम भी हम भोग ही रहे हैं।

आशा की किरण

इस अन्त को देखने पर भविष्य बड़ा अंधकारमय दीखता है फिर भी आशा की एक किरण है और वह दीख रही है—ग्रामदानी गाँवों के अंदर। ग्रामदानी गाँवों ने एक नया समाज कायम करने का संकल्प किया है और उस दिशा में पहला कदम भी उठाया है। मुझे सन्देह नहीं है कि इस तरह ग्रामदान के द्वारा नयी तालीम देश में अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेगी और ग्राम स्वराज्य की स्थापना में बड़ी मददगार साबित होगी।

•

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

अनुक्रम

अक्तूबर, '६७

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ म व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

डा० राममनोहर लोहिया के निधन पर

सर्व-सेवा-संघ का शोक प्रस्ताव

सर्व-सेवा-संघ की प्रबन्ध समिति डा० राम-मनोहर लोहिया के निधन पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है। देश के कमजोर तबके के प्रति उनकी जो समवेदना थी, सतत जूझने और विषमता-विरोध की जो लगन थी, और जीवन पर्यन्त ध्येय-निष्ठा के लिए समर्पण की भावना थी, उसके कारण देश के निराशाजनक और असंवेदनशील वाता-वरण में आशा की शक्तियों को बल मिलता था। उनके जाने से जो रिक्तता लोक-जीवन में आयी है, उसके निवारण के लिए डा० लोहिया की आदर्शवादिता से सबको प्रेरणा मिलती रहे यह हमारी प्रार्थना है। यही उनके लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

नयी तालीम : अक्तूबर '६७
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि सं० एल १७२३

'भूदान यज्ञ' साप्ताहिक

सम्पादक आचार्य राममूर्ति

पृष्ठ सं० १६ : आकार ९" × ११"

वार्षिक शुल्क १० रुपये : एक प्रति २० पैसे

विनोबा, जयप्रकाश नारायण, धीरेन्द्र मजूमदार, दादा धर्माधिकारी आदि प्रखर विचारको के चिन्तन, देश भर में चल रहे सर्वोदय-आन्दोलन तथा वर्तमान राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में नयी समाज-रचना के नये आयाम से सम्पर्क का माध्यम।

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

पत्रिका विभाग

राजघाट, वाराणसी-१

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट सर्व सेवा-संघ की ओर से खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स मानमन्दिर, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित।
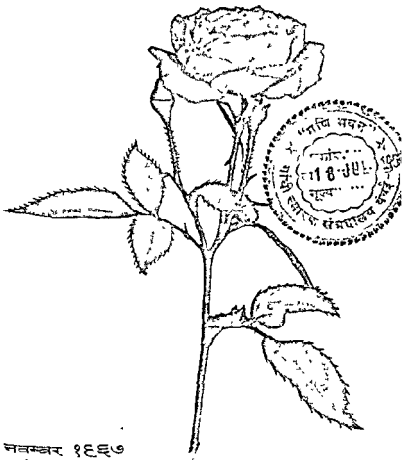
नवम्बर १९६७
वर्ष १६ : अंक ४

पड़ोस, पडोसी और पड़ोस-स्कूल

आजकल 'पडोस-स्कूल पर (जिसे नेबरहुड स्कूल कहते हैं) बहुत जोर है। कहा जा रहा है कि एक पडोस म रहनेवाले जितने बच्चे हों वे सब, धनी या गरीब, एक ही स्कूल मे जायँ। धनी बच्चा के लिए आज की तरह अलग स्कूल न हो। 'पडोस-स्कूल' के समर्थकों का यह दावा है कि शिक्षण में यह समाजवाद की दिशा म एक कदम है। माँ-बाप तो विपमता मे पल ही चुके, कम-से-कम बच्चे तो समता की शुद्ध, खुली हवा म साँस लें।

अभी उस दिन मेरे एक मित्र मिलने आये। हैं कलाकार, लेकिन कोई बडी कमाईवाले नही हैं। उनकी ८ साल की बच्ची साथ थी। मैंने पूछा 'इसे पडोस के किसी परिवार म रख दिया होता। बच्चो के साथ खेलती।' बोले "पडोस भी तो हो! किसके घर बिठा दूँ? सयोग स दाहिने-बायें कुछ सम्पन्न परिवार हैं—ठाट-बाट वाले! एक दिन मैंने देखा कि वे क्रिकेट का सामान लेकर खेलने निकले। खेल की लालच से मेरी लडकी पास चली गयी। चट पडोसी का छोटा लडका बोल उठा—'तू क्या कुत्ते की तरह आ गयी।' भाई, मैं क्या कहूँ, गुस्सा पीकर रह गया। उस दिन से मैं स्कूल स आने पर इसे साथ ही लिये

वर्ष : १६
श्रंक : ४

रहता हूँ। बराबरी तो तब हो जब इसके हाथ मे भी बैट और बॉल हो।"

बात उन्होने सही कही। मैंने मान लिया कि वह ठीक करते हैं कि बच्ची को साथ लिये रहते है। एक बच्चे को जिन बच्चो के बीच रहकर हर वक्त आत्महीनता महसूस होती रहे, इसमे अच्छा है कि वह अलग रहे। आत्महीनता मनुष्य के व्यक्तित्व के लिए घोवे का कीडा है। अन्दर-अन्दर खा जाता है। आत्महीनता का शिकार मनुष्य कभी सिर उठाकर चल नही सकता, दुनिया मे अपने लिए सम्मान का स्वतन्त्र स्थान बना नही सकता। कुछ भी हो, बच्चे को उस रोग से तो बचाना ही चाहिए।

समाजवाद अपनी जगह ठीक है, और बच्चे का व्यक्तित्व अपनी जगह जरूरी है। बल्कि समाजवाद की अच्छाई ही इस बात मे है कि मनुष्य के सही और स्वतंत्र विकास मे जो बाधाएँ समाज की रचना के दोष के कारण खडी हो गयी हैं वे समाजवाद के द्वारा दूर हो जायँगी। अगर यह न हो तो क्या पूँजीवाद और क्या समाजवाद, केवल नाम का भेद रह जायगा।

एक बडी बात जान लेने की यह है कि समाजवाद एक पूरी व्यवस्था का नाम है जो आज की सामन्तवादी-पूँजीवादी व्यवस्था का स्थान लेगी, और जिसमे हर चीज बदल जायगी। इसलिए समाजवाद की लडाई लडनी हो तो हर मोर्चे पर लडी जानी चाहिए। उस लडाई को केवल सरकार नही लड सकती। केवल कानून की शक्ति से समाज-परिवर्तन नही हो सकता। समाज की ही शक्ति समाज के परिवर्तन की आँधी बहा सकती है। कानून कुछ रुकावटे दूर कर सकता है, और समाज के निर्णय पर मुहर लगा सकता है।

इस नागरिक-शक्ति की इकाइयाँ (सेल) बननी चाहिएँ। हर पडोस एक इकाई बने, और विषमता के हर प्रदर्शन के खिलाफ हवा बनाये। साथ ही यह हवा भी बनाये कि गाँव और महल्ले की व्यवस्था अधिक-से-अधिक वहाँ रहनेवाले नागरिकों के निर्णय और सहयोग से हो। शीघ्र एक दिन वह आ जाय कि विकास और व्यवस्था का पूरा काम नागरिक संगठन के हाथ मे चला जाय।

नागरिक-शक्ति का अर्थ वह शक्ति नही है जो दलपति और पूँजो-

पति की होती है। आज म्यूनिसिपैल्टी या जिला परिषद दलपति और पूँजीपति, शासक और सेठ की सम्मिलित शक्ति से चलती है। इसलिए नागरिक की शक्ति के विकास का अर्थ है शासक और सेठ की शक्ति का ह्रास। इसी को समाजवाद की क्रान्ति कहते हैं।

समाजवाद की समग्र क्रान्ति के लक्षण कहाँ दिखाई दे रहे हैं? क्रान्ति नागरिक को कहाँ छू रही है? उसकी हवा भी कहाँ है? राजनीति की सत्तापरस्ती, अर्थनीति की सम्पत्तिपरस्ती और शिक्षण का नौकरी परस्ती ज्यों की त्यों चल रही है बल्कि बढ़ रही है। ऐसा नहीं दिखाई देता कि देश, और देश का एक-एक नागरिक एक नयी दिशा में बढ़ने के लिए तैयार हो रहा है। न नयी दिशा है न नया दर्शन है। समाजवाद का दल है साइनबोर्ड है नारे हैं लेकिन समाज की बुनियादें बदलनेवाला आन्दोलन कहाँ है?

पड़ोस के स्कूल को शक्ति और प्रतिष्ठा समाजवाद से ही मिल सकती है। अगर बाहर समाजवाद की तेज हवा न बहती हो तो स्कूल में पढ़नेवाले बच्चों का बुरा हाल होगा। सम्पन्न बच्चों का अहंकार उन्हें चौपट करेगा और सामान्य बच्चों की आत्महीनता उन्हें खा डालेगी। दोनों बरबाद होंगे तो देश का भविष्य क्या होगा?

मेरी कल्पना ऐसी है कि जिस तरह सीखने के विषयों को अलग अलग नहीं गिना, बल्कि यह माना है कि सब एक-दूसरे में ओत प्रोत हैं और सब एक में से ही उत्पन्न हुए हैं। उसी तरह शिक्षक की भी एक ही कल्पना है। विषयवार अलग अलग शिक्षक नहीं, एक ही शिक्षक।

—महात्मा गांधी

रहता हूँ। बराबरी तो तब हो जब इनके हाथ मे भी बैट और बॉल हो।

बात उन्होने सही कही। मैने मान लिया कि वह ठीक करते हैं कि बच्ची को साथ लिये रहते है। एक बच्चे को जिन बच्चो के बीच रहकर हर वक्त आत्महीनता महसूस होती रहे, इससे अच्छा है कि वह अलग रहे। आत्महीनता मनुष्य के व्यक्तित्व के लिए घीवे का कीडा है। अन्दर-अन्दर खा जाता है। आत्महीनता का शिकार मनुष्य कभी सिर उठाकर चल नही सकता दुनिया मे अपने लिए सम्मान का स्वतन्त्र स्थान बना नही सकता। कुछ भी हो, बच्चे को उस रोग से तो बचाना ही चाहिए।

समाजवाद अपनी जगह ठीक है, और बच्चे का व्यक्तित्व अपनी जगह जरूरी है। बल्कि समाजवाद की अच्छाई ही इस बात म है कि मनुष्य के सही और स्वतन्त्र विकास मे जो बाधाएँ समाज की रचना के दोष के कारण खडी हो गयी हैं वे समाजवाद के द्वारा दूर हो जायँगी। अगर यह न हो तो क्या पूँजीवाद और क्या समाजवाद, केवल नाम का भेद रह जायगा।

एक बडी बात जान लेने की यह है कि समाजवाद एक पूरी व्यवस्था का नाम है जो आज की सामन्तवादी-पूँजीवादी व्यवस्था का स्थान लेगी, और जिसम हर चीज बदल जायगी। इसलिए समाजवाद की लडाई लडनी हो तो हर मोर्चे पर लडी जानी चाहिए। उस लडाई को केवल सरकार नही लड सकती। केवल कानून की शक्ति से समाज परिवर्तन नही हो सकता। समाज की ही शक्ति समाज के परिवर्तन की आँधी बहा सकती है। कानून कुछ रुकावटे दूर कर सकता है और समाज के निर्णय पर मुहर लगा सकता है।

इस नागरिक-शक्ति की इकाइया (सेल) बननी चाहिएँ। हर पडोस एक इकाई बने और विषमता के हर प्रदशन के खिलाफ हवा बनाये। साथ ही यह हवा भी बनाये कि गाव और महल्ले की व्यवस्था अधिक-से-अधिक वहाँ रहनेवाले नागरिको के निर्णय और सहयोग स हो। शीघ्र एक दिन वह आ जाय कि विकास और व्यवस्था का पूरा काम नागरिक सगठन के हाथ म चला जाय।

नागरिक-शक्ति का अर्थ वह शक्ति नही है जो दलपति और पूँजी

पति की होती है। आज म्यूनिसिपैल्टी या जिला परिषद दल्पति और पूँजीपति, शासक और सेठ की सम्मिलित शक्ति से चलती है। इसलिए नागरिक की शक्ति के विकास का अर्थ है शासक और सेठ की शक्ति का ह्रास। इसी को समाजवाद की क्रान्ति कहते हैं।

समाजवाद की समग्र क्रान्ति के लक्षण कहाँ दिखाई दे रहे हैं? क्रान्ति नागरिक को कहाँ छू रही है? उसकी हवा भी कहा है? राजनीति की सत्तापरस्ती, अर्थनीति की सम्पत्तिपरस्ती और शिक्षण की नौकरी परस्ती ज्या की त्या चल रही है बल्कि बढ रही है। ऐसा नहीं दिखाई देता कि देश, और देश का एक-एक नागरिक एक नयी दिशा में बढने के लिए तैयार हो रहा है। न नयी दिशा है न नया दर्शन है। समाज वाद का दल है साइनबोर्ड है नारे हैं लेकिन समाज की बुनियादे बदलनेवाला आन्दोलन कहा है?

'पडोस के स्कूल' को शक्ति और प्रतिष्ठा समाजवाद से ही मिल सकती है। अगर बाहर समाजवाद की तेज हवा न बहती हो तो स्कूल में पढनेवाले बच्चो का बुरा हाल होगा। सम्पन्न बच्चो का अहकार उन्हें चौपट करेगा, और सामान्य बच्चो की आत्महीनता उन्हे खा डालेगी। दोना बर्बाद होगे तो देश का भविष्य क्या होगा?

मेरी कल्पना ऐसी है कि जिस तरह सीखने के विषयों को अलग अलग नहीं गिना, बल्कि यह माना है कि सब एक-दूसरे में ओत प्रोत हैं और सब एक में से ही उत्पन्न हुए हैं। उसी तरह शिक्षक की भी एक ही कल्पना है। विषयवार अलग अलग शिक्षक नहीं, एक ही शिक्षक।

—महात्मा गाधी

आज का अमरीकी शिक्षण

श्री के० एस० आचार्लु

आजकल हमारे देश म सास्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था व मानदण्ड जीवन की आधुनिक अमरीकी पद्धति और विचारा म इतने अधिक भावान्वित है कि इसमें कोई आश्चर्य नही कि हमारी शिक्षा-पद्धति, उसके आदर्श, याजनाएँ और कार्यक्रम आज के अमरीकी शिक्षा पण्डिता के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव में है।

इसलिए यह आवश्यक है कि सयुक्त राज्य की आज की शिक्षा के उद्देश्य, नाय और कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान प्राप्त हा जिससे कि हमारी शिक्षा-प्रणाली और अन्तत हमारी राष्ट्रीय सस्कृति पर उसका जो प्रभावशाली असर पडना है उसका हम स्पष्ट ज्ञान हा सकें।

महायुद्ध से बाद के वर्षों म अमरीका मे इतनी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई कि उनस अमरीका के जीवन की नींव हिल गयी। उसके कारण ही शिक्षा-सम्बन्धी विचारा में प्रगतिवादी विचारकों द्वारा उत्प्रेरित भ्रान्ति मच गयी। उस समय क विचार पर पूर्ण बालक की कल्पना हावी थी जिसके अनुसार किसी शिक्षा परिस्थिति म सम्पूर्ण मानवी शरीर सम्मिलित हाता है। स्कूल का काम असम्बद्ध इकाइयो के टुकडा में नही बाँटा जाता, बल्कि एक सम्पूर्ण इकाइ म सम्मिलित किया जाता है। अनुभव मे हिस्सेदारी, उत्पादक या रचनात्मक भाव प्रदान सीखनेवाले क हित या स्वार्थ स्कूल या समाज की सामाजिक आवश्यकताएँ—शिक्षा के नारे थे। शिक्षा बालक केंद्रित, जीवन केन्द्रित और समाज केंद्रित थी।

सन् १९५७ का मानसिक धक्का

अमरीकी शिक्षा पद्धति के इतिहास म परिवर्तन बिन्दु आया १९५७ का पहला रूसी उपग्रह छूटने के समय से। राष्ट्र आत्मसन्तोष के वातावरण में से कइ धक्कों के कारण भयानक रूप स हिल उठा, जिससे लोग गम्भीर वास्तविकता के प्रति जागृत हो गये। एक अमरीकी के लिए यह सत्य बात बडी लज्जाजनक थी कि अब तकनीकी ज्ञान का एकाधिकार सयुक्त राज्य के हाथ मे नही है और उसमे इजीनियरो और वैज्ञानिको की कमी है। सोवियत रूस का एटमी शक्ति के रूप म सामने आ जाना, बाह्य अन्तराल की खोजा म नेतृत्व करना, यूरोपीय

उद्योग की बाढ़ और दक्षिणपूर्वी एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका में स्वतंत्र राष्ट्रों की उत्पत्ति से यह डर पैदा हुआ कि संसार का नेतृत्व संयुक्तराज्य के हाथों से फिसला जा रहा है। सारे देश में एक निराशापूर्ण विस्मय का भाव छा गया और शिक्षा-पद्धति पर इस परिस्थिति के लिए दोषारोपण किया जाने लगा। संवाद संप्रेषण, उत्पादन, यातायात और युद्धकला के ज्ञान की खोज के लिए अत्युच्च विकसित तकनीक की आवश्यकता ने वैज्ञानिक ज्ञान को मानवी अस्तित्व के लिए मूलभूत आवश्यकता बना दिया। नौजवानों की बौद्धिक विशेषताओं की उन्नति के लिए आवश्यक व्यवस्था के अभाव जैसी लगनेवाली परिस्थिति की आलोचना अनेक बुद्धिमानों ने की। प्रगतिशील शिक्षा के कुछ सिद्धान्तों की भी उन्होंने आलोचना शुरू की। इनमें से कुछ बुद्धिमानों को राष्ट्रीय सुरक्षा में शिक्षा की कोई सीधी देन न होने के कारण बड़ी चिंता उत्पन्न हो गयी। इसलिए प्रो० आइ० जान गुडलेड के शब्दों में शिक्षा 'हमारा बलिदान का बकरा' बन गयी और नये दर्शन, नये अर्थशास्त्र, नये समाजशास्त्र से सम्बद्ध हो गयी और शिक्षा की सारी प्रणालियाँ इस नव संस्कृति में जोड़ दी गयीं। यह माना गया कि शिक्षा का काम राष्ट्रीय अनुशासन को सबल बनाना है।

शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान

पिछले २५-३० वर्षों में अमरीका की सामाजिक व्यवस्था में इतना परिवर्तन हुआ है जितना कि इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ। टेक्नालाजी-सम्बन्धी और आर्थिक विकास की गति ने यह परिवर्तन ला दिया है। आज का अमरीका ३० साल पूर्व के अमरीका से बिलकुल भिन्न है। आज का परिवर्तन इतना तीव्र है कि पारम्परिक मूल्यों के संरक्षण और संस्कृति परम्परा की रक्षा की बात आज एक पुरानी गप और भ्रम मालूम देती है। औद्योगिक व्यवस्था और भाग के अर्थशास्त्र को आज स्वयंचालित यन्त्रों के अर्थशास्त्र ने पिछाड़ दिया है। सर्वोच्च समृद्धि ने उत्पादन की नयी तकनीकों की खोज को प्रोत्साहित किया है। आज के तकनीकी उद्योग में अकुशल और अर्द्धशिक्षित हस्तकौशल का कोई स्थान न होने के कारण शिक्षा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है। नयी अर्थ-व्यवस्था को नये और अनुभवसिद्ध कौशलों, मजदूर में शिक्षा के ऊँचे मानों, उच्च शिक्षित-व्यावसायिक सलाहकारों और सूझ-बूझ-वाले मेधावी व्यवस्थापकों की आवश्यकता है। इसलिए स्कूलों और कालेजों को नयी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति को कार्यरूप में लानेवाले प्रमुख साधनों के रूप में कार्य करना है।

शिक्षा के लिए निश्चित उद्देश्यो के केन्द्रबिन्दु (फोकस) मे परिवर्तन सबसे अधिक मूलगामी परिवर्तन था । तीन दिशाओं मे गति प्रकट थी । प्रथम, स्कूल राष्ट्रीय आवश्यकताओ की पूर्ति, राष्ट्रीय नीतियों के अनुसरण के प्रति अधिकाधिक अर्पित हुआ । राष्ट्रीय, राजनैतिक और सामाजिक वास्तविकताओ के प्रति अन्धा बनने की शिक्षक मे आशा न की जाती थी । पाठ्यक्रम इस विचार की ओर भुका कि शिक्षा को गतिमान राजनैतिक ओर फौजी उपयोगिता मे अपने को सम्बद्ध रखना चाहिए । द्वितीय, बच्चो के मानसिक विकास की जगह धीरे-धीरे बौद्धिक शक्ति प्राप्त करने पर बढते हुए बल ने ले ली । राष्ट्रीय आवश्यकताओ ने प्रमुखता प्राप्त की इसलिए मूलभूत बौद्धिक अनुशासनो—अंग्रेजी, गणित, प्रारम्भिक विज्ञान, इतिहास और विदेशी भाषा का महत्व बढा । शिक्षा मे मानसिक सम्पूर्णतावादी परिवर्तन की जगह शैक्षणिक परिवर्तन ने ले ली । तृतीय सीमान्त के तौर पर प्रारभिक पर्दे की ओट हो गया ।

पहले का विचार—'सम्पूर्ण बालक' स्कूल आता है और शिक्षा को उसको पूर्ण व्यक्तित्व से अपने को सम्बद्ध करना चाहिए ? पीछे छोडकर उसकी जगह एक बढता हुआ विचार जोडा गया कि बालक को विद्यार्थी बनने के लिए शिक्षित करना चाहिए । बौद्धिक और अनुशासनात्मक पहलुओं पर जोर दिया गया और शेष विचार पर्दे की ओट ढकेल दिये गये । आज की मुख्य चिन्ता देश के बौद्धिक स्रोतो का विकास करना है । फलत विभिन्न प्रकार के विद्यार्थियो की छिपी भावी योग्यताओ पर अधिक ध्यान देना है और उनकी प्रगति के लिए अवसर प्रदान करते है । असाधारण बालक चाहे वे प्रतिभाशाली हो या साधारण मे निम्नकोटि के हो, खोज निकाले जाते है और उनको योग्यता के अनुसार विकास के अवसर दिये जाते है । अधिक उच्च शैक्षणिक योग्यतावाले विद्यार्थियो के शिक्षण के लिए अधिक ध्यान दिया जाता है और अधिक व्यवस्था की जाती है ।

इन सब धाराओ ने स्कूल और विद्यार्थियो के प्रति शिक्षको के कार्यों और रुखो मे बड़े परिवर्तन उत्पन्न कर दिये है । आज शिक्षक 'शिष्यों द्वारा विषय पर अधिकार' अपना लक्ष्य बनाता है । वह शिक्षा के किसी क्षेत्र मे विशेषज्ञ माना जाता है । दर्जे के कमरे मे दी जानेवाली शिक्षा के अलावा कई विशेषज्ञ भर्ती करने का दल बन रहा है । शिक्षक की जिम्मेदारी है कि टेक्नालाजी और शिक्षा मे मदद करनेवाले यान्त्रिक शैक्षणिक उपकरणो द्वारा सीखने की प्रक्रिया म नयी सूझ प्रदान करें ।

(मूल अंग्रेजी स)

प्राकृतिक वातावरण और समवाय

वंशीधर श्रीवास्तव

प्राकृतिक वातावरण समवाय का एक केन्द्र है। बालक प्रकृति की गोद में ही पलता है। प्रकृति के नियमों और तत्वों में बालक की जिज्ञासा ही उसकी शिक्षा का प्रारम्भ है। उसकी ज्ञान राशि का बहुत बड़ा भाग प्रकृति के सहवास और साहचर्य से ही अर्जित किया गया है। प्रकृति ही उसकी आदि गुरु है। भगवान दत्तात्रेय के गुरुओं में कई प्रकृति के रूप भी थे। उन्होंने पक्षियों से गान सीखा और पशुओं से व्यवहार और नैतिकता। प्रकृति के सहवास में सीखा हुआ ज्ञान मनुष्य के लिए सदा से रुचिकर रहा है। प्रकृति के अंचल से दूर हटकर शिक्षा की प्रक्रिया शुष्क और अप्राकृतिक हो जाती है। यूरोप में ऐसा ही हुआ था। वहाँ धीरे धीरे शिक्षा का प्रकृति से विच्छेद हो गया था। इसलिए १८वीं शती में रूसो ने प्रकृति की ओर लौटो का नारा लगाया था और उसके बाद भी सभी प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री प्रकृति के अध्ययन और निरीक्षण द्वारा बालक की शिक्षा की बात करते रहे है।

बालक के लिए पुस्तक का माध्यम मनोरंजक नहीं होता। प्रकृति का माध्यम मोहक और आकर्षक होता है। गाँवों के स्कूल नगरों के विद्यालयों की अपेक्षा प्रकृति की लुभावनी छटा के अधिक निकट हैं। इस प्राकृतिक वातावरण में नाना प्रकार के उपयोगी और बलिष्ठ पशु हैं चहचहाते हुए पक्षी हैं मोहक फूल-पत्ते हैं—पेड़-पौधे हैं रहस्यों से भरे सूरज चाँद सितारे ग्रह और उपग्रह हैं शीतल वायु की हिलोरें हैं प्रबल नदियों की धारा पर अठखेलियाँ करती हुई लहरें हैं उफनाती फुफकारती नदियाँ हैं—सर्वभक्षी सर्वहारा जिनका रूप है वर्षा की शीतल फुहारें हैं सावन के भूमते हुए प्रलयंकर मेघ हैं बादलों में कौंधती हुई बिजली है कड़कता हुआ वज्र है वसन्त की पुष्पित सुगंधित अम राइयों पर कोकिल की पंचम स्वर की तान है गुरुगंभीर गर्जन करता हुआ समुद्र है कंकड़-पत्थर बालू और मिट्टी है कीड़ों-मकोड़ों का अद्भुत संसार है। सभी सुन्दर और आकर्षक हैं। सभी से कुछ-न-कुछ सीखा जा सकता है। परन्तु जब हम गाँव के इन स्कूलों में भी बालक को प्रकृति के इन रूपों से अलग कर केवल किताबों में लिखी बातें ही सिखाते और रटाते हैं तो गलत करते हैं।

वास्तव में बालक को इस बात का अधिकाधिक अवसर मिलना चाहिए कि वह अपने चारों ओर की प्रकृति का निरीक्षण करे और उसमें जो घटनाएँ घटें उनके रहस्य को जानने का प्रयास करे।

निरीक्षण का व्यवस्थित कार्यक्रम

हमारे स्कूलों के चारों ओर प्रकृति का अनन्त वैभव और असीम सौन्दर्य बिखरा हुआ है। इस वैभव और सौन्दर्य का वैज्ञानिक अध्ययन बालक की जिज्ञासा को जागृत करे और उसके व्यक्तित्व को अधिकाधिक सम्पन्न बनाये यही बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य है। प्रकृति का यह रूप नित नूतन है, क्योंकि नित परिवर्तित है। अतः उसकी शैक्षिक सम्भावनाएँ अपार हैं। यदि बेसिक स्कूलों का प्रयोग प्रकृति के वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन के लिए किया जाय तो ये स्कूल भविष्य के वैज्ञानिकों की तैयारी के आदिस्रोत बन सकते हैं। इसके लिए सबसे पहली आवश्यकता यह है कि निरीक्षण का व्यवस्थित कार्यक्रम बनाया जाय। बालकों को स्वतः निरीक्षण का अधिकाधिक अवसर देते हुए भी उनको बतलाया जाय कि अमुक वस्तु या घटना के निरीक्षण के समय वे किन किन बातों को देखेंगे। निरीक्षण के लिए सप्ताह में एक-दो दिन निश्चित कर लिया जाय। अध्यापन मनमाना न हो। प्रकृति की किसी एक घटना या रूप को ले लिया जाय। निरीक्षण के लिए जाने के पहले अध्यापक निरीक्षण के समय जिन जिन बातों का अध्ययन किया जायगा, उन्हें बता दे। फिर बालक निरीक्षण कर अपने-अपने अनुभव लिखें। स्कूल लौटकर अथवा घटनास्थल पर ही उनके कुछ विवरणों को पढ़ा जाय और बालक उनपर वाद विवाद करें। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा बालक प्रकृति के वास्तविक रूप और उसके नियमों और रहस्यों से परिचित हो जायँगे। धीरे धीरे उन्हें अखिल सृष्टि में एक सार्वभौमिक नियम व्याप्त मिलेगा। छोटे-छोटे से अणु से पशुओं से सर्वश्रेष्ठ मनुष्य तक की एकता का अनुभव कर वे प्राचीन ऋषियों के साथ कह सकेंगे, 'यत् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे। शेष सृष्टि के साथ तादात्म्य का अनुभव कर वे अपने को प्रकृति का अभिन्न अंग मानना सीखेंगे और प्रकृति के रहस्यों और नियमों को जानकर वे अपने और मानव-जाति के सुख के लिए उनका उपयोग करना भी जानेंगे।

प्रकृति के रहस्यों और नियमों को समझना और मानव की सुख-सम्पन्नता के लिए उनका उपयोग ही पशु से ऊपर उठकर मनुष्य बनने का इतिहास है। किसी प्रदेश की मिट्टी, जलवायु, वनस्पति और जीवजगत से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को समझे बिना आप मनुष्य के सामाजिक वातावरण को नहीं समझ सकते।

भौतिक वातावरण का समंजन

प्राकृतिक वातावरण की चर्चा करते हुए शिक्षाशास्त्री डाक्टर सैयदन लिखते है—

"बच्चा जीवन के आरम्भ से ही भौतिक शक्तियों और घटनाओं म घिरा रहता है। इसलिए अपने कार्यकलापो को प्रभावी रूप स सगठित करने के लिए उसका सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि वह अपनी भौतिक परिस्थितिया को पहचाने और उनके नियमों और अवस्थाओं के अनुसार अपने को ढाले। इसलिए कुदरती तौर पर पाठ्यक्रम के एक भाग का सम्बन्ध भौतिक परिस्थितियों के अध्ययन से है जिसमें बच्चे को न केवल ज्ञान ही दिया जाता है बल्कि उस ज्ञान के प्रति उसके दृष्टिकोण का भी ठीक किया जाता है। स्कूल की शिक्षा स उसमें इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि वह अपने आस-पास के भौतिक ससार की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को और उसम होनेवाली घटनाओं का, और जिन नियमो से वे घटती है उनको समझ सके, प्राकृतिक ससार के सौन्दर्य का आनन्द ले सके और उसके सौन्दर्य स प्रभावित हो उठे और इसकी कुछ महत्त्वपूर्ण शक्तियो का अपने काम मे उपयोग कर सके। अत बच्चे का अपने भौतिक वातावरण समजन के लिए यह आवश्यक है कि उसके मन, उसकी भावनाओं और उसके सकल्प मे एकरूपता हो। एक उदाहरण से इसके अर्थ स्पष्ट हो जायँगे। एक ऐसे बच्चे की कल्पना कीजिये जो गाँव में रहता है, जो किसी छोटी नदी के किनारे बसा हो। यह नदी बालक की भौगोलिक परिस्थितियों का भाग है, यह कैसे है इस बालक को समझाया जाय। पहले तो बच्चे को यह समझाना चाहिए कि नदी क्या है? यह अपना ऐसा रवैया कैसे बनाती है? इसके बहने की दिशा का निर्धारण किस प्रकार होता है और समुद्र तल तक पहुँचते-पहुँचते इसे किन परिस्थितियो म स गुजरना पडता है? इस नदी के तट पर इसी गाँव या नगर की तरह कितने बडे-बडे गाँव या नगर हैं? ये गाव या नगर इसके तट पर क्यो बस गये और आज भी क्यो बसे हैं? इस नदी म नावें चलती हैं, क्यो? आदि आदि। यही प्राकृतिक वातावरण के साथ सैद्धान्तिक ज्ञान का समवाय है।"

"इस प्रकार जब बालक धीरे धीरे नदी को समझने-बूझने लगेगा तो फिर वह नदी के सौन्दर्य का आनन्द भी लेने लगेगा। तब वह समझने लगेगा कि नदी धीरे धीरे बहुत धीमी गति स मैदानो म होकर क्या बहती है या क्यो तेज और तूफानी गति से पहाडो म गुजरती है और ढलानों के नीचे बह जाती है। जब अस्त होता हुआ सूर्य अपनी किरणें उस पर डालकर उसे सुनहरा सुन्दर

रूप दे देता है तो बच्चे को इस दृश्य का आनन्द देना चाहिए और उसमें अपनी इस प्रसन्नता को उचित ढंग से व्यक्त करने की योग्यता आनी चाहिए। यही बालक की भावनाओं का प्रकृति के साथ समंजन है।"

"इसके बाद स्वभावत उसे बतलाना चाहिए कि वह इस साधन का अपनी सुख-सुविधा के लिए किस प्रकार उपयोग कर सकता है। इसके लिए जरूरी है कि बालक को नदी में डरना नहीं चाहिए और उसमें नदी पार करने की क्षमता होनी चाहिए। उसे जानना चाहिए कि सिंचाई और बहनेवाली प्राकृतिक नाली के रूप में इसके क्या उपयोग है और उसमें नदी के पानी को सिंचाई के लिए खेतो तक ले जाने की योग्यता भी आनी चाहिए। बाढ आती है तो नदी से बहुत नुकसान होता है। अत नदी पर बाँध बाँधना भी उसे आना चाहिए। यह सब प्रकृति के साथ समवाय है।"

शिक्षा के जिस पाठ्यक्रम में भी प्रकृति का यह रूप और उससे ज्ञान देने की बात को शामिल नहीं किया गया हो, निश्चय ही वह एकतरफा और दोषपूर्ण है। हमारे अधिकांश स्कूलों में पाठ्यक्रम आम तौर पर किताबी होता है अर्थात् उनका उद्देश्य मुख्य रूप से ज्ञान-सूचना देना मात्र है। वह क्रियात्मक पाठ्यक्रम नहीं होता। वास्तव में पाठ्यक्रम का उद्देश्य तो यह होना चाहिए कि वह ऐसे सन्तुलित और योग्य व्यक्ति पैदा करे जो अपने प्राकृतिक वातावरण में उपलब्ध वस्तुओं के विषय में जाने और अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए उनका उपयोग कर सकें।

•

शिक्षा से त्रिविध स्वावलम्बन सधना चाहिए—एक, अपने शरीरश्रम से जीविका प्राप्त की जा सके, दो, स्वतंत्र विचार की शक्ति विकसित हो, और तीन, आध्यात्मिक प्रगति के लिए उपयोगी ज्ञान अर्जन करने की शक्ति पैदा हो।

—विनोबा

पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में पठन-पाठन

व्रजभूषण शर्मा

पढ़ने का उद्देश्य ● अर्थ-बोध की शक्ति
शब्द भण्डार की अभिवृद्धि ● पठन शिक्षण

भाषा शिक्षण में पठन शिक्षण का सर्वाधिक महत्त्व है। पढ़ने की शिक्षा पर ही *लिखने, बोलने, समझने आदि भाषा के अन्य अंगों तथा बालकों का* ज्ञान-सम्वर्द्धन बहुत कुछ निर्भर करता है। पढ़ना शब्द अपने इसी महत्त्व के कारण इतना व्यापक बन गया है कि वह सम्पूर्ण शिक्षा का पर्याय-सा हो गया है—*आपने कहाँ तक पढ़ा है? तुम किस कक्षा में पढ़ते हो? आदि प्रयोग* उसकी व्यापकता के ही द्योतक हैं। भाषा-सम्बन्धी अन्य क्रियाओं—समझना, बोलना और लिखना आदि की कुशलता भी पढ़ने पर ही अवलम्बित है। बालक पढ़कर ही बोलने और लिखने की विषय-सामग्री प्राप्त करता है। पढ़ने का महत्त्व केवल भाषा जानने की ही दृष्टि से नहीं है बल्कि बालक के सम्पूर्ण भावात्मक एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से भी है, क्योंकि पढ़ना ज्ञानार्जन, नाना रुचि एवं अनुरंजन दोनों का साधन है। पढ़ने की क्रिया से ही विषय को समझने की क्षमता बढ़ती है और वस्तुबोध की यह क्षमता केवल साहित्यिक दुनिया तक ही सीमित न रहकर अन्य सभी विषयों—इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति, सामान्य ज्ञान, विज्ञान आदि में भी देखी जाती है। यदि बालक स्वयं पढ़कर समझने लगे और फिर समझते हुए पढ़ने लगे तथा पढ़ने में आनन्द का अनुभव भी करने लगे तो शिक्षा का उद्देश्य पूरा हो गया। इस प्रकार पढ़ना भाषाज्ञान के साथ-साथ बालक की शिक्षा एवं समस्त विषयों की ज्ञानोपलब्धि एवं आनन्द प्राप्ति का प्रमुख साधन है। अतः पठन के प्रति बालकों में रुचि उत्पन्न करना और अधिकाधिक पढ़ने के लिए उन्हें उत्प्रेरित करना शिक्षक का प्रथम कर्तव्य हो जाता है।

पढ़ने का उद्देश्य

प्राइमरी कक्षाओं में पठन शिक्षण का मुख्य उद्देश्य पढ़ने के कौशल में अभिवृद्धि करना होता है। इस स्तर पर बालक को पढ़ने की ऐसी सामग्री

प्रदान की जाती है जिसमें बालक परिचित हो और अर्थ एवं विचार की दुरूहता एवं शून्यता में न उलझकर सरलतापूर्वक पढ़ने की क्रिया जान लें तथा एक सामान्य गति में व पढ़ने लगें। इस पढ़ने को कण्ठ से अभिव्यक्त करने के लिए ही इस अवस्था में बालक सस्वर पठन करते हैं। इस अवस्था तक आँखों की गति भी अभ्यस्त हो चुकी रहती है। वस्तुतः आँखों से देखने और उन्हें उच्चरित करते जाने की क्रिया ही पढ़ना है। लिपि को देखना, वाणी रूप में उच्चरित करना और साथ ही साथ आगे की सामग्री को पढ़ लेना इनका तारतम्य इस प्रकार बना रहता है कि बोलने और देखने में कहीं अन्तर नहीं पड़ता और पढ़ने का प्रवाह बना रहता है। यह कौशल प्राइमरी कक्षा तक अवश्य आ जाना चाहिए।

पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में पठन के उद्देश्य निम्नलिखित होंगे—

१ मौन-पठन द्वारा अपरिचित तथा नूतन सामग्री के अर्थग्रहण की क्षमता अर्जित करना।

२ ज्ञानोपलब्धि।

३ मनोरंजन और ज्ञानवर्धन।

४ पठन रुचि की वृद्धि तथा विस्तार।

५ प्रभावपूर्ण भावाभिव्यक्ति के साथ सस्वर पठन।

६ पठन गति की वृद्धि।

७ सन्दर्भ ग्रन्थों कोष अनुक्रमणिका आदि में सहायता लेने का प्रारंभिक शिक्षा

अर्थ-बोध की शक्ति

प्राइमरी कक्षाओं में पठन क्रिया में प्रारम्भिक कुशलता प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य होता है। पूर्व माध्यमिक स्तर पर विषय-सामग्री जानने के लिए पढ़ने की प्रशिक्षा देनी चाहिए। शब्दों के अर्थ समझते हुए पूरे वाक्य का फिर उनके सम्बद्ध अर्थ द्वारा अनुच्छेद का और फिर पूरे प्रकरण का अर्थ जान लेना उनके लिए अभीष्ट है।

इस स्तर पर बालकों में यह क्षमता हो जानी चाहिए कि पठित सामग्री का सामान्य और ससम्बद्ध अर्थ समझ लें। कुछ पाठ्य-सामग्री ऐसी भी होती है जिसका केवल सामान्य एवं प्रत्यक्ष अर्थ जान लेने में ही वास्तविक अर्थ नहीं ज्ञात हो पाता और परोक्ष तथा प्रच्छन्न अर्थ के भी जानने की आवश्यकता पड़ती है। गूढ़ तथा क्रिया प्रधान सामग्री के पठन का प्रारम्भ हो जाता है। जिन वाक्यों को पठित अंश के स्थूल एवं प्रत्यक्ष अर्थ के साथ साथ प्रच्छन्न एवं

सूक्ष्म अर्थ को भी निकालने की प्रशिक्षा देनी चाहिए। अन्त कथाएँ, विषय वस्तु को समझने के लिए दिये हुए विविध चित्र, ग्राफ, तालिकाएँ एवं आकृतियों को देखने, समझने और विषय में सम्बन्धित करने की योग्यता भी इस स्तर पर बालकों में आ जानी चाहिए।

पठित अश में सम्बन्धित सामग्री को कोष एव सहायक ग्रंथो, मासिक पत्रिका आदि मे ढूंढ निकालने की योग्यता उत्पन्न करना भी एक मुख्य उद्देश्य है, जिससे बालकों में अधिकाधिक पढने की रुचि उत्पन्न हो और ज्ञानवर्द्धन भी होता चले। बालको मे पुस्तकालय के समुचित प्रयोग की योग्यता और स्वाध्याय की प्रवृत्ति पैदा हो जाय।

पठन की गति

प्राइमरी कक्षाओं मे पढने का कौशल बच्चे सीख चुके रहते है। इसी कारण उस अवस्था में सस्वर पठन पर जोर दिया जाता है, किन्तु पूर्व माध्यमिक कक्षाओं मे वास्तविक पठन मौन पठन ही है और मौन पठन में ही पठन की गति अधिक बढ़ भी सकती है। सस्वर पाठ में ध्वनि को उच्चरित करने में जो समय लगता है, वह मौन पाठ मे अपने आप बच जाता है और पढ़ने की गति बढ जाती है। अत यह देखने की आवश्यकता है कि बालक बोलकर या गुनगुनाकर न पढ़ें। आँखो से देखकर मन में ही शीघ्र-से-शीघ्र पढने और समझने की क्षमता उन्हे प्राप्त हो जाय।

पठन गति का समझने से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि बालक की पठन-गति तेज है तो समझने की गति भी अधिक समझी जायगी।

शब्द-भण्डार की अभिवृद्धि

इस स्तर पर पठन-शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि बालकों के शब्द-भण्डार की अभिवृद्धि हो और वे शब्दों के अर्थ निकालने तथा प्रयोग करने में अधिक-से-अधिक सक्षम सिद्ध हो सकें। अर्थ जाने हुए शब्दो का भी वे उपयुक्त प्रकार से प्रयोग कर लें और जो शब्द अपरिचित हो, उनका भी अर्थ प्रसग के आधार पर निकालने में समर्थ हो। खण्ड, सन्धि-विच्छेद, समास-विग्रह, उपसर्ग-प्रत्यय एव व्युत्पत्ति आदि द्वारा वे शब्द का अर्थ निकाल लें। पर्याय, विलोम और सहचारिता के आधार पर भी शब्दो के अर्थ अनायास निकल आने हैं, यह क्षमता भी बालको में होनी चाहिए।

पठन-शिक्षण

भाषा तथा उसके किसी भी अग का सीखना एक कौशल अथवा कला

है। यह एक क्रियात्मक विषय है जिसे सीखने के लिए बालक को सतत अभ्यास करने की आवश्यकता पड़ती है। पढ़ने के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। कक्षा में प्रत्येक बालक को पढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। अभी व्यावहारिक रूप में पठन शिक्षण नाममात्र को ही होता है क्योंकि या तो अध्यापक पढ़कर सुनाता है अथवा कोई एक-दो अच्छे बालक पढ़ते हैं। और कक्षा के अन्य बालक केवल सुनने का काम करते हैं। इस प्रकार सब बालकों को पढ़ना नहीं आ सकता। पढ़ना सीखने के लिए स्वयं पढ़ने का अवसर मिलना ही चाहिए। और यह अवसर जितना ही अधिक मिले उतना ही अच्छा। पठन शिक्षण में ऐसी व्यवस्था करने की आवश्यकता है कि सब बालकों को स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ने और पढ़कर समझने का अवसर मिले।

पढ़ना सीखने के लिए पठन-सामग्री की प्रचुरता भी अत्यन्त आवश्यक है। हमारे विद्यालयों में भाषा शिक्षा के अन्तर्गत पठन की दृष्टि से बहुत ही थोड़ा सामग्री निर्दिष्ट रहती है। माइकेल वेस्ट ने मातृभाषा शिक्षण के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि सामान्यतः एक छोटी-सी पुस्तक नियत रहती है, जिसे कोई भी शिक्षित पुरुष एकाध दिन में आद्योपान्त पढ़ सकता है भाषा का इस छोटी-सी गोली को बालक साल भर तक चबाते रहते हैं। यह सामग्री इतनी कम रहती है कि प्रतिदिन एक पृष्ठ से अधिक पढ़ना नहीं पड़ता और उसकी विधि जिसमें अध्यापक या कोई एक छात्र पढ़कर सुना देता है और बाकी छात्र सुनने का काम करते हैं पढ़ने का नहीं।

अतः बालकों को अधिकाधिक पठन-सामग्री पढ़ने के लिए उपलब्ध होनी चाहिए और उस बात की उचित प्रतिक्षा हो। कक्षा-पुस्तकालय तथा उसमें उपयुक्त सहायक पुस्तकों का रहना इस दृष्टि से परम आवश्यक है। अभ्यास की दृष्टि से पढ़ना सिखाने के लिए प्रचुर मात्रा में पढ़ने के सिद्धान्त के सम्बन्ध में जान बाटन डैना ने लिखा है— (१) पढ़ो (२) पढ़ो (३) कुछ और पढ़ो (४) कुछ भी पढ़ो (५) प्रत्येक वस्तु के विषय में पढ़ो (६) मनोरंजक सामग्री पढ़ो (७) जो तुम्हें रुचिकर हो वह पढ़ो (८) पढ़ो और पठित सामग्री के विषय में चर्चा करो (९) कुछ चीजें सावधानी के साथ पढ़ो (१०) अधिकांश चीजें सरसरी रूप से पढ़ो (११) पढ़ने के विषय में सोचो मत (१२) बस पढ़ो।

इस कथन का तात्पर्य यह है कि बालकों को पढ़ने के लिए सामग्री की प्रचुरता हो वे उसे पढ़ें और उसके सम्बन्ध में चर्चा करें। यह सामग्री जितना

भी अधिक व्यापक और प्रचुर होगी, बालकों की पठन-शिक्षा भी उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी।

विषय-वस्तु का समझना पठन क्रिया का मुख्य अंग है और पठन के साथ-साथ ही यह बोध होते जाना चाहिए। प्रारम्भ में बालकों का सबोध पठन की क्रमायोजित रूप से शिक्षा देनी चाहिए। कभी-कभी पठन-कार्य के लिए प्रश्न या समस्या दे देने से सबोध पढ़ने में बहुत सहायता मिलती है। किसी प्रयोग अथवा शिल्प कार्य करने के पहले निर्देशों को मौखिक रूप में बताने की जगह लिखित रूप में दे देने से भी अर्थ समझकर पढ़ने के लिए छात्र बाध्य-से हो जाते हैं। प्रश्न इस प्रकार के हो सकते हैं

"पढ़कर मालूम करो कि मधुमक्खियाँ शहद कैसे बनाती है ?"

"तेनसिंह ने पर्वतारोहण कैसे सीखा ?

"२६००० फीट की ऊँचाई पर पहाड़ का क्या दृश्य होता है ?"

"अन्त में किस प्रकार नरभक्षी सिंह मारा गया ?"

पठन-कार्य के अन्त में भी बोध का परीक्षण होना चाहिए और ऐसे प्रश्न होने चाहिए, जिससे अर्थ और भी स्पष्ट हो जाय। बच्चों में अर्थ की गहरी सूझ और अन्तर्दृष्टि पैदा हो सके। व्याख्या और अर्थ-स्पष्टीकरण के साथ साथ शब्दों के अर्थ स्वयं निकाल लेने की विधियाँ भी बताते चलना चाहिए। अधिक व्यवहार में आनेवाले शब्दों का उत्तरोत्तर रूप से उचित अनुपात में प्रयोग सिखाने का भी पठन शिक्षण में चलन है, इससे शब्दों का अर्थ-ग्रहण अधिक स्पष्ट होता है और उन पर सक्रिय अधिकार कराने के कार्य में इस अवसर का उपयोग करने से समय और श्रम की बचत भी होती है। परन्तु ये *कार्य समूचे अर्थ का ग्रहण करने में और विभिन्न अर्थान्वितियों को सम्बद्ध बनाने* में व्यवधान न उत्पन्न करें, इसका ध्यान रहे। यों बिना सचेष्ट प्रयत्न के पढ़ते-पढ़ते भी और विविध प्रसंगों में साक्षात् होते होते शब्दों पर अनायास अधिकार हो जाता है। यही नहीं, वरन् अपने मस्तिष्कों और विश्लेषण से प्राप्त हुए अर्थ अधिक प्रमाणित और टिकाऊ होते हैं।

सारांश यह है कि इस स्तर पर पठन शिक्षण में शिक्षक का मुख्य कार्य बच्चों को विविध पठन सामग्री उपलब्ध कराना, उन्हें स्वयं पढ़ने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन देना, सहायता और प्रशिक्षा देना एवं स्वयं प्रयत्न द्वारा गृहीत अर्थ की जाँच तथा उसकी अभिवृद्धि करना है।

—उपप्राचार्य, राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद

अंकगणित-शिक्षण में द्रुत मौखिक प्रश्न

आदित्य नारायण तिवारी, एम० एस-सी० एल्टी

प्राथमिक पाठशालाओं के प्रायः सभी अध्यापक अंकगणित के द्रुत मौखिक प्रश्नों से परिचित हैं। वेसिक अंकगणित में ऐसे बहुत से प्रश्न पृष्ठों के निचले भाग में दे दिये गये हैं। इन प्रश्नों का अंकगणित के शिक्षण में क्या महत्त्व है तथा इनका प्रयोग कब और कैसे कक्षा में होना चाहिए, इन्हीं बातों पर प्रस्तुत लेख में विचार विनिमय किया गया है।

द्रुत मौखिक प्रश्नों का महत्त्व

जिन प्रश्नों का अन्तिम उत्तर छात्र बिना बीच के क्रमपदों को लिखे हुए मन ही मन निकाल कर दे देते हैं, उन्हें मौखिक प्रश्न कहते हैं। अन्तिम उत्तर के निकालने में काफी द्रुतता (शीघ्रता) करनी आवश्यक होती है। इसीसे ऐसे प्रश्नों को द्रुत मौखिक कहा गया है। ऐसी मानसिक या मौखिक गणना का कोई महत्त्व नहीं होता, जिसमें लिखकर गणना करने की अपेक्षा अधिक समय लगे। व्यापारी, दूकानदार, ग्राहक इत्यादि सभी को जीवन की ऐसी ही परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है जहाँ लिखकर गणना करना सम्भव नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में अधिकांश कार्य मौखिक-गणना पर ही आधारित होते हैं। हम प्रारम्भ से ही मौखिक प्रश्नों के सतत अभ्यासों द्वारा छात्रों को ऐसी परिस्थितियों के लिए तैयार करना चाहिए।

मौखिक प्रश्नों का व्यावहारिक जीवन में तो महत्त्व है ही, कक्षा शिक्षण में भी इनका काफी महत्त्व है। छोटी-छोटी संख्याओं का प्रयोग करके मौखिक प्रश्नों द्वारा किसी प्रकरण का सम्बोध स्पष्ट करना सुगम होता है। बड़ी-बड़ी संख्याएँ सम्बोधों के स्पष्टीकरण में बाधक हो जाती हैं। अतः किसी भी नवीन प्रकरण को प्रस्तुत तथा विकसित करने के लिए द्रुत मौखिक प्रश्न बहुत ही सहायक सिद्ध होते हैं। इन छोटे छोटे प्रश्नों की सहायता से शिशुओं में तर्क-शक्ति सरलता से उत्पन्न की जा सकती है। बालक किसी वस्तु को जितनी ही शीघ्रता में सीखते हैं उतनी ही शीघ्रता से भूलते भी हैं। अतः मौखिक प्रश्नों के सतत अभ्यास में ही उनके ज्ञान में दृढ़ता एवं परिपक्वता लायी जा सकती है। मौखिक गणित में परिपक्वता के बिना लिखित प्रश्नों का करना शिक्षण-कला की दृष्टि से एक भारी भूल है।

मौखिक कार्य में शिक्षक को सामूहिक शिक्षण का अवसर मिलता है, जो बालकों के लिए रुचिकर होता है एव उनमें स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करने मे सहायक होता है। शिक्षक बालकों के अधिक सन्निकट आ जाता है। प्रत्येक छात्र की प्रगति एव कठिनाइयो का उसे बोध हो जाता है। छात्रों के प्रति इस प्रकार का ज्ञान उनकी दुर्बलताओं के निदान करने मे अध्यापक के लिए आवश्यक होता है। प्रत्येक छात्र की कठिनाइयों के स्थल भिन्न-भिन्न होते है। इनके ज्ञान के बिना उनकी दुर्बलताओ को दूर करना अध्यापक के लिए असभव हो जाता है।

द्रुत मौखिक प्रश्नों की शिक्षण-विधि

अकगणित के प्रत्येक पाठ मे पहले ५ मिनट से १० मिनट तक मौखिक प्रश्नो का पूछना आवश्यक होता है। इससे पूर्व-ज्ञान को पुनरावृत्ति हो जाती है और बालक नवीन पाठ के लिए प्रस्तुत हो जाते है। गिनती, पहाडा, जोड़, घटाना, गुणा, भाग, ऐकिक नियम, आदि सम्बन्धी द्रुत मौखिक के प्रश्न छोटे बालकों से प्रतिदिन पूछना आवश्यक होता है।

मौखिक प्रश्नो का वितरण कक्षा मे समान होना चाहिए। प्रत्येक छात्र को उत्तर देने का अवसर मिल जाना चाहिए। प्राय. अध्यापक हाथ उठानेवाले छात्रों से ही प्रश्न पूछते हैं। इससे कक्षा के दुर्बल छात्रो को अवसर नहीं मिल पाता और वे दिन-पर-दिन अधिक पिछड़ते जाते है। सामान्यत कमजोर छात्रो से ही पहले प्रश्न पूछना चाहिए। तीव्र छात्रो से शुद्ध उत्तर प्राप्त करने के पश्चात् उन्हे पुन शुद्ध उत्तर देने का अवसर देना चाहिए।

द्रुत मौखिक प्रश्नो के उदाहरण

द्रुत मौखिक प्रश्नो के कतिपय उदाहरण नीचे दिये जा रहे है। इसी प्रकार और प्रश्नो की रचना करके प्रतिदिन मौखिक अकगणित का अभ्यास कराना चाहिए। अभ्यास इस सीमा तक हो जाना चाहिए कि उत्तर देने में मस्तिष्क को कार्य न करना पड़े, बल्कि बिना सोचे ही जबान से शुद्ध उत्तर निकल आये।

गिनती

(१) एक-एक, दो-दो, आदि छोडकर निम्नलिखित प्रकार की सख्या-श्रेणियो को बनवाना :—

१, ३, ५, ७, ९, ११, १३,.........

२, ४, ६, ८, १०, १२, १४,.........

१, ४, ७, १०, १३, १६,.............

(२) निम्नलिखित प्रकार उल्टी गिनती गिनवाना :—

१०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १

२०, १९, १८, १७, १६, १५,.................

५०, ४९, ४८, ४७, ४६, ४५,.................

१००, ९९, ९८, ९७, ९६, ९५,...... ....

पहाडा

(१) निम्नलिखित सख्याओ का तीन गुना बताओ —

३, ४, ६, ७, १२, १३, १६,.........

(२) सात गुना बताओ —

२ का, ९ का, ११ का, १३ का, १६ का।

(३) निम्नलिखित सख्याएँ किन सख्याओ की दुनी है —

६, ८, १०, १४, २२, २६, ३०

(४) ये सख्याएँ किनकी पाँच गुनी है —१०, १५, २५, ३५, ४५, ६५

जोडना

जोडने के द्रुत मौखिक प्रश्नो को कराने के लिए निम्नलिखित जोड के पहाडे का पर्याप्त अभ्यास करा देना चाहिए

+	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८

इस पहाड़े का ज्ञान हो जाने पर जोडने की क्रिया मौखिक करना बड़ा ही सुगम हो जाता है, जैसे ६+७=१३ के ज्ञान का उपयोग निम्नलिखित ढग से सिखाया जा सकता है :

१६+७ =२३, २६+७=३३, ३६+७=४३,...

१६+१७=१६+१०=२६+७=३३

२६+१७=२६+१०=३६+७=४३

७६+२७=७६+१०=८६+१०=९६+७=१०३

कक्षा मे निम्नलिखित ढग के प्रश्न पूछे जा सकते है —

प्रत्येक म ३ जोडो ४, ६, ८, १५, २५, २८

प्रत्येक में ७ जोडो १३, १६, २७, २६, ४६, ७८

प्रत्येक में १४ जोडो २१, ३५, ३८, ५५, ६३, ७७

प्रत्येक म २५ जोडो ३०, ३२, ४२, ५४, ६४, ७४

घटाना

घटाने की मौखिक क्रिया जोडने की क्रिया से ही सम्बन्धित करके सिखाना चाहिए, जैसे ८,५ सिखाने के लिए इसे ५+?=८ के रूप म पूछना चाहिए। जोड का पर्याप्त अभ्यास हो जाने से घटाने के मौखिक प्रश्न सरलता से सिखाये जा सकते है। उदाहरण है—

१—प्रत्येक म से २ घटाओ ४, ६, ११, १३, १७, २१, २५

२—प्रत्येक मे से ७ घटाओ १०, १२, २६, ३२, ४४, ६५

३—प्रत्येक में से १० घटाओ २०, २५, ४४, ६५, ७६, ९४

४—प्रत्येक म से १५ घटाओ ३६, ५४, ६३, ७६, ८४।

गुणा-भाग

गुणा-भाग के मौखिक प्रश्नो के लिए गुणा के पहाडे का खूब अभ्यास होना चाहिए। इन मौखिक प्रश्नो के उदाहरण है

१—प्रत्येक म २ का गुणा करो ८, १६, २२, २४, ३२, ४०

२—प्रत्येक मे ५ का गुणा करो ५, १०, १५, २०, २४, ३०

३—प्रत्येक म १० का गुणा करो: ६, १६, २१, ३४, ६५, ७८

४—प्रत्येक मे १६ का गुणा करो ८, १०, १२, १६, २०, २५

५—प्रत्येक म ३ का भाग दो. ६, १८, २७, ३६, ४८, ६०

६—प्रत्येक में ७ का भाग दो. २८, ४९, ७०, ८४, ११२, १४०

इबारती प्रश्न

जोड़—घटाना तथा गुणा भाग का यान्त्रिक ढंग से अभ्यास कराना बहुत ही आवश्यक होता है। साथ-ही-साथ छोटी छोटी संख्यावाले ऐसे इबारती प्रश्न भी पूछने चाहिए, जिनके उत्तर देने में छात्रों को सोचना पड़े कि जोड़ने, घटाने, गुणा और भाग में से कौन-सी क्रिया करनी है। इन प्रश्नों से छात्रों में चिन्तन एवं तर्क करने की क्षमता बढ़ती है।

दशमलव तथा साधारण भिन्न

दशमलव भिन्न के शिक्षण में अंकों के स्थानीय मान का पर्याप्त अभ्यास करा देना चाहिए। दशमलव भिन्नों के जोड़ घटाने में बालकों को अधिक कठिनाई नहीं होती है। दशमलव के शिक्षण में १०, १००, १०००, आदि के गुणा-भाग का बड़ा महत्त्व है। इसका बालकों को खूब अभ्यास करना चाहिए। कुछ प्रश्नों के उदाहरण हैं—

१ जोड़ो २+ ३, ८+ ५, १४+ ६, २८+१ ३

२ घटाओ ८— ३, १२— ७, ३२—१५, २—१३

३ प्रत्येक में १० का गुणा करो—१ २, २ २४, ०३, २ १

४ प्रत्येक में १०० से भाग दो— ३, २३, ४ ३४, ५

५ जोड़ो—$\frac{१}{२}+\frac{१}{२}$, $\frac{१}{२}+\frac{१}{४}$, $\frac{१}{८}+\frac{१}{४}$, $\frac{१}{३}+\frac{१}{६}$, $\frac{५}{६}+\frac{१}{६}$

६ घटाओ—$\frac{३}{४}-\frac{१}{४}$, $\frac{७}{८}-\frac{१}{८}$, $\frac{७}{८}-\frac{१}{४}$, $१-\frac{१}{२}$, $२-\frac{२}{३}$

७ सरलतम रूप में लिखो—$\frac{२}{४}$, $\frac{८}{१२}$, $\frac{४}{२०}$, $\frac{१८}{२४}$, $\frac{१२}{७२}$, $\frac{२०}{४५}$, $\frac{१३}{३५}$

माप-तौल की दाशमिक प्रणाली

माप-तोल की दाशमिक प्रणाली में विदेशी भाषा के शब्दों की प्रचुरता के कारण प्रायः बच्चों को कठिनाई होती है। अतः स्पष्ट कर देना चाहिए कि लम्बाई नापने की मुख्य इकाई मीटर, तोलने की ग्राम और धारिता की लीटर है। इनके पहले उपसर्गों का प्रयोग होता है डेका, हेक्टो, किलो, डेसी, सेन्टी, मिली। डेका का अर्थ १०, हेक्टो का अर्थ १००, और किलो का अर्थ १००० होता है। डेसी का अर्थ दसवाँ भाग, सेन्टी का सौवाँ भाग और मिली का हजारवाँ

भाग होना है। नापने तथा तोलने म काफी प्रयागात्मक कार्य करा देना चाहिए। इसमे छात्र नापो तथा बाँटो मे परिचित हो जाते है और वस्तुओ की लम्बाई-भार तथा बर्तनो की धारिता का अनुमान लगाने में अभ्यस्त हो जाते है। दशमलव सख्याओ का प्रयोग नाप-तौल की दाशमिक प्रणाली म प्रचुरता स करना चाहिए। मौखिक कार्य मे उन्ही इकाइयो पर बल देना चाहिए, जो व्यवहार में आती है, जैसे—लम्बाई म किमी, मी, सेमी और मिमी। भार म कुन्तल, किग्राम, ग्राम, धारिता मे लीटर।

द्रुत मौखिक प्रश्नो के उदाहरण

१ प्रत्येक म कितना जोडें कि १ किग्राम हो जाय २०० ग्राम, ५५० ग्राम।

२ दशमलव का प्रयोग करके मीटर म लिखो—
३०० समी, १ मीटर ५० सेमी, ५ मीटर ७५ सेमी, ८ समी २ मिमी।

३ कुन्तल में लिखो—
७० किग्राम, ७५० किग्राम, ५ कुन्तल ५ किग्राम ६७५ ग्राम।

४ किमी में लिखो—
१५० मीटर, १५ मीटर, २० सेमी २ किमी, ८०० मी।

५ लीटर में लिखो—
१५ मेली, ५ मिली, १३ डेसीली, ३ ली ६० सेली।

ऊपर केवल उदाहरण हेतु ही कुछ प्रश्न दे दिये गये है। इन्ही ढगो के बहुत-से प्रश्नो की रचना अध्यापक स्वय कर सकते है। मौखिक गणित के लिए अलग स घण्टा निश्चित करने की आवश्यकता नही होती है। गणित के प्रत्येक घण्टे में कुछ मिनट तक अभ्यास कराने से बालक द्रुत मौखिक प्रश्नो में पक्के हो जाते हैं। प्रत्येक अध्यापक को द्रुत मौखिक प्रश्नो का महत्व समझना चाहिए और प्रतिदिन के शिक्षण में इन पर बल देना चाहिए।

(गवर्नमेंट सेण्ट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद)

●

भारतीय शिक्षादर्श और आधुनिक शिक्षा

डा० त्रिभुवन झा

भारतीय मनीषियों ने मनुष्य की अन्त कला की मूलभूत वृत्तियों का गहरा अध्ययन कर मानव-जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय की कल्पना की थी। ये चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। वृहदारण्यकोपनिषद् में पुत्रैषणा, लोकैषणा और वित्तैषणा, इन तीन ऐषणाओ का जीवन की मूल-प्रेरक शक्ति माना गया है। परन्तु उपनिषद् में ही इन ऐषणाओं पर आत्म-तत्त्व की महत्ता प्रतिपादित की गयी है और इन्हें आत्म-प्रेम का निम्न रूप ठहराया गया है, क्योंकि इन एषणाओं के मूल मे आत्म-प्रेम ही कार्य करता है। आत्म-प्रेम के अन्तर्गत ही अपने को अमर करने की लालसा बद्धमूल है, वह चाहे पुत्र और धन के रूप मे हो या लाव-यश के रूप मे। इससे यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के सम्बन्ध म भारतीय दृष्टि भेदात्मक होती हुई भी अभेद भावात्मक है। अनेकत्व म एकत्व (आत्मत्व) भारतीय दृष्टि की अपनी विशेषता है।

शिक्षा की अवधि

दो प्रकार के और वर्गीकरण विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। समाज की सुविधा या आवश्यकता और मनुष्य की योग्यता को ध्यान में रखते हुए भारतीयों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार वर्णों की कल्पना की थी— 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।' इस वर्गीकरण के आधार मनुष्यों के गुण और कर्म थे। व्यक्ति जीवन की अवधि को भी उन्होंने चार आश्रमों में विभाजित किया था। ये आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास थे। इन आश्रमों की कल्पना जीवन का सुसंचालित, नियमित एवं व्यवस्थित करने के लिए की गयी थी। इससे समाज म एक मर्यादा कायम रहती थी। ब्रह्म-चर्याश्रम विद्याध्ययन और ज्ञानार्जन का काल था। आश्रमों और पुरुषार्थ चतुष्टय को एक साथ मिलाकर देखने से स्पष्ट हो जायगा कि धर्म की उपासना ब्रह्मचर्य-आश्रम म ही की जाती थी। जो हमें धारण करे वह धर्म होता है। अर्थात् जिसके बिना हमारा अस्तित्व खण्डित हो और जो हमारी स्थिति का कारण हो, वह धर्म होता है। ऐसे ही धर्म की उपासना का काल ब्रह्मचर्य आश्रम था। इसकी ही मूल भित्ति पर आगे का जीवन निर्भर करता था।

विद्या और धर्म की ऐकान्तिक साधना के इस काल में ब्रह्मचर्य का इतना अधिक महत्त्व था कि इस काल (आश्रम) का नाम ही ब्रह्मचर्याश्रम पड़ गया। जीवन की अवधि तब साधारणतः एक सौ वर्षों की मानी गयी थी और इसके अनुसार एक आश्रम की अवधि २५ वर्षों की निर्धारित की गयी थी। उस समय के ब्रह्मचर्याश्रम को ही आज की भाषा में विद्यार्थी-जीवन कहा जा सकता है।

इस प्रसंग में एक मौलिक प्रश्न उठ खड़ा होता है कि विद्याध्ययन और ज्ञानार्जन का जीवन के प्रारंभिक २५ वर्षों तक ही क्यों सीमित किया जाय, जब सीखने की क्रिया और ज्ञानोपलब्धि आजीवन चलती रहती है। साथ ही विद्वानों ने यह भी माना है कि बच्चा जब माँ के गर्भ में आ जाता है तभी से उस पर माता के आचार विचार तथा पारिवारिक वातावरण का प्रभाव पड़ने लगता है। अतएव ज्ञानार्जन और संस्कार-संचयन को एक निश्चित अवधि में परिसीमित करना अवैज्ञानिक है। वर्गीकरण की इस अपूर्णता और अवैज्ञानिकता का ज्ञान हमारे ऋषियों को न था सो बात नहीं। ये सारे वर्गीकरण उन्होंने सुविधा को ध्यान में रखकर किये थे।

ज्ञानार्जन की एकान्तिक साधना

पाश्चात्य शिक्षाशास्त्रियों में रूसो का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। रूसो ने शिक्षा के तीन विभाग किये थे—(क) निसर्ग शिक्षण (ख) व्यक्ति शिक्षण और (ग) व्यवहार शिक्षण। मानव के भीतर ही भीतर होनेवाली शारीरिक मानसिक और बौद्धिक वृद्धि या आत्मिक विकास ही उनके अनुसार निसर्ग शिक्षण है। बाह्य परिस्थिति से जो ज्ञान प्राप्त होता है और व्यवहार में जो अनुभव उपलब्ध होता है उस समस्त पदार्थ-ज्ञान और भौतिक जानकारी रूसो के मतानुसार व्यवहार शिक्षण है। इन दोनों शिक्षणों से प्राप्त ज्ञान का उपयोग बाह्य जगत में किस तरह किया जाय इस बारे में मनुष्यों के प्रयत्नों के वाचिक शास्त्रीय शिक्षण को उन्होंने व्यक्ति-शिक्षण कहा था। भारत के प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार विद्यार्थियों को तीनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी न कि आधुनिक युग में शालेय शिक्षा पर ही जोर दिया जाता था। आधुनिक युग में शालेय शिक्षण का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। इस सन्दर्भ में विद्यार्थी-जीवन से हमारा तात्पर्य मनुष्य के विद्याभ्यास और ज्ञानार्जन की उस ऐकान्तिक साधना से है जिसे वह गुरुकुलों विद्यालयों कालेजों विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षण-संस्थाओं संस्थानों में नियमित रूप से सुनिश्चित पाठ्यक्रम के अनुसार एक निर्धारित समय में सम्पन्न करता है।

ब्रह्मचर्य की शिक्षा

अत्यन्त प्राचीन काल में भारत म शिक्षा गुरुकुलो अर्थात् गुरु के आश्रमो में दी जाती थी। ये गुरु स्वभाव और संस्कार, दोनो से वीत-राग थे। ब्रह्मोपासना और आध्यात्मिक चिन्तन इनके जीवन के परम लक्ष्य थे। इनके आश्रम प्राय वनो म होते थे। प्रकृति की गोद में दी जानेवाली उस शिक्षा का आदर्श उन दिनो धार्मिक एव आध्यात्मिक था। विद्यार्थी को अपने विद्यार्थी-जीवन म गुरु के आश्रम म रहना पडता था और शिक्षा एक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार न दी जाकर समवाय पद्धति पर विविध क्रियाशीलनो के द्वारा दी जाती थी। विद्यार्थी के शारीरिक विकास पर उतना ही ध्यान दिया जाता था, जितना उसके मस्तिष्क के विकास पर। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय की शिक्षा का लक्ष्य 'अग्रतो विभल शास्त्र पृष्ठत सशर धनु' था अर्थात् उस समय के विद्यार्थी शास्त्र और शस्त्र दोनो म प्रवीण होते थे। आचार्य विशेषज्ञ ही नही, बहुज्ञ भी थे। आचार्य का तात्पर्य बताया जाता है 'आचिनोति, आचरति, आचार कारयति।' अर्थात् आचार्य वह है जो सब विषयो का अध्ययन करता है, खुद आचरण करता है और दूसरो से आचरण कराता है। ऐसे आचार्य वस्तुत देवतु ल्य थे। अत 'आचार्यदेवो भव' के अनुसार गुरु म देवत्व की कल्पना की गयी, गुरु को देवतुल्य माना गया। गुरु शिष्य को श्रद्धा की साक्षात् मूर्ति होता है। इसीलिए 'गीता' कहती है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' श्रद्धावान् ही ज्ञान लाभ करता है। विद्यार्थी-जीवन की अन्तिम विशेषता ब्रह्मचर्य की साधना थी। आचार-शुद्धता का जो व्यामोह प्राचीन काल के विद्यार्थियो में था वह आज के शिक्षा-क्षेत्र मे देखने को नही मिलता। ब्रह्मचर्य प्राचीन शिक्षा का मेरुदण्ड था।

अभी तक मैने प्राचीन भारत की शिक्षा और उसके आदर्शों की चर्चा की है। आज के विद्यार्थी-जीवन की विशेषताओ से इनकी तुलना करने पर कई भिन्न विचारणीय बातें सामने आती है। प्राचीन समय में विद्यार्थियो में ज्ञानार्जन की भूख तेज थी और थी आचार्य के प्रति उनकी अखण्डित आस्था। ब्रह्मचर्य उस जीवन का मुख्य घटक था और आचार-शुद्धता का आग्रह था उसका चरम आदर्श।

विद्याभ्यास की व्यापकता

आज के जमाने में शिक्षा के लक्ष्य और स्वरूप दोनो बदल चुके है। आज की शिक्षा का लक्ष्य ज्ञानोपार्जन न होकर जीविकोपार्जन है। विशेषीकरण के इस युग में और संघर्ष के इस जमाने में मनुष्य जीवन का सर्वाधिक समय

केवल भोजन जुटाने में लग जाता है। आधुनिक शिक्षा में विद्याभ्यास की व्यापकता है, किन्तु अध्ययन की गम्भीरता नहीं। विस्तार की विविधता है, किन्तु तल की गहरायी नहीं। जीवन की आवश्यकताएँ भी बढ़ चुकी है। ऐसा लगता है कि आज के जमाने म गम्भीर ज्ञानार्जन सम्भव ही नहीं है।

आधुनिक भारतीय शिक्षा एक बड़े सकट म आ फँसी है। शिक्षा के क्षेत्र म राजनीति का प्रवेश जब से हो गया है, तभी से यह स्थिति दिनादिन खराब होती जा रही है। भारतीय लोकतन्त्र का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि उसकी दुनिया मे निश्चित, स्थिर कुछ भी नहीं। सरकार के हाथों में शिक्षा की बागडोर होने से शिक्षा प्रयोगात्मक हो गयी है, यहाँ सब कुछ अनिश्चित और अस्थिर हो गया है। भिन्न-भिन्न दलो की सरकारें बनती है, बदलती है और उस परिवर्तन के साथ ही शिक्षादर्श, शिक्षा-नीति, शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तक, शैक्षिक व्यवस्था सब कुछ बदल जाता है। इस प्रकार की अनिश्चितता शिक्षा के लिए बहुत बड़ा धक्का है। राष्ट्र का एक राष्ट्रीय चरित्र होता है और वह उस देश की शिक्षा से प्रकट होता है। चरित्र का निर्माण अकस्मात् नहीं होता। वह नियमित सस्कार-सचयन से होता है। शिक्षा ही जनता को सुसस्कृत करती है। आज शिक्षा को जनता पर सस्कार डालने तक का मौका नहीं मिलता कि वह बदल दी जाती है।

शिक्षा राजनीति से मुक्त हो

महात्मा गाधी, विनोबा आदि भारतीय चिन्तको ने आज के इस परिणाम का अनुभव बहुत पहले ही किया था और इसीलिए उन्होने पुस्तकीय, शास्त्र शिक्षा का विरोध कर समवाय-पद्धति पर दी जानेवाली बुनियादी तालीम पर जोर दिया था। इस प्रकार की शिक्षा सरकार द्वारा न दी जाकर समाज द्वारा दी जाती। यह काम के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की पद्धति है। विशेषीकरण और केन्द्रीकरण इस युग के दो बड़े अभिशाप हैं। शिक्षा का केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए। बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम में केन्द्रीकरण की कोई बात नहीं है। वह जीवन-शिक्षण है। इसलिए वह स्वभावत राजनीति से मुक्त होगी। और रोज-बरोज बदलती राजनीति से प्रभावित भी नहीं होगी। आजादी के बाद से लेकर आज तक शिक्षा के क्षेत्र मे जितने प्रयोग हुए हैं सम्भवत उतने प्रयोग और किसी क्षेत्र में नहीं हुए। आवश्यकता अब इस बात की है कि शिक्षा को राजनीति से मुक्त कर समाज के हाथो में सौंपा जाय।

(करीम सिटी कालेज, जमशेदपुर)

●

खेल

आलोक प्रभाकर

खेल की अभिरुचि प्राय सभी प्राणियों में पायी जाती है, किन्तु मानव-समाज में यह क्रिया बहुत व्यापक है। बालक-बालिकायें, स्त्री-पुरुष युवक और वृद्ध, अमीर और गरीब सभी खेलना पसन्द करते हैं। बालिकायें गुड़िया और घरोंदे बनाकर खेलती हैं बालक कांच की गोली, गेंद और गुल्ली डंडा खेलते हैं। युवक हाकी, फुटबाल वाली बाल, टेनिस क्रिकेट आदि दौड़-धूप अथवा उछलकूद के खेल खेलते हैं। प्रौढ़ व्यक्ति ताश, शतरंज और चौपड़ आदि कला के खेल कर अपना मनोरंजन करते हैं।

मनुष्येत्तर प्राणियों में भी खेलने की प्रवृत्ति पायी जाती है। बिल्ली, सुअर, भालू, कुत्ता, बिल्ला बछड़े, चिड़िया कबूतर और बन्दर यहाँ तक कि दीमक और चींटी के समान नन्हें प्राणियों तक में हमें विविध प्रकार के खेलों के दर्शन होते हैं।

खेल का प्रयोजन

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि जीव जन्तुओं में खेलों के प्रति स्वाभाविक अनुराग एवं आकर्षण की प्रवृत्ति का क्या प्रयोजन है। प्रकृति में प्रत्येक कार्य का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। खेल मनुष्य-जीवन का पूर्ण बनाने के आवश्यक अंग है। मनुष्य के भावों और सामाजिक रचना के अनुशीलन के पश्चात् यह समझा जाने लगा है कि खेल केवल आमोद प्रमोद के साधन ही नहीं है, बल्कि मानव-जीवन में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

श्री टेलर का मत है कि 'जहाँ कार्य करने तथा कार्य के विकास की स्वतन्त्रता हो, वही वास्तव में खेल या प्रमोद है। व्यक्तित्व के विकास के लिए यह अति आवश्यक है। आमोद प्रमोद के साथ साथ खेल का रचनात्मक प्रयोजन भी है। वास्तव में यह न केवल जीवन के भग्न तारों को जोड़ता है, अपितु जीवन में एक नयी सृजन शक्ति भी उत्पन्न करता है। खेल का सबसे प्रथम और मुख्य तत्व यह है कि इसका विकास क्रिया-शक्ति द्वारा होता है और इसमें रचना पुनरचना, सृजन तथा पुन सृजन की शक्ति विद्यमान रहती है।

प्रसिद्ध दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर का कथन है कि 'जब युवकों के शरीर में आवश्यकता से अधिक शक्ति का संचय होता है, तब वे खेल-खेलकर उस अतिरिक्त शक्ति को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। स्पेन्सर के अनुसार युवकों में इतनी अधिक जीवनी-शक्ति एकत्र हो जाती है कि वे इधर-उधर उछल-कूद कर अथवा व्यर्थ के कामों द्वारा उसका प्रदर्शन करते हैं।

डा० ग्रास का कथन है कि 'खेल तो प्राणियों के बेकार बल के प्रदर्शन करने की अपेक्षा उन्हें जीवन-संग्राम के गूढ़ और गाम्भीर्य कर्तव्यों के सम्पादन के हेतु दीक्षा देना है।' खेलने की क्रिया में प्राणी सदैव अपने भावी-जीवन में काम आने वाले अति गम्भीर एवं जीवनोपयोगी उद्यमों का अनुकरण करता है।

खेलों के विषय प्रायः युद्ध-कौशल, शिकार करना, उड़ना अथवा उछल-कूद करना आदि होते हैं। बालिकाएँ घरौंदा बनाकर उसमें मिट्टी के चौका-चूल्हे बनाती हैं, चकरी बनाकर मिट्टी का आटा सानती हैं, दीवाली के अवसर पर दीयकों को छेदकर तराजू बनाती हैं, गुड़िया-गुड्डा बनाकर उनके लिए सुन्दर-सुन्दर पोशाकें सीती हैं और शृंगार करके उनके विवाह की सारी व्यवस्था करती हैं। बालक काँच की गोली, गेंद, गुल्ली डण्डा और युवक हॉकी, क्रिकेट, टेनिस आदि खेलते हैं, जिनसे उनकी मांसपेशियाँ सशक्त होती हैं और हाथ-पैर तथा नेत्रों को एक साथ काम करने का अभ्यास होता है। खेलों द्वारा मनुष्य क्रियाशील एवं हृष्ट-पुष्ट तो हो ही जाता है, उनसे उसके शरीर में ओज और मानसिक स्फूर्ति की अभिवृद्धि एवं निर्माण-शक्तियों को उत्तेजना प्राप्त होती है। प्रौढ़ावस्था में लोग कुछ ऐसे खेल खेलते हैं, जिनमें दौड़-धूप नहीं करनी पड़ती, बल्कि जो उनके मस्तिष्क की तीव्रता अथवा स्मरण-शक्ति को बढ़ाने और ध्यान को एकाग्र करने तथा संयमी बनाने में सहायक होते हैं, जैसे शतरंज, चौपड़, ताश, कैरम आदि।

शिकारी जानवरों के बच्चे अपने पंजों से पत्थरों और काठ के टुकड़ों को आगे की ओर ढकेलते हैं और स्वयं उन जड़-पदार्थों के पीछे उसी भाँति दौड़ पड़ते हैं, जिस भाँति आगे चलकर उन्हें अपने शिकार के पीछे दौड़ना पड़ेगा। जब कोई मुर्गी पक्षी अथवा कोई अन्य पदार्थ बिल्ली के बच्चे के सम्मुख फेंका जाता है, तब अक्सर वह धीरे से उसके पास जाता है, फिर झपट कर उसकी ओर कूदता है। कभी उसे अपने पंजों में दबाता है और कभी पीठ के बल लेटकर उसे अपने पेट पर रखता है। इस तरह वह उस जड़ पदार्थ से खेलकर अपना मनोरंजन तो करता ही है, साथ ही-साथ अपने चक्षुओं और मांसपेशियों

रा उचित रूप म प्रयाग करना भी गीखना है तार्कि बड़े होने पर चूहा को घेरने पकड़ने और मारने के कौशल म दक्ष हो जाय।

बिल्ली अपने नन्हे-नन्हे बच्चा के खाने के लिए अधमरे चूहे या अन्य जीव जन्तुओं को पकड़ लाती है और उन्हें उनके सम्मुख छोड़ देती है। बच्चे उन पर आघात कर उन्हें पकड़ना और मारना सीखते है। कुछ बड़े हो जाने पर शिकार को जाते समय वह अपने बच्चों को भी साथ ले जाती है। इस भांति ये बच्चे खेल-कूद-खेल म अपना भोजन प्राप्त करने एव आत्मरक्षा के कार्य म सिद्धहस्त हो जाते है। सिंह के बच्चों का तरह शेर और बन्दर के बच्चे भी बड़े खिलाड़ी होते है।

जिन प्राणियों को विधाता ने महारक्षक अथवा सरक्षक अंग प्रदान किये है उनके बच्चे खेल की क्रिया म उन अंगों का उचित समय पर उचित रीति से प्रयोग करना सीखते हैं। शेर भेड़िये और भालू अपनी शिशुावस्था में परस्पर लड़ते हुए पाये जाते है किन्तु इस क्रिया म वे अपने दाँतों और नखों का उपयोग कभी नहीं करते। वे तो खेल के बहाने शिकार की क्रिया म अभ्यस्त होना और कुशल होना सीखते है। गाय भैंस और मृग के बच्चे सींग निकलने के पूर्व ही आपस म ढुस मारने लगते है। भला इस अवस्था में ढुस मारने में उनका क्या उद्देश्य हो सकता है? वास्तव म परस्पर खेलकर मन भी बहलाते है और ढुस मारने की कला म प्रवीण हो जाते है।

खेलों म वानर अपने बल और पराक्रम का प्रदर्शन करने में बड़ा ही आनन्द लेते है। यही नहीं जब वे किसी कार्य म या खेल म कृतकार्य होते है तो अहकार और आनन्द से फूले नहीं समाते। उनकी यह प्रफुल्लता मल्लों की उस प्रसन्नता के तुल्य होती है, जो कुश्ती म अपने प्रतिद्वन्द्वी को पछाड़ने म उन्हें होती है।

खेल द्वारा शिक्षा

खेल का शैक्षिक महत्त्व भी है। खेल से मनोरंजन होता है। इसलिए खेल म बालक की स्वाभाविक रुचि होती है। किसी भी नये ज्ञान को सीखने की क्रिया कठिन और नीरस काम है। अत यदि सीखने की इस क्रिया को खेल से सम्बन्धित कर दिया जाय तो सीखने का काम रुचिकर हो जाता है और खेल खेल म सहज ही नयी बातें सीख ली जाती है। ज्ञान का बोझ हलका हो जाता है और वह सहज ग्राह्य हो जाता है।

शिक्षण की क्रिया म खेल को स्थान देने का श्रेय यूरोप के एक शिक्षक

हेनरी काल्डवेल कुक को है। उन्होंने शिक्षा म खेल प्रणाली का प्रयोग किया और खेल द्वारा शिक्षा-पद्धति को मनोविज्ञान-सम्मत बताते हुए उस बालकों को शिक्षा देने की श्रेष्ठ पद्धति बतायी। पद्धति के श्रेष्ठ होने के नीचे लिखे कारण बताये गये हैं—

१ रुचि का सिद्धान्त—जैसा ऊपर कहा जा चुका है सबसे पहला कारण तो यही है कि खेल म बालकों की रुचि रहती है। रुचि अवधान का प्रेरक है। सीखने की अरुचिकर क्रिया भी खेल का माध्यम पाकर सरस बन जाती है। रुचि का यह सिद्धान्त ही खेल द्वारा शिक्षा के मूल म है।

२ स्वतन्त्रता का सिद्धान्त—दूसरा कारण है खेल म बालक अपने को बन्धनमुक्त पाता है। उस पर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहता। दबाव का न होना खेल का प्रमुख लक्ष्य है। जो खेल को कार्य से अलग करता है। खेल मे खेलना ही उद्देश्य है। इसीलिए खेल की प्रत्येक क्रिया के साथ उद्देश्य की प्राप्ति होती रहती है। उद्देश्य की प्राप्ति ही आनन्द है। आनन्द ही का दूसरा नाम बन्धनमुक्ति है। इसीलिए यदि शिक्षा के क्षेत्र म खेल की प्रवृत्ति से लाभ उठाना है तो बालक को दबाव से मुक्त रखना चाहिए।

३ उत्तरदायित्व का सिद्धान्त—तीसरा कारण है खेल म उत्तरदायित्व अनुभव करने की भावना का सतत विद्यमान रहना। प्रत्येक खिलाडी जानता है कि जो खेल वह खेल रहा है वह किसी के दबाव से नहीं खेल रहा है और हारने जीतने की जिम्मेदारी उसी की है। इसीलिए वह खेलने के नियमों का पूरे उत्तरदायित्व के साथ पालन करता है। खेल उत्तरदायित्व वहन करना सिखाता है। यही खेल द्वारा शिक्षा का महत्वपूर्ण सामाजिक पहलू है।

४ अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों का परिष्करण—खेल द्वारा बच्चों की उन *अवाञ्छनीय प्रवृत्तियों का परिष्करण होता है जो असामाजिक है। स्टेनले हाल* का कहना है कि मानस विकास की अवस्था के साथ ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ लगी हैं जो आज के समाज के लिए वाञ्छनीय नहीं हैं। आखेट युग की लूट-मार और जिसकी लाठी उसकी भैंस की प्रवृत्ति का आज के समाज में कोई स्थान नहीं है। निर्बाध संग्रह की प्रवृत्ति अब निन्दनीय है। परन्तु ये प्रवृत्तियाँ मानव के अचेतन मन में विद्यमान है। खेल के माध्यम से बालक इन प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति कर उनका परिष्कार कर लेता है। बचपन में तीर धनुष से खेलना कंकड़-पत्थर इकट्ठा करना। लड़कियों म संग्रह की प्रवृत्ति प्रबल होती है। केवल जीवन के विकासक्रम की पुनरावृत्ति मात्र नहीं है। बल्कि अवाञ्छनीय व असामाजिक तत्त्वों का परिष्कार भी है। यह खेल का नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य है। ●

'भूदानयज्ञ'

२९-९-६७ के अंक के साथ ही 'भूदान-यज्ञ' का तेरहवाँ साल पूरा हो गया। चौदहवें साल का पहला अंक ६-१०-६७ को नये रूप में प्रकाशित हुआ है। इस अवसर पर हम देशभर में फैले अपने साथियों, पाठकों, हितैषियों के प्रति, उनके सहयोग के लिए हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

नये वर्ष में भूदान-यज्ञ का रूप इस प्रकार है—

- सफेद कागज
- डबल डिमाई साइज में, १६ पृष्ठ
- संपादक—आचार्य राममूर्ति
- वार्षिक चन्दा—रु० १० ००
- फुटकर प्रति— ० २९ पैसे
  विविध स्तंभ
- विनोबा, जयप्रकाश नारायण, दादा धर्माधिकारी, धीरेन्द्र मजूमदार, जैनेन्द्रकुमार आदि विचारकों के निबन्ध।
- सामयिक चर्चा, आन्दोलन की गतिविधि, विचार मंथन, चर्चा परिचर्चा, रेखाचित्र आदि विविधताओं से भरपूर
- भूदान-यज्ञ का चन्दा नये वर्ष से ८) के बदले १०) किया गया है। इसका कारण है छपाई, कम्पोजिंग, कागज आदि के बढ़े हुए भाव। ८) चन्दे में यह पत्रिका घाटे में ही चल रही थी, इसलिए भी यह वृद्धि अनिवार्य हो गयी है। हमारे पाठकगण और हितैषी इस विवशता को महसूस करके उदारतापूर्वक पत्रिका को पूर्ववत् अपना हार्दिक सहयोग देकर अपने मित्रों को भी इसका ग्राहक बनायेंगे। हम ऐसी आशा करते हैं।

सप्रेम जय जगत्।

आप सबका
दत्तोबा दास्ताने
संचालक
सर्व सेवा संघ प्रकाशन

शिक्षा को व्यवसाय से जोडना होगा

डा० वी० एन० गागुली

(कान्तिमोहन ने दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति से परिचर्चा आयोजित की थी। उस परिचर्चा का कुछ अंश हम यहाँ दे रहे है—स०)

आयोजक—क्या आप समझते है कि भारतीय शिक्षा में क्रान्ति की आवश्यकता है।

डा० गागुलि—दरअसल, पिछले अनेक वर्षों से मै इस सवाल पर सोचता रहा हूँ, लेकिन अभी तक किसी नतीजे पर नही पहुँच पाया हूँ। यह तो मै मानता हूँ कि हर जगह क्रान्ति की जरूरत नही होती। लेकिन इसके साथ ही यह भी सच है कि शिक्षा-जगत की हालत बहुत खराब है। एक पागल भीड हमारे विश्वविद्यालयो के दरवाजे खटखटा रही है और हम उन्हे शिक्षित दीक्षित करके अपने राष्ट्र के सम्मानित और पूर्ण सदस्य बनाने की स्थिति मे नही है। यह स्थिति हमें कहा ले जायगी? मै इस सवाल पर सोचता हू तो सोचता रह जाता हूँ। इसी सवाल से जुडा हुआ एक सवाल और है—नगरो की ओर बढ़ती हुई भीड। इसे रोकना होगा। रोकना ही होगा। हम शिक्षित युवकों को इस बात के लिए प्रेरित करना होगा और सारी सुविधाएँ देनी होंगी कि शिक्षा पूर्ण करने पर वे उसी वर्ग को, उसी क्षेत्र या अचल को, अपनी सेवाएँ अर्पित कर सकें, जिसने उन्हे पढ़ाया लिखाया है, और जिसका उन पर अधिकार है। क्रान्ति की आवश्यकता हमें शायद न हो, लेकिन मै यह जरूर महसूस करता हूँ कि आज भारतीय शिक्षा जिस बिंदु पर आ पहुँची है वहाँ हम कुछ अत्यधिक प्रगतिशील कदम उठाने ही होगे। इसके बिना काम नही चल सकता।

आयोजक—क्या आज की असन्तोषजनक शिक्षा प्रणाली के लिए सरकार दोषी है?

डा० गागुलि—हाँ, मै ऐसा ही समझता हूँ। गाधीजी पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के विरोधी और आलोचक थे। उन्होने इसके विकल्प के रूप मे एक दूसरी शिक्षा प्रणाली—श्रेमिक शिक्षा—हमारे सामने रखी थी,

लेकिन राष्ट्रीय सरकार को उनका यह विकल्प मान्य नहीं हुआ। शिक्षा की पद्धति पूर्ववत ही रही। शिक्षा, जो एक विकासशील राष्ट्र का कायापलट कर सकती थी, खुद पुरानी और सड़ी-गली रूढ़ियों में फँसी रही। देश के स्वतंत्र होने के बाद जिन शक्तियों ने यहाँ काम किया, उनमें सबसे अधिक स्थिर और गतिहीन शक्ति शिक्षा ही रही है। सबसे बड़ी विडम्बना यह रही है कि शैक्षिक क्रान्ति का सम्बन्ध व्यापक राष्ट्रीय क्रान्ति से नहीं जुड़ पाया, या नहीं जोड़ा गया। यह सम्बन्ध या सम्पर्क अत्यन्त आवश्यक था। गांधीजी की नजर में यह बात बिलकुल साफ थी। राष्ट्र विकास में शिक्षा की भूमिका क्या और कितनी महत्वपूर्ण है यह बात वे अच्छी तरह समझते थे। लेकिन उनके परवर्ती राष्ट्र नियामकों में हम यह दृष्टि नहीं मिलती। राष्ट्र के आधुनिकीकरण की धुन में हम उस शिक्षा को पीछे छोड़ आये जो किसी भी सच्चे और पूरे आधुनिकीकरण का सबसे प्रबल अस्त्र है।

आयोजक—क्या आपने कभी सोचा है कि अगर स्वतंत्र भारत के शिक्षा मंत्री आप होते तो शिक्षा का विकास किस तरह करते?

डा० गांगुलि—सोचा तो नहीं, लेकिन सोचने में हर्ज भी क्या है? मैं पहला काम तो यह करता कि मिडिल स्कूल के स्तर पर, और उसके बाद के सभी स्तरों पर, शिक्षा का अनिवार्य सम्बन्ध रोजगार और धंधों से कर देता। इस प्रकार उद्देश्यहीन उच्च शिक्षा पर होनेवाली समय, शक्ति और धन की बरबादी रोकी जा सकती थी। व्यावसायगर्भित शिक्षा से राष्ट्र के आर्थिक विकास में भी अमूल्य सहायता मिलती। मैं गांधीजी की बेसिक शिक्षा को क्रियान्वित करता। मिडिल स्कूल स्तर पर ही पढाई का सम्बन्ध व्यवसाय से हो जाता तो आज उच्च शिक्षा को सीमित करने की जो समस्या मुँह फैलाए हमारे सामने खड़ी है, वह शायद पैदा ही न हुई होती। विश्वविद्यालयों की हालत आज के मुकाबिले कहीं बेहतर होती। हिन्दी को तभी शिक्षा का माध्यम बना दिया जाता और आज वह राष्ट्रभाषा के रूप में सुप्रतिष्ठित हो चुकी होती।

—'साप्ताहिक हिंदुस्तान' से साभार

बालघर

सुशील कुमार

लोक भारती एक परिवार होते हुए भी एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ बड़े-बड़े मकान, आफिस, स्टोर, प्रार्थना-सभा-भवन, उद्योग-मन्दिर, लम्बी चौड़ी सड़कें, बहुत बड़ा बाग, एक अच्छा प्रदर्शन कक्ष, कुल मिलाकर बड़ा आकर्षक स्थल है। नयी तालीम विद्यालय—जो एक बुनियादी शाला है, और लोक भारती की एक शैक्षणिक प्रवृत्ति है, जिसका आयोजन योजना पूर्वक तथा सामाजिक प्रयोजन से किया गया है। झोपड़ी और पेड़ों के तले वर्ग चलते हैं। छात्रावास और उद्योगों के लिए व्यवस्थित मकान है। वाचनालय आफिस और

ईंट की तैयारी

बच्चों के लिए एक खुली छत का हाल है।

यहाँ पर बच्चे कृषि और कताई-बुनाई का काम रोजाना करते हैं। एक वर्क शाप है, जिसमें सिलाई, कागज का काम, काष्ठकला इत्यादि कार्यों में से बालक कोई भी एक काम चुनकर सालभर १ घण्टा रोजाना करते हैं। इसके अलावा शौक के तौर पर चित्र संग्रह, डाक टिकट-संग्रह आदि का काम भी बालक रुचि से करते हैं।

दीवाल की जुड़ाई

यह सब सामान, जो तैयार होता है, वह स्कूल का होता है। वर्ष में एक माह ऐसा भी होता है जब कि बालक उस महीने में जितनी कताई करते, वह उनकी अपनी होती है।

हमने अपने विद्यालय में कार्यानुभव के बारे में प्रयोग करने का निश्चय किया। इस सन्दर्भ में मार्च के अन्तिम सप्ताह में बाल-परिषद द्वारा आयोजित बाल-सभा में बालक और शिक्षकों ने मिलकर यह निश्चय किया कि क्यों न बालकों के लिए उनका एक निजी मकान हो, जो उनकी अपनी कल्पना का प्रतीक हो, उनकी अपनी दुनिया हो। लेकिन विद्यालय इस पर रुपया कहाँ से खर्च करे? जब यह सवाल आया तो सहज ही बालकों ने खुद एक छोटा-सा मकान बनाने का निर्णय लिया और उन्होंने कहा कि हम अपने श्रम से बनायेंगे। फिर क्या था? शिक्षकों को उत्साह हुआ। उन्होंने बालकों के साथ बैठकर उसकी योजना तैयार की। बाल-दुनिया का नक्शा तैयार हुआ। पहली अप्रैल को जमीन पर नक्शा खींच दिया गया। लोक-भारती की ओर से उस समय १०० रुपये की मदद देने की घोषणा की गयी। जमीन समतल की गयी। "तूफानों की ओर बढ़ा दे नाविक निज पतवार" के संगीत के साथ नींव खोदना प्रारम्भ हुआ।

जमीन समतल करते हुए

बालघर के सामने सफाई

अप्रैल के मध्य से लेकर मई के अन्त तक बिलबिलाती धूप और जलती हुई लू में बच्चे मिट्टी खोदना, ईंट बनाना, गारा तैयार करना, ईंट और मिट्टी ढोना, (देखें फोटो) आदि हर काम रोजाना २ से ३ घण्टे तक करते रहे। गर्मी के समय में जब कि आस-पास के स्कूलों में छुट्टी थी, दूसरे स्कूल के

लड़के छुट्टियाँ मना रहे थे, फिर भी बालकों की ओर से कोई शिकायत नहीं, उत्साह में कोई कमी नहीं। आप ताज्जुब करेंगे कि उस पुरुषार्थ और परिश्रम के परिणामस्वरूप आज बालभवन का बिना प्लास्टर और बिना सजावट किया हुआ, छप्पर सहित एक सुदृश्य मनोरम बालघर चारों तरफ की हरियाली के बीच मस्तक उन्नत किये खड़ा है। वह नयी तालीम-परिवार के श्रम का प्रतीक है। पुरुषार्थ की कहानी है। कितनी ममता है बालकों की अपने इस अधूरे घर में। दोपहर का एक घण्टे की छुट्टी होती है तो बच्चे दौड़कर अधूरे बालघर में जाते हैं, वहाँ पर खाना खाते हैं, आराम करते हैं, खेलते हैं।

गत साल इस मकान का ढाँचा खड़ा हुआ है। अब इस साल इसको पूरा करना है, प्लास्टर—रंग—दरवाजा-खिड़की लगाना—लिपाई, सजावट आदि का काम है। इसके अलावा इसके आस-पास के मैदान में बगीचा लगाना है। काम धीरे-धीरे शुरू हो गया है। नक्शे का खाका तैयार है। रंग पूरना बाकी है। इस वर्ष की १४ नवम्बर ६७ को इस घर का उद्घाटन होगा। सर्वसम्मति से बालपरिषद ने यह तय किया है कि यह बालघर विश्व के समस्त बाल-समाज के लिए सादर समर्पित है। ये छोटे बालक विश्व का क्या समझें। मुझे लगा छोटा मुँह बड़ी बात। लेकिन फिर मुझे लगा कि यह मेरे मन की संकीर्णता और छोटे-छोटे दायरे हैं। बालक तो बालक ही है। उनके सामने क्या राज्य, क्या प्रदेश, क्या राष्ट्र—वे तो बालक हैं। उनकी आत्मा तो ईश्वर का राज्य है। इसलिए एक-एक बालक स्वयं अपने आप में अनेक विविधताओं के लिए हुए स्वयं विश्व ही है। इसलिए वे समस्त बाल-समाज की कल्पना करें, उनकी सुकुमार भावनाओं के ही अनुकूल है।

बालघर बनाने में छात्र, अध्यापक, अभिभावक और लोक भारती के परिवार तथा बाहर के हमारे प्यारे मेहमानों, और जयपुर के जिलाधीश महोदय ने भी श्रमदान में भाग लिया है। इस मकान का तकनीकी काम कारीगर द्वारा पूरा होगा। इस प्रकार अब तक के काम का आँकड़ा इस प्रकार है—

श्रमदान

नयी तालीम विद्यालय	७३०	घण्टे	११८६
लोक भारती परिवार	४८२	घण्टे	४७५
शिक्षक एवं मेहमान	२०५	घण्टे	३५६

कुल संख्या १४२६ कुल श्रमदान के घण्टे २५६७

प्रति घंटा २५ पैसा के हिसाब से ६१६.७५

बालघर में गतवर्ष का खर्च [जून १९६७ तक]

मजदूरी

जुडाई के	२००-००
छप्पर बँधाई के	१५०-००

सामान

बल्ली-पूला	८००-००
बाण	१००-००
पत्थर (दरवाजा और खिड़कियों के लिए)	६०-००
अब तक का खर्च	१३१०-००

शेष काम का अनुमानित खर्च

प्लास्टर	२००-००
सफेदी रंग इत्यादि	१५० ००
खिड़की-दरवाजा—जाली-रंगा	६५० ००
	१०००-००

साधन खर्च

रसोईघर के साधन (रसोई के)	२५०-००
मकान में सजावट और बिछायन	२५०-००
बाल उद्यान म खर्च	२००-००
	७००-००

जिसे सामाजिक सहयोग से पूरा किया जा सकेगा।

यह है हमारा बालघर। कार्यानुभव का एक प्रोजेक्ट नयी तालीम की शिक्षण विधि का एक नमूना, पारस्परिक सहयोग एव पुरुषार्थ की कहानी, बालकों की सुकुमार कल्पनाओं का प्रतीक, नयी तालीम के शिक्षकों की भावनापूर्ण आकांक्षा का प्रतिबिम्ब—

बालकों का अपना घर, उनकी अपनी दुनिया
उनका अपना सृजन, उनका अपना संगीत

बालघर की समन्वित पाठ-योजना की रूपरेखा

१. बालघर की निर्माण-योजना—
आवश्यकता, उद्देश्य, स्वरूप, रूपरेखा आदि।

२ कार्य योजना—
स्थान—स्थिति—साधन-सामग्री।

३ कार्यक्रम की योजना—
कार्य विभाजन संगठन वर्गीकरण दैनंदिन डायरी सफाई—समीक्षा।

४ भवन निर्माण का तकनीकी ज्ञान—

भाषा

कविता—तरह-तरह की कविताओं का संग्रह।

लेख—मिट्टी की रचना मिट्टी की महिमा मिट्टी के खेल गांव का कुम्हार, तालाब नदी। दैनन्दिन कार्यक्रम-लेखन इस घर की कहानी मेरे पसन्द का काम घर के लिए मेरी जिम्मेदारी।

वार्तालाप—नये शब्द संग्रह राजस्थानी बोली की चर्चा वार्ता। बालसभा में विविध प्रसंगों पर बोलना।

गणित

इस काम में गणित का बड़ा भारी महत्त्व देखा गया है। टोली के अनुसार काम में—ईंट बनाने में। टूटे हुए और अच्छे ईंटों का प्रतिशत में। भवन में कितने ईंटों की आवश्यकता है? कितने बालक कितनी ईंट बनायेंगे। कौन टोली ज्यादा ईंट बनायेगी और कौन टोली कम कितने कम। सरल रेखा त्रिभुज वृत्त आदि के सवाल इसमें भरपूर है। कुल मिलाकर यह अनुभव आया कि पहली से आठवीं तक के हर प्रकार के सवाल कराये जा सकते है।

उदाहरण—

१ पहली टोली के ७ छात्रों ने ३८५ ईंटें बनायीं तो एक छात्र कितनी ईंटें बनायेगा।

२ ३२५ ईंटों में ५ प्रतिशत नष्ट हो गया तो नष्ट होनेवाली ईंटों की संख्या बताओ।

३ बाउण्डर की एक दीवाल की लम्बाई १४ फुट चौड़ाई १॥ फुट और ऊँचाई ७ फुट हो तो घनफल ज्ञात करो। एक ईंट ६ ६ ४ इंच की तो कितनी ईंटों की आवश्यकता है?

४ *५ लड़के ३ घण्टे में एक चबूतरा भरते है तो १० लड़के कितने समय* में भरेंगे।

५ वालघर की बीच के हाल की लम्बाई १४ फुट और चौडाई १२ फुट हो तो क्षेत्रफल ज्ञात करो।

६ वालघर बनाने का अलग अलग खर्च का हिसाब।

सामाजिक अध्ययन

१—भौगोलिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य, कृषि प्रधान समाज के मकान। ऋतु और जलवायु के अनुसार मकान की आवश्यकता। गाँव के मकान और उसके आधार पर सस्कृति-सभ्यता का विवेचन। उद्योग प्रधान-आबादी।

२—ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य—
भवन निर्माण का विकासक्रम चित्र सग्रह पुरातत्त्व-म्यूजियम, पर्यटन, हरप्पा मोहनजोदडो के प्रसग से। जीवन की आवश्यकताओ में मकान का स्थान और महत्त्व।

३—हमारी वतमान वालघर योजना—

१ लोक भारती का परिवेश।

२ कार्यानुभव की सामूहिक आकाक्षा।

३ वालघर की आवश्यकता।

४ प्रगति और जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव।

४—विभिन्न देशो के लोगो की आवास निवास व्यवस्था का अध्ययन।

सामान्य विज्ञान

१ मिट्टी की रचना, किस्म और गुण—रूपान्तर, परिवर्तन।

२ मिट्टी और ताप का सम्बन्ध।

३ मिट्टी का विविध प्रयोग और उपयोग।

४ मिट्टी के मकानो का स्ट्रक्चर।

५ स्वास्थ्य, सफाई, सौन्दर्य, उपयोगिता, सस्कृति।

६ विविध प्राणियो और जीव जन्तुओ, पशु-पक्षियो की आवास निवास व्यवस्था का अध्ययन।

कला-सगीत

चित्र—ईट का, मकान का, छप्पर का मकान के एक भाग का, चबूतरे का। ऐसे रगीन और रेखाचित्र बालको ने कई बनाये है। मकान का सही नाप का चित्र तो हरेक बालक ने बनाया है उसे रग भी भरा है।

सामूहिक श्रम गीत—

शक्ति दो भक्ति दो हम में है राम
मिलकर करें हम मेहनत का काम

ऐसे कई गीत और सामूहिक नृत्य का अभ्यास कराया गया है। गीत के साथ काम में बालक सब कुछ भूल जाते है।

बालघर-वर्गपत्रिका

सत्रान्त-समारोह के अवसर पर बालघर पर एक हस्तलिखित पत्रिका तैयार की गयी। उसमें लेख–निबन्ध रचना, चित्र–पत्रों की प्रतिलिपि, कई देशों के मकान के चित्र, और उसके बारे में लेख आदि लिखे गये। अब तक दिये गये और सम्भावित पाठों की एक रूपरेखा इसमें है।

यह मकान शिक्षण की दृष्टि से श्रम-स्वावलम्बन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तो है ही लेकिन बालकों के व्यक्तित्व, सभ्यता संस्कृति, सौन्दर्य सजावट की दृष्टि से भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि शिक्षण की दृष्टि से है।

हमारी सभ्यता संस्कृति स्थापत्य-कला, निर्माण-कला, और विज्ञान, भवन निर्माण पर भी आधारित है। इन सबके साथ बालकों का घनिष्ठ परिचय हुआ है।

यह सही है कि यह मकान अन्त में जब पूरी तौर से बनकर सज जायगा, तब इसमें कई गलतियाँ तकनीकी दृष्टि से रह सकती हैं, पर बालकों के लिए यह उनकी अपनी कृति, सृजन शक्ति और कल्पना-शक्ति की परिचायक सिद्ध होगी। इसमें उनका गर्व है, हर्ष है और आत्म-शक्ति का अहसास है। यह बालघर बन जाने पर आस पास के चाकसू तहसील के समस्त बालकों के लिए दर्शनीय वस्तु बनेगा। इस घर की तीनों गैलरी में यहाँ के बालकों द्वारा बनायी गयी चीजें, खिलौने व उद्योगों का सामान, चित्र, चार्ट्स आदि लगाये जायँगे, जो कि एक स्थायी बाल प्रदर्शनी हो सकेगी।

यह बच्चों का अपना घर और उनकी अपनी दुनिया है—सुन्दर, रमणीय और सुखद—उनकी अपनी कृति।

●

प्रहर शालाएँ

शिक्षा-विभाग द्वारा निरक्षरता दूर करने में अनेक प्रयत्न हो रहे हैं और 'स्कूल चलो अभियान आदि योजनाओ के अन्तर्गत ये प्रयत्न सफल भी हुए है। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। देहातो मे छोटे बालक-बालिका शालाओ म नहीं जाते है। क्यो नही जाते ? इसका कारण जानकर उनके गृह-कार्य का समय छोडकर केवल तीन घण्टेवाली शाला-योजना हाल ही में प्रयोग क रूप में ली गयी है। इस महत्त्वपूर्ण अभियान म अपर निर्देशक, शिक्षा विभाग, निर्देशक राजस्थान शिक्षा सस्थान, उदयपुर व अन्य शिक्षा शास्त्री भरसक प्रयत्न कर रहे है। इनके अलावा ग्रामदान के नेतागण भी योगदान दे रहे है ताकि ग्रामदानी गाँवो म प्रहर (३ घण्टे की) शालाओ द्वारा विशेष लाभ उठाया जाय। शाहपुरा (उदयपुर) म यह योजना सफल रही है और नीमकाथाना म पिछले वर्ष लागू की गयी है।

प्रहर पाठशाला के दो मुख्य सिद्धान्त

इसकी सफलता असफलता कई दृष्टियो से आँकी जा सकती है। आरम्भ म उसके असफल होने के लक्षण दिखाइ देते है किन्तु सावधानी व लगन स काम चलाने पर वही योजना सफल होने लगती है।

प्रहर शालाओ का अस्तित्व दो मुख्य सिद्धान्तो पर निर्भर है—

(१) अध्यापक का त्याग व परिश्रम।

(२) कठोर निरीक्षण व नियत्रण।

जिस प्रहर शाला म अध्यापक त्याग व सेवा की भावना नही रखता, वह शाला सफल नही हो सकती। अध्यापक उस शाला व उस क्षेत्र का सर्वेसर्वा होता है। वह भूल जाय कि शाला क अतिरिक्त उसका अन्य कोई लक्ष्य है। वह छोटे छात्रो को अपना ले, सरक्षको के हृदयो को जीत ल, तो शाला अवश्य चलने लगेगी। उस अवस्था म निरीक्षण की भी आवश्यकता नही होगी, केवल शैक्षणिक मार्गदर्शन देना होगा। मैंने अनुभव किया है कि ऐसे त्यागी अध्यापक गावो म बहुत-से। शालाओ म नही है और वह शाला ठीक नहीं चल पा रही है।

दूसरा पहलू कठोर निरीक्षण व नियत्रण का है। अभी इस बात का दु ख है कि अध्यापक अधिकाश नियत्रण स ही काम करते है और कठोर निरीक्षण अथवा सर्वेक्षण क आदी हैं।

प्रहर शाला की वतमान स्थिति के अनुसार अध्यापक तीन घण्टे शाला म रहता है व अय तीन घण्टे सरपंचा से भेंट करता है। यदि इन घण्टा म वह और काइ काम म लग जाये अथवा शाला म उपस्थित न हो ता सर रपा पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह आवश्यक है कि निरीक्षण बार-बार किया जाय ताकि अध्यापक का डर रहे एव वह नियत्रण म रहे। यदि अध्यापक प्रहर शाला म काय करते हुए इसके विरुद्ध प्रचार करे ता शाला कभी नही चल सकता। बहुधा देखने म आया है कि प्रहर शाला के स्तम्भ निरीक्षण करनेवाले अथवा अच्छे अध्यापक स्थानान्तरित हो जाते हैं जिससे शालाओं के चलने म शिथिलता आ जाती है। जब तक इनमे कोई बुराइ नहीं दिखाई देती इनको इतना जल्द बदल देना इस योजना के लिए अनुचित होता है।

प्रहर शालाओं का सुचारु रूप से चलाने के लिए बजट का प्रावधान विशेष तौर पर आवश्यक है। पंचायत समिति तो शालाओं का व्यय भुगत सकती है किन्तु कस्बा के लिए कठिनाइ होती है। शिक्षा विभाग को चाहिए कि शालाओं के खुलने से पूर्व ही मकान किराया फर्नीचर घड़ी स्टेशनरी पाठन सामग्री व चतुर्थ वर्ग-कर्मचारियों के वेतन आदि के लिए बजट प्रदान कर दे। कस्बे के सेकेण्डरी अथवा हायर सेकेण्डरी स्कूल छात्रनिधि से अधिक काय नहीं चला सकते अत बजट स्वीकृति जल्द होनी चाहिए

नीमकाथाना मे प्रहर शालाएँ

श्री अनिल बार्डिया अपर निर्देशक की विशेष कृपा से इस क्षेत्र मे यह योजना चलायी गयी। वे स्वय यहाँ आये थे। बाद म श्री बालगोविन्द तिवारी को यहाँ भेजा। निरीक्षक महोदय श्री अहमदअली भी पहुँचे। सबके योगदान से यह योजना चलने लगा। मैने देखा कि कस्बे म प्रहर शालाएं खुलने के बाद उन्नति कर रही है और छात्र-सख्या भी अच्छी है। यह शालाएं प्रधानाध्यापक सेकेण्डरी स्कूल के सर्वेक्षण म चल रही हैं और उनके विशेष प्रयत्न से सफल हो सकी है।

पंचायत समिति क्षेत्र म प्रहर शालाओं की स्थिति सन्तोषजनक नहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि अधिकारी वर्ग का निरीक्षण व सर्वेक्षण पूरा नहीं है। यह क्षेत्र ग्रामपंचायती क्षेत्र है और यहाँ के ग्रामों म इन शालाओं का चलाया जाना आवश्यक है। शिक्षा विभाग ने १५ पोस्ट अध्यापकों को दिया है जिनका सदुपयोग आवश्यक है। विकास अधिकारी उपनिरीक्षक व प्रधान पंचायत समिति को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि उदासीनता रही ता प्रहर शाला योजना समाप्त हो जायेगी। —ओमप्रकाश वर्मा

परीक्षा-रहित प्राथमिक शिक्षा

आई चेगेइद्जे

मै सहर्ष यह कहना चाहूंगा कि यह विचार हाल के वर्षों का अत्यन्त प्रभावशाली, विवेकपूर्ण और श्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्रीय विचार है।

पिछले तीन वर्ष से इस सम्बन्ध म प्रयोग चल रहा है। इस समय जार्जिया म प्राथमिक स्कूलो के १०६ फार्मों (६ तीसर और १०० पहले तथा दूसर फार्म) म परीक्षा रहित शिक्षापद्धति लागू है। तलावसी प्रान्त के सभी स्कूलो में यह प्रयोग जारी है। ये स्कूल जागेबाश्विली शिक्षाशास्त्रीय अनुसधान द्वारा सगठित प्रायोगिक शिक्षा-पद्धति प्रयोगशाला के निर्देशन में काम कर रहे हैं।

इस प्रयोग की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसका उत्तर अत्यन्त सरल हो सकता है शिक्षाशास्त्रीय विज्ञान विकसित हो रहा है, इसमें नयी प्रेरणाएँ प्रविष्ट हुई है और यह विज्ञान समय के साथ-साथ चल रहा है। इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार स यो कहा जा सकता है हाल के वर्षों म डाक्टरी एव मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षणा द्वारा प्राथमिक शिक्षाप्रणाली म परिवर्तन के लिए विपुल सामग्री एकत्रित हुई है।

उपरोक्त कक्षाएँ द्रुत गति कार्यक्रम के अधीन काम कर रही हैं। परन्तु प्रश्न उठता है कि इसका परीक्षा रहित शिक्षा प्रणाली से क्या सम्बन्ध ? शिक्षा की गति में सुपरीक्षित विधियो द्वारा वृद्धि की जा सकती है, जैसे एक लाइन वाली कापी, फाउटेन पन आदि का इस्तमाल शुरू करके। सक्षेप म ऐसा समझ लीजिए कि यह एक स्वय सिद्ध सत्य है कि द्रुत-गति म विकसित हो रहे जीवन, व्यापक सूचना-स्रोतो और इस सूचना को प्रस्तुत करने की आधुनिक विधियो के लागू होने से अत्यन्त उन्नत बच्चे स्कूलो म आ रहे है और उनकी माँगें अधिक है। इसलिए स्कूलो में भी जीवन की गति म परिवर्तन की आवश्यकता है। परन्तु यह भी आवश्यक है कि बच्चों म ज्ञान वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा-प्राप्ति के लिए नि स्वार्थ लगन भी पैदा की जाय।

ज्ञान की इच्छा

वैज्ञानिको का कहना है कि ज्ञानवर्धन की इच्छा मनुष्य म स्वाभाविक होती है। इस सन्दर्भ म यह तथ्य कैसे स्वीकार किया जाय कि समय के साथ

साथ स्कूल म प्रवेश पाने के बाद बच्चे इस सम्पदा को खो बठते है या कम हो जाता है ? इस सम्बन्ध म स्कूलो म प्रगति का परिणाम विशेष प्रकार का है पहला चार कक्षाओ में यह प्रगति सन्तोषजनक रहती है जब सब कुछ मुख्यत आज्ञापालन और परिश्रम पर निभर करता है। पाँचवी छठी और सातवी कक्षा म तजी म कमी आती है जबकि मानसिक परिश्रम का विशेष आवश्यकता पदा होता है और बचकाना आज्ञापालन समाप्त हो जाता है। उस समय तक अच्छी शिक्षा द्वारा नया उत्साह और उपलब्धियो की इच्छा विकसित नही हुई होती। अन्त बडी कक्षाओ म पहुच कर एक बार फिर नयी उठान आती है।

परन्तु क्या यह सभव नही कि प्राथमिक वर्षो म ही शिक्षा की प्रणाली इस रूप म सगठित की जाय कि जहा तक हो इस सिद्धान्त का दृढतापूवक पालन किया जा सके कि बच्चों म ज्ञानवधन का हार्दिक इच्छा जागृत की जाय जो अय सभी प्रकार के उद्देश्यो से मुक्त हो। स्कूल म अध्यापक को अत्यन्त कोमल एव मृदु स्वभाववालों को सँभालना होता है, इसलिए आवश्यक है कि वह डाँटन-डपटन की नीति का परित्याग करे।

परीक्षा म मिलनेवाले अको को बच्चे गृह-युद्ध मे कोई महत्व नही देते (आखिर एक बच्चे के लिए अच्छे या बुरे अक दो या पाँच क्या अथ रखत है)। धीरे धीरे अको के प्रति उनके मन म एक भय-सा घर कर लेता है और व उन्हे दूसर के हाथ की लाठी समझने लगते है। यह निस्सन्देह बडा का प्रतिक्रिया पर निभर करता है। अक एक प्रकार का वहम पदा कर देते है।

शिक्षाप्रद निर्देश का सिद्धान्त

मै त्बिलिसी म माध्यमिक स्कूल न० १० म तीसरे फाम की कक्षा मे गया। यहाँ की अध्यापिका दोदा मखाराद्जे थी। रोजाना सरल पाठ पढाये जाते है। यहाँ मै यह भी बताना चाहूँगा कि बच्चे फाउटेनपेन मे अत्यन्त सुन्दर लिखते हैं और उन्हे रेखागणित-सम्बन्धी सीधे-सादे पाठ और फारमूले समझने म भी कोई कठिनाई नही होती। परन्तु इन कक्षाओ की मुख्यविपूण विशेषता केवल यही नहा थी। उदाहरणाथ अध्यापिका ने बच्चों मे कहा कि सम द्विबाहु त्रिभुज की अपने तौर पर परिभाषा बताय। परन्तु त्रिभुज क अनुरूप उत्तर न मिलने पर अध्यापिका न समद्विबाहु ब्लैक बोड पर बनाया और बच्चों से कहा कि उस पर विचार करें और ठीक परिभाषा निश्चित करें। इस प्रकार यह पाठ सयुक्त सृजनात्मक काय के रूप म चलता रहा। विद्यार्थी पूरे समय तक व्यस्त रहे। कुछ लोगो ने इस प्रकार की कक्षा म अनुशासन-सम्बन्धी आशका व्यक्त का है। वहाँ अनुशासन था। परन्तु भय

और उवानेवाली प्रतीक्षा न थी। कभी-कभी अध्यापिका के शब्दा पर बच्चे शरमा जात थे परन्तु कुल मिलाकर पूरी स्थिति मे बच्चे बडा आनन्द उठा रहे थे। अका के स्थान पर अध्यापिका की टिप्पणी हाता जिसे हम दूसरे शब्दा में जनमत भा कह सकते है। क्या यह शिक्षिक निदशन के सिद्धात की श्रेष्ठ पूर्ति नही है ?

इसी वष उपरोक्त तीसरी कक्षा के बच्चो ने शीतकालीन छुट्टियों के दिनो म काम किया शिक्षाशास्त्रीय अनुसधान सस्थान की प्रयोगशाला ने अध्यापका के उच्च प्रशिक्षण सस्थान के सहयाग से जनतत्र के स्कूलो की सभी प्रायोगिक कक्षाओ के अध्यापका के लिए पाठ सगठित किये।

हाल क वर्षो म ६ अध्यापको आर वज्ञानिक कर्मिया ने नये पाठ्यक्रम और कायक्रम पाठ्य पुस्तका और शिक्षा-साधना की रूपरेखा तैयार की और इन्हें आजमाया। इस काय का परिणाम वे २७० फाम है जहाँ नयी प्रणाली लागू की गयी है। यह सख्या इस काय की सफलता का मह बोलता प्रमाण है। इस प्रयोग के पूरे होने म अभी चार वष बाकी है परन्तु प्रेरणा के आधार पर शिक्षा देने की पद्धति ने अपना औचित्य सिद्ध कर दिया है।

सामान्य परिस्थितिया

प्रायोगिक कक्षाओ म स किसी भी कक्षा क लिए असामान्य परिस्थितिया की रचना नही की गयी। ये साधारण कक्षाए है जो अब्खाजिया अन्कारिया, वाराभामी प्रात काज्बेक म तथा त्बिलिसी म चल रही है और तेलाब्स्का प्रात मे इस प्रकार की ४० कक्षाए ह। जहा कक्षाओ का बडा होने के कारण बाटा जा सकता था वहाँ भी ऐसा नहा किया गया। इसका उददेश्य यह है कि प्रतिकूल परिस्थितिया म भी इस प्रणाली की जाच की जा सके। इसके परिणाम हर्षोत्पादक है। उदाहरणार्थ मुरमी के एक स्कूल म यह प्रयोग उस कक्षा में किया जा रहा है जिसकी प्रगति बहुत धीमी चल रही थी। इस प्रयोग के शुरू किये जाने क एक वष बाद इस कक्षा की तुलना एक उत्तम समझी जानेवाली कक्षा से की गया। यह तथ्य हमारे लिए बडा हषजनक था कि इस तुलना का परिणाम प्रायोगिक कक्षा क पक्ष म रहा।

सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अनुसधान चल रहा है। अनुसधान परिणामा से भरा हुइ कापिया का ढेर बढ्ता जा रहा है। सस्थान की प्रयोगशाला म अधिक लाग दिखायी दने लग है। अध्यापक बहुधा यहाँ सलाह लेने या प्रयोग क लिए अपनी सलाए प्रस्तुत करने आते रहत है।●

बालवाडी की बाल-शिक्षिका

श्री जुगतराम दवे

पूर्व-बुनियादी बालवाडी की बाल शिक्षिका कौन बन सकती है ?

हर एक ऐसी बहन जिसके दिल में बच्चों के लिए प्रेम उमड़ा पड़ता हो, बाल शिक्षिका बनने के लायक है।

इस उमड़ते प्रेम की निशानी क्या ? उमड़ते प्रेम की एक निशानी तो यह है कि बालक के साथ रहने उसकी बात सुनने और उसके साथ सब कामों में सम्मिलित होने के लिए जितना धीरज जरूरी है उतना भरपूर हो।

उमड़ते प्रेम की दूसरी निशानी यह है कि वह अपने रोज रोज के काम-काज में से दो-तीन घंटों का समय बालकों के लिए निकालने को तैयार हो इसके लिए अपनी घर-गृहस्थी के कामों का आवश्यकतानुसार समेट लेने की उसकी तैयारी हो।

उमड़ते प्रेम की तीसरी निशानी यह है कि बाल-सेवा का काम करने के बदले में वेतन लेने का विचार उसे स्वप्न में भी न आये उसे बाल-सेवा की आंतरिक लगन लगी हो उसके बदले में वेतन लेना उसे हलका मालूम *होता हो वेतन की बात पूछने पर उसे अपमान-सा लगता हो अपनी आत्मा* के सन्तोष को ही जो अपना वेतन समझती हो बालवाडी में बालकों को आनन्दपूर्वक खिलते देखना ही जिसका वेतन हो।

उत्तम बाल शिक्षिका कौन बनेगी ?

कोई भी चतुर और समझदार माता जो अपने बालकों का लालन-पालन प्रेमपूर्वक और व्यवस्थित रीति से करना जानती है साथ ही जिसका बालप्रेम अपने बालकों तक ही सीमित नहीं रह सकता है बल्कि सब बालकों पर छा जाता है वह उत्तम बाल शिक्षिका बन सकती है। हर बस्ती में हर मुहल्ले टोले में इस प्रकार की उमंगवाली माताएं होती ही है। उनके हाथों हर मुहल्ले और हर टोले में बालवाडियाँ चलनी चाहिए।

चूँकि आज इस प्रकार की बहनें सामने आती दिखायी नहीं पडती इसलिए हम यह नहीं समझ लेना चाहिए कि विशाल बाल प्रेम रखनेवाली बहनें है ही नहीं। कारण इसका यही है कि बालवाडियां चलाकर अपना बाल प्रेम प्रकट करने का रास्ता अभी खुला नहीं है। जब कुछ उत्साही बहनें इस रास्ते चलने

लगेंगी, तो हर मुहल्ले-टोले में दबी-छिपी बाल-सेविकाएँ प्रकट होने लगेंगी और समूचे देश मे बालवाडियो की बाढ-सी आ जायगी।

इस नये रास्ते को खोलने की अपेक्षा हम बहनों की शिक्षा-संस्थाओं से रख सकते है। छोटी उमर की कन्याओ की कन्याशालाएँ हो, माध्यमिक शिक्षा के कन्या विद्यालय हो अथवा उच्च शिक्षा के कन्या विद्यालय हो, सहज ही सब कहीं विद्यार्थिनियों को बाल-संगोपन और बाल-शिक्षा के पाठ पढ़ाना उनके पाठ्क्रम का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। नयी तालीम तो इस पर विशेष रूप से जोर देती है।

अगर इस तरह की हरएक सस्था अपने आस-पास के मुहल्लो-टोलो मे एक या एक से अधिक बालवाडियाँ चलाये, तो मुहल्ले-टोले के बालको को बालवाडी का लाभ मिल जाय और सस्था की विद्यार्थिनियो को बालशिक्षा के काम का प्रत्यक्ष दर्शन और अनुभव प्राप्त हो जाय।

आश्रमो, सर्वोदय मण्डलों, खादी-कार्यालयों आदि रचनात्मक सस्थाओ ने भी हम यह अपेक्षा रख सकते है कि उनकी कार्यकर्ता बहनें अपने नित्य के कर्तव्यों का पालन करने के अलावा मुहल्लो-टोलों मे बालवाडियाँ भी चलायें। यदि वे ऐसा करेंगी तो बालको को बालवाड़ियो का लाभ मिलेगा और सस्थाओ को तो लोगो के साथ अपना सम्पर्क बढ़ाने का एक जीता-जागता साधन मिल जायगा।

चूंकि यह स्वाभाविक है कि बालवाडियो का काम ज्यादातर बहनें चलायें, इसलिए हमने बाल-शिक्षिकाओं की ही चर्चा की है। लेकिन हम यह अपेक्षा रखते है कि बाल-सेवा का शौक रखनेवाले लोग भाइयों मे से भी बड़ी संख्या मे निकलेंगे। अतएव रचनात्मक सस्थाओ में से उनके कुछ पुरुष कार्यकर्ता भी इस काम मे योग दे सकते है।

औरो से हमारी अपेक्षाएँ

रचनात्मक सस्थाओं से अपेक्षा रखना तो स्वाभाविक ही है, लेकिन सरकारो के अनेकानेक विभागो में काम करनेवाले लाखो सेवक सारे देश मे सार्वजनिक काम कर रहे है। इनमे दिन पर दिन सेविकाओं की सख्या भी बढती जा रही है। ऐसी सेविकाओं के साथ ही सेवको से भी यह अपेक्षा तो रखते ही है कि उनमें से बहुतेरे अपने कर्तव्यों को निबाहने के अलावा अपनी-अपनी आत्मा के आनन्द के लिए, अपने बाल-प्रेम को सन्तुष्ट करने के लिए मुहल्लो-टोलो में जगह-जगह बालवाडियाँ चलायें। हम यह अपेक्षा रख सकते है कि कलेक्टर अपना कलेक्टरी टोप उतारकर, न्यायाधीश न्याय का 'क्लोक' उतारकर और

सेनापति अपनी फौजी वर्दी उतारकर रोज सुबह-शाम दो घण्टों के लिए मुहल्लों में पहुँचें और अपने शौक की खातिर बालवाड़ियाँ चलायें। इससे न केवल *बालकों को उच्चकोटि के शिक्षक मिलेंगे, बल्कि अधिकारियों के सार्वजनिक* कामों पर भी इसका अतिशय शुभ प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा।

जब समाज के अगुआ लोग रास्ता खोल देंगे, तो साधारण स्त्रियाँ भी *उतनी ही सहजता से बालवाड़ियाँ चलाने लग जायँगी, जितनी सहजता से आज* समाज की गृहिणियाँ अपने घर की रसोई बनाती हैं।

आज तो सारा समाज बहुत बेढंगा-सा बन गया है। यही कारण है कि माताओं को अपनी अन्तःस्फूर्ति से बालवाड़ी चलाने की कोई इच्छा होती दीखती नहीं है। कभी-कदास कहीं किसी धनवान् या विद्वान् या नेता के मन में यह इच्छा अवश्य जागती है कि अपने गाँव या नगर में बालवाड़ी खोली जाय। यहाँ भी विचार खुद चलाने का नहीं, बल्कि चलवाने का है। चूंकि आज की दुनिया में सभी काम तनख्वाहदार नौकरों से कराने की एक रीति-सी चल पड़ी है, इसलिए वे भी बाल शिक्षिकाओं और बाल शिक्षकों की खोज में निकल पड़ते हैं और फिर लम्बी उसासें ले-लेकर इस बात का असन्तोष प्रकट करते पाये जाते हैं कि समाज में कहीं ऐसी सुयोग्य शिक्षिकाएं नहीं मिलतीं, जिनके दिलों में बच्चों के लिए प्रेम उमड़ा पड़ता हो।

कहीं-कहीं सरकारी या गैर-सरकारी संस्थाएँ कायम होती हैं। ये संस्थाएँ भी ढेरों बालवाड़ियाँ खोलने की योजनाएँ बनाती हैं। फिर वे सरकार से और दूसरे साधनों से इनके लिए धन इकट्ठा करती हैं और अन्त में बाल शिक्षिकाओं के लिए पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन छपवाती हैं। हम इसमें भी हमेशा इसी आशय के निराशासूचक उद्गार सुनने को मिलते हैं कि साहब, क्या करें, न तो पर्याप्त संख्या में शिक्षिकाएँ मिलती हैं और न अच्छी शिक्षिकाएँ ही मिल पाती हैं। नौकरी की तलाश में घूमनेवाली कुछ बहनें इनके विज्ञापन पढ़कर खिंच आती हैं। फिर ये संस्थाएँ उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण-केन्द्र चलाती हैं।

भला सोचिये, इस तरीके से वह स्थिति कैसे खड़ी हो सकती है, जिसके *कारण हर मुहल्ले-टोले में बालवाड़ियाँ फैल जायँ और वे सब उन बहनों द्वारा* चलें, जिनके दिलों में बच्चों के लिए प्रेम उमड़ा पड़ता है? यह स्थिति तो तभी खड़ी की जा सकती है, जब, जैसा कि हम ऊपर सुझा चुके हैं, बाल प्रेमी बहनें और सेविकाएँ स्वयं ही सेवा भाव से बालवाड़ियाँ चलाने का रास्ता खोलें और उनके काम को देखकर घरों में रहनेवाली माताएँ भी अपने आन्तरिक बाल प्रेम से प्रेरित होकर मुहल्ले-मुहल्ले में बालवाड़ियाँ चलाने लग जायँ। ●

सम्पादन मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार—प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

अनुक्रम

नवम्बर, '६७

●

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चंदा छः रुपये है और एक अंक के ६० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहकसंख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

नयी तालीम : नवम्बर '६७
पहले से डाक व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस न० ४६ रजि स० एल. १७२३

भूदानयज्ञ

(साप्ताहिक)

गांधी-निर्वाण-दिवस

३० जनवरी '६८ के अवसर पर विशेषांक

'सत्याग्रह'

उपवास से उपद्रव • प्रतिकार से सहकार

'सत्य' और आग्रह' के बदलते स्वरूप

पठनीय ! मननीय !! सग्रहणीय !!!

❀

सम्पादक
आचार्य राममूर्ति

वार्षिक शुल्क १०/०० एक प्रति २० पैसे

विशेषांक

पृष्ठ संख्या ६४ • मूल्य १ ०० मात्र

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

पत्रिका विभाग
राजघाट, वाराणसी

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से [illegible]
[illegible] वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

हिन्दी भी और हिन्द भी

हिन्दी चाहिए भरपूर चाहिए लेकिन हिन्द भी चाहिए। अगर हिन्द ही न रहे तो हिन्दी ही क्या कुछ भी नही चाहिए।

यही बात मैंने अपने एक मित्र से कही तो जोर से बोल उठे तो क्या आप चाहते हैं कि देश के दो फीसदी लोगो की बात चले? अंग्रेजी पढे लिखे हैं कितने?' मैंने कहा प्रश्न दो फीसदी और ८ फीसदी का नही है। प्रश्न यह है कि अगर देश के कुछ राज्य अभी हिन्दी को वही स्थान देने को तैयार नही हैं जो हम देना और दिलाना चाहते हैं तो हम उनसे कहे क्या? क्या यह कहे कि वे देश छोडकर चले जायें? और अगर वे न छोडे तो सेना भेजकर उन्हे गोली से उडा दिया जाय, या समुद्र मे डाल दिया जाय? आखिर, मातृभाषा और मातृभूमि का मेल तो रहना चाहिए?'

वर्ष : १६
अंक : ५

आज देश के सामने सबसे बडा सवाल है कि उसकी एकता को कायम रखते हुए सवालो को कैसे हल किया जाय। बडा देश है, विविध देश है, और कई कारणो से, जिनमे दलबन्दी की राजनीति मुख्य है आपसी विश्वास और भाईचारे की कमी हो गयी है, इसलिए जो भी काम किया जाय, बहुत समझ बूझकर किया जाय। किस किस बात को लेकर किसे

किसे हम देश द्रोही कहते रहेंगे ? क्या एक दूसरे को देश द्रोही कहने से देश प्रेम बचेगा, बढेगा ? यह रास्ता अपने घर में अपने चिराग से आग लगाने का है। और, आज देश मे वही हो रहा है। जो भी सवाल सामने आ रहे हैं उनका निवटारा सडक पर लाठी-डडे से ही करने की कोशिश की जा रही है। तो फिर इतना खर्च करके हम असेम्वली और पार्लिया-मेंट के लिए प्रतिनिधि क्यो चुनते हैं ?

क्या हम नही देख रहे हैं कि हम हिन्दी का जितना ही उग्र समर्थन और अग्रेजी का विरोध कर रहे है, कुछ अहिन्दी क्षेत्रो मे उतना ही उग्र हिन्दी का विरोध और अग्रेजी का समर्थन हो रहा है ? भारत के एक राज्य नागालैण्ड ने तो अग्रेजी को अपनी राज्य भाषा ही घोषित कर दिया है। नागा लोगो से भारत के सम्बन्ध अच्छे नही हैं। उनका चीन और पाकिस्तान से आना-जाना हो रहा है। भारत सरकार से भी चर्चा चल रही है। ऐसी हालत मे क्या हम उनसे कहे कि हिन्दी को मान लो तब हमसे बाते करो ? यही हाल मद्रास की सरकार का है। वह राजभाषा के रूप म हिन्दी की बात ही नही सुनना चाहती। ऐसी हालत मे क्या इस सवाल को लेकर हम देश के टुकडे होने दे ?

साफ बात है कि हिन्द की खातिर हिन्दी प्रेमियो को अग्रेजी के विरोध का आन्दोलन बन्द कर देना चाहिए। यो ही हिन्दी के लिए बहुत बडा क्षेत्र खुला पडा है। हिन्दी का विकास हो, हर काम में उसका व्यवहार हो। वह लोक-जीवन के करीब आये और जनता की आशाओ और आकाक्षाओ का वाहन बने, यह कोशिश होनी चाहिए। विरोध नही, अविरोध के रास्ते पर हिन्दी का भविष्य है। और उसी रास्ते पर आगे हिन्द का भी भविष्य है।

अग्रेजी का विरोध खत्म होगा तो अहिन्दी क्षेत्रो मे हिन्दी का विरोध मिटेगा और वे अपनी क्षेत्रीय भाषाओ की ओर मुडेगे। देशी भाषाएँ ऊपर आयेंगी तो विदेशी भाषा देश के जन-जीवन से जायगी। वह समय होगा कि बोलचाल की हिन्दी, यानी हिन्दुस्तानी, जो करोडो की भाषा है, अपने आप देश भर मे फैल जायगी और जब कई राज्यो के लोग इकट्ठा होगे तो वे इसी भाषा म बोलेंगे क्योकि इसे कुछ न कुछ सब समझते होगे।

हिन्दी से हिन्द की तभी सेवा होगी जब यह प्रेम और भाई-चारे की भाषा होगी। जब उसके लिए नारा और डडा की जरूरत नही होगी, और न यह कानून की ताकत की मुहताज रहेगी।

—राममूर्ति

विद्यालयी शिक्षा और उसके प्रसार की समस्याएँ

भुवनेशचन्द्र गुप्त,

शिक्षा-आयोग (कोठारी आयोग) की संस्तुति के अनुसार विद्यालय की शिक्षा को पूर्व विश्वविद्यालय शिक्षा की एक क्रमिक इकाई के रूप मे माना जा सकता है। अब तक अनेक शिक्षाविदो ने छात्रो की अवस्था एव उनके विकास स्तर के आधार पर शिक्षा का तीन भिन्न भिन्न स्तरो में विभाजित किया है। आयोग ने भी इस इसी रूप म बच्चे की बाल्यावस्था, बचपन और किशोरावस्था के आधार पर स्वीकार कर लिया है—पूर्व प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, और माध्यमिक शिक्षा।

आयोग ने रूस का उदाहरण देकर यह बताया है कि वहाँ विद्यालय शिक्षा के सिद्धान्तो के अन्तगत समस्त की पाठ्यवस्तु का गठन किया जाता है, चाहे वह पूर्व प्राथमिक हो, या प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा ही क्यो न हो।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का विस्तार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व प्राथमिक शिक्षा नाममात्र को थी। इसकी ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता था। सर्वप्रथम सन् १९४४ ई० में 'केन्द्रीय-शिक्षा सलाहकार बोर्ड' ने पूर्व प्राथमिक शिक्षा को 'राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली' का अग बनाने की संस्तुति की। स्वतत्र भारत में भी कुछ समय तक इसकी विशेष उल्लेखनीय प्रगति नही हुई। सन् १९५० ई० मे भारत में कुल ३०३ पूर्व-प्राथमिक विद्यालय थे, जिनमें २८,००० छात्र अध्ययन कर रहे थे तथा १९६ अध्यापको के निर्देशन में यह कार्य सम्पन्न होता था। सन् १९६५-६६ ई० म इनकी सख्या क्रमश ३,५०० और २,५०,००० हो गयी। इन विद्यालयो में ६,५०० अध्यापक कार्य करते है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रो में भी केन्द्रीय समाज-कल्याण और विकास खण्डो ने उल्लेखनीय वृद्धि की है। ग्रामीण क्षेत्रो म २०,००० बालवाडियाँ पूर्व प्राथमिक शिक्षा के कार्य को निरन्तर कर रही है और इनमें ६,००,००० छात्र उपस्थित होते हैं।

उपरोक्त आकडो से यह तो पता चलता है कि स्वतत्रता की प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि पूर्व प्राथमिक शिक्षा का विस्तार तो अवश्य हुआ, परन्तु आकडो का अध्ययन करने पर निराशा ही हाथ लगती प्रतीत होती है। जिस देश की जनसख्या लगभग ५० करोड के आस-पास है उसमें केवल ८ लाख बच्चो के लिए ही पूर्व प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था हो सकी है, (और हमें यह भूलना नही चाहिए, ये बच्चे लगभग सभी सम्पन्न घरो के ही है) जब कि इस

(३) पूर्व प्राथमिक शिक्षा मे विशेषकर प्रसार की दृष्टि से उसे कम खर्चीली बनाने के लिए प्रयोगात्मक-पद्धति को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। इसके स्थापन के रूप में बालक्रीडा-केन्द्रो को पूर्व प्राथमिक विद्यालयो से अधिक से अधिक सख्या मे सम्बन्धित कर देना चाहिए।

(४) पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के शिक्षको को प्रशिक्षित करने, उसके लिए शोध एव अनुसधान के आधार पर साहित्य तैयार करने, निरीक्षण एव निर्देशन करने और निजी सस्थाओ को उदार आर्थिक सहायता देने और आदर्श पूर्व प्राथमिक विद्यालयो की स्थापना करने के लिए राज्य को चाहिए कि वह राज्य तथा जिला स्तर पर खेल-केन्द्रो की स्थापना करे।

(५) पूर्व-प्राथमिक विद्यालयो के कार्यक्रम लचीले होने चाहिए और उनमें विभिन्न प्रकार के शारीरिक खेल, शारीरिक श्रम-साध्य कार्य एव सीखने की क्रियाओ पर आधारित ज्ञानेन्द्रिय शिक्षा से पूर्ण कार्य होने चाहिए।

प्राथमिक शिक्षा का विस्तार

१९४७ से पूर्व प्राथमिक शिक्षा की प्रगति सतोषजनक नही थी। प्रथम योजना में इस ओर ध्यान दिया गया। स्वतत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा का रूप 'बुनियादी' माना गया था और बुनियादी शिक्षा पद्धति प्रारम्भिक स्तर पर राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति स्वीकार कर ली गयी थी। सन् १९५५ ई० में 'बुनियादी शिक्षा असेसमेण्ट कमेटी' की नियुक्ति हुई थी। उसकी सस्तुति के आधार पर गैर बुनियादी विद्यालयो को बुनियादी विद्यालयो में परिवर्तित किया जाने लगा। सन् १९५६ ई० में बुनियादी शिक्षा का एक राष्ट्रीय इन्स्टीट्यूट खोला गया। यह इन्स्टीट्यूट बुनियादी शिक्षा के शिक्षको एव प्रशासको को महत्वपूर्ण निर्देश देने का कार्य करता रहा। प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध मे भारत सरकार ने सर्व प्रथम सन् १८५८ ई० में सरकार का उचित परामर्श देने के लिए 'अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा समिति' की स्थापना हुई। सन् १९५७ ५१ में देश में बुनियादी विद्यालयो की सख्या लगभग ५९,८४८ तथा इनके छात्रो की सख्या लगभग ५८,८७,०४८ थी। प्रथम पचवर्षीय योजना मे प्राथमिक विद्यालयो की सख्या १७ प्रतिशत और छात्रो की सख्या २५ प्रतिशत बढी।[1] भारत में सविधान लागू होने ही सविधान के निर्देशानुसार १० वर्ष की अवधि में १४ वर्ष तक के बच्चो को नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा का आदेश लागू हो गया, जिससे भारत में प्राथमिक शिक्षा के विस्तार तथा सुधार की चेष्टाएँ प्रारम्भ हुई और प्राथमिक शिक्षा का विस्तार द्रुत गति से होने लगा। सन् १९४७ ई० में भारत के प्रमुख प्रान्तो में प्राथमिक विद्यालयो की सख्या १,३४,९९६ थी, जिनमें १,००,४७,३१७ छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। प्रथम

१ एजुकेशनल फाइनान्स इन इण्डिया : आत्मानन्द मिश्रा।

पचवर्षीय योजना के अ त में भारत के प्राथमिक विद्यालया की सख्या २,७८,१३५ हो गयी तथा छात्रों की सख्या २,२६,१६ ७३४ हो गयी। द्वितीय योजना में शिक्षा के लिए तीन अरब सात करोड रुपये की धनराशि रखी गई थी जब कि प्रथम योजना म एक अरब उनहत्तर करोड रुपये की धनराशि रखी गई थी। किन्तु प्रथम योजना म इस राशि म से प्राथमिक शिक्षा के लिए ९३ करोड रुपये व्यय किये गये वहाँ द्वितीय योजना में यह राशि केवल ८९ करोड रुपये ही रह गयी। द्वितीय योजना म भी प्राथमिक विद्यालया के विस्तार की गति चलती रही।[1] सन् १९६० ६१ ई० म इनकी सख्या क्रमश ३ ४२,००० तथा ३ ४३ ४०० हो गयी। तृतीय योजना म आशा की जाती था कि ६ से ११ वर्ष की आयु के लगभग ९० प्रतिशत बालक एव इसी आयु की लगभग ६२ प्रतिशत बालिकाए शालाओ म अध्ययन करेंगे। इस प्रकार इस आयु वग के बालको का प्रतिशत कुल मिलाकर ७६ प्रतिशत होता। इतना होते हुए भी विधान के अनुसार शिक्षा-सम्बन्धी निर्देश को पूरा करने म देश बहुत पिछड गया। परन्तु उपरोक्त विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि देश में प्राथमिक-शिक्षा विकासोमुख अवश्य रही है। अत प्राथमिक शिक्षा के प्रसार की समस्या के उन्मूलन के हेतु राष्ट्रीय शिक्षा आयोग ने निम्नाकित सस्तुतिया की है—

१ सविधान मे १४ वर्ष तक की आयुवाले सभी बच्चो को नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा का विधान है जिसे निम्नाकित कार्यक्रम के आधार पर समस्त देश म पूर्ण करना चाहिए—

(क) सन् १९७५ ७६ ई० तक सभी छात्रा को प्रभावपूर्ण एव उत्तम पचवर्षीय शिक्षण की व्यवस्था प्रदान करनी चाहिए।

(ख) सन् १९८५ ८६ ई० तक ऐसा सप्तवर्षीय शिक्षण दिया जावे। इस प्रकार १९८५ ८६ तक सविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य को अवश्य प्राप्त किया जाय।

(ग) अपव्यय एव अवरोधन को रोकने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसम उद्देश्य यह होना चाहिए कि कक्षा १ में प्रवेश लेनेवाले बालका में से ८० प्रतिशत भाग ७ में वर्ष की अवधि म कक्षा ७ म पहुँच जाय।

(घ) जो बालक कक्षा ७ की समाप्ति पर भी चौदह वर्ष के नही हो पाते है और सामान्य शिक्षा को आगे चलाने के पक्ष म नही है उन्हे इस १४ वर्ष पूरे होने की अवधि तक उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था कर देनी चाहिए।

(ङ) प्रत्येक राज्य एव जिले को अपने-अपने क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के विकास के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु स्थानीय परिस्थितियो के अनुसार

---

१ एजुकेशनल प्लानिंग इन इण्डिया आत्मानन्द मिश्रा।

योजनाएँ बनानी चाहिए। इन योजनाओं को आगे बढ़ाने के लिए यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनकी प्रगति अर्थ के अभाव में रुक न जाय।

२ विद्यालय शिक्षा की सामान्य सुविधाएँ—प्राथमिक शिक्षा के प्रसार का कार्य ऐसा योजनाबद्ध होना चाहिए कि निम्न प्राथमिक स्तर का कोई भी विद्यालय बालक के घर से एक मील से अधिक दूर न रहे और उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालय एक से तीन मील तक के घेरे में बच्चे को मिल जाय।

३ सामान्य नामांकन—निम्नांकित तथ्यों के आधार पर एक सामान्य नामांकन कार्यक्रम साथ ही साथ संगठित करना चाहिए—

(१) कक्षा १ की वर्तमान असमानता को घटाना चाहिए और पहली कक्षा में ५ से ६ वर्ष तक के बच्चे ही लिए जाने चाहिए।

(२) विद्यालय में पूर्व नामांकन (पंजीकरण) विधि को अपनाना चाहिए।

(३) निम्न प्राथमिक विद्यालय से उच्च प्राथमिक स्तर तक स्थानान्तरित होनेवाले छात्रों की प्रगति की गति (जो कि अभी लगभग ८० प्रतिशत है) पंचवर्षीय योजना की पंचम योजना के अन्त तक १०० प्रतिशत तक पहुँच जानी चाहिए।

४ सामान्य अवरोधन—आगे आनेवाले दशक में जो महत्वपूर्ण कार्यक्रम पूर्ण करना है, वह है प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक शिक्षा में सुधार और अपव्यय तथा अवरोधन को अधिक से अधिक घटाना। यह अपव्यय एवं अवरोधन सन् १९७६ तक लगभग अधिकांश घटाना एवं १९८६ तक सम्पूर्ण रूप से समाप्त कर देने का लक्ष्य होना चाहिए।

(१) कक्षा १ में अपव्यय और अवरोधन अत्यधिक होता है, अतः उसे इस स्तर पर घटाना ही हमारा प्रमुख कार्य होना चाहिए। इस कार्य के लिए जो भी विभिन्न कार्य अपनाये जायँ, उनमें निम्नांकित तीन बातें बड़े ही महत्व की हैं—

(अ) कक्षा १ और २ (और जहाँ भी सम्भव हो, कक्षा १ से ४ तक) को एक समन्वित इकाई मानना चाहिए।

(ब) पूर्व विद्यालय शिक्षा के लिए एक वर्ष का शिक्षण लागू करना चाहिए। और

(स) कक्षा १ में खेल द्वारा शिक्षा की तकनीकें अपनायी जानी चाहिए।

(२) अन्य कक्षाओं में अपव्यय और अवरोधन विभिन्न प्रकार की पार्ट-टाइम शिक्षा, राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालय-सुधार कार्यक्रम एवं माता-पिता तथा अभिभावकों की शिक्षा के धनात्मक कार्यक्रमों से घटाया जा सकता है।

(३) ११ से १४ वर्ष तक की अवस्थावाले वे बच्चे जिन्होंने प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त नहीं की है एवं जिन्होंने प्राथमिक शाला में प्रवेश नहीं

लिया है, जो व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षित है, उन्हे साक्षरता प्रदान करनेवाली कक्षाओ में कम से कम एक वर्ष अवश्य लाना चाहिए। इस प्रकार की कक्षाएँ प्राथमिक शालाओ मे ही छात्रो की सुविधाओ को ध्यान मे रखकर, लचीलापन लिए हुए गठित की जानी चाहिए। सर्व प्रथम उसमे आने का आधार स्वेच्छा हो लेकिन जब वे इस धारणा से परिचित हो जायें तो स्थानीय समाज पर अनिवार्यता का नियम अवश्य लगा देना चाहिए।

(४) निम्न प्राइमरी स्तर को पूर्ण कर लेने के पश्चात् उन छात्रो के लिए जो आगे भी अध्ययन करना चाहते है, पार्ट-टाइम शिक्षा देने की व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए। उसका पाठ्यक्रम सामान्य शैक्षिक मानो के आधार पर हो या स्थानीय आवश्यकता के अनुरूप कोई बड़ा व्यवसाय होना चाहिए।

प्राथमिक स्तर पर बालिकाओ की शिक्षा—संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य की प्राप्ति के हेतु बालिकाओ की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय और उसे 'नेशनल कमेटी आन वुमन्स एज्यूकेशन' की संस्तुति के आधार पर पढ़ाया जाय।

६ **गुणात्मक विकास**—प्राथमिक स्तर पर प्रसार की सुविधाओ और सामान्य नामांकन तथा अवरोध आदि को उसके गुणात्मक पक्ष मे सम्बन्धित किया जाना चाहिए। अत विस्तार के हेतु गुणात्मक अंग की उपेक्षा नही की जानी चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा-प्रसार

माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग की नीति मे प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से ही बड़ा अन्तर है। आयोग का विचार है कि आनेवाले कुछ वर्षों में धनाभाव के कारण राज्यो द्वारा जन साधारण के लिए उपलब्ध करना सम्भव नही हो सकेगा। इसलिए इसके विस्तार के लिए निम्नांकित सिद्धान्तो एव उपायो के आधार पर कार्य किया जाना चाहिए —

१ आगामी २० वर्षों में माध्यमिक शिक्षा का नियमित ढग से प्रसार निम्नांकित प्रकार से होना चाहिए —

(१) माध्यमिक विद्यालयो की स्थिति एव स्थान का चुनाव योजनापूर्वक किया जाय।

(२) प्राप्त सुविधाओ के आधार पर प्रवेश दिया जाय एव पढ़ाई का उचित स्तर अन्त तक बनाये रखा जाय।

(३) उत्तम छात्रो का चयन किया जाय।

२ माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए जिला स्तर पर प्रत्येक जिले की एक इकाई बनायी जाय जिसे एक दशक में पूर्ण कर लिया जाना चाहिए। समस्त नयी संस्थाओं को आवश्यक स्तर या मान को संतोषजनक ढग से पूर्ण करना चाहिए

और पूर्व स्थापित शिक्षण संस्थाओं को अपने शिक्षण का अपेक्षित स्तर निर्माण करना चाहिए।

३ माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश के लिए ग्राम-चुनाव के आधार पर निम्न माध्यमिक स्तर से चयन कर लेना चाहिए तथा वाह्य-परीक्षा विद्यालय-अभिलेख आदि को उच्च माध्यमिक स्तर पर आधार अवश्य बनाना चाहिए।

४. माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की संख्या को प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकतानुसार निश्चित किया जाना चाहिए।

५ माध्यमिक विद्यालय एवं व्यावसायिक शिक्षा—इस दृष्टिकोण से माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाना चाहिए, जिसमें निम्न माध्यमिक स्तर पर २० प्रतिशत और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ५० प्रतिशत छात्र व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर सकें।

६ माध्यमिक शिक्षा में अवसरों की समानता पर बड़ा बल दिया गया है। इसके लिए इस स्तर पर अधिक से अधिक छात्रवृत्तिया प्रदान करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

७ माध्यमिक शिक्षा के विस्तार में जो अड़चनें है, उन्हे दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

८ बालिकाओं, अछूत एवं जनजातियां (आदिवासियों) आदि में शिक्षा प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

९ प्रतिभा के विकास के लिए सही रूप में और सही दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए।

१० निम्न तथा उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर पूर्ण तथा अशकालीन व्यावसायिक-शिक्षा के लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

११ केन्द्रीय सरकार को विशेष अनुदान राज्य सरकारों को देने की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कि वे माध्यमिक विद्यालयों को व्यावसायिक बनाने में उचित सहायता दे सकें।

१२ माध्यमिक शिक्षा स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा

(१) बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार के लिए अगले बीस वर्षों में ऐसे महत्वपूर्ण कदम उठाये जायें कि जिससे बालिकाओं और बालकों का संख्यात्मक अनुपात १ : २ तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर १ ३ हो जाय।

(२) माध्यमिक शिक्षा के लिए बालिकाओं के लिए पृथक विद्यालय की स्थापना पर बल दिया जाना चाहिए। उन विद्यालयों में बालिकाओं के रहने के लिए छात्रावास की सुविधा होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त बालिकाओं के लिए छात्रवृत्तियाँ एवं अशकालीन व्यावसायिक पाठ्यक्रम की सुविधाएँ भी दी जानी चाहिए।

१३ विद्यालय की स्थिति के लिए योजना

(१) नवीन माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना हेतु एक राष्ट्रीय नीति का अनुसरण करना चाहिए जिससे कि अपव्यय और दोहरान से यथासम्भव बचा जा सके। शैक्षिक सस्थाओ के निर्माण के लिए द्वितीय शैक्षिक सर्वे का उपयोग उचित एव सावधानीपूर्वक स्थान के चुनाव के आयोजन के लिए अवश्य करना चाहिए।

(२) बडे और उत्तम विद्यालय बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए। लोगो म ऐसी धारणा के निर्माण का प्रयास करना चाहिए कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के बालक एव बालिकाओ के मिश्रित विद्यालय चलें। ग्रामो को विद्यालय की आर्थिक स्थिति सँभालने के लिए तत्पर होना चाहिए।

(३) माध्यमिक शिक्षा स्तर पर छोटी और अनार्थिक सस्थाओ की स्थापना नही करनी चाहिए और जो भी अनार्थिक विद्यालय चल रहे हो उन्हे भी आर्थिक दृष्टि से ठीक रूप दिया जाना चाहिए।

(४) व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना व्यावसायिक या औद्योगिक केन्द्रों के समीप की जानी चाहिए।

उपसहार

देश म बढती हुई आबादी की माँग है कि शिक्षा का प्रसार अधिक से अधिक हो। बालको के शारीरिक, मानसिक एव भावात्मक (सवेगात्मक) विकास के लिए पूव प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता निर्विवाद है। आयोग ने इसकी उन्नति के लिए जो सुझाव दिये है वे स्तुत्य है। इसकी आवश्यकता उन बालको के लिए तो वरदान सिद्ध होगी, जिन्हे उपयुक्त पारिवारिक वातावरण की प्राप्ति नही हो पाती है। परन्तु अभी तक पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा केवल कुछ सम्पन्न व्यक्तियो के बच्चो तक ही सीमित है और इन शिशु शालाओ में जो शिक्षा दी जाती है वह भारतीय सस्कृति और भारतीय वातावरण के अनुकूल नही है। यह विचारणीय समस्या है, जिसकी ओर कमीशन ने कोई सकेत नही दिया है। पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र म दिये गये अन्य सुझाव श्रेयस्कर हैं, जिन पर आयोग ने निष्ठापूवक विचार किया है।

भारतीय सविधान मे इसी उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु १४ वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओ को नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है, पर अभी तक इस ध्येय को प्राप्त नही किया जा सका है। अतएव, आयोग की सस्तुतियो को स्वीकार करके १४ वर्ष तक के बालक-बालिकाओ को नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा देने के क्षेत्र में सक्रिय कदम उठाना चाहिए।

[बी० टी० टी० कालेज गाधी विद्यामन्दिर
सरदारशहर, राजस्थान]

समवाय शिक्षण-पद्धति का विकास

वंशीधर श्रीवास्तव

अति प्राचीन काल में हमारे देश में ऋषियों के आश्रमों में जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित थी उसके अन्तर्गत प्रकृति के साहचर्य में, यथार्थ जीवन के द्वारा, ज्ञान प्राप्त करना अधिक स्वाभाविक था और इस प्रकार का ज्ञान श्रेष्ठ भी माना जाता था। उपनिषद् की एक गाथा के अनुसार सत्यकाम जाबाल नाम के एक शिष्य को गुरु ने चार सौ दुबली-पतली गायें देकर कहा—"आज से इन गायों के पालन-पोषण का भार तुम पर है। इन्हें लेकर वन में जाओ। इन्हें जंगल के हिंसक पशुओं से बचाना। जब ये गायें एक सहस्र हो जायँ, तब तुम मेरे पास आना। तब मैं तुमको सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या की शिक्षा दूँगा, क्योंकि तभी तुम ब्रह्मविद्या प्राप्त करने के अधिकारी हो सकोगे। कई वर्ष बाद 'सत्यकाम' हृष्ट-पुष्ट एक सहस्र गायों को लेकर वापस लौटा। उसके मुख पर स्वावलम्बन और स्व-अर्जित ज्ञान का अपूर्व तेज था।

गुरु ने कहा, 'पुत्रक! तुम्हारे मुख पर ज्ञान का तेज है। किससे तुमने यह ज्ञान पाया है?' शिष्य ने कहा, 'मुझे जो कुछ ज्ञान मिला है मनुष्य के अतिरिक्त दूसरों से प्राप्त हुआ है। कुछ ज्ञान मैंने बैलों से पाया है, कुछ हंस ने दिया है। कुछ मैंने अग्नि से सीखा है और कुछ पक्षी से। परन्तु ज्ञान तो गुरु से ही प्राप्त होता है। ज्ञान तो मुझे आपकी कृपा से प्राप्त होगा।'

गुरु ने दौड़कर सत्यकाम को गले लगा लिया और गदगद होकर कहा—'पुत्रक! इन गायों का रक्षण और पोषण करते हुए प्रकृति के सम्पर्क में जो व्यावहारिक ज्ञान तुमने प्राप्त किया है, वह ब्रह्मविद्या से कम श्रेष्ठ नहीं है। तुम्हें अब किसी नवीन ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। मैं उस ज्ञान की पूर्ति भर करूँगा।' ब्रह्मविद्या की यह नवीन व्याख्या सुनकर आश्रम के विद्यार्थी चकित हो गये। सत्यकाम श्रद्धा से गुरु के चरण में नत हो गया। स्वावलम्बन से अर्जित ज्ञान से उदित उसका मुखमण्डल सूर्य की भाँति उद्भासित हो उठा।

उपनिषद की इस गाथा में ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में हाथ और मस्तिष्क के समन्वय के सिद्धान्त की स्पष्ट स्वीकृति है। यहाँ कर्म और ज्ञान की एकता है। ज्ञानार्जन की यही पद्धति समवाय-पद्धति है। यही 'आदि पद्धति' है। यही स्वाभाविक पद्धति भी है। इसी पद्धति से मनुष्य ने अपने जीवन के प्रारम्भ में उस समस्त ज्ञान का अर्जन किया था हम जिसे आज कला, दर्शन और विज्ञान कहते हैं।

सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए श्री जी० रामचन्द्रन् ने एक

पद्धति के रूप में आदिकाल से होता आया है परन्तु सविधिक शिक्षण-पद्धति के रूप में जिस शिक्षा-शास्त्री ने शिक्षा-जगत में उसके प्रतिष्ठापन की चेष्टा की वे हरबार्ट महोदय थे। उन्होंने शिक्षण-कला को मनोवैज्ञानिक आधार दिया और कक्षा-शिक्षण के लिए ऐसी शैली विकसित की जिससे जो कुछ बालक को पढ़ाया जाय वह उसके मानस-पटल पर सुसम्बद्ध-सुव्यवस्थित रूप में अंकित हो जाय। उन्होंने उस समय के प्रचलित 'मानसिक शक्तियों के सिद्धान्त' (फैकल्टी थिअरी) का खण्डन किया और कहा कि मन को विभिन्न शक्तियों का समूह मानना गलत है। मन की तीन अवस्थाएँ—ज्ञान, संवेदन और क्रिया—*अलग-अलग शक्तियाँ नहीं है। मानसिक प्रक्रिया एक है और मन एक इकाई है।* हरबार्ट के अनुसार चेतना के *तत्त्व प्रत्यय (आइडियाज) है जो मन और बाह्य जगत के सम्पर्क से बनते है। मन में जो प्रत्यय या विचार बन जाते है वे कभी* नष्ट नहीं होते। प्रत्येक प्रत्यय इस बात का प्रयत्न करता है कि वह चेतना में प्रमुख बना रहे। परन्तु सभी प्रत्यय समान रूप से प्रमुख नही बने रहते। चेतना मे प्रमुखता पाने के लिए समान प्रत्ययो में सहयोग होता है और वे एक दूसरे को चेतना तक पहुँचाने में सहायता प्रदान करते हैं। विरोधी प्रत्यय मन के लिए अग्राह्य होते है। हमारी चेतना में पहले से कुछ विचार वर्तमान रहते है। जब नये विचार मन मे आते हैं तब यदि ये विचार पहले के विचारो के अनुकूल हुए तब तो मन उन्हे सरलता से ग्रहण कर लेता है पर यदि वे प्रतिकूल हुए तो मन उन्हे आसानी से ग्रहण नही कर पाता। कहने का तात्पर्य यह है कि सभी नये विचार अथवा प्रत्यय उन विचारो अथवा प्रत्ययो के अनुसार ग्राह्य या अग्राह्य होते हैं जो हमारी चेतना में पहले से ही विद्यमान रहते है। यही हरबार्ट का 'पूर्वानुवर्ती प्रत्यक्ष ज्ञान का सिद्धान्त' (डाक्ट्रीन आफ अपरसेप्शन) है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम जो कुछ देखते हैं वह बाह्य उद्दीपन (स्टिम्यूलस) पर अथवा द्रष्टा पर इतना नहीं निर्भर करता जितना मानसिक पृष्ठभूमि पर। इसीलिए एक ही व्यक्ति या विभिन्न व्यक्तियो को एक ही बाह्य उद्दीपन की उपस्थिति मे भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

मन की इसी दशा को ध्यान में रखकर हरबार्ट ने कहा कि बालक को जो *नया ज्ञान दिया जाय उसे उसके पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करके दिया जाय।* 'ज्ञात ज्ञान' के आधार पर 'अज्ञात ज्ञान' देना चाहिए। 'नया ज्ञान' पूर्व ज्ञान का विकासमात्र होना चाहिए। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्टाउट के अनुसार शिक्षा-सिद्धान्त को मनोविज्ञान की यह प्रमुख देन है।

'सह-सम्बन्ध' का सिद्धान्त इस 'पूर्वानुवर्ती' प्रत्यक्ष ज्ञान के सिद्धान्त का स्वाभाविक परिणाम है। बालक को जिस विषय का ज्ञान है, उस विषय से सम्बन्धित कर यदि अन्य विषय पढ़ाये जायेंगे तो उन नवीन विषयो का ज्ञान उसे

सहज ग्राह्य होगा । इसीलिए हरबार्ट ने पाठशाला के विषयों को परस्पर सम्बन्धित करके पढ़ाने की बात भी कही। सह-सम्बन्ध की इस क्रिया को हम समवाय का प्रारम्भिक रूप कह सकते है ।

केन्द्रीकरण

हरबार्ट का समय उन्नीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । उस समय तक यूरोप में पाठ्य-विषयो का बाहुल्य हो गया था । इनमे से ऐसे अनेक विषय थे जिनका एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है । परन्तु शिक्षण के लिए वे स्वतन्त्र विषय माने जाते थे और उनके अध्यापन के लिए अलग-अलग घंटे नियत थे । व्याकरण का भाषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है । भाषा के बिना व्याकरण की सत्ता ही नही है। परन्तु शिक्षण की दृष्टि से भाषा और व्याकरण दो स्वतन्त्र विषय थे। इसी प्रकार अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित अलग-अलग विषय थे और इनके अध्यापन में भी किसी प्रकार के समन्वय की चेष्टा नही की जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि स्कूल का पाठ्यक्रम बहुत बोझिल और शिक्षण-पद्धति अस्वाभाविक बन गयी थी । हरबार्ट के सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त ने शिक्षण-पद्धति को स्वाभाविक और मनोविज्ञान-सम्मत बनाकर पाठ्यक्रम के बोझ को हल्का किया ।

हरबार्ट ने तीन प्रकार के सह सम्बन्धो की चर्चा की है । पहला है एक ही विषय के विभिन्न प्रसगो का सम्बन्ध, दूसरा है पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का आपसी सम्बन्ध और तीसरा है स्कूल के विषयो का बाह्य जगत से सम्बन्ध । अपने तीसरे रूप में सह-सम्बन्ध जान डिवी के 'सयोजन' और 'अनुबधो' के सिद्धान्त के बहुत पास आ जाता है ।

अपने पहले रूप में सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त हरबार्ट के पूर्व ज्ञान का ही परिष्कृत और व्यावहारिक रूप है । किसी भी विषय को पढ़ाते समय यदि उस विषय का ज्ञात प्रसग अज्ञात प्रसग की भूमिका बनकर आता है तो बालक के लिए नये प्रसग का ज्ञान सरल हो जाता है । अत. किसी भी विषय के अध्यापन में जितने भी प्रसग हो उनका पूर्वापर सम्बन्धित हो तो अध्यापन की क्रिया अधिक मनोवैज्ञानिक और रुचिकर बन जायगी और विषय का बोध सुगम और टिकाऊ होगा ।

अपने दूसरे रूप में सह-सम्बन्ध के सिद्धान्त ने 'केन्द्रीकरण' के सिद्धान्त को जन्म दिया । हरबार्ट ने मन की विभिन्न शक्तियो के सिद्धान्त का खण्डन करके मन की इकाई के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था । केन्द्रीकरण एक प्रकार से इस सिद्धान्त का परिणाम मात्र था । हरबार्ट ने कहा—पाठ्य-क्रम के विषयों को सह-सम्बन्धित करके पढ़ाने से शिक्षण की प्रक्रिया अधिक सरल हो जाती है । परन्तु यदि किसी एक विषय को केन्द्रीय विषय बना लिया जाय और उसीके

माध्यम से अथवा उसीसे सम्बन्धित करके पाठ्यक्रम के अन्य विषय पढाये जायें, तो छात्रों के मन पर ज्ञान की एक सम्बद्ध-संश्लिष्ट छाप पड़ेगी और ज्ञान-ग्रहण की क्रिया और भी अधिक सहज बन जायगी। केन्द्रीकरण की प्रक्रिया से सारे विषय एक केन्द्रीय विषय से सम्बन्धित तो हो ही जाते हैं, वे आपस में भी सम्बन्धित हो जाते हैं और इस प्रकार छात्र को समन्वित रूप में ज्ञान प्राप्त होता है जो सर्वथा मनोवैज्ञानिक है क्योंकि मन एक इकाई है।

केन्द्रीकरण की मुख्य समस्या यह थी कि केन्द्रीय विषय कौनसा हो। चूँकि हरबार्ट चरित्र निर्माण को शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। अत उन्होंने ऐसे विषयों को केन्द्रीय विषय चुनने की सलाह दी जिनमें छात्रा का चरित्र निर्माण हो।

इस प्रकार केन्द्रीकरण का यह सिद्धान्त जहाँ सह सम्बन्ध का प्राकृतिक विकास था वहाँ डिवी के अनुबन्ध-पद्धति (को रिलेशन) का मार्ग-सूचक भी था। केन्द्रीकरण में कोई एक विषय अन्य पाठ्य विषयों का केन्द्र बनता है, जब अनुबन्ध के सिद्धान्त में बालकों की क्रियाएँ और अनुभव दूसरे विषयों को पढाने के केन्द्र होते है।

केन्द्रीयकरण के इस सिद्धान्त की यूरोप और अमेरिका, दोनो महाद्वीपों में चर्चा हुइ। उसको लेकर खूब प्रयोग भी हुए। हरबार्ट के शिष्यों ने केन्द्रीकरण की कई योजनाएँ प्रस्तुत की। केन्द्रीय विषय क्या हो इस सम्बन्ध में हरबार्ट के अनुयायियों में मतभेद रहा। हरबार्ट के एक शिष्य ने चरित्र निर्माण को शिक्षा का उद्देश्य स्वीकार किया और कहा—इस काम के लिए सर्वोत्तम विषय 'इतिहास' है। इसलिए उसने इतिहास को केन्द्रीय विषय चुना और दूसरे विषयों को उसीमें सम्बन्धित करके पढाने का विधान किया। उनका विचार था इतिहास द्वारा कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, लेख आदि साहित्य के विषयों की शिक्षा तो स्वाभाविक रूप से दी ही जा सकती है, ऐतिहासिक किले, अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र-गहने, बर्तन-सिक्के आदि के चित्र या रेखाचित्र बनाकर कला और ड्राइंग की शिक्षा भी दी जा सकती है। भूगोल तो इतिहास की पृष्ठभूमि ही है और अनेक ऐतिहासिक तथ्य और घटनाएँ देश की भौगोलिक परिस्थितियों को समझे बिना ठीक-ठीक समझ में नही आती। इतिहास को केन्द्रीय विषय रखने से गणित और विज्ञान का स्वाभाविक और सम्यक् अध्यापन नही हो पाता। पर जिल्लर और उनके उत्साही अनुयायियों ने ऐतिहासिक युद्धों के हिसाब किताब रखने और भूमि प्रबन्ध और कर आदि के सिलसिले में गणित की शिक्षा की योजना भी बना ली। लेकिन जैसा स्वाभाविक सम्बन्ध इतिहास और साहित्य के कतिपय अंगों का अथवा इतिहास और भूगोल का है वैसा स्वाभाविक सम्बन्ध विज्ञान और गणित का इतिहास से नही हो पाया। इस अस्वाभाविक सम्बन्ध-स्थापन से सबसे बडी हानि यह हुई कि गणित और विज्ञान का नित्य के व्यावहारिक जीवन

से जा सम्बन्ध है उस रूप पर प्रकाश नहीं पड़ा और गणित था शिक्षण जीवन की परिस्थितियों से दूर हो गया। इसमें अच्छी स्थिति तो उसके स्वतन्त्र असम्बद्ध अध्यापन की ही थी।

इसीलिए अमरिका के फ्रांसिस कर्नल पार्कर नाम के शिक्षा शास्त्री ने यह सम्बन्ध के लिए प्रकृति-अध्ययन और विज्ञान को केन्द्रीय विषय चुना। पार्कर महोदय शिक्षा का उद्देश्य बुद्धि और अन्तर्दृष्टि का विकास मानते थे। उनका कथन था कि यदि सामान्य बुद्धि और अन्तर्दृष्टि का सम्यक् विकास हो जाय तो चरित्र भी उत्तम हो जायगा। अत अध्यापक का प्रमुख कार्य सामान्य बुद्धि का विकास ही है। इस दृष्टि से प्रकृति-अध्ययन और विज्ञान सर्वोत्तम विषय है। क्योंकि मनुष्य जब तक प्रकृति के आधारभूत नियमों को नहीं समझेगा उसके अज्ञान का नाश नहीं होगा। पार्कर का कथन था कि 'विज्ञान' और प्रकृति अध्ययन के केन्द्रीय विषय के साथ स्कूल के दूसरे विषय बड़ी अच्छी तरह सम्बन्धित हो जाते है। इस केन्द्रीय विषय से भूगोल और प्राकृतिक अध्ययन का सम्बन्ध तो अत्यन्त निकट का है ही, गणित और ड्राइंग तथा माडलिंग आदि विषय भी इससे अत्यन्त स्वाभाविक रूप से सम्बन्धित हो जाते हैं। लेकिन देखा यह गया कि प्रकृति-अध्ययन और विज्ञान में पाठों और साहित्यिक विषयों के सम्बन्ध की सीमा उतनी व्यापक नहीं है और खींचातानी करके सम्बन्ध स्थापित करने से विज्ञान और साहित्य दोनों ही प्रकार के पाठ नष्ट हो जाते है। जो भी हो अमेरिका में केन्द्रीकरण का यह आन्दोलन खूब चला और वहाँ इस विषय पर प्रचुर साहित्य भी उपलब्ध है।

हरबार्ट के दूसरे शिष्य प्रो० डी० गार्मों ने बालक के व्यावहारिक क्षमता के विकास को शिक्षा का ध्येय माना और इस उददेश्य को प्राप्त करने के लिए भूगोल और अर्थशास्त्र को केन्द्रीय विषय मानकर अन्य विषयों को पढ़ाने की योजना प्रस्तुत की। उनका तर्क था कि 'भूगोल विज्ञान और कला के बीच की कड़ी है और 'अर्थशास्त्र जीवन-यापन की व्यावहारिक कला की शिक्षा है। वस्तुओं का उत्पादन, वितरण, क्रय विक्रय, आयात निर्यात, श्रम-विभाजन आदि अर्थशास्त्र के विषय है और जीवन के व्यावहारिक पक्ष से सम्बन्धित है। अत अर्थशास्त्र को केन्द्रीय विषय बनाकर दूसरे विषयों को पढ़ाने से इन विषयों के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा हो जायगी और बालक जीवन-यापन के कुछ प्रायोगिक पहलुओं को सीख जायगा।

इस केन्द्रीकरण के सिद्धान्त के जहाँ अनेक मनोवैज्ञानिक लाभ है, वहाँ एक दोष यह है कि एक ही विषय को बहुत अधिक महत्व दे दिया जाता है। इसका दूसरा दोष यह है कि केन्द्रीय विषय को चुनने में शिक्षा शास्त्री अपनी रुचि और जीवन के अपने दर्शन से शासित होते है—बालकों की रुचि से नहीं।

आज का अमरीकी शिक्षण—२

के० एस० आचार्लु

साधारण परिस्थितियों में पाठ्यक्रम के परिवर्तन पेशेवर हिस्सा लेनेवालों द्वारा संचालित उत्क्रान्तिपूर्ण विकास के नियम का अनुसरण करते है। किन्तु जब देश परम्परा से असम्बद्ध युगान्तरकारी राजनैतिक और आर्थिक नीतियो के जादू से प्रभावित होता है तो पाठ्यक्रम के परिवर्तन पिछली परम्परा से कोई सम्बन्ध नही रखते। शैक्षणिक नेतृत्व जडमूलत्वाले व्यक्तियो के हाथ छीन कर राज्याधिकारियो, शिक्षाविदो और राजनैतिक नेताओ के हाथो मे दे दिया जाता है। शैक्षणिक नीति और वित्त के मामले केन्द्रीय अधिकार मे चले जाते है। शिक्षा पर बाहरी प्रभावो और शक्तियो का असर प्रकट रूप मे होता है और पाठ्यक्रम पर भी केन्द्र का प्रभाव हो जाता है।

सघीय (फेडरल) राजनैतिक कारणो से प्रेरित होकर अमेरिका ने गणित, विज्ञान, अंग्रेजी और सामाजिक ज्ञान पर बहुत जोर दिया है। सघीय स्तर पर पाँच उच्च स्तर की दस लाख डालरवाली विशेष सस्थाएँ बनायी गयी है— भौतिकशास्त्र अध्ययन कमेटी, जीवशास्त्र पाठ्यक्रम अध्ययन, रासायनिक शिक्षण-सामग्री अध्ययन, विद्यालयीन गणित अध्ययन ग्रूप, सामाजिक ज्ञान अध्ययन ग्रूप। इन कमेटियो को सभी दर्जों के छात्रो के लिए विशेषज्ञतापूर्ण शिक्षण-प्रकार विकसित किये है। पाठ्यक्रम की तैयारी में बुनियादी विचार बच्चो की विशेषताएँ, हित और बच्चो के अनुभव का नही है, बल्कि शैक्षणिक अनुशासन की परिपूर्णता का है।

पाठ्यक्रम-परिवर्तन का कारण

पाठ्यक्रम के क्षेत्र में इस आश्चर्यकारी परिवर्तन के क्या कारण थे ? सबसे मुख्य कारण यह भंडाफोड था कि हाईस्कूल-स्नातको मे भयानक गणित शास्त्रीय और वैज्ञानिक अज्ञान भरा हुआ है। राजनीतज्ञो का विश्वास था कि 'शीतयुद्ध' को जारी रखना और उसकी सफलता, विज्ञान और गणित अधिकांश रूप में मे बुद्धिमान युवको की कुशलता पर निर्भर है। दूसरा कारण महत्वाकांक्षी मध्यमवर्ग की अभूतपूर्व समृद्धि थी जो शिक्षण को एक धुंधले, पूर्णतावादी आदर्श के लिए नही, बल्कि इसी ससार मे और अभी सफलता और अच्छी जिन्दगी की प्राप्ति के लिए एक खुली कुंजी समझता था।

प्रगतिवादी शिक्षाविद के विषयों के सम्मिलन और अनुभव के एकसूत्रीकरण के पाठ्यक्रम-सम्बन्धी सिद्धान्त की जगह इस नये विषयों पर बल देने के सिद्धान्त ने ले ली। जीवशास्त्र, भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र को वैज्ञानिक विषयों की स्वतन्त्र हैसियत मिल गयी। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, एन्थ्रापॉलोंजी को अलग अनुशासनों का व्यवहार प्राप्त हुआ था। शिक्षाविद ही नहीं बल्कि विषय के विशेषज्ञों और मानस शास्त्रियों ने विभिन्न शैक्षणिक अनुशासनों की शिक्षा के प्रश्नों पर विचार करने के लिए सम्मिलित विचार-विमर्श किया। विद्या का इच्छित आदर्श निरीक्षण से विचार की ओर जाना बन गया। किसी विषय के क्षेत्र में पाठ्यक्रम, योजना बनाने का उद्देश्य यह निर्धारित करना बन गया कि हाईस्कूल-कोर्स पूरा करने के बाद विद्यार्थी का क्या जान लेना चाहिए। और, इस अंत बिंदु से पाठ्यक्रम प्रारम्भ की ओर ले जाकर प्राप्त समय में ठीक-ठीक बैठने लायक कदमों के बीच सारा शैक्षणिक कार्यक्रम निर्धारित किया गया। विद्यार्थी का पिछला अनुभव, मौजूदा दिलचस्पियाँ, काम के अनुभव (प्रयोगात्मक) और व्यक्तिगत भिन्नताएँ, विषय वस्तु की पुनर्रचना और पाठ्यक्रम-सम्बन्धी सुधार की मुख्य पहिचान होनी चाहिए, यह सिद्धान्त पीछे पड़ गया।

नयी योजना के अनुसार ज्ञान शैक्षणिक पुलिंदों में दिया जाता है। और, साथ में अच्छी पाठ्य-पुस्तकों, अनुसन्धानशालाओं की सामग्रियों, फिल्मों और दूसरी कारीगरी की सहायताओं से उसमें बढ़ोतरी की जाती है। पाठ्यक्रम-सम्बन्धी कमेटियाँ सभी अनुशासनों में ऊपर से नीचे तक की योजनाएँ बनाती है।

इन सब परिवर्तनों का नतीजा क्या है ? पहला लाभ यह है कि प्रारम्भिक स्कूल से ऊपर तक शैक्षणिक अनुशासनों के सगठन में पहली श्रेणी के विद्वानों का सहयोग मिल जाता है। विभिन्न मानस शास्त्रीय-पद्धतियों और तकनीकों को काम में लाकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में भी जरूरी शैक्षणिक-फल प्राप्त किया जा सकता है।

एक दूसरा नतीजा यह है कि पिछले कुछ वर्षों में विषय की आवश्यकताओं, पाठ्य विषयों की विषयवस्तु, स्कूल सगठन के विभिन्न प्रकार, समूह शिक्षा, शैक्षणिक मन्त्रों का उपयोग, भाषा अनुसन्धानशालाएँ, नापना, मूल्यांकन, समूहीकरण, निदर्शन, राय देना, माता पिता को रिपोर्ट करने के नये तरीके, स्कूल-दिन की लम्बाई, विद्यार्थियों द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन, घर का काम, टेलीविजन का उपयोग, टेप रिकार्ड, चालनी फिल्मों की तकनीक, नये प्रकार की स्कूल इमारतें, कार्यक्रमानुसार पाठ्य-पुस्तकें, शिक्षा के रिकार्ड, आदि शिक्षा के हर क्षेत्र में बहुत-सा सक्रिय अनुसन्धान किया गया है। यह पता लगाया गया है कि "आधुनिक टेकनालॉजी अभी भी शिक्षा समझी जानेवाली केवल मात्र

अक्षर बनाने और सुनने की सक्रियता से बहुत अधिक दूर तक शिक्षण के प्रभाव को पहुँचा सकती है। बटन और स्विच दबाकर बहुत-सी शिक्षा अमल में लायी जा सकती है।" (गुड लैंड)

शैक्षणिक साधन

पिछले वर्षों में शिक्षक यह स्वीकार करते थे कि स्कूल बच्चों के उचित आचरण, सामाजिक और भावनात्मक विकास मे मदद करते हैं। साथ ही उनके बौद्धिक कुशलताओं जैसे तर्क करना, समालोचना के साथ पढ़ना, और रचनात्मक विचार प्रकट करना, आदि की ओर भी ध्यान देते है।

आज व्यक्ति, समाज, राज्य, राष्ट्र और संसार के सम्बन्ध में असरदार निर्णय करने के लिए आवश्यक बौद्धिक योग्यताओ, आदतों और रुखो के विकास में बच्चों को शिक्षित करने के काम को अधिक महत्त्व दिया गया है। दर्जे के कमरे की शिक्षा, कार्य और सफलताओं का इस प्रकार संयोजन किया जाता है, जिससे कि वे विभिन्न प्रकार की सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक योग्यताओं और आदतों के विकास में मदद करें। इसलिए इन शैक्षणिक अनुभवों के लिए सावधानी के साथ योजना बनाने की आवश्यकता है, जिससे कि अनुचित नतीजे और अकुशलता से बच सकें।

इसलिए विषयवस्तु के बाकायदा संगठन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। आज खोज करके, प्रयोग और जांच करके सीखने के तरीके को अधिक प्रधानता प्राप्त हुई है। हर प्रकार के शिक्षण म स्व-शिक्षण की पद्धतियाँ काम म लायी जा रही हैं। सबसे अन्तिम प्रकार का अतिप्रिय तरीका (लेटेस्ट फैड) बहु-माध्यम पहुँच (मल्टी-मीडिया-एप्रोच) का है। भौतिकशास्त्र, जीवशास्त्र और रसायनशास्त्र सम्बन्धी कमेटियो ने अनुसन्धान-शालाओं की प्रयोग-पुस्तिकाओं जैसी सहायक पुस्तको के साथ अनेक प्रकार की शैक्षणिक सामग्री तैयार की है। विज्ञान के अधिक ज्ञान की इच्छा रखनेवाले विद्यार्थियो के लिए विज्ञान-संसार पर अनेक लेख-पुस्तक-मालाएँ (सीरीज ऑफ पेपर बैकड) कुशल लेखको द्वारा तैयार की गयी हैं, *आदर्श यह है कि विद्यार्थियो को पाठ्य-पुस्तको, फिल्मों और* अनुसन्धानशाला-कार्यों में से सर्वोत्तम दिया जाय।

कार्यक्रम-युक्त शिक्षा नाम की एक पाठ्यक्रम-युक्ति सब जगह काम में लायी जा रही है। इसके अनुसार शिक्षा के अनुभव विभिन्न कदमों में संगठित किये जाते हैं और विद्यार्थी को कदम-ब-कदम आगे बढ़ने मे और जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता जाता है अपनी प्राप्त सफलता के मूल्यांकन करने मे मदद की जाती है।

स्कूल-संगठन

शैक्षणिक लक्ष्यों के परिवर्तन का प्रभाव स्वभावत: स्कूल संगठन की पद्धतियों पर भी पड़ता है।

अमरीकी शिक्षा म आज तीन प्रकार की सगठनात्मक योजनाएँ परीक्षित हुईं और उपयुक्त पायी गयी कही जाती है।

१ पहली कक्षा हीन योजना (नान ग्रेडिंग प्लैन) है। यह योजना परम्परागत कक्षा-स्तर पाठ्यक्रम को अस्वीकार करती है। साथ ही कक्षा से कक्षा-पदोन्नति की पद्धतियों को भी अस्वीकार करती है। पहले प्रकार का कक्षा सगठन व्यक्तिगत भेदों और पाठ्य क्रमागत भेदों को दूर करने के लिए ठीक नहीं था। यह तेज सीखनेवाले बुद्धिमान विद्यार्थी को पीछे खींचता था और धीरे सीखनेवाले विद्यार्थी को अपनी शक्ति से बाहर आगे बढ़ाता था। वर्तमान समय की कक्षा न बनाने की योजना के अनुसार विद्यार्थी विभिन्न गतियों स (खड़ी चढ़ान) ऊपर चढ़ते है। इसमें प्रतिवर्ष पदोन्नति और असफलता नहीं होगी। नतीजा यह है कि तेज विद्यार्थी ऊँचे पाठ्यक्रम म पहुँच जाते हैं जब कि धीमे सीखनेवाले अपनी गति से आगे बढ़ते है।

२ स्टोडाड की 'द्विधा उन्नति योजना (ड्यूएल प्रोग्रेस प्लैन) स्कूलों में किसी विद्यार्थी को प्रगति की दो स्पष्ट कलाएँ स्वीकार करती है। भाषा-कलाओं और सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम क्षेत्र म प्रचलित कक्षा प्रणालियों का अनुसरण किया जाता है। किन्तु गणित विज्ञान, सगीत और कला म विद्यार्थियों को कक्षा न बनाने की योजना के अनुसार निश्चित किया जाता है।

३ तीसरी सगठनात्मक योजना, "टीम शिक्षा योजना है जिसमें एक या दो शिक्षकों को विद्यार्थियों के समूह की जिम्मेदारी दी जाती है। शिक्षक समूह एक साथ योजना बनाता है, शिक्षण चलाता है और मूल्याकन करता है। इसका नतीजा हुआ है—समूहीकरण में, शिक्षकों के प्रयोग में और शिक्षा के साधनों में लचीलापन।

सुधार-आन्दोलन की कमी

नये सुधार-आन्दोलन म क्या खराबी या कमी है? एक प्रमुख खराबी यह है कि टेक्नालॉजी के इस युग में जब कि सामाजिक अंतर-ज्ञान और सामाजिक जिम्मेदारी का भाव रखनेवाले नागरिकों की जरूरत है। शैक्षणिक विषयों पर जोर देने का नतीजा सामाजिक रहन सहन के व्यवहार पर और प्रजातंत्र-वादी नागरिकत्व म अनुभव की लापरवाही होना है। दूसरे चूँकि पाठ्यक्रम का सगठन ऊपर स नीचे को आया है सीखनेवालों की दिलचस्पियाँ और अनुभव पीछे पड़ गये है। पाठ्यक्रम का सुधार बाहरी आक्रमण से निकला है न कि स्वाभाविक भीतरी-विकास के फलस्वरूप निकला है। प्रगतिशील शिक्षा के दिनों की मुक्त रचनात्मक और अन्वेषणात्मक योजनाओं पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता। प्राप्त समय म जो ज्ञान बच्चों को देने का उन्होंने निश्चय किया है, उस निचोड़कर सिखाने म विषय के स्वामियों को बड़ी दक्षिणाई पर

रही है। इसका अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम के पुराने सिद्धान्तों को भग कर दिया गया है। उनकी उपेक्षा की गयी है। एक बडे टाइमटेबुल की आवश्यकताएँ पाठ्यक्रम को निर्धारित करती है, बच्चे की शैक्षणिक आवश्यकताएँ नहीं। स्कूल-ज्ञान, जीवन-परिस्थिति, बच्चो के जीवन-अनुभव और कार्यो में बहुत कम परस्पर सम्बन्ध है। घोडे के आगे पाठ्यक्रम की गाडी रख दी गयी है। बहुत दिन पहले एच० डी० स्टेड ने इस परिस्थिति की विशेषता का बतलाते हुए कहा था कि यह उसी तरह है मानो यत्र विचार पर हावी हो या साधनो ने लक्ष्य का स्थान ले लिया हो।

किन्तु नये शैक्षणिक सुधार की एक अभीक्षित दिशा, शिक्षा मे मार्गदर्शन को दिया जाने वाला बडा महत्व है जो कि हाई स्कूल के बाद की शिक्षा चाहनेवाले बहुत मे युवको की इच्छा के कारण और शहरी स्कूलो के सामने विशिष्ट शैक्षणिक प्रश्नो पर ध्यान देने के कारण आवश्यक हो गया है। अभी तक हाई-स्कूल शिक्षा काम और नौकरी की वाणिज्य दुनिया म प्रवेश प्राप्त करने के लिए द्वार सीमा थी। लेकिन टेक्नालाजी की उन्नति के कारण तकनीक जाननेवाले लोगो की बेकारी के कारण उच्च शिक्षा के लिए माँग बढ गयी है। कॉलेजो में स्थान की कमी और भर्ती के लिए असाधारण दौड ने मार्गदर्शन के जादूगर के लिए सलाह देने की जादू की कुञ्जी से खोलना आवश्यक हो गया है। मार्गदर्शन का विशेषज्ञ पेशे सम्बन्धी सूचनाएँ इकट्ठी करता और देता है। स्कूलो मे से निकल जाने वालो का विश्लेषण करता है। व्यक्तिगत और सामूहिक परीक्षा दिलाता है। उम्मीदवारो के चुनाव में सलाह देता है, नौकरी और उच्च अध्ययन के सम्बन्ध मे अपने सुझाव देता है। यह कहा जाता है कि मार्गदर्शन का सलाहकार शिक्षक से अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है।

मुझे विश्वास है कि अमरीकी शिक्षा की आज की धाराओ के इस अल्प वर्णन मे वे समानान्तर रेखाएँ मालूम होगी जिन पर हमारे देश की राष्ट्रीय शिक्षा आगे बढ रही है। जिस प्रकार अमरीका ने प्रगतिशील शैक्षणिक पन्थ के शैक्षणिक सिद्धान्तो को बेहिचक लपेटकर अन्ध-महासागर में फेंक दिया है। उसी प्रकार हमारे शैक्षणिक राजनीतिज्ञो ने शिक्षा को नयी तालीम की कल्पना को एक किनारे रख दिया है। यद्यपि दो विशेषज्ञ कमीशनो ने उस पर बेहिचक प्रशसा बरसायी थी। बालकेन्द्रीकरण जीवन केन्द्रीकरण और कार्य केन्द्रीकरण की शैक्षणिक कल्पनाएँ और सम्मिलित पाठ्यक्रम आजकल के शैक्षणिक अधिकारियो और योजनाकारो को अच्छे नही लगते। उनके अनुसार राष्ट्र के नौजवानो के लिए जो महत्व की चीज है वह मातृभाषा उतनी नही जितनी कि विज्ञान, गणित और अंग्रेजी पर उनका अधिकार है। हमारे शैक्षणिक योजनाकार विश्वास करते हैं [कि विज्ञान किसी

तरह सुख शक्ति और वास्तविकता के क्षेत्र का दरवाजा खोल देता है यद्यपि बुद्धिमान लोग हमें सदा से आगाह करते आये है कि हमें मनुष्य प्राणियो को अधिक आवश्यकता है न कि अधिक विज्ञान की, ताकि हम अपने समय के सकट का मुकाबिला कर सकें और उसे हल कर सकें। हमारे शिक्षण में सबसे इधर का फशन पाठ्य सामग्री पाठ्य-पुस्तको मूल्याकन, पद्धतियो और तकनीको का एक केद्रीय सगठन द्वारा एक सा मान निश्चित करना है।

इससे अधिक दु खपूर्ण बात और कोई नही हो सकती कि एक देश जिसके प्रसिद्ध दार्शनिक समाजशास्त्री और दूसरे बुद्धिजीवी गाधीजी के अहिंसक और तालीम के सिद्धान्तो की ओर मानवता के लिए एकमात्र आशा समझ कर देखते है वहा हम परदेश से ऐसे शैक्षणिक सिद्धान्तो का आयात करें जो समृद्धि के अर्थशास्त्र, पतनकारी जडवाद, युद्ध युद्धातक और युद्ध की तैयारी से जुडी टेक्नालाजी के भक्त हो। अकाल के दिनो म अन्न का आयात क्षम्य हो सकता है। आवश्यक भी हो सकता है किन्तु सन्देहात्मक गुणवाले सास्कृतिक माल का आयात करना सास्कृतिक आत्महत्या करने से कम नही है।

गाधीजी ने कहा 'मैंने हिन्दुस्तान को बहुत-सी चीजें दी हैं किन्तु नयी तालीम की यह शैक्षणिक प्रणाली अपनी टेकनिक (पद्धति) के साथ उनमें सबसे अच्छी चीज है। मैं नही समझता कि मेरे पास देने का देने के लिए इससे बढकर कोई चीज होगी। लेकिन जब कि हम इन सिद्धान्तो के प्रति केवल जबानी हमदर्दी प्रकट करते है, हमने गाधी जी की शिक्षा के मूलाज्ञापत्र को आदर के साथ फाडकर चिथडे कर डाला है।

यदि हम ईमानदारी से नयी तालीम का अनुसरण करते तो वह न सिर्फ हमें बल्कि दुनिया को बचाती और मानव-समाज के इतिहास म एक नया युग' प्रारम्भ करता। यदि हम अपने देशी रास्ते पर चले होते और शिक्षा के सम्बन्ध में सत्य के जोरदार अनुसरण और स्वतत्र विचार में अपनी सारी ताकत लगाते तो हमने अभी तक लोगो के सामने एक नये प्रकार के जीवन और लोक-कल्याण के एक नये विधान का दर्शन अवश्य खडा कर दिया होता। •

शिक्षा का सम्बन्ध जीवन-यापन की कला से ही नही, जीवन के आदर्शों से भी होना चाहिए। इसीलिए हम बेसिक शिक्षा को जीवन की शिक्षा कहते हैं, क्योकि इस पद्धति म हम बालको को केवल जीवन-यापन के लिए उद्योगो की ही शिक्षा नही देते, वरन् सहकारी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं।

—डा० पट्टाभि सीतारमैया

शिक्षा में क्रान्ति

सरला देवी

आजकल हमारे देश में सब विचारशील लोग शिक्षा की परिस्थिति के बारे म चिन्तित हैं। समय-समय पर विद्यार्थी-समाज में होनेवाली विस्फोटक घटनाएँ वास्तव में चिन्ता और चिन्तन का कारण बन गयी हैं। यह देशव्यापी असन्तोष और अधीरज सिर्फ वर्तमान युवकों के विद्रोही स्वभाव के कारण से नहीं है— वह हमारे समाज में घर किये हुए और तेजी से बढनेवाली बुराइयों के फलस्वरूप है। जिस समाज में गरीबों और अमीरों के बीच की खाई तेजी से बढ रही है जिसमें न्याय के स्थान पर भ्रष्टाचार, नफाखोरी और घूसखोरी व्यापक पैमाने पर फैल रही है, क्या हम अपेक्षा कर सकते हैं कि ऐसे समाज में विद्यार्थी अनुशासित रहेंगे? जिस समाज में आजादी के नाम पर हर प्रकार की स्वच्छन्दता को मान्यता दी जा रही है, उसमें विद्यार्थी अनुशासित कैसे रहें?

उनके सामने अँधेरे भरे भविष्य के सिवा और क्या दीखता है? नौकरी का लक्ष्य रखकर ब्रिटिश सरकार ने नौकर तैयार करनेवाली शिक्षा-योजना रची तो थी, लेकिन जितने नौकर की आवश्यकता थी उतने ही तैयार करती थी। अत नौकरी की उस गुलामी में भी विद्यार्थी अपने भविष्य को सुरक्षित मानते थे। परन्तु स्वतंत्र भारत में ऐसा नहीं हुआ। शिक्षा-पद्धति और शिक्षा का लक्ष्य पुराना ही रहा, परन्तु पढनेवालों की संख्या कई गुना बढ गयी और सबको नौकरी देना कठिन हो गया। विद्यार्थियों का भविष्य सुरक्षित नहीं रह सका। अब उनके सामने अपने भविष्य के लिए दो ही तस्वीर उपस्थित रहती है —शिक्षा का भारी खर्च सहन करने के बाद भारी रिश्वत देकर नौकरी करना, अथवा ईमानदारी से रहें तो गरीबी का सामना करके आधे पेट खाना। ऐसी निकम्मी शिक्षा पाने के बाद बेईमानी के या बेकारी के सिवा और क्या भविष्य है?

तो समाज की परिस्थिति तथा अपने भविष्य की परिस्थिति देखते हुए विद्यार्थी हिंसक विद्रोह के सिवा क्या करें? युवावस्था आदर्श की अवस्था है। युवक और युवतियों का स्वभाव पुरुषार्थी होना है। ये अपने और अपने समाज के भविष्य के लिए सिर्फ स्वप्न नहीं देखते हैं, बल्कि कुछ करने की इच्छा भी रखते हैं। वर्तमान मायूसी में जब उन्हें कोई सृजनात्मक मार्गदर्शन नहीं मिलता है, तो ये समाज और सम्पत्ति के हिंसक विद्रोही बन जाते हैं। लेकिन चूँकि समाज ने उनके प्रति अपना कर्तव्य नहीं निबाहा इसलिए उसका दोष विद्यार्थियों के बनिस्बत ज्यादा समाज को देना चाहिए।

इस सिलसिले में आचार्य श्री रजनीश ने अपनी 'नये मनुष्य के जन्म की दिशा' नाम की पुस्तक में एक नयी दिशा से मूल चिन्तन किया है।

वे मानते है कि अब तक शिक्षा के द्वारा दुनिया पुराने मूल्यों को विद्यार्थियों पर थोप कर, उन पर विकृतियाँ थोप रही है। हर पीढ़ी इस अत्याचार को दोहराती रहती है, इसलिए पुराने मूल्य पूज्य माने जाते है, विकृतियाँ संस्कृतियाँ समझी जाती है और सेवा की आड मे शोषण खडा होता है।

शिक्षा के 'वस्त्रो' को उतार कर, हमें उसे सचाई से जाँचना चाहिए। जब समाज और मनुष्य गलत रास्ते पर है, तो निश्चित ही शिक्षा सम्यक् नही हो सकती है। इस चिन्तन को करने के लिए निर्भय चिन्तन की आवश्यकता है। समस्याएँ जीवन मे है, लेकिन हम उनका समाधान बुद्धि में ही खोजते है।

आचार्य जी पूछते है—क्या यह सम्भव नही कि हम प्रथम मनुष्य की तरह जीवन को सीधे देख सकें ?

आजकल शिक्षा चित्त को जगाती नही, वह उसे बढाती है। विचार देने से स्मृति भरती है विचार या विवेक का जागरण नही होता है। स्मृति यान्त्रिक है। क्या शिक्षा का लक्ष्य मौलिक विचार करना होना चाहिए अथवा मात्र मृत और उधार विचार देकर ही तृप्त हो जाना चाहिए।

श्रद्धा की जगह पर जिज्ञासा और 'संदेह' सिखाना चाहिए। श्रद्धा और विश्वास बाँधते हैं, परन्तु सन्देह मनुष्य को मुक्त कर देता है। आवश्यक्ता न विश्वास की है, न अविश्वास की। बल्कि सन्देह, विवेक, विचार की है। आचार्यजी मानते है कि सन्देह की पीड़ा विचार के जन्म की प्रसव-पीडा है। यदि सन्देह नही होना, तो खोज कहाँ से हो सकती है ?

शिक्षा के माध्यम से समाज मनुष्य के चित्त को परतन्त्रताओं की अत्यन्त सूक्ष्म जंजीरो म बाँध रहा है। धर्म ! धार्मिक गुरु ! राजतन्त्र ! समाज के स्वार्थ ! शिक्षा ने ही इस जड़ता को जन्म दिया है। जहाँ विचार है, वहाँ विद्रोह का बीज है। विचार अन्धा नही है। अन्धापन मनुष्य को सब भाँति से शोषण की भूमि बना देता है। कैसे ? विचार के साथ क्रान्ति आयगी ही। इस भय से पुराने जमाने में धार्मिक संस्थाओं ने शिक्षा की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली थी। और अब चाहे पूजीवादी देशो में, चाहे साम्यवादी देशो में, सरकार शिक्षा पर हावी है।

आगे आचार्य जी समझाते है कि विचार की स्वतन्त्र क्षमता व्यक्तित्व का मूल आधार है। गीता, बाइबल, कुरान, साम्यवादी घोषणा (कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो) का विचार सिखाया जाता है। शिक्षक अन्धी पुस्तक को विचार कहता है। लेकिन वास्तव में समस्त दोषाओं से मुक्त चित्त की आवश्यकता

है। स्वतंत्र चिन्तन का बीज हर व्यक्ति में है। वर्तमान शिक्षा का पूरा यंत्र मनुष्य को परतन्त्रता के लिए तैयार करता है। अतः जब अपवाद स्वरूप कोई इससे बचता है, तो आश्चर्य होता है।

अनुशासन के बहाने परतन्त्रता सिखायी जाती है। विवेक से स्वानुशासन पैदा होता है। दमन मे तो विस्फोट होना अनिवार्य है।

आचार्य मानते हैं कि शिक्षा को बाह्यानुशासन से मुक्त होकर व्यक्ति में प्रसुप्त विवेक को जगाना चाहिए। इसमे अन्तरानुशासन का विकास होगा। स्वतन्त्रता सृजनात्मक है, स्वच्छन्दता विस्फोटक और विध्वंसात्मक है।

'नही' कहने की शक्ति पैदा होना बहुत आवश्यक है। लेकिन अनुशासन के द्वारा वह शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए दुनिया मे हिंसा युद्ध इत्यादि पैदा होता है और आणविक शस्त्रों के प्रयोग भी किये जाते हैं। मानव जाति के भविष्य के लिए अनुशासित बुद्धि से जितना खतरा है उतना खतरा और किसी वस्तु या यंत्र से नहीं है। यदि अनुशासन का स्थान विवेक, और आज्ञाकारिता का स्थान विचार ले लेते तो दुनिया मे कितना अन्तर होता! आज धर्म पुरोहितों और राजनीतिज्ञों के हाथ में हैं और वे उसे हिंसा और युद्ध का उपकरण बनाते हैं। खण्डित भारत में साम्प्रदायिक दंगों का फैलाव उसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। ये लोग राष्ट्रों की कल्पित सीमाओं के बारे में भी झगड़ा पैदा करते हैं। शिक्षा के द्वारा वे विवाद हर एक पीढ़ी को विरासत में मिल जाते हैं। शिक्षक ही उस प्रक्रिया का उपकरण बन जाता है। वह परम्परित धर्म ही सिखाता है और संकुचित राष्ट्रीयता को पुष्टि करता है। वह विद्रोह नहीं सिखाता है। जहाँ विद्रोह नहीं होता वहाँ विकास नहीं होता। विद्रोह का अर्थ है मूल्यों में क्रान्ति। आचार्य जी मानते हैं कि दुनिया की सारी बुराइयों की जड़ गलत जीवन मूल्यों से पैदा होती है। अतः शिक्षक ही विद्रोह की गंगा को पृथ्वी पर ला सकता है। लेकिन हालांकि समाज शिक्षक को भूखा मारता है तथापि वह उसके अहंकार का पोषण भी करता है। इस शोषण से वह नयी पीढ़ियों को बिगाड़ने में अतीत का चाकर बन जाता है। याने वह भविष्य का शत्रु बन जाता है। अतीत पैरों के तले की भूमि अवश्य रहे, लेकिन वह सिर का बोझ कतई न बने। भविष्य के निर्माण के लिए अतीत से मुक्त चित्त की आवश्यकता है।

अतीत यात्रा का प्रारम्भ है। उसका अन्त नहीं है। लेकिन अपने अहंकार की वजह से हम अगली पीढ़ी को आगे बढ़ने से रोकना चाहते हैं। हम अतीत के पाषाणों के नीचे दबे हुए हैं। शिक्षा को मनुष्य की आत्म निर्भरता बढ़ानी चाहिए। हर पीढ़ी भौतिक समृद्धि बढ़ाती है। लेकिन अतीत में अधिक बँधे हुए रहने की वजह से हम आत्मिक समृद्धि नहीं बढ़ा पाते हैं। बेटा बाप के मकान

को बढ़ायगा। लेकिन अपने पिता के विचार, बुद्धि और आत्मज्ञान को नहीं बढ़ायगा। हम समझते है कि गीता इत्यादि से आगे कुछ नही है। लेकिन आचार्य जी कहते है "मेरा प्रेम कहता है कि जो मेरे पीछे आ रहे हैं वे हर प्रकार म मुझसे आगे बढें।" वे उन्हे मुक्त करना चाहते है क्योकि जो बाँधता है, वह प्रेम नही करता, हिंसा है करता।

शिक्षा भविष्यामुख होनी चाहिए अतीतोन्मुख नही। मृत के प्रति सम्मान एक बात है। उसका शासन दूसरी बात है। अतीत का हार्दिक सम्मान तब होगा, जब अतीत का कोई शासन नही रहेगा।

जो बन्धना का प्रसार करता है, वह ज्ञान का प्रसार नही कर सकता है। ज्ञान स्वय ही मुक्ति है। वर्तमान शिक्षा भय, प्रलोभन, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा सिखाती है।

भय प्राणो का लकवा है, और इससे कोई अधिक भयानक बीमारी नही है। भय विद्रोह की समस्त क्षमता को ही नष्ट कर देता है। विद्यार्थी कोल्हू के बैल की तरह परिचित पटरियो पर दौडता है। धर्म भी नर्क का, पाप का और दण्ड का भय सिखाता है। समाज भी भय सिखाता है। शिक्षा असफलता का भय सिखाती है। प्रलोभन भी देती है। वह भय के सिक्के का दूसरा पहलू है। इस भय, प्रलोभन, ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा की अग्नि में जीवन नष्ट हो जाता है।

शिक्षा को अभय, अलोभ, साहस और विद्राह की शक्ति पैदा करनी चाहिए। इससे अज्ञात की चुनौती को मानने की हिम्मत पैदा होनी चाहिए। शिक्षा को ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा नही, प्रेम ही सिखाना चाहिए। तुलना करने की गलत पद्धति से स्पर्धा पैदा हाती है। प्रत्येक वही है, जो वह है, और प्रत्येक को वही होना चाहिए। हम राम के जैसे नही बन सकते है। (हाँ, हम अलबत्ते राम लीला का राम बन सकते है, राम नही।) पाखण्ड आदर्श की छाया है, प्रत्येक को स्वय अपने जैसे होना है। आदर्श को थोपने के द्वारा बहुत हिंसा हुई है। अन्य होने के प्रयास में अन्य कोई नहीं हो पाता है। लेकिन जो हो सकता था वह होने से वचित रहता है। गुलाब गुलाब ही हो सकता है। वह चमेली नही बन सकता है। वह नष्ट हो सकता है लेकिन बदल नही सकता। इस विचार से आचार्यजी वर्तमान समाज के गलत मूल्यो की जडो पर कुल्हाडी मारते है।

हम अपना मूल्याकन बदलना ही पडेगा। अध्यापक राष्ट्रपति होने से बडा नही होता है। यदि वह राष्ट्रपति पद छोडकर शिक्षक बन जाता, तब वह बडा होगा और तब शिक्षा की प्रतिष्ठा बढेगी। आजकल राजनीति की प्रतिष्ठा राजनीति ही सिखाती है। कार्यों के साथ पद और प्रतिष्ठा जोडने से महत्वाकाक्षा और विशिष्टता पैदा होती है। न आदर्श सिखाना चाहिए, न उसका अनुसरण सिखाना चाहिए। बल्कि शिक्षा से निज व्यक्तित्व पूर्णत प्राप्त होना चाहिए।

महत्वाकांक्षा से मुक्त समाज ही वर्गविहीन और शोषणशून्य हो सकता है। आखिर, दूसरे साथियों से आगे निकलने की क्या आवश्यकता है? दौड़ना तनाव है। डूबना विश्रान्ति है। विद्या डूबने की कला है, दौड़ना सिखानेवाली कथित कला अविद्या है। आजकल सम्मान वहाँ मिलता है जहाँ पद मिलता है। पद वहाँ मिलता है, जहाँ शक्ति मिलती है। शक्ति वहाँ मिलती है जहाँ अधिकार है।

आगे बढ़ने की होड़ का जन्म शिक्षालयों में होता है, और फिर वह होड़ कब्रिस्तान तक जारी रहती है। इस दौड़ का अन्तिम फल युद्ध में व्यक्त होना है। आजकल विनय के उपदेश के साथ अहंकार की शिक्षा दी जाती है। परीक्षाओं को समाप्त करके यदि प्रतिस्पर्धा की जगह प्रेम लेना है, तो सहज ही सफलता की जगह सत्य ले लेगा। एक बुरे काम में सफल होने की बजाय, एक शुभ काम में असफल होना ज्यादा श्रेयस्कर है। प्रतिस्पर्धा में सफलता पाने से प्रेम में असफलता पाना ज्यादा अच्छा है। धन में सफल होने से धर्म में असफल होना ज्यादा अच्छा है।

जीवन का मूल्य मात्र सफलता में नहीं है। वह सत्य, शिवत्व और सौन्दर्य में ही है। मापदण्ड की वजह से हम उस ओर नहीं बढ़ पाते हैं। उसके लिए असफलता भी सीखनी चाहिए। सत्य के लिए हारना भी जीत है।

विजय और पराजय अपने में अर्थहीन है। महत्व का प्रश्न यह है कि ये किस मोर्चे पर हुए? उसके लिए शिक्षा में आमूल क्रान्ति चाहिए।

आचार्य जी मानते हैं कि हम सत्य के प्रति सबसे बड़ा अपराध तब करते हैं, जब हम सत्य के सम्बन्ध में रूढ़ धारणाओं को बच्चों पर थोपने का आग्रह रखते हैं। बुद्ध और महावीर आदि की पुनरुक्तियाँ में हम समस्या को और भी जकड़ा देते हैं। क्या शिक्षा छात्रों को सत्य के अनुसन्धान के मार्ग पर नहीं भेज सकती है? उसके लिए शिक्षक को स्वयं आग्रहों और पक्षपातों से मुक्त होना चाहिए। जिस शिक्षक में विद्रोह की अग्नि नहीं है वह किसी नीति किसी धर्म, *या किसी राजनीति का दलाल हो जायगा। उसके भीतर चिन्तन की,* विचार की, विद्रोह की ज्वलन्त अग्नि नहीं झलकेगी। सृजन करने से पूर्व उसे बहुत विध्वंस करना होगा।

आचार्य के ये विचार हम सब शिक्षकों के सामने बहुत स्पष्ट और सफाई से एक क्रान्तिकारी मार्ग का निर्देशन करते हैं। हम कहाँ तक पुराने मूल्यों को तथा अहंभावों को छोड़कर इस शैक्षणिक क्रान्ति की ओर बढ़ सकेंगे? प्रसिद्ध अंग्रेज शिक्षा-शास्त्री नील ने कहा कि बच्चे पर प्रेम करने का अर्थ होता है कि हम उसके पक्ष में हों। श्री आचार्य रजनीश ने हमारे सामने बहुत स्पष्ट बतलाया कि बच्चों का पक्ष लेने में हमें 'स्वत्व' को त्यागना पड़ेगा।

अपव्यय एवं अवरोधन : समस्या या प्रक्रिया

सुरेश भटनागर

शिक्षा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि अपव्यय (क्षति) एवं अवरोधन सभी कालों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहे हैं। सामान्यतया अपव्यय से तात्पर्य है बालक का शिक्षण काल में ही पढ़ाई छोड़ देना और अवरोधन से आशय है किसी कक्षा में फेल होना।

हर्टाग समिति का ध्यान इस समस्या की ओर पहली बार गया है। इसके पश्चात् कई अध्ययन इस सन्दर्भ में हुए हैं। जे० पाल लियानार्ड ने इस समस्या के प्रति अपने चिन्तन को इस प्रकार पुष्ट किया है—"किसी समय में विद्यालय में उपस्थित रहने (१) समाज के उद्देश्यों की पूर्ति में बाधक होने (६ से १४ वर्ष) (२) व्यवसाय की तैयारी के समय (३) व्यक्ति की शक्तियों के विकास की सफलता ही अपव्यय तथा अवरोधन है।'[१]

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् हमने स्वतन्त्र वायु में साँस लेना आरम्भ किया, विचार और कारोबार की स्वतन्त्रता मिली पर शिक्षा का ढाँचा ज्यों का त्यों रहा। शिक्षा की समस्याएँ भी वही रहीं।

शिक्षा-आयोग ने एक स्थान पर कहा है—बालक का विद्यालय से हट जाना ही अपव्यय है।[२] अभी तक शिक्षा शास्त्री अपव्यय तथा अवरोधन को समस्या मानते रहे हैं। हम तो इसे समस्या न मानकर प्रक्रिया कहते हैं। प्रक्रिया समाज के जीवन-काल में निरन्तर होनेवाली क्रिया है। अपव्यय तथा अवरोधन प्रक्रिया के रूप में ही रहे हैं, समस्या का समाधान हो सकता है, परन्तु प्रक्रिया का अन्त नहीं होता। वह तो अबाध गति से चलती रहती है, प्रवाहित होती रहती है। स्वयं शिक्षा-आयोग इसे समस्या के रूप में स्वीकार करने में स्थिर मत नहीं हो सका है। प्रस्तुत आँकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस समस्या का अन्त नहीं है, उसका समाधान कैसा ?

---

१ लियोनार्ड पाल जे०—'वेस्टेज इन एजुकेशन इन इण्डिया' इन्डियन एजुकेशन—अगस्त १९६७ पृष्ठ ३

२ शिक्षा-आयोग—पृष्ठ १५४ पैरा ७ २७

अपव्यय तथा अवरोधन[1]

वर्ष	१	२	३	४	५	६	७	८
१९५०-५१	६,९४८	४,३३२	३,३५३	२,६२३	१,८९८	१,२४६	१०२३	८५१
	१००%	६२ ३%	४८ ३%	३७ ८%	२७ ३%	१७ ९%	१४ ७%	१२ २%
१९५५ ५६	८,९५८	५,५२३	४,०६७	३,२१६	२,४०३	१,६९८	१४३६	११६०
	१००%	५५ २%	४० ८%	३२ ३%	२४ १%	१७ १%	१४ ४%	११ ६%
१९६ ६१	१३३९१	७,५१३	५,८८६	४,५९३	३,६११	२,७२७	२२२०	१७५८
	१००%	५६ १%	४४ ६%	३४ ३%	२७%	२० ४%	१६ ६%	१३ १%
१९६५ ६६	१८८४३	१०९७३	८,८७१	६,९२४	६,५२२	४ ४५३	३६८०	२९००
	१००%	५८ २%	४७ १%	३६ ७%	२९ ३%	२३ ६%	१९ ५%	१५ ४%

कारण

शिक्षा आयोग ने अपव्यय तथा अवरोधन के कारण इस प्रकार बताये हैं।[2]

१ कक्षा में विभिन्न आयु के बालकों में वैषम्य होना।

२ भारत के सभी राज्यो मे वर्ष भर छात्रो का विद्यालय म प्रवेश चालू रहना, जब कि यह किसी निश्चित समय तक होना चाहिए।

३ उपस्थिति में अनियमितता।

४ बालक तथा विद्यालय के पास पयास शैक्षिक उपकरणो का अभाव।

५ कक्षा मे छात्रो की अधिक सख्या।

६ आवश्यकतानुरूप पाठ्यक्रम न होना।

७ अध्यापक मे खेल द्वारा शिक्षण की विधियों का उपयोग करने की योग्यता एव क्षमता न होना जिसम विद्यालय के जीवन में हर्ष उत्पन्न हो।

ये कारण भले ही साधारण हो, हमारे चिन्तन को झकझोरते हैं। शिक्षा से सम्बन्धित सभी व्यक्तियो के जीवन में उपर्युक्त तथ्य स्वभाव बन गये है और उन पर चिन्तन करने की आवश्यक्ता भी प्राय समझी नहीं जाती। समस्या को हल करने मे एकाध कारण हो तो मगज भी खपाया जाय पर जहाँ आवा ही बिगड़ा हो तो क्या किया जाय।

श्री डियोनार्ड के एक अध्ययन का साराश इस प्रकार है —

१ सन् १९५० ६० के मध्य प्रायमिक स्तर पर अपव्यय तथा अवरोधन ६५ ३ प्रतिशत रहा।

---

१. शिक्षा-आयाग—पृष्ठ १५५

२ वही, पृष्ठ १५७ पैरा ६ २४

२ अपव्यय तथा अवरोधन की गति प्राथमिक स्तर पर अधिक और कक्षा ८ तक कम होती गयी।

३ अपव्यय तथा अवरोधन लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अधिक पाया गया।

४ मिडिल स्तर पर अपव्यय तथा अवरोधन का प्रतिशत २२ है।

५ अध्यापकों तथा अभिभावकों के अनुसार इस अपव्यय तथा अवरोधन के कारणों में बालकों का घर के कार्यों में फँसना, निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर, छात्रों की अयोग्यता एवं गिरा हुआ स्वास्थ्य, विद्यालय तथा समुदाय के सम्बन्धों का अभाव, परिवार की शिक्षा में अरुचि विद्यालय का दूषित प्रशासन एवं संगठन, दूषित पाठ्यक्रम, छात्रों के लिए उचित वातावरण का अभाव छात्रों में भावात्मक परिपक्वता का अभाव, छात्रों में प्रेरणा का अभाव प्रमुख हैं।

६ ग्रामीण क्षेत्रों में ४३ प्रतिशत अपव्यय तथा अवरोधन प्राथमिक स्तर पर एवं ५० प्रतिशत मिडिल स्तर पर निम्न आयवाले परिवारों के बालकों में होता है और १५ प्रतिशत अतिरिक्त अपव्यय नगरों में, प्रवास के कारण होता है।[1]

यह अध्ययन भी इसी बात का द्योतक है कि अपव्यय तथा अवरोधन निरन्तर प्रगति करते रहे है और स्वयं समस्या न होकर समस्या की ओर संकेत करते रहे है।

मानव शक्ति का नियोजन

शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन की प्रक्रिया को नयी दिशा देने की आवश्यकता है। यह दिशा तभी दी जा सकती है जब हम मानव-शक्ति के उचित नियोजन पर विचार करें। समाज में हर व्यक्ति हर कार्य के लिए नही बना है। हर व्यक्ति को इस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए कि वह समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। आर ए गोपालास्वामी ने शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन में मानव शक्ति के नियोजन के लिए शिक्षा के समवाय पर अत्यधिक बल दिया है। उनके अनुसार—

१ उच्च शिक्षा प्राप्त जन शक्ति का अग्रिम अनुमान कर लेना चाहिए जिससे उसका उचित उपयोग हो सके।

२ उच्च शिक्षा प्राप्त जन शक्ति किसी भी रूप में बेकार या व्यर्थ नही जानी चाहिए।

३ सामाजिक परिवर्तन के अनुसार पाठ्यक्रम में परिवर्तन होना चाहिए।

४ प्रगति के लिए प्रसार सेवाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

---

१ लियोनार्ड पाल जे०—इण्डियन एजुकेशन, अगस्त १९६७ पृष्ठ ८

मानव-शक्ति के नियोजन से एक लाभ यह होगा कि व्यक्ति ने चाहे जिस स्तर की शिक्षा प्राप्त की हो, उसकी शक्तियों का पूरा-पूरा सहयोग राष्ट्र-विकास मे मिल सकेगा।

शिक्षा-आयोग ने शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन को कम करने के लिए 'कार्यानुभव' पर बल दिया है। आयोग के अनुसार—हम कार्यानुभव को किसी उत्पादक कार्य, विद्यालय, घर, कार्यशाला, खेत, फैक्ट्री या अन्य उत्पादक परिस्थितियों में सहयोग के रूप मे परिभाषित करते हैं।[1] *अर्थात् अगर छात्र किसी काम में उपयोगी धन्धे में लगेगा तो अपव्यय और* अवरोधन कम होगा।

उच्च शिक्षा और अपव्यय

अपव्यय तथा अवरोधन को यह समस्या न केवल प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्तर पर है, अपितु यह तो उच्च शैक्षिक स्तर पर भी विद्यमान है। भाषा की समस्या ने इस अपव्यय को और भी बढाया है। देश का नवयुवक देश के विकास मे इसलिए योग नही दे पाता क्योकि उसकी विज्ञान तथा गणित में योग्यता अच्छी है, परन्तु अंग्रेजी के अभाव मे वह अपनी योग्यता के प्रदर्शन का अधिकार-पत्र प्राप्त नही कर पाता। इसका परिणाम यह होता है कि छात्र परीक्षाओ मे अनुचित साधनो का इस्तेमाल करते हैं।

डिग्री प्राप्त करके भी जब छात्रो को बेकार रहना पडता है तो उनमें वर्त-मान व्यवस्था के प्रति आक्रोश उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। देशव्यापी छात्र असन्तोष शिक्षा में अपव्यय तथा अवरोधन का परिणाम है। यदि प्रक्रिया विद्य-मान गति से ही प्रवाहित होती रही तो नि सन्देह यह चरम सीमा पर पहुँचेगी और उस समय कोई भी ताकत इन्हे रोक नही सकती।

शिक्षा आयोग ने अपव्यय और अवरोधन की समस्या को हल करने के लिए प्राथमिक स्तर पर कक्षा एक तथा दो *यथासम्भव कक्षा* एक से चार को एक इकाई मानने का सुझाव दिया है। इसी प्रकार जन-परीक्षा मे प्रविष्ट होनेवाले परीक्षार्थियो के पास अथवा फेल की घोषणावाले प्रमाणपत्रों के स्थान पर उनके प्राप्तांकवाले प्रमाण-पत्र दिये जायें। इनमें प्रत्येक विषय में प्राप्तांको का विवरण हो। स्कूल-रिकार्ड साथ दिया जाय। इससे लाभ यह होगा कि छात्रों को किसी विषय-विशेष में योग्यता बढाने का अवसर मिलेगा। व्यवसाय में भी हर व्यवसायी को अपनी आवश्यकता के अनुरूप कर्मचारियो के चुनाव में सुविधा रहेगी।

व्यावसायिक शिक्षण को इस प्रकार आयोजित किया जाय जिससे छात्रो में

---

१. वही, पृष्ठ ७, पैरा १.२५

शिक्षा समाप्त करने पर नौकरी करने की मनोवृत्ति विकसित न हो, अपितु वे स्वतन्त्र रूप से धनोपार्जन कर सकें।

सुझाव

१ कोई भी सुधार या सुझाव उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना शिक्षा को व्यक्ति के जीवन, आवश्यकता तथा आकांक्षाओं के साथ जोड देना जिससे वह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का शक्तिशाली साधन बन सके और राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। यह तभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षा को उत्पादकता के साथ जोड़ा जाय, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को सशक्त किया जाय, जनतन्त्र का संगठन हो, आधुनिकता की प्रक्रिया में गति लायी जाय और सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के द्वारा चरित्र-निर्माण पर बल दिया जाय।

२ मानव विकास के विभिन्न स्रोतों का विकास किया जाय।

३ शिक्षा के सर्वोत्तम रूप को विकसित किया जाय।

४ कितनी और किस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था किस व्यक्ति के लिए उपयोगी है इसका नियोजन किया जाय।

५ जन-शक्ति का उचित उपयोग किया जाय।

६ व्यावसायिक शिक्षा का विकास किया जाय।

७ शिक्षा-आयोग के 'जीवन पर्यन्त शिक्षा' के सिद्धान्त का पोषण किया जाय।

शिक्षा-आयोग के शब्दों में यही कहना है—"यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि सिर-दर्द तथा ज्वर की भाँति अपव्यय तथा अवरोधन रोग नहीं हैं, अपितु शिक्षा-प्रणाली में विद्यमान अन्य रोगों के लक्षण हैं, जिनमें प्रमुख हैं जीवन तथा शिक्षा में उचित तालमेल का अभाव और विद्यालयों की दूषित व्यवस्था, जो छात्रों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती।" (पृष्ठ, १६१ ७.३५)

स्पष्ट है कि अपव्यय तथा अवरोधन स्वयं में कोई समस्या नहीं है, यह तो एक प्रक्रिया है जिसका स्रोत है हमारी दूषित शिक्षा-प्रणाली, शिक्षा के लक्ष्यों का अभाव एवं हमारे विधायकों की अदूरदर्शिता जो निजी स्वार्थों की चकाचौंध में वास्तविकता को विस्मृत कर बैठे हैं। अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या को हल करने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है इस प्रक्रिया के स्रोत की प्रकृति को बदलने की जिससे रोग के लक्षण समाप्त हो जायें और देश में प्रत्येक बालक राष्ट्रीय विकास में योग दे सकें।

●

गणित शिक्षण में आगमन तथा निगमन प्रणालियाँ

प्रो० आदित्यनारायण तिवारी

गणित-शिक्षण की अनेक प्रणालियाँ हैं। प्रस्तुत लेख में केवल आगमन तथा निगमन प्रणालियो का विवेचन किया जायगा।

आगमन प्रणाली

इस प्रणाली द्वारा विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने में हम विशिष्ट से सामान्य की ओर अग्रसर होते हैं। प्रतिदिन के अनुभव अथवा प्रयोगो के आधार पर निष्कर्ष निकालना अथवा सामान्य नियम बनाना आगमनात्मक तर्क कहलाता है। आगमनात्मक तर्क के कतिपय उदाहरण—

एक, दो तथा तीन अको की सख्याओ में क्रम से १०, १००, १००० आदि का गुणा कराया जाय। अभ्यास इस सीमा तक कराया जाय कि छात्र स्वय नियम बना लें कि किसी सख्या में १०, १०० या १००० का गुणा करने के लिए गुण्य के आगे उतने शून्य बढा देने चाहिए जितने शून्य गुणक में हो।

विभिन्न आकार प्रकार के त्रिभुजो के कोणो को नपवाकर योगफल ज्ञात कराया जाय। पर्याप्त अभ्यास हो जाने पर छात्र स्वय नियम बना लेंगे कि किसी त्रिभुज के तीनो कोणो का का योगफल दो समकोण के बराबर होता है।

(क) य + ४ = १०
अथवा य + ४ − ४ = १० − ४
अथवा य = १० − ४
= ६

(ख) य − ८ = १२
अथवा य − ८ + ८ = १२ + ८
अथवा य = १२ + ८
= २०

(ग) $२क - ५ = क + ६$

अथवा $२क - ५ + ५ = क + ६ + ५$

अथवा $२क = क + ११$

अथवा $२क - क = क + ११ - क$

अथवा $क = ११$

उपर्युक्त ढंग से कई एक समीकरणों का हल करा देने से छात्र स्वयं नियम बना लेते है कि समीकरणों के हल करने में एक पक्ष की संख्याओं को दूसरे पक्ष में लिखकर उनके चिन्ह बदल देने चाहिए।

निगमन प्रणाली

इस प्रणाली द्वारा विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने में हम सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होते है। इस विधि द्वारा विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने का क्रम आगमनात्मक विधि के विपरीत होता है। इसमें पहले किसी सूत्र या सामान्य नियम की सत्यता सिद्ध कर ली जाती है और फिर उस सूत्र या सामान्य नियम की सहायता से विशिष्ट उदाहरणो को हल किया जाता है। इस प्रणाली के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित है—

१. मूलधन 'म' रुपया चक्रवृद्धि ब्याज की दर 'द' प्रतिशत वार्षिक तथा समय 'स' वर्ष मानकर पहले निम्नलिखित सूत्र को सिद्ध किया जाय :—

$$\text{चक्रवृद्धि ब्याज} = म \left(१ + \frac{द}{१००}\right)^{स} - म$$

और फिर इस सूत्र की सहायता से विशिष्ट उदाहरणो को हल करना, जैसे :— ८००० रुपये का ५ प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से ३ वर्ष का चक्रवृद्धि ब्याज निकालना।

२. पहले तर्क द्वारा सिद्ध करना कि किसी उन्नतोदर बहुभुज क्षेत्र के अन्तःकोणो का योगफल उसकी भुजाओं की संख्या के दूने समकोण से चार समकोण कम होता है। फिर इसकी सहायता से विशिष्ट बहुभुजों, जैसे—समषट भुज, समअष्ट भुज, आदि के अन्तःकोणों तथा बहिर्कोणों का मान निकलवाना।

३. पहले सिद्ध करना कि यदि

$$कय^२ + खय + ग = ०, \text{ तो}$$
$$य = \frac{-ख \pm \sqrt{ख^२ - ४कग}}{२क}$$

और फिर इस सूत्र की सहायता से विशिष्ट समीकरणों, जैसे—$य^2+7य+12=0$, को हल करना।

आपेक्षिक महत्व

छोटे बच्चो के लिए आगमन प्रणाली का प्रयोग ही मनोवैज्ञानिक है। इस अवस्था में मानसिक विकास की दृष्टि से वे निगमन तर्क को समझने म असमर्थ होते हैं। आगमन प्रणाली का तर्क छात्रों के स्वय के प्रयागो एव अनुभवो पर आधारित होता है। यह समझने म सरल होता है तथा इसस बालको की प्रेक्षण एव सामान्यीकरण की शक्तियां का विकास होता है। निगमन तर्क से सामान्य सूत्रो को सिद्ध करना छोटे बच्चो की समझ के बाहर होता है और वे रुचि के स्थान पर अरुचि का प्रदर्शन करने लगते हैं। फल यह होता है कि तर्क द्वारा सूत्रो का समझने के बजाय वे इह रटने लगते हैं और भूलने पर इनकी सहायता से विशिष्ट प्रश्नो का हल करने म असमर्थ हो जाते हैं।

किन्तु उच्च कक्षाओं मे आगमनात्मक तक पर्याप्त नही होता। आगमनात्मक तर्क का प्रयोग वहाँ निगमन तर्क की तैयारी के रूप म किया जा सकता है। जैसे—वे कई त्रिभुजो के कोणो को नाप कर यह देख लें कि त्रिभुज के तीनो कोणो का योगफल दो समकोण होता है। किन्तु वे यह भी उत्सुकता प्रकट कर सकते हैं कि योगफल दो समकोण क्यो होता है? उनके इस 'क्यो' की सन्तुष्टि के लिए निगमन तर्क का प्रयोग करना अनिवार्य होता है। इसी 'क्यो' की सन्तुष्टि के प्रयास म बड़े बड़े आविष्कार हो जाते हैं। न्यूटन ने पेड़ से सेब को जमीन पर गिरते देखा और फिर उसने देखा कि प्रत्येक फेंकी गयी वस्तु जमीन पर गिर पड़ती है। उसके मन मे 'क्यो' की उत्सुकता जागृत हो उठी और उसने गुरुत्वाकर्षण के नियम को ढूँढ निकाला। इसी प्रकार पाइथागोरस ने फर्श पर बने समकोण त्रिभुजो एव वर्गों की सहायता से देखा कि कर्ण पर का वर्ग शेष दोनो भुजाओ के वर्गों के योगफल के बराबर होता है। क्यों होता है? प्रश्न करना, उसका स्वाभाविक था। इसी के उत्तर में उसने उस प्रमेय को निकाला जो आज उसके नाम से प्रसिद्ध है। अत किसी सूत्र या नियम की सत्यता अकाट्य रूप से प्रामाणित करने के लिए निगमन तर्क आवश्यक होता है। ऊँची कक्षाओ के बच्चो में इस तर्क का विकास करना परमावश्यक है। आगमनात्मक तर्क अकाट्य नही कहा जा सकता, क्योंकि जिन दशाओ मे कोई नियम सत्य प्रतीत हो रहा है और जिन पर प्रयोग किया जा चुका है, उनके अतिरिक्त भी सम्भव है, ऐसी दशाएँ हो जिनमें वे नियम सत्य न हो।

कक्षा शिक्षण मे दोनो प्रणालियो का समन्वय

विषय-वस्तु को प्रस्तुत करने में पहले आगमन प्रणाली का ही प्रयोग करना

चाहिए। प्रयोगों एवं प्रेक्षणों के आधार पर छात्रों से सामान्य निष्कर्ष निकलवाना चाहिए। किसी भी सामान्य नियम को पहले से न बताकर उसे छात्रों के सन्मुख समस्यारूप में प्रस्तुत करना चाहिए जिससे वे उत्सुकतापूर्वक प्रयोग करके सामान्य नियम को ढूंढने मे रुचि लें। इस सामान्य नियम का प्रयोग पुन विशिष्ट प्रश्नो एव समस्याओ के हल में करना आवश्यक होता है।

आगमनात्मक कार्य के पश्चात् ही निगमनात्मक तर्क छात्रो के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए। आगमनात्मक कार्य से उत्पन्न उत्सुकता के हेतु जब निगमन तर्क प्रस्तुत किया जाता है, तो वे इसमें रुचि लेते है और इसे सरलता से समझ पाते है। निगमन विधि से सामान्य नियम को प्रभावित करने के पश्चात् इस का अनुप्रयोग विशिष्ट प्रश्नो म अवश्य करना चाहिए।

अत स्पष्ट है कि कक्षा शिक्षण म पहले आगमन और फिर निगमन प्रणाली का प्रयोग करना चाहिए। दोनो प्रणालियो के प्रयोग के बिना गणितीय सम्बोधो को स्पष्ट नही किया जा सकता। दोनो प्रणालियो को एक दूसरे की विरोधी न समझ कर पूरक समझना चाहिए।

—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टिट्यूट,
इलाहाबाद

आगामी विशेषांक

'नयी तालीम' का आगामी विशेषांक 'शिक्षा-आयोग की संस्तुतियो के सन्दर्भ मे विद्यालयी शिक्षा' विषय पर होगा। विशेषांक के कुछ विभिन्न पहलू—

- विद्यालयी शिक्षा का लक्ष्य
- विद्यालयी शिक्षा प्रणाली—ढांचा और स्तर
- विद्यालयी शिक्षा के पाठ्यक्रम की विवेचना
- बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम से तुलना

—सम्पादक

समवायित शिक्षण और सामाजिक वातावरण

वंशीधर श्रीवास्तव

मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा गया है। सामाजिक वातावरण उसके जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। बालक किसी न किसी समुदाय का सदस्य होकर जन्म लेता है। अनेक बातों को, जो उसके जीवन के लिए आवश्यक है, वह अपने समाज से अनायास ही सीख लेता है।

यह सामाजिक वातावरण क्या है? मनुष्य ने आदि काल से अपने विकसित मस्तिष्क का लाभ उठाकर अपनी नित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के उपादानों का प्रयोग किया है। अपने प्राकृतिक वातावरण में उसे जो उपादान प्राप्त हुए उनको उसने अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी सुविधा के अनुसार नया रूप दिया। प्रकृति ने उसे मिट्टी दी थी। उससे उसने अपने रहने के लिए मकान बना लिया जिससे उसे आँधी-पानी से, शीत-आतप से त्राण मिला। प्राकृतिक वातावरण से उसे कपास मिली। कात-बुनकर उसने उससे कपड़ा बना लिया और अपना तन ढका। एक ओर जहाँ इन क्रियाओं से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हुई और उसका संस्कार हुआ दूसरी ओर उसके वातावरण में परिवर्तन हुआ और प्राकृतिक वातावरण से भिन्न उसके चारों ओर एक नया वातावरण बना। यही नया वातावरण उसका सामाजिक वातावरण है।

परिवर्तन का यह सतत क्रम मानवता के आरम्भ से ही चला आ रहा है और आज भी चल रहा है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्य का समाज एक अत्यन्त जटिल संगठन बन गया है। आज मनुष्य जिस समुदाय में रह रहा है उसमें अनेक वर्ग है, जो भिन्न भिन्न प्रकार के उद्योगों में संलग्न है। समुदाय के ये वर्ग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक दूसरे के पूरक हैं। हजारों-लाखों वर्षों से इन वर्गों के साथ-साथ रहने के कारण और आपस के निरन्तर व्यवहार के कारण समाज में अनेक प्रकार की परम्पराएँ बन गयी हैं। ये परम्पराएँ प्रत्येक बालक को दाय के रूप में मिलती हैं। बालक जन्म से ही इन परम्पराओं से घिरा रहता है। ये परम्पराएँ ही उसका सामाजिक वातावरण बनाती हैं जो उसके जीवन का अभिन्न अंग है। ये ही उसका भावनात्मक जीवन निर्मित करती हैं। उसका उठना-बैठना, बोलना चालना, खाना-पीना, प्रत्येक इन परम्पराओं से ही शासित और निर्देशित होता है। इतना ही नहीं ये ही उसकी विचार-पद्धति और सौन्दर्य भावना को भी निर्देशित करती है।

यही कारण है कि देश और काल की भिन्नता के कारण मनुष्य की नीति और सौन्दर्य भावना में भी भिन्नता हो जाती है।

अत बालक के सामाजिक वातावरण की सकल्पना में बालक के वे समस्त अनुभव सम्मिलित हो जाते है जिनका सम्बन्ध इन परम्पराओ से अथवा समाज के किसी भी क्रियाकलाप से है। समाज अपने को विभिन्न अभिकरणो (एजेन्सियो) द्वारा व्यक्त करता है। समाज में जो नाना प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, वैधिक (कानूनी), धार्मिक और सास्कृतिक सस्थाएँ है, वे इसी प्रकार के अभिकरण है। कुटुम्ब, विद्यालय आदि इसी प्रकार के अभिकरण है। ये अभिकरण अथवा सस्थाएँ व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो को व्यवस्थित करती है। अत उनके सम्यक् अध्ययन से ही व्यक्ति के सामाजिक जीवन को समझा जा सकता है। सम्यक् अध्ययन के लिए इस सामाजिक वातावरण का विभिन्न अभिकरणो और विभिन्न क्रिया-कलापो का वर्गीकरण कर लेना आवश्यक है।

समाज के इन क्रियाकलापो में सबसे महत्वपूर्ण वे क्रियाकलाप है जिनका सम्बन्ध मनुष्य के आर्थिक जीवन से है। अपनी नित्यप्रति की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए मनुष्य जो नाना प्रकार के उद्योग धन्धे करता है, उन्हे दो वर्गों म बाँटा जा सकता है, एक मुख्य और दूसरा सहकारी। किसान का मुख्य धन्धा खेती है। लेकिन खेती के साथ वह थोडी सी बागवानी भी कर लेता है। मधुमक्खी पालकर उसकी शहद भी बेच लेता है अथवा कुछ गाय भैंस रखकर उनका दूध-घी भी बेच लेता है। ये उसके गौण या सहकारी धन्धे है। एक दिन ऐसा भी था जब आखेट या कृषि के समस्त औजार आखेटक या किसान स्वय बनाता था। पर धीरे धीरे औजार बनानेवालो का पेशा ही अलग हो गया। वैसे ही सम्भवत अनाज पानी रखने के लिए बर्तन बनाने का धन्धा सहकारी उद्योग के रूप म ही चला पर बाद म कुम्भकारी प्रमुख धन्धे के रूप मे स्वतत्र हो गयी। यही दूसरे धन्धो के विषय में भी हुआ। मनुष्य की बढती हुई आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए नये-नये धन्धे भी प्रारम्भ हुए। बनिये का एक नया धन्धा ही प्रारम्भ हो गया। यह वर्ग स्वय कुछ भी उत्पादन नही करता था। दूसरो की बनायी हुई और पैदा की हुई चीजो को एकत्र करके उस स्थान पर ले जाता था जहाँ उसकी आवश्यकता होती थी और जहाँ वे बनती या पैदा नही होती थी। कालान्तर म इसी वर्ग का विकास पूँजीपति वर्ग म हुआ। कुछ भूमि पर अधिकार कर और मजदूर रखकर खेती कराने का धन्धा भी शुरू हो गया और जमींदार का एक अलग वर्ग बन गया।

इसी प्रकार ज्यो-ज्यो मनुष्य की आवश्यकताएँ बढती गयीं, उसका समाज सकुल और जटिल होता गया और एक दिन ऐसा भी आया जब वह अनुभव

करने लगा कि जीवित रहने के लिए उसे रोटी से अधिक कुछ और चाहिए। तब संगीत, साहित्य, कला, विज्ञान, धर्म उसकी मानवता के प्रमुख लक्षण हो गये और उसे पशु से अलग करने के चिह्न बन गये और तब उसके समाज में धार्मिक और सांस्कृतिक सगठनो का विकास हुआ। साथ ही साथ उसके सामुदायिक संगठन का भी विकास हुआ। कुटुम्ब की इकाई अधिक व्यापक बनी और जाति, उपजाति, वर्ग, राष्ट्र आदि सगठनो का जन्म हुआ। इन सारे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संगठनों का अध्ययन मनुष्य के समाज को समझने के लिए आवश्यक है।

इन सगठनो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है .

१. आर्थिक संस्थाएँ

(क) धन्धो के अनुसार

(१) मुख्य धन्धे

(२) गौण धन्धे

इन धन्धो में प्रयुक्त होनेवाले कच्चे माल और औजार। इन्हे प्राप्त करने के साधन। तैयार माल का उपभोग और वितरण।

(ख) धन्धे करनेवालो की आर्थिक स्थिति और समाज में इनके स्थान के अनुसार

(१) जमीदार—जमीदारी एक स्वतंत्र धन्धा-संस्था का विकास और ह्रास।

(२) दूकानदार—दूकानदारी एक स्वतंत्र धन्धा। बाजार और कारखाने। आयात और निर्यात। कर्ज की संस्थाएँ—जमीदार और साहूकारी संस्थाएँ।

(३) शिल्पकार

(४) मजदूर—जमींदार और दूकानदार और मजदूर—शोषक और शोषित।

(५) जनसेवक—नौकरी

(६) स्वतंत्र धन्धे—वकील, डाक्टर

२. सामाजिक संस्थाएँ

(१) सामुदायिक—
कुटुम्ब-कबीला, जाति, राष्ट्र आदि।

(२) शासकीय—

(क) शासन—गाँव-पंचायत, स्थानीय परिषद, लोक-सभा, राज्य-सभा, संयुक्त राष्ट्र संघ।

(ख) न्याय—पंचायत-कचहरी, दीवानी और फौजदारी, हाईकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट, अन्तर्राष्ट्रीय कोर्ट।

(ग) सुरक्षा—पुलिस, फौज ।

(घ) लोक-सेवा—जन-स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, सचरण और यातायात, शिक्षा ।

३ धार्मिक सस्थाएँ

(क) मदिर, मठ, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा—सगठन और कार्य-प्रणाली । मनुष्य के जीवन म इनका स्थान ।

(ख) सस्कार—ज म से श्राद्ध तक के अनेक सस्कार । पुरोहित, मौलवी, पादरी—दूसरे वर्गों से इनका सम्बन्ध । समाज मे इनका स्थान ।

टोटम, तत्र-मत्र, देवता-आत्मा परमात्मा ।

(ग) अन्य धार्मिक सस्थाएँ—

साधु समाज अखाडे, आय-समाज ।

४ सास्कृतिक और रजनात्मक सस्थाएँ

(क) सास्कृतिक—(अ) नाटक मण्डलियाँ—नाट्य-सस्थाएँ, भजन और कीतन मण्डलिया, सगीत-समितियाँ, आदि । इनके कार्य-कलाप, अभिनय और नृत्य । लोक गीत, लोक नृत्य, लोक-अभिनय, नौटकी कठपुतली, स्वाग, यात्रा, आदि । भजन-कीतन-कथा । (ब) गोष्ठियाँ और क्लब—काय प्रणाली और कार्य-कलाप—कवि सम्मेलन, भाषण, आदि । धार्मिक और राष्ट्रीय पव—महापुरुषो की जयन्तियाँ मनाना तथा मेले और प्रदर्शनियो का आयोजन ।

(ख) रजनात्मक—

व्यायामशाला, अखाडे ।

फुटवाल हाकी, वालीवाल क्रिकेट आदि के क्लब । इनके सगठन और काय-कलाप—स्थानीय और विदेशी खेलो का आयोजन—दगल कवड्डी, खेलकूद—हाकी, फुटवाल, वालीवाल, क्रिकेट, वेडमिण्टन, टेबुल टेनिस आदि ।

५ शैक्षणिक सस्थाएँ

(क) सामान्य विद्यालय—प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च विद्यालय । शिशु विद्यालय, प्रौढ विद्यालय वुनियादी और गैर वुनियादी विद्यालय ।

६ सगठन और कार्यकलाप

(ख) व्यावसायिक विद्यालय, प्रशिक्षण विद्यालय, औद्योगिक विद्यालय, दर्जीनियरिंग कालेज, मेडिकल कालेज, कृषि विद्यालय आदि ।

शिक्षा के कार्य के लिए सामाजिक वातावरण का उपयोग

शिक्षा का एक उद्देश्य वालको की क्षमता और आवश्यकता के अनुसार सूचना देना भी है । सामाजिक वातावरण सूचनाओ का अक्षय स्रोत है । समाज की विभिन्न सास्कृतिक परम्पराओ के विषय में, उसके आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में, समुदाय में विभिन्न धधा करने वाले वर्गों के जीवन और उनके आपसी सम्बन्ध

के विषय में जानकारी प्राप्त करके ही बालक अपने को समाज में सयोजित कर सकता है। अत बालक को इस प्रकार की जानकारी दी जाय। बालक को यह जानकारी समुदाय के नाना क्रिया-कलापो में स्वय भाग लेकर ही प्राप्त करनी चाहिए, क्योकि तभी उसमें समाज के विभिन्न वर्गों के धधो, कर्तव्यो और अधिकारो को सहानुभूति पूर्ण ढग से समझने की ओर तभी उनके साथ मिलकर काम करने की आदत पड़ेगी। इस प्रकार की सहकारिता और सहानुभूति की भावना जहाँ बालक के भावनात्मक सन्तुलन के लिए आवश्यक है वहाँ प्रजातत्रीय जीवन व्यतीत करने की सक्रिय शिक्षा भी है। इसस वास्तविक *कक्षा-शिक्षण गतिशील एव रोचक बनता है। प्रत्यक्ष अनुभव से सीखा हुआ* ज्ञान और अधिक सीखने की प्रेरणा देता है।

सामाजिक वातावरण के विभिन्न क्रियाकलापो का पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयो की शिक्षा हेतु सफलतापूर्वक उपयोग करने के लिए बालको की रुचि, आवश्यकता और क्षमता के अनुसार शैक्षिक योजनाएँ बना लेनी चाहिए। अध्यापको को पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि वे अमुक क्रिया-कलापो द्वारा बालको को अमुक ज्ञान या कौशल सिखाना चाहते है अथवा उनम अमुक सामाजिक गुण या प्रवृत्ति का विकास करना चाहते है। इसके बाद उन्हे प्रत्येक *योजना (प्रोजेक्ट) को अथवा क्रिया की प्रत्येक इकाइ को समस्या के रूप मे* लेना चाहिए और योजना-पद्धति की भाँति ही उस क्रिया को पूर्ण करने के लिए सामग्री और सूचना एकत्र करनी चाहिए तथा क्रिया अथवा अनुभव की समाप्ति के बाद जो काम कर लिया है उसका मूल्यांकन करके देखना चाहिए कि बालको को कितनी सफलता मिली है और कितनी कोर-कसर रह गयी है। नयी दिल्ली स्थित बेसिक शिक्षा के राष्ट्रीय सस्थान ने समवाय के ऊपर विभिन्न प्रदेश के शिक्षा-शास्त्रियो का जो सेमिनार आयोजित किया था उसम इस काम को वैज्ञानिक ढग से करने के लिए नीचे लिखे तरीके वतलाये गये हैं

१. निरीक्षण और सर्वेक्षण।
२ समत्रणा अथवा साक्षात्कार।
३. पर्यटन, भ्रमण और यात्रा।
४ स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियो और अभिभावको से सम्पर्क।
५ श्रव्य-दृश्य उपकरण का प्रयोग।
६. प्रश्नावली और सूची।

१. निरीक्षण और सर्वेक्षण

सामाजिक वातावरण के अध्ययन की सर्वश्रेष्ठ टेकनिक निरीक्षण और सर्वेक्षण ही है। इस कार्य को भलीभाँति करने के लिए हमें बालको की

कल्पना, जिज्ञासा और विवेक-शक्ति को जागृत करना चाहिए। यह काम हम निम्नांकित ढंग से कर सकते है

(१) योजना की जिस इकाई के विषय में सर्वेक्षण या निरीक्षण करना है उससे परिचित कराने के लिए बातचीत अथवा प्रश्नोत्तर के द्वारा।

(२) परिस्थिति का जो रुचिकर पहलू है उसकी ओर बालकों का ध्यान आकर्षित करके।

(३) बालकों को इस परिस्थिति, कार्य-कलाप अथवा घटना के विषय में और अधिक बातों को जानने का अवसर देकर।

सर्वेक्षण और निरीक्षण के अन्त में प्रायोगिक कार्य की योजना बनानी चाहिए। इस प्रकार का कार्य नक्शे, चार्ट, पोस्टर, अथवा माडल बनाना या विवरण लिखना, अथवा सम्बन्धित साहित्य पढना, वाद-विवाद या अभिनय कुछ भी हो सकता है। निरीक्षण के अन्त में कुछ क्रिया अवश्य होनी चाहिए जिससे बालकों को नये अनुभव प्राप्त हों और योजना के आगे के काम को तारतम्य प्राप्त हो।

२ साक्षात्कार अथवा समन्वणा

समाज के अन्य वर्गों के सदस्यों और बालकों के सम्पर्क में आने और उनसे परिचित होने और उनकी समस्याओं को जानने का यह सर्वोत्तम साधन है। बालकों की सामाजिक क्षमता के विकास का भी यह एक अच्छा साधन है। इस साधन द्वारा लड़के विचार विनिमय कर सकते हैं। आवश्यक सूचना एकत्र कर सकते है और समुदाय में प्रचलित यथार्थ परिस्थितियों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर उन्हे अधिक सहानुभूतिपूर्ण ढग से समझ सकते है। इस सम्बन्ध में बालकों को नीचे लिखी हिदायतें देनी चाहिए

(१) बालक यथाशक्ति साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आयें, विनयपूर्वक बात-चीत करें और शील तथा शिष्टाचार का पालन करें तथा सदा सौजन्यपूर्ण ढग से खड़े हों, बैठें और सम्भाषण करें।

(२) प्रतियोगिता के ढग से प्रश्न पूछें जो स्पष्ट और संक्षिप्त हों।

(३) साक्षात्कार के तुरत बाद जो सूचना प्राप्त हो, उसे लिख लें।

(४) अन्त में जो सूचनाएं प्राप्त हुई हो उनको वर्गानुसार एकत्र कर लिया जाय।

इसके पश्चात् अध्यापक उन सूचनाओं की यथोचित व्याख्या करे।

३ पर्यटन-भ्रमण-यात्रा

पर्यटन और भ्रमण बालकों को स्वयं निरीक्षण और परीक्षण का अवसर प्रदान करते है जिससे उन्हें स्वयं अपने अनुभव से सीखने का मौका मिलता है। बालकों को जिन समस्याओं से परिचित कराना है, अथवा समाज के जिस पहलू

ज्ञान कराना है, अथवा समुदाय के जिस क्रिया-कलाप का यथार्थ अनुभव देना है उन्हीं को ध्यान में रखकर पर्यटन आदि की योजना बनायी जाय। प्रत्येक पर्यटन के सम्बन्ध में नीचे लिखी बातें होनी चाहिए।

(१) सुनिश्चित आयोजन। (२) समुचित संगठन।

(३) सम्यक पर्यवेक्षण (सुपरविजन)

(४) पर्यटन के बाद के काम की निश्चित योजना।

वैसे पयटन के पहले ही उस स्थान अथवा घटना के सम्बन्ध में वर्णन, चित्रण और यदि सम्भव हो तो मैजिक लैटन अथवा सिनेमा द्वारा जिज्ञासा जाग्रत कर देनी चाहिए। यात्रा के साथ समुचित सग्रह और प्रतिदिन की डायरी भरने का काम अध्यापक की देखरेख में नियमपूवक होना चाहिए। यात्रा सम्बन्धी सारी व्यवस्था अध्यापक और लड़के मिलकर बाँट लें।

४ स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियो और अभिभावकों से सम्पर्क

बालक समुदाय के प्रतिष्ठित व्यक्तियों और स्कूल के छात्रों के अभिभावकों से मिलें। ये लोग बालकों की रुचि के अनुकूल विषयो पर विशेषत समुदाय के उद्योग धधे स्थानीय इतिहास सास्कृतिक परम्पराएँ लोक सस्कृति समुदाय म प्रचलित लोक कथाओं आदि पर भाषण दें अथवा बालकों म बातचीत करें। इन भाषणों और सम्वादों का उपयोग बालक अपनी डायरी लिखने में विवरण तैयार करने में माडल बनाने म अथवा स्कूल के लिए पत्र-पत्रिका और वाल पेपर या बुलेटिन निकालने म करें।

५ सामाजिक वातावरण के अध्ययन के सम्बन्ध में श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है। इनसे सामाजिक वातावरण को अधिक अच्छी तरह समझने म सहायता मिलती है। इनका प्रयोग यात्रा और पयटन क सम्बन्ध में अथवा सर्वेक्षण के समय अधिक लाभप्रद होगा। ये अप्रत्यक्ष रूप से बालकों को अपने लिखित विवरणों को चित्रित करने की प्रेरणा भी देते है।

६ सामाजिक वातावरण क अध्ययन के लिए ले जाने के पहले लड़कों को तत्सम्बन्धी प्रश्नावलि और सूची जरूर दे देनी चाहिए। अध्यापक खूब अध्ययन करके इस प्रकार की प्रश्नावलि बनायें। वातावरण का अध्ययन करके बालक इस प्रश्नावलि के प्रश्नों का उत्तर दें। ऐसा करने से उनका अध्ययन पूर्ण होगा।

समुदाय की जिन सस्थाओं का यहाँ वर्णन किया गया है बालकों द्वारा उनके सम्यक अध्ययन और उस अध्ययन की शैक्षणिक सम्भावनाओं से लाभ उठाने के लिए यह जरूरी है कि इन सस्थाओं के जीवन और क्रिया-कलापों को इकाइयों और उप क्रियाओं में विभाजित कर लिया जाय और फिर कक्षा की शारीरिक और बौद्धिक क्षमता के अनुरूप उन्हें वर्गीकृत कर उनके वैज्ञानिक शिक्षण की बात सोची जाय और उनसे विभिन्न विषय समवायित किये जायें। ●

बेड़छी ग्रामीण विश्वविद्यालय

बेड़छी (गुजरात) गाधी विद्यापीठ, जिसके समाजशास्त्र महाविद्यालय मन्दिर का उद्घाटन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन ने १६ अक्तूबर १६६७ को यहाँ किया। गुजरात में गाधी विचारधारा की उच्च शिक्षा का एक और सस्थान स्थापित हुआ है जो कि सूरत जिले के ग्रामीण क्षेत्रो को शिक्षित करेगा।

सूरत जिले को अनेक बेसिक शिक्षा पाठशालाओ के चलाने का गौरव प्राप्त है। २७ पूर्व बुनियादी और ६७ उत्तर बेसिक पाठशालाएँ भी है। अबतक इन उत्तर बेसिक पाठशालाओ से निकलनेवाले विद्यार्थियो को उच्च शिक्षा के लिए बहुत दूर के स्थानो, जैसे अहमदाबाद और सोनोसरा जाना पडता था। इस कठिनाई को दृष्टि में रखते हुए यहाँ गाधी विद्यापीठ की स्थापना की गयी है। विद्यापीठ द्वारा आवश्यकता पडने पर विभिन्न प्रभागो के सचालन का भी प्रस्ताव है। परन्तु इस समय विद्यापीठ सामाजिक विज्ञानो, शिक्षा शास्त्र, प्रविधि-शास्त्र, कृषि और पशुपालन तथा मानव-विज्ञान और वनशाला के प्रयोगो पर ही विशेष ध्यान देगा।

इनमें से सामाजिक विज्ञानो का विद्यालय जो कि समाजशास्त्र महाविद्यालय के नाम से जाना जाता है पहले ही खोला जा चुका है। यह प्रभाग चार वर्ष का पाठ्यक्रम रखेगा। इस समय ३४ पुरुष तथा १४ महिलाएँ, कुल ४८ विद्यार्थी पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष मे प्रवेश ले चुके है। इन ४८ विद्यार्थियो मे से ४३ विद्यार्थी निकटवर्ती पिछड़े वर्ग (आदिवासी) के है और ५ गुजरात के अन्य भागो के है।

विद्यापीठ में शिक्षा का माध्यम गुजराती होगा, परन्तु हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने की सुविधा भी दी जायगी। सर्वोदय नेता आचार्य काका कालेलकर इस विद्यापीठ के कुलपति है तथा प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्ता श्री जुगराम दवे उपकुलपति है।

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन ने अपने उद्घाटन-भाषण मे कहा—गाधी जी में साधारण व्यक्तियो और महिलाओ मे नेता तैयार करने एवम् मानव-चरित्र ढालने की अपूर्व प्रतिभा थी और इस प्रकार उन्होंने सुदृढ नेतृत्व तैयार किया जिसने आत्मोत्सर्ग की भावना से देश में स्वातत्र्य-सग्राम और रचनात्मक काम का सचालन किया।

गाधी जी के बाद आदमी बनाने और नेता बनाने तथा मानव चरित्र का विकास करने की ओर प्रयास नही हुआ। आज हर लोग अपने आप में ही व्यस्त है। लेकिन खुशी की बात है कि आज भी हमारे बीच गाधी के उपदेश विद्यमान है। आज हममें से अधिकाश लोग हृदय से गाधी की सेवा नही करते। उनके नाम पर फायदा उठाते है तथा उन्होंने जो हमें सीख दी, उपदेश दिया उसे कार्यरूप में परिणत नही करते। लेकिन मैं देखता हूँ कि गुजरात के इस हिस्से में लाग गाधी जी के आदर्शों के कार्यान्वयन में तन-मन से लगे हुए है।

कुछ समय पहले मुझे लगा था कि असल म बुनियादी शिक्षा का कोई सुपरिणाम नही निकल रहा है। आलोचको ने उसका दूसरा अर्थ लगाया और यह राग अलापना शुरू कर दिया कि बुनियादी शिक्षा असफल रही और यह व्यावहारिक नही है। उन्होने बताया कि मेरा मतलब यह था कि देश के विभिन्न भागा म बुनियादी शिक्षा का विश्वास के साथ कार्यान्वयन नही हुआ न कि यह अच्छे परिणाम देने में ही असमर्थ है।

गुजरात के मुख्यमत्री श्री हितेन्द्र देसाई ने जो राष्ट्रपति के साथ थे, राष्ट्रपति के प्रेरणाप्रद भाषण तथा बुनियादी शिक्षा के लिए उनके अथक प्रयासों की सराहना की।

इसके पूर्व सर्वोदय नेता तथा गाधी विद्यापीठ के कुलपति काका कालेलकर ने बडी श्रद्धा के साथ गाधीजी के आदर्शों का प्रचार करने म डा० हुसैन के प्रयासो की चर्चा की। पाठशाला के १२,००० बच्चो को कताई करते देख काका कालेलकर का दिल खुशी से उमड पडा तथा उन्होंने आशा व्यक्त की कि ये बच्चे गाधीजी तथा उनके आदर्शों को जीवित रखेंगे।

उपकुलपति श्री जुगतराम दवे ने राष्ट्रपति महोदय को आश्वासन दिया कि व विद्यालय को अपने ढग का सर्वोत्तम बनाने की कोशिश करेंगे तथा उसकी सख्या सीमित रखेंगे ताकि उसमे अच्छे और निष्ठ स्नातक निकलें।

सूरत की जिला पचायत समिति के अध्यक्ष श्री पी० चिमनलाल भट्ट ने इस अवसर पर भाषण देते हुए सूरत जिले में हुई बुनियादी शिक्षा की प्रगति की समीक्षा की। उन्होने बताया कि सूरत जिले के छह तालुकों के शिक्षक और छात्र इस कार्यक्रम में भाग ले रहे है। इसके अलावा, २४ आश्रम पाठशालाओ के ५०० छात्र तथा १७ उत्तर बुनियादी पाठशालाओ के १२,०० छात्र इस कार्यक्रम में भाग ले रहे हैं। उन्होंने बताया कि सामान्यतौर से सूरत जिला और खासतौर बालोद तालुका ने बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में असाधारण सफलता प्राप्त की है।

—'जागृति' मे साभार

अमरीका के शिक्षा-उद्यान

पालो आल्टो (कैलिफोर्निया) मे विद्युदाणविक गणनायन्त्र से छात्रो को ऐसे पाठ्यक्रमो, जीवन-वृत्तियो और कालेजो का पता लगाने मे सहायता मिलती है जो उनकी आकाक्षाओं और योग्यताओ के सबसे अधिक अनुकूल होते है।

उत्तरपूर्वी अमरीका मे रोड टापू के पास छोटे से ब्लॉक द्वीप पर प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलो के छात्र टेलिफोन लाइनो और विशेष प्रकार के विद्युदाणविक उपकरणो द्वारा देश की मुख्य भूमि के अध्यापको से गणित की शिक्षा प्राप्त करते है।

अटलान्टा (जॉर्जिया) मे भीड-भाडवाले शहरी इलाको मे रहनेवाले छात्रो के लिए एक ऐसे केन्द्र की व्यवस्था है, जहाँ ५० एकड मे फैला हुआ वन, प्रयोगशालाएँ, श्रेणी-कक्ष, पुस्तकालय और ३६ इची दूरवीक्षण यन्त्र से युक्त ग्रह-नक्षत्रशाला मौजूद है।

अटलान्टा शिक्षण-केन्द्र जैसे वस्ती से दूर स्थापित शिक्षण-केन्द्र अमरीका के अनेक शहरी क्षेत्रो की प्रिय योजनाएँ हैं। इन केन्द्रो की स्थापना का मुख्य उद्देश्य मनुष्य और उसके वातावरण मे विद्यमान पारस्परिक सम्बन्ध और उन उपायो का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करना है जिनके अन्तर्गत छात्र राष्ट्र के सौन्दर्य और प्राकृतिक साधनो की रक्षा करने में सहायता दे सकते है।

ये 'पेस' नामक कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्यान्वित होनेवाली लगभग १४०० योजनाएँ है। 'पेस' शिक्षा के क्षेत्र मे रचनात्मकता को बढाने की योजनाओ की सक्षिप्त सज्ञा है।

पहला विस्तृत कार्यक्रम

अमरीका म अपनी किस्म के विस्तृत कार्यक्रम 'पेस' को १९६५ के 'ऐलिमेण्ट्री एण्ड सेकेण्डरी एजूकेशन ऐक्ट' के अग के रूप मे काग्रेस द्वारा स्वीकृत किया गया था। अमेरिका के शिक्षा-विभाग द्वारा सचालित इस कार्यक्रम के अन्तर्गत, स्थानीय स्कूलो को सघीय सरकार द्वारा धन दिया जाता है।

'पेस' की कोई भी दो योजनाएँ एक जैसी नहीं हैं। प्रत्येक योजना परम्परागत शिक्षा-पाठ्यक्रम की कमी को दूर करने के लिए स्थानीय अधिकारियो द्वारा बनायी जाती है।

अमरीकी शिक्षा-विभाग के विशेषज्ञो की रिपोर्ट में कहा गया है कि 'पेस'

की योजनाएँ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में नये विचार और नये सिद्धान्त पैदा कर रही हैं। एक अधिकारी ने कहा : 'पेस' योजनाओं ने अमरीकी स्कूलों के कुछ अत्यन्त प्रतिभाशाली लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है।

परीक्षण और उत्पादकता

दक्षिणी फ्लोरिडा शिक्षा-केन्द्र में एक अन्य सूझबूझवाले कार्यक्रम का अवलोकन किया जा सकता है। यह कार्यक्रम संघीय सरकार की सहायता से नहीं चल रहा है, फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षणों और उत्पादकों का बढ़ावा देता है। ४ वर्ष पूर्व स्थापित यह केन्द्र शिक्षा पाने में बच्चों की सहायता करने के लिए नये साधनों का प्रयोग करने की दृष्टि से अग्रणी केन्द्र बन गया है।

यह केन्द्र अमरीका के प्रथम 'शिक्षा-उद्यान' के रूप में इतिहास में अपना नाम लिखा चुका है। इसमें प्राथमिक स्कूल से लेकर कालेज तक की शिक्षा की व्यवस्था है। इसके दो किण्डरगार्टन स्कूलों, माध्यमिक स्कूल और दो वर्षीय कालेज में अध्ययन करता हुआ एक छात्र लगातार १५ वर्षों तक वहीं रह कर अध्ययन कर सकता है और उसे कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं। अगले महीने नया विश्वविद्यालय खुल जाने पर छात्र और चार वर्ष वहीं रह कर अध्ययन कर सकेंगे।

'नोवा' लेटिन शब्द है, जिसका अर्थ है नया। यह केन्द्र के प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिए बिलकुल उपयुक्त नाम है। नोवा के छात्रों को उनकी योग्यता के अनुसार विषय पढ़ाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में उनकी आयु अथवा स्कूल में बिताये गये वर्षों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। वहाँ आमतौर पर ऐसा देखने को मिलता है कि चौथे वर्ष के छात्र ८ वें वर्ष के छात्रों के साथ गणित पढ़ रहे हैं अथवा ७ वें वर्ष के विज्ञान के छात्र १२ वें वर्ष के छात्रों के साथ अध्ययन कर रहे हैं।

छात्र उस समय तक एक ही पाठ्यक्रम में चलता रहता है जब तक वह उसमें निपुण नहीं हो जाता, चाहे उसका कितना ही समय क्यों न लग जाय।

नोवा के शिक्षक

नोवा के शिक्षक प्राध्यापक नहीं हैं। वे कक्षाओं पर हावी नहीं होते हैं। उनका मुख्य कार्य शिक्षा की ऐसी रूपरेखा तैयार करना है जिससे प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं अपना उत्तर ढूँढ़ सके और उसे स्वतन्त्र रूप से अध्ययन एवं अनुसन्धान करने का प्रोत्साहन मिले। वे अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी विषय में आगे बढ़ सकते हैं; यहाँ तक कि माध्यमिक स्कूल में कालेज के स्तर तक पहुँच सकते हैं।

—(अमेरिकन रिपोर्टर से साभार)

नयी तालीम : दिसम्बर '६७
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की अनुमति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि सं० एल. १७२३

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से खण्डलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स, मानमंदिर, वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित